अर्थ—'जब वह कह डाला तो यह क्या चीज़ है ?' जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो वहाँ चतुर लोग अर्थापत्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना —इस अलकार द्वारा काव्य में न कहे हुए अर्थ की सिद्धि होती है, एवं इस में दुष्कर कार्य की सिद्धि के द्वारा सहज कार्य की सुगम सिद्धि का वर्णन होता है। इस अलंकार में यही दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई तो इतनी सुगम बात के होने में क्या संदेह है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

सयन मैं साहन की सुंदरी सिखावैं ऐसे,
सरजा सों वैर जनि करो महाबली है।
पेसकसैं भेजत विलायती पुरुतगाल,
सुनि कै सहमि जात करनाट-थली है॥
भूषन भनत गढ़-कोट माल-मुलुक दै,
सिवा सों सलाह राखिये तौ बात भली हैं।
जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई,
दिल्ली दल मली तो तिहारी कहा चली है ॥२६२॥

शब्दार्थ—सयन=शयन, सोते समय। पेसकसैं=भेंट नज़र। करनाट-थली=करनाटक देश। अखंड=अखंडनीय (औरंगज़ेब) मली=पोस डाली, रौंद डाली।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि (शत्रु) स्त्रियाँ शयन के समय अपने पति शाहों को (दक्षिण के सुलतानों को) इस प्रकार समझाती हैं कि आप सरजा राजा शिवाजी से शत्रुता न करो क्योंकि वह बड़ा बलवान है। उसे पुर्तगाल एवं अन्य विलायतों (विदेशों) के बादशाह भी नज़रें भेजते हैं और उसका नाम सुनकर ही सारा करनाटक देश भय से सहम जाता है। अतः आप किले, माल-असबाब एवं कुछ देश आदि देकर उससे सन्धि ही

भूषण-ग्रन्थावली

(विशद भूमिका, शब्दार्थ, पद्यार्थ, ऐतिहासिक स्थान और व्यक्तियों के परिचय सहित)

टीकाकार

पं राजनारायण शर्मा

हिन्दी-प्रभाकर

भूमिका-लेखक

श्री देवचन्द्र विशारद

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

लाहौर

दूसरा संस्करण १९३८ मूल्य २)

समर्पण

पूज्य गरुवर देशोपकारक श्री लाला कृष्णजसराय जी बी० ए०
एफ० टी० ऐस०, भूतपूर्व इन्स्पैक्टर जनरल शिक्षाविभाग अलवर,
मंत्री कमार्शियल कालेज देहली, वर्तमान मंत्री कमार्शियल
हाईस्कूल, देहली, जिनकी छत्रछाया में मैंने शिक्षा
प्राप्त की और अब शिक्षण कार्य करता
हुआ साहित्य-सेवा करना सीख रहा
हूँ, उन्हीं के करकमलों में
यह तुच्छ भेंट सादर
समर्पित
है

ओ३म् शम्

राजनारायण शर्मा

धन्यवाद-प्रकाश

इस टीका के लिखने में हमें जिन जिन पुस्तकों से सहायता मिली है, उनकी सूची यहाँ दी जा रही है। इन पुस्तकों के लेखकों, इनके संग्रहकर्त्ताओं एवं संपादक महोदयों को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

इसके अतिरिक्त हमें महामहोपाध्याय श्री० हरिनारायण जी शास्त्री, प्रोफेसर संस्कृत हिन्दू कालेज देहली; महामहोपाध्याय श्री आर्यमुनि, प्रिंसिपल संस्कृत कालेज मोगा (पंजाव); श्री पं० चन्द्रदत्त जी शास्त्री, राजपंडित अलवर; राजकवि जयदेव जी ब्रह्मभट्ट, अलवर; स्वर्गीय श्री पं० वावूराम जी शर्मा, एम० ए०, प्रोफेसर हिंदू कालेज देहली; श्री लाला रामजीलालजी गुप्ता, एम० ए०, साहित्य रत्न; मित्रवर आचार्य पं० रामजीवन जी शर्मा, हिंदी प्रभाकर, साहित्य रत्न आदि महानुभावों से पर्याप्त सहायता मिली है। एतदर्थ हम इन महानुभावों को हृदय से धन्यवाद देते हैं।

राजनारायण शर्मा

सहायक पुस्तकों की सूची

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं रामचन्द्र शुक्ल
२. हिन्दी भाषा और साहित्य, बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०
३. हिन्दी नवरत्न, श्री मिश्रबन्धु
४. छत्र प्रकाश, बा० श्यामसुन्दरदास बी० ए०
५. कविता कौमुदी, श्री रामनरेश त्रिपाठी
६. भूषण ग्रन्थावली, श्री मिश्रबन्धु
७. " " श्री रामनरेश त्रिपाठी
८. " " बंगवासी प्रेस, कलकत्ता
९. " " साहित्य सेवक कार्यालय, बनारस
१०. " " हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
११. " " श्री ब्रजरत्नदास
१२. संपूर्ण भूषण (मराठी) इतिहास संशोधक मंडल, पूना
१३. शिवाबावनी, श्री राधामोहन गोकुल जी, कलकत्ता
१४. शिवाबावनी, पं० हरि शकंर शर्मा
१५. " " हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१६. शिवाबावनी, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी
१७. " " साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग
१८. छत्रसाल दशक, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी
१९. अलङ्कार मंजूषा, ला० भगवान दीन
२०. भारती भूषण, सेठ अर्जुनदास केडिया
२१. काव्य प्रदीप, पं० रामबहोरी शुक्ल
२२. मराठों का उत्थान और पतन, गोपाल, दामोदर तामस्कर
23. Shivaji & His Times by J. N. Sarkar.
24. A History of the Marath People by Kincaid and Parasnis.
25. Life of Shivaji Maharaj by Takakhav & Keluskar.
26. Medevial India by U. N. Ball.

सूची

भूमिका भाग

पुस्तक के भूमिका, क और ख—तीनों भागों की पृष्ठ संख्या १ से शुरू की गई है। भूमिका और पद्य-सूची में हवाला देते हुए जहाँ केवल पृष्ठ संख्या दी गई है, वह क भाग की पृष्ठ संख्या है और जहाँ पृष्ठ संख्या के साथ ख लिखा है, वह ख भाग की पृष्ठ संख्या है।

कवि-परिचय

महाकवि भूषण के वास्तविक नाम से हिन्दी जगत अब तक अनभिज्ञ है। उनका जन्म कब हुआ, देहावसान कब हुआ, यह निश्चित तौर से नहीं कहा जा सकता। कवि ने अपने वंश तथा जन्मस्थान के विषय में अपने काव्य-ग्रन्थों में जो संक्षिप्त परिचय दिया है, तथा ग्रंथ-निर्माण की जो तिथि दी है, बस उनका उतना ही परिचय प्रामाणिक माना जा सकता है। उनके जीवन की अन्य घटनाएँ, उनके भाइयों की संख्या तथा नाम और उनके जन्म तथा देहावसान की तिथियाँ आदि सब अनुमान, अन्य साहित्यिक ग्रन्थों के साक्ष्य तथा किंवदन्तियों पर ही अवलम्बित हैं।

'शिवराज भूषण' के छंद-संख्या २५ से २७ तक में भूषण अपना परिचय यों देते हैं—"शिवाजी के पास देश-देश से विद्वान याचना (पुरस्कार-प्राप्ति) की इच्छा से आते हैं; उन्हीं में एक कवि भी आया जिसे 'भूषण' नाम से पुकारा जाता था। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कश्यप गोत्र, धैर्यवान श्री रत्नाकर जी का पुत्र था और यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर नामक उस गाँव में रहता था, जिसमें बीरबल के समान महाबली राजा और कवि हुए हैं, तथा जहाँ श्री विश्वेश्वर महादेव के समान बिहारीश्वर महादेव का मन्दिर था।"

इन पद्यों में निर्दिष्ट त्रिविक्रमपुर, आधुनिक तिकवाँपुर, यमुना नदी के बाएँ किनारे पर ज़िला कानपुर, परगना व डाकखाना घाटमपुर में मौज़ा "अकबरपुर बीरबल" से दो मील की दूरी पर बसा है। कानपुर से जो पक्की सड़क-हमीरपुर को गई है उसके किनारे कानपुर से ३० और

घाटमपुर से सात मील पर सजेती नामक एक गाँव है, जहाँ से तिकवाँ-पुर केवल दो मील रह जाता है। "अकबरपुर बीरबल" अब भी एक अच्छा मौजा है, जहाँ अकबर बादशाह के सुप्रसिद्ध मंत्री, अतरंग मित्र और मुसाहिब महाराज बीरबल का जन्म हुआ था। ऐसा जान पड़ता कि राजा बीरबल ने अपने आश्रयदाता तथा अपने नाम पर इस मौजे का नया नामकरण किया, पर उनसे पहले इसका क्या नाम था इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस मौजे में राधाकृष्ण का एक प्राचीन मंदिर भी वर्त्तमान है, जिसे भूषण ने बिहारीश्वर का मंदिर लिखा है। इस प्रकार हम महाकवि भूषण के पिता, उनके वंश तथा गाँव के बारे में एक निश्चित निर्णय पर पहुँच जाते हैं। पर इस गाँव में भूषण के वंश का अब कोई व्यक्ति नहीं रहता।

ऐसा प्रसिद्ध है कि भूषण के पिता रत्नाकरजी देवी के बड़े भक्त थे और उन्हीं की कृपा से इनके चार पुत्र उत्पन्न हुए—चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ उपनाम जटाशंकर। ये चारों भाई सुकवि थे। सबने पर्याप्त काव्य-ग्रन्थ लिखे, पर किसी ने भी अपने ग्रन्थ में एक दूसरे का अथवा पारस्परिक भ्रातृत्व का उल्लेख नहीं किया। चिंतामणि, मतिराम और भूषण के भाई होने की बात कई जगह पाई जाती है। सबसे पहले हम मौलाना गुलामअली आज़ाद के 'तज़किरः सर्वे आज़ाद' में इसका उल्लेख पाते हैं। इसमें चिंतामणि के विषय में लिखा गया है कि मतिराम और भूषण चिंतामणि के ही भाई थे तथा वे कोड़ा जहानाबाद के निवासी थे। चिंतामणि संस्कृत के बड़े पंडित थे और शाहजहाँ के बेटे शुजा के दरबार में बड़ी इज्ज़त से रहते थे। यह ग्रन्थ सं० १८०८ में बना था और इसके लेखक गुलामअली के पितामह मीर अब्दुल जलील बिलग्रामी, सैयद रहमतुल्ला के मित्र थे जिन्होंने चिंतामणि जी को पुरस्कृत किया था। गुलामअली फारसी के सुकवि, इतिहासज्ञ

तथा प्रसिद्ध गद्य-लेखक थे। अतः उनके कथन को अकारण ही अशुद्ध नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त सं० १८७२ में समाप्त हुई 'रसचन्द्रिका' के लेखक कवि बिहारीलालजी ने जो कि चरखारी-नरेश राजा विजयबहादुर विक्रमाजीत तथा उनके पुत्र महाराज रतसिंह के दरबार के राजकवि थे, अपना वंश-परिचय अपने ग्रन्थ में इस प्रकार दिया है।

बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिन्दी के तीर।
बिरच्यो भूप हमीर जनु मध्यदेश के हीर॥
भूषण चिंतामणि तहाँ कवि भूषण मतिराम।
नृप हमीर सनमान ते कीन्हें निज निज धाम॥
है पंती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित सीतल सुत सुभ चाल॥
कस्यपवंस कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत॥
विविध भाँति सनमान करि ल्याये चलि महिपाल।
आए विक्रम की सभा सुकवि बिहारीलाल॥

मतिराम के वंशधर कविवर बिहारीलाल ने यद्यपि इन पद्यों में चिंतामणि, भूषण तथा मतिराम के भ्रातृत्व का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया, पर उन्होंने उनके जन्मस्थान, गोत्र और कुल का स्पष्टतया एक होना बताया है, जिससे गुलामअली के लेख का समर्थन होता है। महाराष्ट्र लेखक चिटणीस ने भी 'बखर' में चिन्तामणि और भूषण के भाई होने का उल्लेख किया है। तजकिरः सर्वे-आज़ाद अथवा रसचन्द्रिका में जटाशंकर उपनाम नीलकंठ का कहीं उल्लेख नहीं, अतः अधिक मत केवल तीन ही भाई मानता है; पर शिवसिंह-सरोज तथा मनोहर-प्रकाश आदि ग्रंथों में जटाशंकर को भी उनका भाई माना गया है।

कहा जाता है कि चिंतामणि सबसे बड़े भाई थे, उनसे छोटे भूषण और उनसे छोटे मतिराम थे। संवत् १८९७ में लिखे गये वंशभास्कर नामक ग्रंथ में लिखा है—"जेठ भ्राता भूषणरु मध्य मतिराम तीजो चिंतामणि भये ये कविता-प्रवीन।" इस प्रकार वह उलटा क्रम मानता है।

भूषण का जन्म कब हुआ, यह भी अभी निर्भ्रान्त रूप से नहीं कहा जा सकता। शिवसिंह-सरोज में भूषण का जन्मकाल संवत् १७३८ विक्रमी लिखा है। कई सज्जन भूषण को शिवाजी का समकालीन नहीं मानते वरन उनके पौत्र साहू का दरबारी कवि मानते हैं। साहू ने अपना राज्याभिषेक-समारंभ विक्रमी संवत् १७६४ में किया। शिवसिंह-सरोज में लिखित भूषण का जन्म काल मान लेने से अवश्य ही भूषण साहू के दरबारी कवि कहे जायँगे। पर भूषण ने अपने ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' का समाप्तिकाल संवत् १७३० बताया है जो शिवसिंह-सरोज में लिखित उनके जन्मकाल से भी ८ वर्ष पहले ठहरता है। इसके अतिरिक्त भूषण-कृत 'शिवराज-भूषण' में एक विशेष बात दर्शनीय है। उसमें एक काल-विशेष की घटनाओं का ही विपद वर्णन है तथा किसी भी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं है जो संवत् १७३० के बाद की हो। यदि भूषण शिवाजी के समकालीन न हो कर उनके बाद के होते तो पहले वे अपने आश्रयदाता साहू जी को छोड़कर शिवाजी के यश का वर्णन करने में ही अधिक समय न लगाते, और यदि शिवाजी का यश-वर्णन करते भी तो अपने अलंकार-ग्रंथ में साहू का भी उल्लेख अवश्य करते। यदि 'शिवराज-भूषण' साहू जी के समय में लिखा गया हो, तो उसमें शिवाजी के १७३० के बाद के कार्यों का भी वर्णन होना चाहिये। शिवाजी के राज्याभिषेक जैसी महत्त्वपूर्ण घटना (जो संवत् १७३१ की है) का भी शिवराज-भूषण में उल्लेख न देखकर यह अनुमान दृढ़ हो जाता है

कि भूषण का ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' शिवाजी के राज्याभिषेक से पहले ही समाप्त हो चुका था। अतः उसमें लिखा गया समाप्तिकाल ठीक है। अंत में समाप्तिकाल-द्योतक दोहे के अतिरिक्त प्रारंभ में भी भूषण ने शिवाजी के दरबार में जाने उल्लेख लिया है। अतः जब तक अन्य कोई बहुत प्रबल प्रमाण उपस्थित न हो तब तक कवि द्वारा लिखित तिथियों पर अविश्वास करना उचित नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार महाकवि भूषण का कविताकाल संवत् १७३० के लगभग ठहरता है, और उनका जन्म उससे कम से कम ३५–४० बरस पहले हुआ होगा। मिश्रबंधु इनका जन्मकाल उससे लगभग ५९ वर्ष पूर्व संवत् १६७१ (ई० सन् १६१४) मानते हैं। प्रसिद्ध विद्वान पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्मकाल सं० १६७० माना है। पर हमें यह ठीक नहीं जँचता, क्योंकि यदि 'शिवराज भूषण' की समाप्ति पर भूषण की अवस्था ६० वर्ष के लगभग मानी जाय तो साहू के राज्याभिषेक के समय भूषण ९४ वर्ष के ठहरते हैं। अतः हमारी सम्मति में इनका जन्मकाल १६९० और १७०० के बीच में मानना चाहिये।

किंवदन्ती है कि बचपन में ही नहीं, अपितु युवावस्था के प्रारंभ तक भूषण बिलकुल निकम्मे थे। पर उनके भाई चिंतामणि की दिल्ली-सम्राट् के दरबार में पहुँच हो गई थी और वे ही धन कमाकर घर भेजते थे, जिससे घर का खर्च चलता था। चिंतामणि के कमाऊ होने पर उनकी स्त्री को भी पर्याप्त अभिमान था। एक दिन दाल में नमक कम था, भूषण ने अपनी भावज से नमक माँगा। इस पर उसने ताना मार कर कहा—हाँ बहुत सा नमक कमाकर तुमने रख दिया है न, जो उठा लाऊँ! यह व्यंग्योक्ति भूषण न सह सके, और तत्काल ही भोजन छोड़ कर उठ गये और बोले—अच्छा, अब जब नमक कमाकर लायँगे, तभी यहाँ भोजन करेंगे। ऐसा कह भूषण घर से निकल पड़े, और उसी समय से उन्होंने

कवित्व-शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया। सोती हुई कवित्व-शक्ति विकसित हो उठी और वे थोड़े ही दिनों में अच्छे कवि हो गये।

उन दिनों कविता द्वारा धनोपार्जन का एक ही मार्ग था, राज्याश्रय। इसी मार्ग को उस समय के अनेक कवियों ने अपनाया था। भूषण के बड़े भाई चिंतामणि भी राज्याश्रय से ही धन और मान पा रहे थे। भूषण ने भी चित्रकूटाधिपति सोलंकी 'हृदयराम सुत रुद्र' का आश्रय ग्रहण किया। उस समय साधारण कवि शृंगार रस की ही कविता करते थे। पर भूषण ने उस कविता-धारा में न बह कर वीररस की चमत्कारिणी कविता प्रारंभ की। इनकी चमत्कारिक कविताओं से प्रसन्न हो 'हृदयराम सुत रुद्र' ने इन्हें 'कवि भूषण' की उपाधि दी जैसा कि भूषण ने 'शिवराज भूषण' के छंद-संख्या २८ में कहा है। तभी से इनका 'भूषण' नाम इतना प्रचलित हुआ कि उनके वास्तविक नाम का कहीं पता नहीं चलता।

विशाल-भारत की अगस्त सन् १९३० ई० की संख्या में कुँवर महेन्द्रपालसिंह ने अपने एक लेख में बताया था कि तिकवाँपुर के एक भाट से उन्हें पता लगा था कि भूषण का असली नाम 'पतिराम' था जो मतिराम के वज़न पर होने से ठीक हो सकता है। पर अभी तक इस विषय में निश्चित तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता।

ये हृदयराम या रुद्रशाह सोलंकी, जिन्होंने इन्हें कवि भूषण की उपाधि देकर सदा के लिए अमर कर दिया, कौन थे, इसके विषय में भी निश्चित तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता। भूषण ने सोलंकी-नरेश का केवल शिवराज-भूषण के छन्द सं० २८ में तथा फुटकर छन्द संख्या ४१ (बाजि बंब चढ़ो साजि) में ही उल्लेख किया है। अग्निकुल से चार क्षत्रियकुलों का जन्म हुआ कहा जाता है, जिनमें एक सोलंकी भी हैं। रुद्रशाह सोलंकी का पता तो इतिहास में नहीं मिलता पर उनके पिता हृदयराम का नाम मिलता है। ये गहोरा प्रान्त के राजा थे। गहोरा

चित्रकूट से तेरह मील पर है। चित्रकूट पर भी इनका उस समय राज्य प्रतीत होता है। करवी जो चित्रकूट से तीन ही मील पर है, इनके राज्य में सम्मिलित था। संवत् १७८२ के लगभग महाराज छत्रसाल ने शेष बुन्देलखंड के साथ इस राज्य पर भी अधिकार कर लिया था।

रीवाँ का बघेल राजवंश सोलंकी ही है। कई कहते हैं कि इनके ज़मीदारों में से बर्दी के एक बाबू रुद्रशाह हो गए हैं जिनके पिता का या बड़े भाई का नाम हरिहरशाह था।

कुछ लोग भूषण के "हृदयराम सुत रुद्र" का अर्थ रुद्र का पुत्र हृदयराम करते हैं। उनके अर्थानुसार गहोरा प्रान्त (चित्रकूट) के अधिपति रुद्रशाह के पुत्र हृदयराम ने इन्हें कवि भूषण की पदवी दी थी। पर अभी तक इस विषय में निश्चित तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता।

कवि भूषण के सब जीवनी-लेखक इस बात में सहमत हैं कि भूषण ने पहले-पहल सोलंकी-नरेश का आश्रय लिया था, जिन्होंने इन्हें 'भूषण' की पदवी दी। पर इस राज्य से भूषण कहाँ गए, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि भूषण यहाँ से दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब के दरबार में गये, जहाँ कि उनके भाई चिंतामणि पहले ही रहते थे। वहाँ से वे शिवाजी के यहाँ पहुँचे। दूसरों का मत है कि शिवाजी की ख्याति तथा वीरता का हाल सुनकर भूषण सोलंकी-नरेश का आश्रय छोड़कर वहाँ से सीधा मराठा दरबार में गये। पहले मत वाले भूषण के शिवाजी के दरबार में पहुँचने तक की नीचे लिखी कहानी कहते हैं।

दिल्ली पहुँचने के अनंतर अपने भाई चिंतामणि के साथ भूषण भी दरबार में जाने लगे। एक दिन औरंगजेब ने भूषण की कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। भूषण ने कहा कि मेरे भाई चिंतामणि की शृंगार-रस की कविता सुनकर आपका हाथ ठौर-कुठौर पड़ने के कारण गंदा हो

गया होगा, पर मेरा वीर-काव्य सुनकर वह मूँछों पर पड़ेगा। इसलिए मेरी कविता सुनने से पहले उसे धो लीजिए। यह सुनकर औरंगजेब ने कहा कि यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हें प्राण-दंड दिया जायगा। भूपण ने इसे स्वीकार कर लिया। बादशाह हाथ धोकर सुनने बैठा। अब भूपण ने फड़कते स्वर में अपने वीररस के पद सुनाने प्रारम्भ किये। अंत में उन का कहना ठीक निकला। बादशाह का हाथ मूँछों पर पहुँच गया। बादशाह यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भूपण को पारितोपक आदि देकर सम्मानित किया। अब भूपण का दरबार में अच्छा मान होने लगा। पर ऐसे उत्कृष्ट छंद कौन से थे, जिन्होंने औरंग-जेब का हाथ मूँछों पर फिरवा दिया था, इसका पता नहीं लगता। श्री कुँवर महेन्द्रपालसिंह जी कहते हैं कि भूपण का वह छंद निम्नलिखित था—

> कीन्हे खंड-खंड ते प्रचंड बलबंड बीर,
> मंडल मही के अरि-खंडन भुलाने हैं।
> लै-लै दंड छंडे ते न मंडे मुख रंचकहू,
> हेरत हिराने ते कहूँ न ठहराने हैं॥
> पूरब पछाँह आन माने नहिं दच्छिनहू,
> उत्तर धरा को धनी रोपत निज थाने हैं।
> भूपन भनत नवखंड महि-मंडल में,
> जहाँ-तहाँ दीसत अब साहि के निसाने हैं॥

भूपण ने किस प्रकार औरंगजेब का दरबार छोड़ा इस विपय में भी एक बड़ी सुन्दर दंत-कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि एक दिन बादशाह ने कवियों से कहा कि तुम लोग सदा मेरी प्रशंसा ही किया करते हो, क्या मुझ में कोई ऐब नहीं है? अन्य कवि लोग तो चापलूसी करते रहे, पर जातीय कवि-भूपण से चुप न रहा गया। अभय दान लेकर

उन्होंने "क़िबले की ठौर बाप बादसाह साहजहाँ" (शि. बा. छ. १२) तथा 'हाथ तसबीह लिये प्रात उठै बन्दगी को' (शि. बा. छ. १३) ये दो पद सुनाये। औरंगजेब का चेहरा तमतमा उठा, वह भूषण को प्राणदंड देने को उद्यत हो गया, पर दरबारियों ने अभय वचन की याद दिलाकर भूषण की जान बचाई। अब भूषण ने वहाँ रहना उचित न समझा और अपनी द्रुतगामिनी कबूतरी घोड़ी पर चढ़कर उन्होंने दक्षिण की राह ली।

भूषण जब दिल्ली को छोड़कर अपनी घोड़ी पर चढ़े जा रहे थे तो रास्ते में हाथी पर चढ़ कर नमाज़ पढ़ने के लिए आता हुआ बादशाह मिला। भूषण ने उसकी ओर देखा तक नहीं। तब बादशाह ने एक दरबारी द्वारा भूषण से पुछवाया कि वह कहाँ जा रहा है। भूषण ने उत्तर दिया कि अब मैं छत्रपति शिवाजी महाराज के दरबार में रहूँगा, वहीं जा रहा हूँ। बादशाह ने यह बात सुनकर इन्हें पकड़ने की आज्ञा दी, पर इन्होंने जो एड़ लगाई तो पीछा करने वाले मुख देखते रह गये और वे हवा हो गये।

परन्तु इस किंवदन्ती पर विश्वास करने वाले यह भूल जाते हैं कि औरंगजेब दशरथ नहीं था। ये दोनों छन्द सुनकर औरंगजेब ने वचनबद्ध होने के कारण भूषण को छोड़ दिया यह बात हम नहीं मान सकते।

कइयों का यह भी कहना है कि जब शिवाजी दिल्ली आए तो भूषण की भी इनसे भेंट हुई थी। यदि यह बात सत्य मानी जाय तो भूषण के दक्षिण पहुँचने की आगे दी गई कथा सत्य नहीं प्रतीत होती।

ऐसा कहा जाता है कि संध्या के समय रायगढ़ पहुँच कर भूषण एक देवालय में ठहर गये। संयोग-वश कुछ रात बीते महाराज शिवाजी छद्मवेश में वहाँ पूजा करने के लिए आए। बात-चीत में भूषण ने अपने आने का प्रयोजन कह डाला। इनका परिचय पाकर उस तेजस्वी छद्मवेशी व्यक्ति ने इनसे कुछ सुनाने को कहा। भूषण ने उस व्यक्ति को उच्च

राज-कर्मचारी विचार कर तथा उसके द्वारा दरबार में शीघ्र प्रवेश पाने की आशा कर उसे प्रसन्न करना उचित समझा तथा "इंद्र जिमि जम्भ पर" (शि० भू० छ० ५६) फड़कती आवाज़ में पढ़ सुनाया। उसे सुनकर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पुनः सुनाने को कहा। इस प्रकार १८ बार उस छन्द को पढ़कर भूषण थक गए। उस छद्मवेशी व्यक्ति के पुनः आग्रह करने पर भी वे अधिक बार न पढ़ सके। तब अपनी प्रसन्नता प्रकट कर तथा दूसरे दिन दरबार में आने पर शिवाजी से साक्षात्कार कराने का वचन देकर उस छद्मवेशी व्यक्ति ने उनसे बिदा ली। दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे तो उसी छद्मवेशी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठे देखकर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। भूषण समझ गए कि कल छंद सुनने वाले व्यक्ति स्वयं शिवाजी महाराज थे। शिवाजी ने भी उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और कहा कि मैंने यह निश्चय किया था कि आप जितनी बार उस छंद को पढ़ेंगे, उतने ही लाख रुपये, उतने ही गाँव, तथा उतने ही हाथी आपकी भेंट करूँगा। आपने १८ बार वह छंद सुनाया था, अतएव १८ लाख रुपया, १८ गाँव और १८ हाथी आपकी भेंट किये जाते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि भूषण ने उस छद्मवेशी व्यक्ति को प्रथम भेंट के अवसर पर केवल एक ही कवित्त १८ बार या ५२ बार न सुनाया था अपितु भिन्न-भिन्न ५२ कवित्त सुनाये थे, जो कि शिवाबावनी ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। और शिवाजी ने उन्हें ५२ हाथी, ५२ लाख रुपये तथा ५२ गाँव दिये थे। कुछ भी हो इतना निर्विवाद है कि भूषण के कवित्त शिवाजी ने सुने अवश्य थे और प्रसन्न होकर उन्हें प्रचुर धन भी दिया था। कहते हैं कि भूषण ने उसी समय नमक का एक हाथी लदवा कर अपनी भाभी के पास भेज दिया।

शिवाजी से पुरस्कृत होने के अनन्तर भूषण उनके दरबार में

राजकवि पद पर प्रतिष्ठित हुए और वहाँ रहकर कविता करने लगे। हिन्दूजाति के नायक तथा 'हिन्दवी स्वराज्य' की सर्व प्रथम कल्पना करने वाले शिवाजी के उन्नत चरित्र को देखकर महाकवि भूषण के चित्त में उस को भिन्न-भिन्न अलंकारों से भूषित कर वर्णन करने की इच्छा उत्पन्न हुई❀। तदनुसार शिवराज-भूषण नामक ग्रंथ की रचना हुई, जिसमें भूषण ने अलंकारों के लक्षण देकर उदाहरणों में अपने चरित्र नायक शिवाजी के चरित्र की भिन्न-भिन्न घटनाओं, उनके यश, दान और उनकी महत्ता का ओजस्वी छन्दों में उल्लेख किया। वीर रसावतार नायक के अनुरूप ही ग्रंथ में भी वीर-रस का ही परिपाक है। यह ग्रंथ शिवाजी के राज्याभिषेक से प्रायः एक वर्ष पूर्व संवत् १७३० में समाप्त हुआ, जो कि उसके छन्द संख्या ३८२ से स्पष्ट है कुछ लोग उसकी समाप्ति संवत् १७३० के कार्तिक या श्रावण मास में मानते हैं, और कुछ लोग प्रथम पंक्ति का पाठान्तर करके उसकी समाप्ति ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी को मानते हैं। पिछले मत के पोषक अधिक हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न विचारणीय है कि भूषण शिवाजी के दरबार में कब पहुँचे, और वहाँ कब तक रहे। इस प्रश्न के बारे में भी हमें भूषण के ग्रन्थों का ही सहारा लेना पड़ता है। भूषण ने शिवराज भूषण के १४ वें दोहे में लिखा हैः—

दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास।
सिव सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ़-वास ॥

और उसके बाद कई छन्दों में उसी रायगढ़ का वर्णन किया है। आगे भी तद्गुण अलंकार में रायगढ़ की विभूति का वर्णन है। इतिहास

❀ शिव-चरित्र लखि यों भयो कवि भूषण के चित्त।
भाँति-भाँति भूषणनि सों भूषित करौं कवित्त ॥

को देखने से पता चलता है, कि सं० १७१९ (सन् १६६२) में शिवाजी ने रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। शाहजी की मृत्यु होने पर शिवाजी ने अहमद-नगर द्वारा प्राप्त पैतृक राजा की उपाधि को धारण कर संवत् १७२१ (सन १६६४) में रायगढ़ में टकसाल खोली थी।

भूषण का कथन इस ऐतिहासिक वर्णन का समर्थन करता है, अतः यह तो निश्चित है कि भूषण शिवाजी के पास तभी पहुँचे होंगे, जब वे रायगढ़ में वास कर चुके थे और राजा की उपाधि धारण कर चुके थे।

मिश्रबन्धुओं का मत है, कि भूषण संवत् १७२४ (सन् १६६७) में शिवाजी के पास गये। इसके लिए वे निम्नलिखित युक्ति देते हैं—यदि भूषण संवत् १७२३ (सन् १६६६) से पहले शिवाजी के पास पहुँचे होते तो जब शिवाजी औरंगजेब के दरबार में गए थे, तब भूषण दक्षिण से अपने घर चले आये होते और फिर एक ही साल में यात्रा के साधनों के अभाव में इतना लंबा सफर करके अपने घर से फिर महाराष्ट्र देश तक न पहुँच सकते। मिश्रबन्धुओं की यह युक्ति एकदम उपेक्षणीय नहीं; अतः हम समझते हैं कि भूषण सं० १७२० या १७२४ में शिवाजी के दरबार में पहुँचे होंगे।

अब रहा दूसरा प्रश्न कि भूषण शिवाजी के दरबार में कब तक रहे और क्या भूषण शिवाजी के दरबार में एक ही बार गए अथवा दो बार। शिवराज-भूषण तथा उनके अन्य प्राप्त पद्यों में शिवाजी के राज्याभिषेक जैसी महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख न देखकर जहाँ यह प्रतीत होता है कि भूषण राज्याभिषेक से पूर्व ही शिवाजी से पर्याप्त पुरस्कार पाकर अपने घर लौट आए होंगे, वहाँ फुटकर छन्द सं० १९ में "भूषण भनत कौल करत कुतुबशाह चाहै चहुँ ओर रच्छा एदिलसाह भोलिया", फुटकर छंद संख्या २५ में "दौरि करनाटक में तोरि गढ़कोट लीन्हें

मोदी सों पकरि लोदि सेरखाँ अचानको" तथा फुटकर छंद सं० ३२ में "साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब बाहुबल राखी पातसाही बीजापुर की" देख कर यह प्रकट होता है कि भूषण शिवाजी के स्वर्गवास के समय तक दक्षिण में ही थे। क्योंकि शिवाजी ने संवत् १७३४ (सन् १६७७) में कर्नाटक पर चढ़ाई करने और अपने भाई व्यंकोजी को परास्त करने के लिए प्रयाण किया था। उस समय गोलकुंडा के सुलतान ने शिवाजी को वार्षिक कर तथा सहायता देने का वचन दिया था, और इस प्रयाण में बीजापुर के सरदार शेरखाँ लोदी ने जो त्रिमलों महाल (आधुनिक त्रिनोमल्ली) का गवर्नर था, शिवाजी को रोकने का प्रयत्न किया था। जिसमें वह बुरी तरह परास्त हुआ था। (देखिये *A History of the Maratha People* Kincaid and Prasnis)। इसी प्रकार बीजापुर की रक्षा का काम शिवाजी के जीवन का अंतिम काम था (देखिये 'मराठों का उत्थान और पतन' पृ० १५६)।

भूषण-ग्रन्थावली के एक दो संपादकों ने यह कल्पना की है, कि 'शिवराज भूषण' अभिषेक से ठीक १५ दिन पहले समाप्त हुआ, और भूषण ने उस ग्रन्थ का निर्माण शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर अपनी ओर से एक सुंदर भेंट देने के विचार से ही किया था। इस तरह वे अप्रत्यक्ष तौर से भूषण का शिवाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर उपस्थित होना मानते हैं। यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि शिवराज भूषण समाप्त हुआ सं० १७३० में और शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ ज्येष्ठ शुक्ल १३ वि० सं० १७३१ (शक संवत् १५९६, ६ जून १६७४) को। इस तरह शिवराज भूषण राज्याभिषेक से कम से कम एक वर्ष पूर्व समाप्त हो गया था। इस तरह उनकी यह कल्पना सर्वथा निराधार है। ऐसी हालत में दो ही बातें हो सकती हैं। या

तो भूषण ने शिवाजी के जीवन पर और भी कोई ग्रन्थ लिखा हो, जिसमें उन्होंने शिवाजी के राज्याभिषेक आदि बातों का उल्लेख किया हो जो कि अब तक अलभ्य है†; या यह मानना पड़ेगा वि० सं० १७३० (सन् १६७३) में 'शिवराज भूषण' समाप्त कर उसे अपने आश्रयदाता की भेंट कर फलतः उनसे पर्याप्त पुरस्कार पाकर भूषण कुछ दिनों के लिए अपने घर लौटे, और कुछ वर्ष घर पर आराम कर वे फिर शिवाजी के दरबार में गए, जहाँ रहकर वे समय-समय पर कविता करते रहे; जिनमें से कुछ पद अब अप्राप्य हैं। शिवाजी का स्वर्गवास हो जाने पर भूषण भी कदाचित् दक्षिण को छोड़कर चले गए होंगे, क्योंकि उस समय मराठा राज्य एक ओर गृहकलह में व्यस्त था, दूसरी ओर से औरंगज़ेब का प्रकोप बढ़ रहा था। साथ ही शंभाजी के दरबार में कलश कवि की प्रधानता थी। भूषण की कविता में शंभाजी-विषयक कोई पद नहीं मिलता। शिवाबावनी के पद्य संख्या ४९ में कुछ लोग 'शिवा' के स्थान पर 'शंभा' पाठ कहते हैं, पर वह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि शंभाजी को कभी सितारा पर चढ़ाई करने का अवसर नहीं मिला।*

भूषण की प्रायः सारी कविता शिवाजी पर ही आश्रित है, पर उसमें कहीं-कहीं कुछ पद्य तत्कालीन राजाओं पर भी मिलते हैं, जो आटे में नमक के समान हैं। इन पद्यों में सब से अधिक छत्रसाल बुंदेला पर हैं। छत्रपति शिवाजी के अनंतर वीररस-प्रेमी कवि को मनोनुकूल चरित-

† 'शिवसिंह सरोज' के लेखक तथा अन्य विद्वान् भी भूषणकृत 'भूषण हज़ारा', 'भूषण उल्लास' तथा 'दूषण उल्लास' ये तीन ग्रन्थ और मानते हैं, जो अब तक नहीं मिले।

* इस पद में 'सिवा' अथवा 'संभा' के स्थान पर 'साहू' पाठ अधिक उपयुक्त है।

नायक उस वीर छत्रसाल के अतिरिक्त और मिल ही कौन सकता था, जिसने कुल पाँच सवार तथा कुछ पैदल लेकर असीम सत्ताधारी मुगल साम्राज्य, तथा पराधीनता-प्रेमी अपने सारे रिश्तेदारों से टक्कर ली, उन्हें नीचा दिखाया और एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवाजी के स्वर्गवासी होने के अनंतर दक्षिण से लौटते हुए भूषण महाराज छत्रसाल के यहाँ गये होंगे और वहाँ उनका अभूतपूर्व आदर हुआ होगा।)

छत्रसाल शिवाजी का बड़ा आदर करते थे, और भूषण थे शिवाजी के राजकवि। किंवदन्ती है कि जब भूषण वहाँ से विदा होने लगे तो महाराज छत्रसाल ने उनकी पालकी का डंडा अपने कंधे पर रख लिया। भूषण यह देख कर पालकी से कूद पड़े और महाराज की प्रशंसा में उन्होंने दस कवित्त पढ़े जो छत्रसाल दशक के नाम से प्रसिद्ध हैं। यद्यपि महाराज छत्रसाल द्वारा किये गये सम्मान में संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे स्वयं कवि थे, और कवियों का सम्मान करते थे, परन्तु छत्रसाल-दशक के सब पद एक समय में लिखे गये नहीं प्रतीत होते।

उसमें से कुछ पदों में छत्रसाल की प्रारंभिक अवस्था का वर्णन और कुछ पदों में ऐसी घटनाएँ वर्णित हैं, जो उस समय तक घटी भी न थीं। फिर भूषण को दक्षिण में दो तीन बार जाना पड़ा था। आते-जाते वे उस वीर-केसरी के यहाँ अवश्य ठहरते होंगे और इस प्रकार भिन्न-भिन्न पद भिन्न भिन्न समय में रचे गए प्रतीत होते हैं।)

कुमाऊँ नरेश के यहाँ भूषण के जाने की किंवदन्ती भी बड़ी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि भूषण ने वहाँ अपना "उलहत मद अनुमद ज्यों जलधि-जल" इत्यादि छंद (फुटकर संख्या ४८) पढ़ा। जब वे विदा होने लगे तो कुमाऊँ नरेश उन्हें एक लाख रुपये देने लगे। भूषण ने कहा—शिवाजी ने मुझे इतने रुपये दे दिये हैं कि मुझे अब और की चाह नहीं है। मैं तो

केवल यह देखने आया था कि महाराज शिवराज का यश यहाँ तक पहुँचा है या नहीं। यह कह भूषण बिना रुपये लिए घर लौट आए। चिटनीस ने बखर में शिवाजी के यहाँ जाने के पहले ही भूषण का कुमाऊँ जाना लिखा है। भूषण के वहाँ से चले आने के बारे में लिखा है कि एक दिन राजा ने पूछा कि क्या मेरे ऐसा भी कोई दानी इस पृथ्वी पर होगा। भूषण ने कहा—बहुत से। जब राजा इन्हें एक लाख रुपया देने लगा तो इन्होंने यह कह कर रुपया लेना अस्वीकार कर दिया कि अभिमान से दिया हुआ रुपया हम नहीं लेंगे। यह कहकर वे वहाँ से दक्षिण चले गए। पता नहीं इन किंवदंतियों में कितना सार है।

सं० १७३७ में शिवाजी का स्वर्गवास होने पर भूषण उत्तर भारत में चले आये थे, और संवत् १७६४ तक वे उत्तर भारत में ही रहे क्योंकि यह समय मराठों की आपत्ति का था। इस लंबे समय में शायद वे अपने भाई-बंधु आदि के आग्रह से उनके आश्रयदाताओं के दरबार में भी गए हों। क्योंकि उनकी फुटकर कविता में (इस पुस्तक के पृष्ठ ४०१ से ४१६ तक) कई राव-राजाओं की प्रशंसा में लिखे गये छन्द मिलते हैं। परन्तु इतना निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि शिवाजी के यहाँ से पर्याप्त पुरस्कार पाने के बाद भूषण इन छोटे-मोटे राजाओं के पास आश्रय या धन की लालसा से न गए होंगे। और उन्होंने महाराज छत्रसाल को छोड़कर और किसी की प्रशंसा में एक दो से अधिक छन्द लिखे भी नहीं।

संवत् १७६४ में शिवाजी का पोता छत्रपति साहू गद्दी पर बैठा। उसके बाद भूषण फिर दक्षिण को गए पर वहाँ कब गये और कब तक रहे इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि भूषणग्रंथावली के किसी संस्करण में साहू के बारे में केवल दो और किसी में चार छंद मिलते हैं।

फुटकर छंद संख्या २७ 'बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारे' से साहूजी के राज्य के समृद्धिकाल का पता लगता है, क्योंकि इतिहास-ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि जब साहू सितारे की गद्दी पर बैठा तो उसका राज्य सितारा किला के आस-पास कुछ दूर तक ही था, पर कुछ ही दिनों में उसका राज्य बढ़ने लगा, और जब उसकी मृत्यु हुई तब सारे मुगल-साम्राज्य पर उसकी धाक थी।*

फुटकर छंद संख्या २८ की अन्तिम पंक्ति—'दिल्लीदल दाहिबे को दच्छिन के केहरी के चंबल के आरपार नेजे चमकत हैं'—से मल्हारराव होलकर तथा मुगल सूबेदार राजा गिरिधर राव के सं० १७८२ (सन् १७२६) के युद्ध का आभास मिलता है।

इसी प्रकार फुटकर छंद संख्या २९—'भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निज़ाम बेग'—में वर्णित घटना संवत् १७८८ (सन् १७३१) की है। यह छंद दो एक संस्करणों में ही है, और हमें इस छंद के भूषण-कृत होने में स्वयं संदेह है। यदि भूषण का जन्मकाल १७०० के लगभग माना जाय तो यह छंद भूषण का हो सकता है।

साहूजी के यहाँ जाते-आते भूषण छत्रसाल के यहाँ एकबार दुबारा अवश्य ठहरे होंगे। तभी उन्होंने लिखा है—'और राव-राजा एक मन में न ल्याऊँ अब साहू को सराहौं कि सराहौं छत्रसाल को।'

भूषण की मृत्यु कब हुई, उनकी संतान कितनी थीं, इसका कुछ पता नहीं। मृत्यु-तिथि का तब तक निश्चय भी नहीं हो सकता, जब तक यह निश्चय न हो जाय, कि फुटकर छंदों में से कौन से भूषण के हैं तथा कौन से अन्य कवियों के। परन्तु इतना निश्चित है कि

---

* 'When he ascended the throne his Kingdnm was a mere strip of land round Satara fort. When he left it, it completely over-shadowed the Mughal Empire."

भूषण दीर्घजीवी थे और यदि उनका जन्मकाल संवत् १६९० और १७०० के बीच में हो तो मृत्युकाल संवत् १७८५ और १७९५ के बीच में मानना होगा।

शिवसिंह-सरोज में भूषण के बनाए हुए चार ग्रन्थों का नाम लिखा है—शिवराज भूषण, भूषण हज़ारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास। इनमें से अन्तिम तीन ग्रन्थ आज तक नहीं छपे; और न किसी विद्वान ने उनको स्वयं देखने का उल्लेख ही किया है। अभी तक उनके बनाए हुए शिवराज-भूषण, शिवाबावनी, छत्रसाल-दशक तथा कुछ स्फुट छंद ही मिलते हैं। शिवाबावनी स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, ५२ स्फुट पदों का संग्रह मात्र है। यही बात संभवतः छत्रसाल-दशक के विषय में भी कही जा सकती है। यह निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है, कि भूषण की जितनी कविता आजकल उपलब्ध होती है, उससे कहीं अधिक उन्होंने लिखी होगी और कालचक्र के प्रभाव से हिन्दी-संसार उनकी बहुत सी अनुपम रचनाओं को खो बैठा है।

शिवाजी

शृंगाररस के कुछ पदों को छोड़कर भूषण की शेष सारी कविता छत्रपति शिवाजी, शाहूजी तथा छत्रसाल जैसे वीरों पर आश्रित है। अतः उस पर आलोचना करने से पहले उनका जीवन-चरित्र देना आवश्यक है।

मेवाड़ के सीसोदिया-नरेश राणा लक्ष्मणसिंह का पोता सज्जनसिंह चित्तौड़ छोड़कर सोंधवाड़ा में रहने लगा। उसके वंशजों में से देवराज जी नाम का एक पुरुष संवत् १४७२ (सन् १४१५) के लगभग दक्षिण में आया और उदयपुर की भोंसावत जागीर का मालिक होने के कारण भोंसिला कहा जाने लगा। इस वंश में सबसे प्रसिद्ध मालोजी—भूषण इन्हें स्थान स्थान पर मालमकरंद[1] कहते हैं—हुए। मालोजी ने अपने बाहु-बल से खूब नाम कमाया। अहमदनगर के निज़ामशाह की सेना में उन्हें सिलेदारी मिल गई। इसके बाद मालोजी की उन्नति दिन प्रति दिन होने लगी। उनके कोई लड़का न था। एक मुसलमान पीर शाहशरीफ की मिन्नत करने से उनका पहला लड़का हुआ। उस पीर के नाम पर उसका नाम शाहजी[2] रक्खा गया।

शाहजी का विवाह जाधवराव की लड़की जीजाबाई से हुआ। इस बीच में मालोजी ने अपनी अच्छी उन्नति कर ली थी। वे पाँचहज़ारी मनसबदार होगए थे और राजा का खिताब पा चुके थे। शिवनेरि और चाकन के किले तथा पूना और सूपा के दो परगने उन्होंने जागीर में

---

१. भूमिपाल तिन में भयो बड़ो मालमकरन्द। पृ० ६

२. भूषण भनि ताके भयो, भुव-भूषण नृप-साहि। पृ० ८

प्राप्त कर लिये थे। मालोजी के बाद शाहजी ने भौंसिला वंश का नाम खूब बढ़ाया। पिता की जगह ये भी अहमदनगर के मनसबदार बने। अहमदनगर के साथ मुगलों का जो युद्ध हुआ, उस में शाहजी ने भी भाग लिया। पर पीछे अहमदनगर के तत्कालीन शासक से अनबन हो जाने के कारण शाहजी बीजापुर दरबार में चले आये, जहाँ उस समय इब्राहीम आदिलशाह राज्य करता था। उसके बाद शाहजी दिल्ली, बीजापुर और अहमदगनर के परस्पर के युद्धों में भाग लेते रहे।

मुगलों के साथ के इन युद्धों में शाहजी को इधर से उधर अपनी प्राण-रक्षा के लिए भागना पड़ता था। इसी बीच जब शाहजी इधर से उधर प्राण रक्षा के लिए भाग रहे थे, तब शिवनेरि के दुर्ग में (संवत् १६८४) में शिवाजी का जन्म हुआ। शिवाजी के जन्म के कुछ समय बाद शाहजी ने दूसरा निवाह कर लिया और उन्होंने जीजाबाई तथा शिवाजी से प्रायः सम्बन्ध तोड़ सा लिया। शाहजी बीजापुर में रहते थे और जीजाबाई तथा शिवाजी उनकी पूना और सूपा की जागीर में। उस समय शिवाजी की शिक्षा का भार दादाजी कोंडदेव पर था। उस वृद्ध अभिभावक तथा आचार्य और वीर-माता जीजाबाई ने शिवाजी को बचपन में ही जहाँ अस्त्र-शस्त्र में प्रवीण कर दिया था, वहाँ महाभारत तथा पुराणों की कथाएँ सुनाकर उनमें जातीयता और राष्ट्रीयता के भाव भी भर दिये थे। उन्हें सिखा दिया था कि उन्हें कभी इस बात को न भूलना चाहिये कि वे देवगिरि के यादवों तथा उदयपुर के राणाओं के वंशज हैं। बचपन ही से शिवाजी को शिकार का शौक था। दादाजी के आदेशानुसार वे अपने बचपन के साथी मावलियों की टोली बना कर मावल और कोंकण के प्रदेशों तथा सह्याद्रि के पहाड़ों में कई कई दिन तक घूमते रहते थे। इस प्रकार अठारह साल के शिवाजी एक अनथक, निर्भय और भक्त

नवयुवक हो गए। उन्होंने अपने पिता की तरह बीजापुर या दिल्ली दरवार की नौकरी करने की वजाय स्वतंत्र हिन्दवी-राज्य की कल्पना की।

सं० १७०२ में सबसे पहले अपने पिता की जागीर के दक्षिणी सीमान्त पर स्थित तोरण दुर्ग को हस्तगत कर शिवाजी ने अपने भावी कार्य-क्रम का सूत्रपात किया। वहाँ उन्हें गड़ा हुआ काफ़ी ख़ज़ाना मिला। इस धन से शिवाजी ने अस्त्र-शस्त्र, तथा गोला-बारूद खरीदा और उस दुर्ग से छः मील की दूरी पर ही मोरबंद नामक पर्वत-शृंग पर एक और किला बनवाया जिसका नाम राजगढ़ रक्खा। यह देखते ही बीजापुर के सुलतान के कान खड़े हो गये। उसने शाहजी द्वारा दादा कोंडदेव को लिखवाया, पर शीघ्र ही दादाजी जराग्रस्त हो कर इस संसार को छोड़ गये। उसके वाद शिवाजी ने तीन सौ सिपाही लेकर रात के समय अचानक पहुँच कर अपनी विमाता के भाई संभाजी मोहिते से अपने पिता की सूपा की जागीर भी छीन ली। फिर पूना से १२ मील की दूरी पर स्थित कोंडाना नामक दुर्ग को उसके मुसलमान अधिकारी से ले लिया तथा कुछ ही दिन के बाद पुरंधर का किला लेकर शिवाजी ने अपने दक्षिणी सीमांत को सुरक्षित बना लिया।

इसके वाद एक दिन शिवाजी ने कोंकण से बीजापुर को जाता हुआ शाही खज़ाना लूट लिया, और फिर उत्तरमहाल के नौ किलों पर अधिकार कर लिया, जिनमें लोहगढ़, राजमाची और रैरि प्रसिद्ध हैं।

बीजापुर दरवार ने समझा कि शाहजी के इशारे पर ही शिवाजी यह उत्पात मचा रहा है, अतः उसने अपने एक दूसरे मराठा सरदार बाजी घोरपड़े को शाहजी को कैद करने का आदेश दिया। घोरपड़े ने एक षड्यन्त्र रचकर शाहजी को कैद कर लिया। पिता के कैद होने का समाचार सुन शिवाजी दुविधा में पड़ गये। यदि वे बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करते, तो यह निश्चित था कि बीजापुर का सुलतान उनके

पिता का बध कर देता। यदि वे युद्ध बंद कर स्वयं बीजापुर जाते, तो उनका अन्त निश्चित था। राजनीति-कुशल शिवाजी ने मुगल बादशाह शाहजहाँ से सन्धि-वार्ता आरम्भ की। शाहजहाँ ने बीजापुर दरबार को शाहजी को छोड़ने के लिए लिखा। यह देख बीजापुर दरबार डर गया, क्योंकि यदि शिवाजी और मुगल मिल जाते तो बीजापुर दरबार कुचला जाता। फलतः बीजापुर दरबार ने उन्हें छोड़ दिया। पर शाहजी अभी बीजापुर दरबार में ही थे, इसलिए यदि शिवाजी बीजापुर के विरुद्ध कोई कार्य करते तो शाहजी पर संकट आ सकता था। इसी प्रकार बीजापुर दरबार भी शिवाजी और मुगलों की संधि से डरता था, अतः बीजापुर दरबार ने गुप्त षड्यन्त्र द्वारा शिवाजी को जीवित या मृत पकड़ना चाहा और बाजी शामराजे को इसके लिए नियुक्त किया। बाजी शामराजे ने इसमें जावली के राजा चन्द्रराव मोरे की सहायता माँगी।

जावली प्रान्त कोयना नदी की घाटी में ठीक महाबलेश्वर के नीचे था। यह एक तीर्थ-स्थान था। अतएव शिवाजी यहाँ बहुधा आया करते थे। अपने गुप्तचरों द्वारा शिवाजी को इस षड्यन्त्र का पता लग गया, और उनकी हत्या करने के लिए जो व्यक्ति उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, उन पर अकस्मात् आक्रमण कर शिवाजी ने उन्हें भगा दिया। कुछ दिन के अनन्तर शिवाजी के सेनापति रघुबल्लाल अत्रे तथा शम्भाजी कावजी ने सं० १७१२ (सन् १६५६) में चन्द्रराव मोरे को मार डाला। शिवाजी ने अपनी सेना सहित जावली पर आक्रमण कर दिया, और उस पर अधिकार कर लिया। वहाँ शिवाजी को बहुत-सा

---

१ चन्द्रावल चूर करि जावली जपत कीन्हीं। (पृ० ३४ ख)

He and his troops pushed on at once to Jaoli .... overran in a few days the entire fief. (*A History of the Maratha People* by Kincaid and Parasnis; P. 151)

धन मिला, और उससे उन्होंने उसी स्थान पर प्रतापगढ़ नामक किला बनाया।

इसी समय मुगल बादशाह शाहजहाँ का लड़का और प्रतिनिधि औरंगज़ेब बीजापुर आदि राज्यों को हस्तगत करने के लिए दक्षिण में गया। शिवाजी और औरंगज़ेब ने मिलकर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। वेदर और कल्याण के किले औरंगज़ेब के हाथ में आगये।[1] पर इतने में शिवाजी और बीजापुर का मेल होगया। और वेदर तथा कल्याण के किले शिवाजी ने ले लिये। शिवाजी और बीजापुर का मेल देखकर मुग़ल बादशाह गुस्से से लाल हो गया। इधर शिवाजी की सेना ने भी मुग़ल इलाकों में लूट प्रारम्भ की। यहाँ तक कि वे लूटते-लूटते अहमदनगर के इलाके तक पहुँच गये। तब राव करन तथा शाइस्ताखाँ मराठों को कुचलने को भेजे गये। इस पर भी जब लूट बढ़ने लगी तो खानदौरा नासीरीखाँ भी घटनास्थल पर पहुँच गया। शिवाजी से उसका घोर युद्ध हुआ[2]। युद्ध में मराठों के पैर उखड़ गये, और वे वहाँ से लूट मार करते हुए निकल गए[3]। नासीरीखाँ उनका पीछा न कर सका।

---

१ वेदर कल्याण घमासान कै छिनाय लीन्हें
जाहिर जहान उपखान यही चल ही। (पृ० ९५ ख)

उसी समय प्रसन्न होकर औरंगज़ेब ने शिवाजी को जो पत्र लिखा, उसका श्री किनकेड तथा पारसनीस अपनी पुस्तक *A History of the Maratha People* में इस प्रकार अनुवाद देते हैं।

"Day by day we are becoming victorious. See the impregnable Bedar fort, never before taken, and Kalyani, never stormed even in men's dreams heve fallen in a day."

२. अहमदनगर के थान किरवान लै कै
नवसेरीखान ते खुमान भिरयो बल तें। (पृ० २२२)

३. लूटयो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु (पृ० ७५)

इस पर औरंगज़ेब ने नासीरीखाँ तथा दूसरे सेनापतियों को बहुत डाँट कर लिखा कि तुम लोग तुरंत शिवाजी को चारों ओर से घेर लो।

इधर औरंगज़ेब स्वयं भी बीजापुर से निराश हो शिवाजी के पीछे पड़ गया। इतने में उसे खबर मिली कि उसका पिता मुगल-सम्राट् शाहजहाँ बीमार है, अतः उसे अब दक्षिण से अधिक उत्तर-भारत की चिंता सताने लगी। फलतः वह शिवाजी और बीजापुर दोनों से नरम बातें करने लगा। दोनों को एक दूसरे को नष्ट करने के लिए उत्साहित करने लगा और स्वयं उत्तर की ओर अपने भाइयों से गद्दी के लिए झगड़ने को चल पड़ा।

औरंगज़ेब के उत्तर को जाते ही बीजापुर और शिवाजी में युद्ध प्रारम्भ हो गया। बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी का अंत कर देने का निश्चय कर संवत् १७१६ (सन् १६५९) में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित बारह हज़ार सवार तथा बारूद तोप और रसद के सहित अफ़ज़लखाँ नामक भारी डीलडौल वाले तथा बलवान व्यक्ति को शिवाजी पर चढ़ाई करने को भेजा[1]। अफ़ज़लखाँ ने मदभरे शब्दों में इकरार किया था कि वह शिवाजी को जीता या मृत पकड़कर लायेगा, कम से कम उसका राज्य तो अवश्य तहस-नहस कर देगा। वह मार्ग के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट

---

१. बारह हज़ार असवार जोरि दलदार
ऐसे अफजलखान आयो सुरसाल है।
सरजा खुमान मरदान सिवराज धीर
गंजन गनीम आयो गाढ़े गढ़पाल है। (पृ० १०३ख)

"The king gladly accepted his (*Afzal Khan's*) services and placed him at the head of a fine army composed of 12,000 horses and well-equipped with cannon, stores and ammunition". (*A History of Maratha People by* Kincaid & Parasnis

करता हुआ प्रतापगढ़ के नीचे जावली प्रान्त के पार गाँव में पहुँच गया, जहाँ शिवाजी उन दिनों मौजूद थे। अफ़ज़लखाँ और शिवाजी दोनों ही एकान्त स्थान पर मिलकर एक दूसरे का नाश करने का विचार कर रहे थे। शिवाजी से एकान्त में मिलने का अनुरोध करने के लिए अफ़ज़लखाँ ने अपना दूत उनके पास भेजा। माता जीजाबाई से आशीर्वाद ले शिवाजी ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फलतः किले से कोई चौथाई मील दूर नीचे की ओर एक खेमे में दोनों की भेंट हुई। भेंट के समय शिवाजी के पास प्रत्यक्ष रूप से कोई शस्त्र न था, पर अफ़ज़लखाँ के पास लंबी तलवार थी। शिवाजी उससे जाकर इस प्रकार मिले, जैसे कोई विद्रोही आत्मसमर्पण के लिए आता है। शिवाजी का अन्त करने के लिए पहले अफ़ज़लखाँ ने अपनी तलवार से वार किया। शिवाजी ने अपने कपड़ों के नीचे जिरहबख्तर पहना था, अतः वह चोट उनके बदन पर न लगी। इतने में उन्होंने अपने हाथों में पहने बघनखे तथा बिछुए की चोट से खान का अंत कर दिया[1] और वे दौड़कर किले के भीतर आगये। अब शिवाजी की छिपी हुई सेना अफ़ज़लखाँ की सेना पर टूट पड़ी। खान की सेना में से प्रायः वे ही बच सके जिन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया।

अफ़ज़लखाँ के बध से बीजापुर राज्य में सब ओर निराशा छा गई। अपने भतीजे की मृत्यु पर बीजापुर की राजमाता के दुःख की तो सीमा ही न रही। इसी समय शिवाजी ने बीजापुर के पन्हाला, पवनगढ़, बसन्तगढ़, रंगना और विशालगढ़ आदि कई किले जीत लिए। शिवाजी की इस विजय-यात्रा को रोकने के लिए मीराज के अफसर रुस्तमे जमान को भेजा गया पर रुस्तमे जमान खाँ को शिवाजी ने बुरी तरह से हराया

---

१. वैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि वाह्यो कटार कठैठो।
भूषण क्यों अफजल्ल बचै अठपाव के सिंह को पाँव उमैठो।
बीछू के घाव धुक्योई घरक ह्वै तौ लगि धाय धरा धरि बैठो। (पृ०१८४)

और उसे वापिस मीराज को भागने में बड़ी कठिनता हुई[1]। शिवाजी सेना सहित लूट मार करते हुए बीजापुर तक जा पहुँचे और वहाँ से वापिस लौटे। अब अली आदिलशाह ने हब्शी सरदार सीदी जौहर को भेजा। उसके साथ अफ़ज़लखाँ का पुत्र फ़ज़लखाँ भी था। उसने जाते ही पन्हाला दुर्ग घेर लिया। कई महीनों के घेरे के बाद जब दुर्ग टूटने को हुआ तब शिवाजी उस दुर्ग से चुपचाप निकल कर रंगना होते हुए प्रतापगढ़ चले गए। शत्रु ने उनका पीछा किया पर बाजीप्रभु देशपाँडे ने पंढरपानि के दर्रे में दीवार की तरह खड़े होकर शत्रु को आगे बढ़ने से रोक दिया। जब शिवाजी ने विशालगढ़ में पहुँच कर तोप दागी तब उस आहत सरदार ने सुख से शरीर त्यागा। इसी समय सावंतबाड़ी के सावंतों ने, जो कि कुडाल से १२ मील दक्षिण में थी, शिवाजी के दक्षिणी सीमान्त पर धावा शुरू किया। साथ ही वे मुधोल के घोरपड़े तथा बीजापुर की सेना की मदद लेने का यत्न कर रहे थे। पर शिवाजी ने इन तीनों के मिलने से पहले ही मुधोल पहुँचकर अपने पिता के शत्रु बाजी घोरपड़े को मारकर मुधोल का सत्यानाश कर दिया। इतने में आदिलशाह ने खवासखाँ को एक बड़ी सेना के साथ भेजा। कुडाल के पास भयंकर युद्ध हुआ[2]। पर शिवाजी ने उसे भी निराश्रित तथा निराश कर के वापिस भेजा। इसके बाद सावंतबाड़ी वालों ने गोआ के पुर्त्तगीज़ों से सहायता माँगी,

---

१. देखत में खान रुस्तम जिन खाक किया, (पृ० ३९ ख)

"Rastam Jaman was completely defeated and he had considerable difficulty in escaping back to Miraj."

—*A History of the Maratha People by* Kincaid & Parasnis, p.165.

२. उमड़ि कुडाल मैं खवासखान आए भनि,
भूषण त्यों धाए सिवराज पूरे मन के। (पृ० २३६)

पर वे भी विफल हुए । शिवाजी ने दोनों को ही तहस-नहस कर दिया । तब सावंतवाड़ी के सावंतों ने अपनी आधी आमदनी देकर तथा पुर्त्तगीज़ों ने शिवाजी को गोला बारूद तथा तोपें देकर संधि की ।

अब बीजापुर दरबार बहुत चिन्तित हुआ । अन्त में उसने शाहजी को मध्यस्थ बनाकर शिवाजी से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ की और संवत् १७१९ (सन् १६६२) में शिवाजी की सब माँगें स्वीकार कर लीं। उत्तर में कल्याण, दक्षिण में फोंडा, पश्चिम में दभोय तथा पूर्व में इन्दापुर तक संपूर्ण प्रदेश में शिवाजी का स्वतन्त्र राज्य माना गया । दोनों दलों ने शत्रुओं से एक दूसरे की रक्षा का प्रण किया, तथा शिवाजी ने शाहजी के जीवनकाल में बीजापुर वालों से न लड़ने की शपथ खाई। इस संधि के निमित्त शाहजी कई वर्षों बाद अपने पुत्र से मिलने आये । शिवाजी ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया, और उन्हें सब विजित प्रांत दिखाया । उस समय शाहजी की पैनी और अनुभवी आँखों ने रैरी के उच्चश्रृंग को देखकर शिवाजी को वहाँ राजधानी बनाने का परामर्श दिया । शिवाजी ने पिता की सलाह मानकर वहाँ किला तथा महल बनवाया, और उसका नाम रायगढ़ रखा । अब शिवाजी वहीं वास करने लगे[1] और उसे ही उन्होंने अपनी राजधानी बनाया[2] । वह चारों ओर से सह्याद्रि की अनेक उच्च पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ था और उसके उच्चश्रृंग कई मील दूर से दिखाई देते थे[3] ।

---

१. दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास ।
सिव सेवक सिव गढ़पती कियो, रायगढ़ वास ।। (पृ० ११)

२. तहँ नृप रजधानी करी, जीति सकल तुरकान । (पृ० १७)

३. ऐसे ऊँचो दुरग महाबली को जामैं
नखतावली सों बहस दीपावली करति है । (पृ० ३९)

इस प्रकार बीजापुर से निश्चिंत होकर शिवाजी ने मुगलों की ओर ध्यान दिया। मुगलों ने संवत् १७१८ में कल्याण और भिवंडी प्रदेश ले लिए थे, जो कि बीजापुर की संधि के अनुसार शिवाजी के थे। शिवाजी ने अपने सेनापतियों को मुगल-साम्राज्य में लूटमार आरंभ करने का आदेश दिया। यह देख औरंगज़ेब ने अपने मामा शाइस्ताखाँ तथा जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह को शिवाजी के दमन के लिए भेजा।

शाइस्ताखाँ औरंगाबाद से बड़ी भारी सेना लेकर पूना की ओर चला। पूना पहुँचते ही उसने अपने सहायक सेनापति कारतलबखाँ को शिवाजी को पकड़ने के लिए सेना सहित भेजा। पर जब उसकी सेना अंबरखिंडी के पास पहुँची तो मराठों ने उसे घेर लिया और उस से बहुत सा धन लेकर उसे जीवन-दान दिया[1]। इसके बाद मराठा सैनिक औरंगाबाद तक लूटमार करते रहे। इस समय शिवाजी कोंडाना में थे, उन्होंने पूना में चैन से बैठे हुए शाइस्ताखाँ को मज़ा चखाना चाहा।

पूना में शाइस्ताखाँ शिवाजी के ही महल में ठहरा था। उससे थोड़ी दूर पर राजा जसवंतसिंह दस हज़ार सेना सहित डेरा डाले पड़ा था। एक रात को शिवाजी ने पूना पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। उन्होंने दो हज़ार सेना जसवंतसिंह के डेरे के चारों ओर रख दी और स्वयं चार सौ चुने हुए सैनिकों को लेकर शादी के बहाने से शहर में आये; उनमें से भी दो सौ को शाइस्ताखाँ के महल के बाहर रख कर शेष दो सौ को साथ ले शिवाजी एक खिड़की को तोड़कर महल के भीतर घुस गये[2] और शाइस्ताखाँ के सोने के कमरे में पहुँच गये। शोर सुनकर शाइस्ताखाँ ज्योंही अपने हथियार सम्हाल रहा था, त्योंही शिवाजी ने एक वार से

---

१. लूटयो कारतलबखाँ मानहुँ अमाल है (पृ० ७५)

२. दच्छिन को दाबि करि बैठो है सइस्तखान
पूना माँहि दूना करि जोर करबार को

उसका अँगूठा काट दिया । इतने में एक औरत ने कमरे का लैंप बुझा दिया, और अँधेरे में शाइस्ताखाँ को दासियाँ वहाँ से उठा ले गईं । इस गड़बड़ में मराठों ने कई मुगल-सरदारों को क़तल कर दिया । शाइस्ताखाँ का लड़का अब्दुलफतह भी इसमें मारा गया[1] । मुगलों की सेना के सँभलने के पहले ही शिवाजी अपने आदमियों सहित वहाँ से चंपत हो गये । इस घटना से शिवाजी का आतंक बहुत बढ़ गया । मुसलमान उन्हें शैतान का अवतार कहने लगे । निराश हो शाइस्ताखाँ वापिस चला गया । शाइस्ताखाँ की असफलता पर औरंगज़ेब बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने उसे दक्षिण से बंगाल भेज दिया । जसवंतसिंह अभी दक्षिण में में ही था । उसने तथा भाऊसिंह हाड़ा ने मिलकर कोंडाना घेर लिया । परन्तु दोनों को ही शिवाजी ने परास्त कर दिया । जसवन्तसिंह वहाँ से घेरा उठाकर चाकन को चल दिया[2] ।

शाइस्ताखाँ के चले जाने के बाद शिवाजी ने संवत् १७२१ में सूरत पर हमला कर दिया । सूरत का मुगल सूबेदार जाकर किले में छिप गया । जब तक शिवाजी न लौटे तब तक वह किले से न निकला । यह

मनसबदार चौकीदारन गँजाय

महलन में मचाय महाभारत के भार को

तो सो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सौं

जीत्यो जंग सरदार सौ हज़ार असवार को (पृ० १४१)

"Shivaji with his trusty leiutenant Chimnji Bapuji was the first to enter the harem and was followed by 200 of his men". —*Shivaji by* J. N. Sarkar.

१. सासतखाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि,

वेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है ॥ (पृ० २३३)

२. जाहिर है जग में जसवंत, लियो गढ़सिंह मैं गीदर बानो । (पृ० ३३ ख)

बन्दि सइस्तखँहू को कियो जसवंत से भाऊ करन्न से दोपै । (पृ० ५६)

देखते ही सूरत-निवासी भी शहर छोड़कर भाग गये। वहाँ शिवाजी ने अच्छी तरह लूट मार की। डर के मारे जो अमीर उमराव भाग गये थे, शिवाजी ने उनके घरों तक को खुदवा दिया और उसके बाद सारे सूरत को जलाकर वहाँ से अनन्त संपत्ति लेकर लौटे[1]।

सूरत की लूट से वापिस लौटते ही शिवाजी ने अपने पिता शाहजी के स्वर्गवास का समाचार सुना। अब शिवाजी ने अहमदनगर के सुल्तान द्वारा दी गई पैतृक राजा की पदवी धारण की और रायगढ़ में टकसाल बनाई।

शाइस्ताखाँ की पराजय और सूरत की लूट का वृत्तान्त सुन औरंगज़ेब जल-भुन उठा। उसने अपने योग्यतम सेनापति जयसिंह को दिलेरखाँ आदि कई सरदारों के साथ दक्षिण को भेजा। जयसिंह ने दक्षिण में जाते ही शिवाजी के सधर्मी और विधर्मी सब शत्रुओं को एकत्र कर उन पर आक्रमण कर दिया। सम्मिलित शत्रुओं ने शिवाजी को तंग कर दिया। अंत में शिवाजी को मुगलों से संधि करनी पड़ी, जिसके अनुसार

---

१. सूरत कौ मारि बदसूरत सिवा करी। (पृ० १०० ख)

हीरा-मनि-मानिक की लाख पोटि लादि गयो,
मंदिर ढहायो जो पै काढ़ी मूल काँकरी।
आलम पुकार करै आलम-पनाह जू पै,
होरी सी जलाय सिवा सूरत फनाँ करी। (पृ० १०१ख)

"........every day new fires being raised, so that thousands of houses were consumed to ashes and two-thirds of the town destroyed......The fire turned the night into day as before the smoke in the day time had turned day into night......The Marathas plundered it at leisure day and night till Friday evening, when having ransacked it and dug up its floor, they set fire to it. From this house they took away 28 seers of large pearls, with many other jewels, rubies, emeralds and an incredible amount of money." —*Shivaji by* J. N. Sarkar, *P. 103.*

शिवाजी को अपने पैंतीस किलों में से तेईस मुगलों को देने पड़े। शेष बारह उनके पास रहें। इसके अतिरिक्त शिवाजी ने आवश्यकता पर मुगलों की नौकरी करना तथा बीजापुर को दबाने में मुगलों की मदद करना स्वीकार किया। इधर बादशाह ने शिवाजी के बड़े लड़के शंभाजी को पाँच हज़ारी का मनसब दिया।

संधि के अनन्तर शिवाजी पहले जयसिंह के साथ बीजापुर के आक्रमण में गये। पर शीघ्र ही औरंगजेब ने शिवाजी को भेंट के लिए आग्रहपूर्वक बुलाया। अपने राज्य की व्यवस्था कर शिवाजी ने शंभाजी तथा कुछ सैनिकों सहित आगरे को प्रयाण किया। जयसिंह दक्षिण में थे, अतः उन्होंने अपने पुत्र रामसिंह को शिवाजी का सब प्रबन्ध करने के लिए लिख दिया।

आगरा पहुँचने पर संवत् १७२३ (१२ मई १६६६) में शिवाजी की औरंङ्ज़ेब से भेंट हुई। औरंगज़ेब ने जानबूझ कर उनका अपमान करने के लिए उन्हें पाँचहज़ारी मनसबदारों के बीच में खड़ा किया।[२]

---

१. भूषण ने पैंतीसों किले देना लिखा है—

भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल दिन
द्वैहू ना लगाए गढ़ लेत पँचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीवे
सौगुनी बड़ाई गढ़ दीन्हे हैं दिलीस को। (पृ० १५७)

२. भूषण ने एक जगह पर पाँचहज़ारी मनसबदारों के बीच में खड़ा करने का उल्लेख किया, और एक स्थान पर छः हज़ारियों के पास—

पंचहजारिन बीच खड़ा किया,
मैं उसका कुछ भेद न पाया। (पृ० १५५)
सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग
ताहि खरो कियो छः-हज़ारिन के नियरे। (पृ० १८ख)

यह अपमान देख शिवाजी जलभुन उठे और उन्होंने उसी समय रामसिंह पर अपना क्रोध प्रकट कर दिया। रामसिंह ने उन्हें शान्त करना चाहा, पर वह सफल न हो सका[१]। इस पर औरंगज़ेब ने शिवाजी को डेरे पर जाने को कहा। थोड़ी ही देर में जहाँ वे ठहरे थे, वहाँ कड़ा पहरा लग गया ताकि वे आगरे से निकल न जाँय। शिवाजी अब कैद से निकलने के उपाय सोचने लगे। उन्होंने पहले अपने सब साथियों को दक्षिण भेज दिया। फिर कुछ दिन बाद बीमारी का बहाना कर दान-पुण्य के लिए ब्राह्मणों, गरीबों और फकीरों आदि में बाँटने के लिए मिठाई के बड़े बड़े पिटारे भेजने आरंभ किये। एक दिन शिवाजी और शंभाजी अपने को चालाक समझनेवाले औरंगजेब की आँखों में धूल झोंक कर अलग अलग पिटारों में बैठकर पहरे से बाहर निकल आये। दूसरे दिन जब पहरेदारों ने शिवाजी का बिस्तरा देखा तो उन्हें न पाकर उन्होंने औरंगजेब को लिखा कि हम उस पर पूरी तरह चौकसी करते रहे पर पता नहीं कि वह किस तरह अदृश्य होगया। सब द्वार और सब चौकियों पर पहरा होते हुए भी शिवाजी वहाँ से बैरागी का भेस धर कर मथुरा, प्रयाग, काशी की राह से लगभग नौ महीने बाद अपनी राजधानी

"The emperor then ordered him to take his place among commanders of 5000 horse. This was a deliberate insult."

—*A History of the Maratha People* by Kincaid & Parasins.

१. ठान्यो न सलाम, भान्यो साहि को इलाम
धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा। (पृ० १४७)

"The Maratha prince saw that he was being maliciously flouted and, unable to control himself, turned to Ram Singh and spoke frankly his resentment. The young Rajput did his best to pacify him but in vain."

—*A History of the Maratha People* by Kincaid & Parasnis.

रायगढ़ में आ पहुँचे[२]। शंभाजी को वे अलग मथुरा छोड़ आये थे। कुछ दिन में शंभाजी भी विश्वासपात्र आदमियों के साथ रायगढ़ पहुँच गये। अब शिवाजी दक्षिण पहुँच गये थे, और वे मुगलों से बदला लेना चाहते थे। इधर औरंगज़ेब ने राजा जयसिंह पर शक करके उन्हें वापिस बुला लिया, और उसके बाद मुअज्ज़म और जसवन्तसिंह को भेजा। जयसिंह की रास्ते में ही मृत्यु हो गई। जसवन्त और मुअज्ज़म युद्ध नहीं करना चाहते थे; अतः शिवाजी की फिर मुगलों से संधि हो गई। औरंगजेब ने शिवाजी को राजा की उपाधि दी। कोंडाना और पुरन्दर को छोड़कर शिवाजी के सब किले उन्हें वापस दे दिये गये। इन किलों के बदले में शिवाजी को बरार की जागीर दी गई। शिवाजी ने औरंगजेब को बीजापुर के आक्रमणों में सहायता देने का वचन दिया। उसके अनुसार उन्होंने

---

२. घिरे राह बाट और बाट सब घिरे रहे;
बरस दिना की गैल छिन माँहि छ्वै गयो।
ठौर ठौर चौकी ठाढ़ी रही असवारन की,
मीर उमरावन के बीच ह्वै चलै गयो।
देखे में न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मीड़े, कर झारत किते गयो।
सारी पातसाही के सिपाही सेवा सेवा करैं,
परयो रह्यो पलंग परेवा सेवा ह्वै गयो। (पृ० १०५ख)

शिवाजी के डेरे के रक्षक फौलादखाँ ने शिवाजी के वहाँ से अन्तर्धान होने पर बादशाह को जो रिपोर्ट की थी उसका अनुवाद प्रोफेसर जदुनाथ सरकार ने निम्नलिखित दिया है।

'The Rajah was in his own room. We visited it regulary. But he vanished all of a sudden from our sight. Whether he flew into the sky or disappeared into the earth, is not known, nor what magical trick he has played.' (*Shiraji, Page 167-8*)

प्रतापराव गूजर को ५००० सवारों के साथ वहाँ भेज दिया। यह देख बीजापुर वालों ने शिवाजी को सरदेशमुखी तथा चौथ के स्थान पर साढ़े तीन लाख रुपये का वचन देकर, और मुगलों को शोलापुर तथा उसके पास का इलाका देकर संधि कर ली। गोलकुंडा के सुलतान ने भी पाँच लाख रुपये वार्षिक कर शिवाजी को देना स्वीकार किया। इन संधियों के होने पर शिवाजी को दो वर्ष तक किसी से झगड़ा न करना पड़ा। यह समय उन्होंने राज्य की सुव्यवस्था करने में लगाया।

मुगलों के साथ संधि देर तक न टिकी। औरंगजेब ने फिर विश्वासघात करके शिवाजी को पकड़ना चाहा। इस से चिढ़कर शिवाजी ने मुगलों को दिये हुए किले लेने का निश्चय किया। कोंडाना की विजय के लिए उन्होंने अपने बाल-मित्र तानाजी मालुसुरे को नियुक्त किया। कोंडाना में उन दिनों उदयभानु नामक वीर राठौर सरदार किलेदार था। तानाजी मालुसुरे अँधेरी रात में ३०० मावलियों को ले कर किले पर चढ़ गया, और अपने भाई सूर्याजी को उसने कुछ और सिपाहियों के साथ बाहर ही रख दिया। भयंकर युद्ध हुआ। राठौर सरदार उदयभानु और तानाजी मालुसुरे दोनों ही वीर गति को प्राप्त हुए, पर क़िला मराठों के हाथ में आगया। उन्होंने उसी समय मशालें जलाकर शिवाजी को सूचित किया[१]। शिवाजी उसी समय वहाँ पहुँचे, पर अपने मित्र तानाजी को मरा देख कर उन्होंने कहा—"गढ़ आया पर सिंह गया।" उसी दिन से उस क़िले का नाम सिंहगढ़ पड़ा।

सिंहगढ़ के बाद शिवाजी ने पुरन्दर, लोहगढ़ आदि अन्य कई किले

---

१. साहितनै सिव साहि निसा मैं निसाँक लियो गढ़सिंह सोहानो,
रठिवरो को सँहार भयो लरि कै सरदार गिरयो उदैभानो।
भूषण यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ,
ऊँचे सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ। (पृ० ७५)

भी ले लिये । पीछे उन्होंने बीजापुर के जंजीरा पर हमला किया । यह जंजीरा (द्वीप) कोंकण के तट पर राजगढ़ से पश्चिम की ओर बीस मील पर था । वहाँ अधिकतर अबीसीनिया के हब्शी रहते थे, जो सीदी कहाते थे । यह द्वीप बीजापुर के अधीन था और यहाँ बीजापुर की ओर से फत्तेखाँ नाम का गवर्नर रहता था । शिवाजी ने इस पर संवत् १७१६ से लेकर कई बार हमले किये थे, परन्तु उन्हें सफलता न मिली थी । संवत् १७२७ में उन्होंने फिर चढ़ाई की । बार-बार के युद्धों से तंग आ कर फत्तेखाँ ने शिवाजी से संधि कर ली[1] । यह देख हब्शियों ने उसका अन्त कर दिया और उन्होंने मुगलों से सहायता माँगी । मुगलों के आ जाने पर शिवाजी ने इसे विजय करना कठिन समझकर उधर से हटकर सूरत को दुबारा लूटा । पहली लूट की तरह शिवाजी ने इस बार भी सूरत को खूब लूटा । वहाँ से लगभग ६६ लाख रुपये का सामान लेकर तथा १२ लाख वार्षिक कर पाने का करार कराके वे रायगढ़ की ओर लौटे[2] । रास्ते में मुगल सूबेदार दाऊदखाँ ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, पर शिवाजी उसको नीचा दिखा कर सकुशल वापिस आ गए ।

सूरत से प्राप्त धन से बहुत सी फौज भरती करके शिवाजी ने अन्य मुगल इलाकों पर आक्रमण करने शुरू किये । उनके सेनापति प्रतापराव ने खानदेश तथा बरार पर चढ़ाई की और वहाँ के कितने ही शहरों को

---

१ अफजलखान, रुस्तमै जमान, फतेखान,
कूटे लूटे जूटे ए उजीर बिजैपुर के । (पृ० १७६)

२. सूरत को कूटि सिवा लूटि धन लै गयो । (पृ० १०२ ख)

"An official inquiry ascertained that Shivaji had carried off 66 lacs of rupees, worth of booty from Surat—*viz.* cash pearls, and other articles worth 53 lakhs from the city itself and 13 lakhs worth from Nawal Sahu and Hari Sahu and a village near Surat." (*Shivaji, Page 203*)

लूटा और उन पर 'चौथ' का कर लगाया[1]। शहरों के बड़े-बड़े व्यक्तियों तथा गाँवों के मुखियाओं से 'चौथ' देने के लिए लिखित शर्त्तनामे किये। इस समय मराठा सेना शहर पर शहर जीत रही थी। औंध, पट्टा, सलहेरि आदि पर उनका अधिकार हो गया। सूबेदार दाऊदखाँ इन स्थानों को बचाने के लिए बहुत देर में पहुँचा। सिंहगढ़ की तरह सलहेरि के दुर्ग पर भी रात को कुछ आदमियों ने दीवार पर चढ़कर विजय प्राप्त की थी।

सूरत की लूट, चौथ की स्थापना तथा मराठों की इन विजयों का समाचार सुनकर औरंगजेब को दक्षिण की चिंता सताने लगी। उसने उसी समय (संवत् १७२७) शाहजहाँ के समय के प्रसिद्ध सेनापति महावतखाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा तथा दिलेरखाँ उसके सहयोग के लिए भेजा गया। महावतखाँ को पहले कुछ सफलता मिली; परन्तु पीछे सलहेरि के घेरे में महावतखाँ को सफल न होते देख औरंगजेब ने गुजरात के सूबेदार बहादुरखाँ को महावतखाँ के स्थान पर चढ़ाई का भार सौंपा[2]। इस प्रकार शिवाजी के डर के कारण औरंगज़ेब जल्दी जल्दी सूबेदारों की अदला-बदली कर रहा था[3]। शिवाजी ने मोरोपंत तथा प्रतापराव को सलहेरि का उद्धार करने के लिए जाने को कहा। बहादुरखाँ ने दोनों तरफ से बढ़ती हुई मराठा सेना को रोकने के लिए इखलासखाँ को भेजा। प्रतापराव ने पीछे हटकर अव्यवस्थित मुसलमान सेना पर आक्रमण कर दिया। उस प्रबल आक्रमण के सामने इखलासखाँ अपनी फौज को

---

१. भूषण भनत मुगलान सबै चौथ दीन्ही,
हिंद में हुकुम साहिनंद जू को ह्वै गयो। (पृ० १०२ ख)

२. दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयंद को झप्पर। (पृ० २३०)

३. सूबत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरंग सूबा। (पृ० ९३ ख)

सँभाल न सका[१] । इधर से शिवाजी स्वयं भी वहाँ पहुँच गये । सलहेरि के इस भयंकर युद्ध में मुगलों की पूर्ण पराजय हुई । दिलेरखाँ हार गया[२], अमरसिंह चंदावत मारा गया, उसका लड़का मोहकमसिंह तथा इखलासखाँ मराठों के हाथ पड़े, जिन्हें पीछे शिवाजी ने छोड़ दिया[३] । इस युद्ध से शिवाजी का प्रभाव बहुत बढ़ गया । इसके बाद ही उन्होंने रामनगर तथा जवारि या जौहर नाम के कोंकण के पास के दो कोरी राज्य जीत लिये ।[४] और एकदम तिलंगाना की ओर अपनी सेना भेज दी । बहादुरखाँ के वहाँ पहुँचने से पहले ही उनकी सेना ने तिलंगाना लूट लिया[५] ।

इसके बाद शिवाजी ने गोलकुंडा की राजधानी भागनगर (आधुनिक) हैदराबाद पर आक्रमण किया, और वहाँ से कई लाख रुपये लेकर वापिस आये । इधर जंजीरा के सीदियों से भी शिवाजी की लड़ाई जारी रही जिनमें कभी सीदी जीतते थे तो कभी शिवाजी ।

इसी समय बीजापुर के अली आदिलशाह की मृत्यु होगई । उसके स्थान पर उसका पाँच साल का लड़का गद्दी पर बैठा और खवासखाँ उसका संरक्षक नियत हुआ । अली आदिलशाह शिवाजी को चौथ देता था पर खवासखाँ चौथ देने से इन्कार करने लगा । इस पर शिवाजी ने

---

१. फौजें सेख सैयद मुगल औ पठानन की,
मिलि इखलासखाँ हू मीर न सँभारे हैं । (पृ० २९ ख)

२. गत बल खान दलेल हुव खान बहादुर मुद्ध,
सिव सरजा सलहेरि ढिग क्रुद्धद्धरि किय जुद्ध । (पृ०२५६)

३. अमर सुजान, मोहकम बहलोलखान,
खाँडे, छाँडे, डाँडे उमराव दिलीसुर के । (पृ०१७६)

४. भूषण भनत रामनगर जवारि तेरे,
बैर परवाह बहे रुधिर नदीन के । (पृ०१२८)

५. भनि भूषण भूपति भजे भंगगरब तिलंग । (पृ०२५९)

मुगलों को छोड़कर फिर बीजापुर की ओर ध्यान दिया और पन्हाला किले पर धावा बोल दिया। बीजापुर का सेनापति अब्दुलकरीम बहलोलखाँ उसकी रक्षा के लिए आया। शिवाजी की सेना की पहले तो कुछ हार हुई, पर पीछे शिवाजी के स्वयं आने पर खाँ की सेना हिम्मत हार गई। शिवाजी ने पन्हाला किले को लेकर हुबली आदि करनाटक के कई धनी शहरों को मथ डाला[१]। उसके बाद उन्होंने सितारा आदि कई किलों को जीत लिया[२]।

खवासखाँ ने बहलोलखाँ को फिर पन्हाला का किला लेने को भेजा। उसने आकर पन्हाला को घेर लिया। शिवाजी के सेनापति प्रतापराव ने उसका घेरा हटाने के लिए सीधा बीजापुर शहर पर आक्रमण कर दिया[३]। बीजापुर में उस समय सेना न थी, अतः खवासखाँ ने बहलोलखाँ को पन्हाला के किले से वापिस बुला लिया। पर उमरानी के समीप प्रतापराव ने उसको आ घेरा। दोनों में बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। प्रतापराव ने खाँ को इतना तंग किया कि उसे पानी तक पीने को न मिला[४] शिवाजी से फिर न लड़ने की प्रतिज्ञा

---

१. लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूँचे। (पृ० १५४)

२. पाटे डर भूमि, काटे दुवन सितारे मैं। (पृ० ३८०)

३. बैर कियो सिवजी सों खवासखाँ डौंडियै सैन बिजैपुर बाजी।

(पृ० १५३)

"With this plan in view he moved his force straight upon Bijapur and advanced, pillaging and destroying, to the gates of Bijapur itself. (*Life of Shivaji Maharaj by* Takakhav & Keluskar. *page. 342*)

४. अफ़ज़ल की अगति सायस्ताखाँ की अपति,

बहलोल बिपति सों डरे उमराव हैं। (पृ० १३०)

कर उसने इस विपत्ति से छुटकारा पाया । शत्रु को इस प्रकार छोड़ने के कारण शिवाजी प्रतापराव पर बहुत क्रुद्ध हुए । इधर बहलोल ने भी अपना वचन तोड़कर फिर लड़ना शुरू कर दिया । प्रतापराव यह देख आगे-पीछे का ख़याल छोड़ कर उस पर टूट पड़ा, पर थोड़ी देर में स्वयं ही वीरगति को प्राप्त हुआ । उनका स्थान हंसाजी मोहिते ने लिया । उसने बहलोलखाँ के दल को बुरी तरह कुचल दिया[1] । बहलोल स्वयं बीजापुर लौट गया । इसी वर्ष शिवाजी ने दिलेरखाँ को भी हराया ।

इधर औरंगज़ेब सतनामियों के विद्रोह तथा खैबर के अफगानों को दबाने के लिए उत्तर में व्यस्त था । यह अवसर देख शिवाजी ने रायगढ़ में अपने राज्याभिषेक का प्रबंध किया । काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् गंगभट्ट के आचार्यत्व में ज्येष्ठ शुक्ल १२ सं० १७३१ वि० (६ जून १६७४) को यह शुभ कार्य समाप्त हुआ ।

अभिषेक में शिवाजी ने दान-पुण्य आदि में बहुत अधिक खर्च कर दिया था । अब उन्हें रुपये की आवश्यकता थी । अतः उन्होंने मुगल सूबेदार बहादुरखाँ से लड़ने के लिए लगभग २००० आदमी भेजे । जब बहादुरखाँ उनसे लड़ने गया, तब शिवाजी ने उसके पड़ाव पर धावा बोल दिया और लगभग एक करोड़ रुपया प्राप्त किया । इसके बाद बीजापुर से भी कई लड़ाइयाँ होती रहीं । इसी बीच बीजापुर में घरेलू झगड़ा प्रारंभ हुआ और खवासखाँ मार डाला गया । उसके स्थान पर बहलोलखाँ प्रधान-मन्त्री तथा संरक्षक बना । उसने मुगलों से डर कर शिवाजी से सन्धि कर ली और उन्हें पर्याप्त कर देना स्वीकार किया ।

इधर शिवाजी ने मुगल सूबेदार बहादुरखाँ से भी सन्धि कर ली । इस प्रकार निश्चिंत होकर उन्होंने संवत् १७३४ में करनाटक पर चढ़ाई की । इस चढ़ाई पर जाने से पहले शिवाजी ने गोलकुंडा के कुतुबशाह

---

१. सिवराज साहि-सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल । (पृ० २६०)

से भी मेल कर लिया। शिवाजी स्वयं अपनी सारी सेना के साथ गोलकुंडा गये। वहाँ से वार्षिक कर तथा करनाटक की चढ़ाई के लिए आर्थिक सहायता का वचन[१] और कुछ फौज लेकर शिवाजी करनाटक की ओर बढ़े। जिंजी तथा उसके आस-पास के इलाके को वश में करने में कुछ कठिनता न हुई। केवल त्रिमली महाल के बीजापुरी अफसर शेरखाँ लोदी ने शिवाजी को रोकने का कुछ प्रयत्न किया। उसने शिवाजी की फौज के अग्रभाग पर आक्रमण किया, पर वह बुरी तरह से परास्त हुआ और पकड़ा गया[२]।

इसके बाद अठारह महीने लगातार एक शहर के बाद दूसरे शहर को जीतकर तथा एक किले के बाद दूसरे किले को लेकर जब शिवाजी वापिस रायगढ़ पहुँचे तब उनका नया विजित प्रदेश पूर्वीघाट से पश्चिमीघाट तक किलों की पंक्तियों से सुरक्षित था।

इसी समय मुगल सूबेदार बहादुरखाँ की जगह दिलेरखाँ फिर नियुक्त हुआ। उसने बीजापुर के साथ मिलकर गोलकुंडा पर आक्रमण किया, पर उसमें उसे सफलता न मिली। इसी बीच बीजापुर के प्रधान मंत्री बहलोलखाँ की मृत्यु हो गई। तब दिलेरखाँ ने बीजापुर को ही जा घेरा। बीजापुर का अंत निश्चित था। ऐसी हालत में बीजापुर के नये प्रधान मंत्री ने नम्रता-पूर्वक शिवाजी से सहायता माँगी[३]। शिवाजी ने

---

१. भूषन भनत कौल करत कुतुबसाह (पृष्ठ ९१ ख)

२. दौरि करनाटक मैं तोरि गढ़-कोट लीन्हे,

मोदी सों पकरि लोदी सेरखाँ अचानको। (पृ० ९६ ख)

"With 5000 horse, Sher Khan made a gallant effort to stem the invasion. But he was routed, enveloped and captured with his entire force."

(*A History of the Maratha People, page. 255*)

३. चाहै चहुँ ओर रच्छा एदिल सा भोलिया (पृष्ठ ९१ ख)

शरणागत की रक्षा के लिए पूरा प्रयत्न किया। इसी बीच उनका लड़का शंभाजी उनके विरुद्ध होकर दिलेरखाँ से जा मिला। परन्तु कुछ दिन बाद वह फिर वापिस आ गया। शिवाजी ने उसे पन्हाला किले में नज़रबन्द कर दिया और बीजापुर की रक्षा का काम जारी रखा: जिस में उन्हें अंत में सफलता प्राप्त हुई[1]। मसऊदखाँ ने शिवाजी का उपकार माना। दोनों की बीजापुर के पास भेंट हुई। इस अवसर पर उसने करनाटक में शिवाजी द्वारा विजित स्थानों पर उनका अधिकार मान लिया।

बीजापुर की रक्षा शिवाजी के जीवन का अंतिम प्रमुख कार्य था। चैत्र शुक्ल १५, सं० १७३७ वि० (५ अप्रैल सन् १६८० ई०) रविवार को थोड़ी सी बीमारी के अनन्तर दोपहर के समय इह-लीला समाप्त कर इस वीर ने परलोक को प्रयाण किया।

शिवाजी का सारा जीवन लड़ाइयों में ही बीता। १८ वर्ष की अवस्था में जिस 'हिन्दवी स्वराज्य' की स्थापना का उन्होंने सूत्रपात किया था, आजीवन वे उसी कार्य में लगे रहे। उन की अभिलाषा समस्त भारत में हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना करने की थी, परन्तु अपने जीवन में वे इसे पूरा न कर सके। केवल ताप्ती और तुंगभद्रा के बीच के अधिकांश भाग तक ही उनके स्वराज्य की सीमा रही। परन्तु एक छोटी-सी जागीरदारी से इतना विस्तृत स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना भी साधारण बात नहीं है। वह भी ऐसे समय जब कि विशाल मुगल-साम्राज्य, बीजापुर, गोलकुंडा, दक्षिणी करनाटक-नरेश, पश्चिमी समुद्र के किनारे के हब्शी और फिरंगी ही नहीं अपितु वीर क्षत्रिय राजपूत और अन्य सजातीय और सधर्मी भाई भी मुसलमानों के साथ एक होकर उन्हें कुचलने का प्रयत्न कर रहे थे और अकेले शिवाजी को ही उन सब का मुकाबला करना पड़

१ साहि के सपूत सिवराज बीर तैंने तब,
बाहु-बल राखी पातसाही बीजापुर की। (पृ० १०४ख)

रहा था[1]। मराठे उन्हें अवतार समझते थे, क्योंकि हिन्दूधर्म और हिन्दू-संस्कृति का उद्धार और गौ-ब्राह्मण तथा साधु-संत की सेवा ही उनके जीवन का लक्ष्य था। दूसरी ओर अफ़ज़लखाँ-वध, शाइस्ताखाँ की दुर्दशा, सूरत की लूट, औरंगज़ेब को कैद से अकेला बचकर निकल आना कुछ थोड़े से व्यक्तियों को साथ में लेकर अजेय दुर्गों को रात ही रात में विजय कर लेना, आदि उनके साहसिक कृत्यों के देख मुसलमान उन्हें जादूगर समझते थे और उनके आतंक से काँपते थे। वही बीजापुर, जहाँ उनके पिता नौकर थे, जो उनको बचपन में ही कुचल देना चाहता था, उन्हें वार्षिक कर देने लगा था, और उनसे रक्षा की भीख माँगता था। गोलकुंडा का सुलतान उन्हें चौथ देता था, तथा पराक्रमी औरंगज़ेब उनसे चिंतित रहता था।

शिवाजी केवल रण-कुशल वीर ही नहीं थे, अपितु कुशल शासक भी थे। उन्होंने अपने विस्तृत राज्य के शासन के लिए अष्टप्रधान नाम का एक मंत्रिमंडल बनाया था। आठ मंत्रियों के अधीन राज्य का एक-एक विभाग था। जल और स्थल दोनों प्रकार की सेनाएँ उन्होंने रखी हुई थीं। प्रत्येक कर्मचारी को वेतन राजकीय कोष से ही मिलता था।

छत्रपति शाहूजी

वीर-केसरी छत्रपति शिवाजी के आँख मूँदते ही मराठों में गृहकलह प्रारंभ हो गया। कुछ सरदार शिवाजी के छोटे बेटे राजाराम को गद्दी पर बैठाना चाहते थे, क्योंकि वह सदाचारी और वीर था; परन्तु बड़ा होने के कारण शंभाजी राज्य का अधिकारी था। अंत में शंभाजी ही गद्दी पर बैठा। उसने शिवाजी के कई विश्वस्त सरदारों को मरवा दिया। उसमें

---

१. फिर एक ओर सिवराज नृप, एक ओर सारी खलक। (पृ० ८४ ख)

वीरता अवश्य थी, कई स्थानों पर उसने आश्चर्य-जनक विजय भी पाई; पर व्यसनी होने के कारण उसका नाश हुआ, और वह संवत् १७४५ में मुसलमान सेना द्वारा जीता पकड़ा गया। औरंगज़ेब ने उसे मुसलमान बनने को कहा, पर उसने इनकार कर दिया। इस पर वह बुरी तरह से मार डाला गया।

अब उसका ९ वर्ष का लड़का शिवाजी गद्दी पर बिठाया गया, और उसके चाचा राजाराम अभिभावक नियुक्त हुए। पर कुछ ही महीनों बाद मुसलमानी सेना ने रायगढ़ पर आक्रमण कर बालक शिवाजी तथा उसकी माँ येसूबाई को पकड़ लिया। छत्रपति राजाराम तथा उनके सरदार उससे पहले ही रायगढ़ छोड़ चुके थे। इस समय एक एक करके मराठों के सभी किले और प्रान्त मुगलों के अधिकार में जाने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि मराठाशाही का अंत निकट है। पर राजाराम और उनके साथियों ने इधर-उधर भाग कर भी उनकी रक्षा की और अंत में सितारा में आकर महाराष्ट्र की राज्य-गद्दी स्थापित की। दिन-रात युद्ध में व्यस्त रहने के कारण केवल ३१ वर्ष की अवस्था में ही राजाराम की अकाल मृत्यु हो गई। उनके बाद उनकी स्त्री ताराबाई ने अपने नौ वर्ष के लड़के शिवाजी को गद्दी पर बिठाया। इस समय भी मराठों और औरंगज़ेब में छीना-झपटी चल रही थी। संवत् १७६४ में औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने मराठों में फूट डालने के लिए शिवाजी को जो अब शाहू के नाम से प्रसिद्ध था, छोड़ दिया। उसके छूटते ही मराठों में दो पक्ष हो गए। चार पाँच वर्षों के बाद बालाजी विश्वनाथ नामक व्यक्ति की सहायता से शाहूजी को सफलता मिली। शाहूजी ने उसे ही पेशवा अथवा प्रधान मंत्री बनाया। उसने मराठों के विद्रोह को शान्त कर मराठा राज्य को पुनः संगठित किया।

इन दिनों दिल्ली में सैयद-बंधुओं की तूती बोल रही थी। बादशाह तक इनके इशारे पर नाचते थे। बादशाह फर्रुखसियर ने सैयद-बन्धुओं की अधीनता से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया। सैयद-बंधुओं ने बालाजी विश्वनाथ से सहायता माँगी। बालाजी की सेना दिल्ली पहुँच गई। फर्रुखसियर मारा गया। इस सहायता के बदले नये बादशाह मुहम्मद-शाह ने मराठों को दक्षिण के छः सूबों पर 'स्वराज्य' दिया तथा अन्य मुगल शासनाधीन प्रान्तों में चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया।

इसके बाद शीघ्र ही बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई। उसका लड़का बाजीराव अपने पिता के स्थान पर पेशवा नियुक्त हुआ। इसके समय में मराठे दक्षिणी भारत की सीमा को पार कर मध्यभारत, गुजरात मालवा आदि पर आक्रमण करने लगे। मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर का मुगल सूबेदार राजा गिरिधरराव से संवत् १७८३ (सन् १७२६) में युद्ध हुआ, जिसमें गिरिधरराव मारा गया[१]। इसके बाद मालवा में मल्हारराव ने, ग्वालियर में राघोजी सिन्धिया ने और गुजरात में दमाजी गायकवाड़ ने अपने राज्य बनाए। ये सब सरदार पेशवा को अपना अधिपति मानते थे। जिन नए प्रदेशों पर ये सरदार विजय पाते थे, वे इन्हीं की अधीनता में रहते थे। इस कारण ये सदा अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उत्सुक रहते थे और उत्तरी भारत के विविध देशों पर हमले करते थे। संवत् १७८८ (सन् १७३१) में मराठों ने गंगा और यमुना के बीच के दोआब पर आक्रमण किया जिसमें मुगल सम्राट् के दक्षिणी

---

१ दिल्ली दल दाहिबे को दच्छिन के केहरी के,
चंबल के आर-पार नेजे चमकत हैं। (पृ० ११० ख)

सूबेदार निजामुल-मुल्क ने मराठों को सहायता दी थी[1] । परन्तु जब निजाम ने कुछ वर्ष के अनंतर दिल्ली को खतरे में देखा, तब वह मराठों से उसकी रक्षा करने के लिए बढ़ा, परन्तु भोपाल के समीप उसकी हार हुई और उसने मालवा तथा चंबल और नर्मदा नदी के बीच का प्रदेश मराठों को देकर संधि की।

सं० १७९७ (सन् १७४०) में बाजीराव पेशवा का अचानक देहावसान हो गया । उसके बाद उसका लड़का बालाजी उर्फ नाना साहब पेशवा हुआ । उसके समय में भी मराठों के राज्य का विस्तार जारी रहा। संवत् १८०६ (सन् १७४९) में ४२ वर्ष राज्य करने के अनन्तर शाहूजी की मृत्यु हुई । इस समय भारत भर में सबसे अधिक प्रबल शक्ति मराठों की ही थी। मुगल साम्राज्य उसकी धाक से काँपता था।

---

१ भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निजाम बेग,
इतै गुजरात उतै गंग लौं पतारा की। (पृ० ११० ख)

"In 1731 the old Nizam supported the Marathas in their attack upon Hindustan (*Medevial India*" by U. N. Ball.)

छत्रसाल

इलाहाबाद के दक्षिण और मालवा के पूर्व में विंध्याचल के आँचल में बसा प्रान्त बुंदेले क्षत्रियों का निवास-स्थान होने के कारण बुंदेलखंड कहाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि इन बुंदेलों के पंचमसिंह नामक एक पूर्वज ने अपने रक्त की बूँदों से विंध्यवासिनी देवी की उपासना की थी, अतः उसके वंशज बुंदेला कहलाने लगे। इसी बुंदेला वंश में वीराग्रगण्य चंपतराय का जन्म हुआ था। वे महेवा के शासक थे। उस समय बुंदेलखंड में और भी कई उन जैसे शासक विद्यमान थे जो चंपतराय के संबंधी ही थे। पर वे लोग जहाँ मुगलों की दासता में ही संतुष्ट थे, वहाँ चंपतराय अपनी स्वाधीन सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। मुगल-सम्राट शाहजहाँ से इस छोटे से जागीरदार का युद्ध जारी था। शाहजहाँ जब कभी बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजता तब चंपतराय पहाड़ों में छिप जाते और सेना के पीछे हटते ही उस पर हमला कर सब कुछ छीन लेते। इन्हीं युद्धों में चंपतराय का बड़ा पुत्र सारवाहन मारा गया। चंपतराय को इसको बड़ा दुःख था। उनके दिल में प्रतिहिंसा की आग जलने लगी। उन्हीं दिनों ज्येष्ठ शुक्ल ६ संवत् १७०६ को छत्रसाल का जन्म हुआ। ऐसा मालूम होता है कि वे पिता की प्रतिहिंसा की भावना को लेकर ही पैदा हुए थे।

इस समय निरंतर युद्धों से तंग आकर चंपतराय ने बादशाह की सेवा स्वीकार कर ली और तीन लाख की मालगुज़ारी पर कोंच का परगना पाया। उसके बाद वे युवराज दाराशिकोह के साथ काबुल में लड़ने गये। वहाँ उन्होंने बड़ी वीरता दिखाई, पर दारा और चंपतराय

की अनबन हो गई । इसके थोड़े ही दिन पीछे सं० १७१५ में दारा और औरंगज़ेब में सल्तनत के लिए धौलपुर के समीप युद्ध हुआ जिसमें चंपतराय ने औरंगज़ेब का साथ दिया। इस युद्ध में विजय पाने पर औरंगज़ेब ने चंपतराय को बारह-हज़ारी का मनसब और एक बड़ी जागीर दी। पर कुछ ही दिन के अनन्तर स्वाधीनता-प्रेमी चंपतराय ने शाही नौकरी का परित्याग कर आसपास लूट-मार जारी कर दी । इस समय से लगभग दो वर्ष तक चंपतराय की मुगल-सेनाओं से लड़ाई जारी रही । वह कई बार हारे और कई बार जीते। मुगलों की बहुसंख्य और साधन-संपन्न सेना के सामने अधिकतर उन्हें हार ही खानी पड़ी और जंगल में इधर से उधर मारे-मारे फिरना पड़ा । उनके संबन्धी भी उनके दुश्मन हो गये। परन्तु उन्होंने कभी दिल न तोड़ा। उनकी वीर-पत्नी, छत्रसाल की माँ, सदा उनके साथ ही रहती थी। अंत में जब बीमारी से क्षीण चंपतराय अपनी बहन के यहाँ आश्रय लेने गये, तब उसके नौकर अपने स्वामी के गुप्त आदेश के अनुसार उन्हें पकड़ कर मुगलों के यहाँ भेजना चाहते थे । वे विश्वासघाती रक्षक सुरक्षित स्थान की खोज में जाते हुए चंपतराय पर टूट पड़े, और उन्होंने उन्हें वहीं मार डाला । उनकी वीर-पत्नी भी पति की रक्षा करती हुई वहीं काम आई। छत्रसाल बच निकले। वे इस समय केवल १५ वर्ष के थे ।

चंपतराय ने लूटमार और मुगलों पर आक्रमण कर सारे बुंदेलखंड को शत्रु बना लिया था । उनकी सन्तान को आश्रय देने को कोई भी तैयार न था। छत्रसाल पहले अपने चाचा सुजानराय के पास गये, पर उनके मुस्लिम-द्वेषी विचार उनके चाचा को पसन्द न थे, अतः छत्रसाल उनको छोड़कर अपने भाई अंगदराय के यहाँ देवगढ़ चले गये और भाई की सलाह से वे आमेराधिपति जयसिंह के नीचे मुगल-सेना में सम्मिलित हो गये। देवगढ़ के घेरे में उन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया। पर

जब वे देखते कि मुस्लिम-सेना में वीरता प्रदर्शन करने पर भी नाम और मान नहीं मिलता तब उनका हृदय असन्तोष से उबल उठता और शिवाजी के आदर्श को देखकर उनमें भी स्वाधीनता के भाव प्रज्वलित हो उठते। अंत में सं० १७२८ में एक दिन छत्रसाल शाही फौज से विदा होकर गुप्तरूप से शिवाजी के शिविर में जा पहुँचे। शिवाजी ने उस नवयुवक को बुन्देलखंड में लौटकर मुगलों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करने की सलाह दी। तदनुसार अपने जन्म-स्थान में स्वतंत्र राज्य की स्थापना का संकल्प करके वे दक्षिण से लौटे। अब निराश्रय तथा निर्धन युवक छत्रसाल विशाल मुगलसाम्राज्य से टक्कर लेने के लिए साथी जुटाने लगे।

पहले वे मुगलों के कृपापात्र शुभकरण बुन्देले से मिले। वह उनके कार्य में सहयोग देने को राजी न हुआ, पर धीरे धीरे कई अन्य बुन्देले सरदार उनसे मिल गये। यहाँ तक कि स्वयं ओड़छा-नरेश जो उनके प्रबल शत्रुओं में से एक था उनकी सहायता करने के लिए उद्यत होगया।

अब छत्रसाल ने इधर-उधर लूटमार प्रारम्भ की। धँधेरा सरदार कुँअरसेन उनका सबसे पहला शिकार था। कुँअरसेन ने हारकर अपनी भतीजी का ब्याह छत्रसाल से कर दिया। इसके बाद छत्रसाल ने सिरौंज के थानेदार मुहम्मदअमींखाँ (मुहम्मदहाशिमखाँ) की रक्षा में दक्षिण से जाते हुए कोष को लूट लिया[1]। फिर उन्होंने धामुनी पर चढ़ाई कर विजय पाई और बाँसी के केशवराय को परास्त कर मार दिया।

संवत् १७३५ वि० में छत्रसाल ने पन्ना नामक शहर बसाया, और उसे ही अपनी राजधानी बनाया। अब उनका आतंक सारे बुन्देलखंड पर छागया। छत्रसाल की बढ़ती देख औरंगज़ेब ने रणदूलहखाँ को तीस

१. जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा
महमद अमीखां का कटक खजाना है। (पृ० ६६ ख)

हज़ार सैनिकों के साथ छत्रसाल के दमन के लिए भेजा, परन्तु छत्रसाल ने चतुरता से उसे परास्त कर दिया। उसके बाद संवत् १७३७ में औरंगज़ेब ने तहव्वरखाँ को एक बड़ी सेना के साथ छत्रसाल पर चढ़ाई करने को भेजा। कई लड़ाइयों के बाद वह भी हार कर वापिस लौट गया। यह समाचार पाते ही औरंगज़ेब ने बहुत बड़ी सेना के साथ शेख अनवर को छत्रसाल को पकड़ने के लिए भेजा। छत्रसाल ने अचानक छापा मारकर शेख अनवर को पकड़ लिया। सवा लाख रुपया देकर वह कठिनता से छूट सका। अब औरंगजेब ने अनवरखाँ को पदच्युत कर धमौनी के सूबेदार मिर्जा सुतरुद्दीन को भेजा पर उसकी भी शेख अनवरखाँ की सी गति हुई, वह भी सवा लाख भेंट तथा चौथ का वचन देकर छूटा[1]।

इस प्रकार कई बार विजय प्राप्त कर सं० १७४४ में छत्रसाल ने विधिपूर्वक राज्याभिषेक कराया। संवत् १७४७ में अब्दुस्समदखाँ की नायकता में एक भारी मुगल-वाहिनी ने आकर बुन्देलखंड को घेर लिया। बेतवा नदी के किनारे भयंकर युद्ध हुआ[2] जिसमें अब्दुस्समद को बुरी तरह नीचा देखना पड़ा और वह अपनी सेना को लेकर यमुना की ओर वापिस चला गया।

जब छत्रसाल अब्दुस्समद से लड़ रहे थे तब भेलसा मुगलों ने ले लिया था। छत्रसाल भेलसा लेने को बढ़े, मार्ग में बहलोलखाँ ने जगतसिंह बुन्देले को साथ ले इन पर धावा किया। इस लड़ाई में जगतसिंह मारा गया और बहलोल को भागना पड़ा। बहलोल ने दो तीन लड़ाइयाँ कीं पर सब में उसे नीचा देखना पड़ा। अन्त में लज्जावश उसने आत्मघात कर लिया। तदनन्तर छत्रसाल ने मुरादखाँ और दलेलखाँ को भी पराजित

---

१. तहवरखान हराय ऐंड अनवर की जंग हरि।
सुतरुदीन बहलोल गए अबदुल्ल समद मुरि॥ (पृ० ७३ ख)

२. अत्र गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के। (पृ० ६८ ख)

किया। सं० १७५० में बीजापुर के एक पठान ने पन्ना पर चढ़ाई की थी, पर युद्ध प्रारम्भ होते ही वह इस लोक को छोड़ कर चलता वना और उसकी सेना आगे न बढ़ सकी[1]। इसी समय सैयद अफगन नामक एक दिल्ली का सरदार छत्रसाल से लड़ने को भेजा गया। छत्रसाल ने इसे भी पराजित कर दिया[2]। तब औरंगज़ेब ने शाहकुली नामक सरदार को भेजा। पहले उसे कुछ सफलता मिली, पर अन्त में उसे भी निराश ही लौटना पड़ा। अब यमुना और चंबल के दक्षिण के संपूर्ण प्रदेश पर छत्रसाल का अधिकार होगया, आसपास के शासक उनके आज्ञानुवर्ती हो गये[3]।

सं० १७६४ में औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी बहादुर शाह ने इन्हें इनके स्वतन्त्र राज्य का राजा स्वीकार कर लिया। अब इन्होंने निश्चिंत हो शासन-व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। इसमें अधिकतर इन्होंने शिवाजी का ही अनुकरण किया। अपने जीते जी ही इन्होंने अपने पुत्रों को राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों का शासक नियत कर दिया था।

मुगल-साम्राज्य की केन्द्रीय सत्ता के ढीला पड़ते ही स्थान स्थान पर मुगल-सरदारों ने अपने अपने राज्य स्थापित कर लिये थे। इसी प्रकार का एक फौजदार मुहम्मदखाँ बंगश फर्रुखाबाद में अपनी नवाबी चलाता था। पास के बुंदेलखंड पर भी अपना प्रभुत्व जमाने के लिए वह संवत्

---

१. दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को (पृ० ६७ ख)

२. सैद अफगनहि जेर किय। (पृ० ७२ ख)

३. जंग-जीतिलेवा तेऊ ह्वै कै दाम-देवा भूप
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की। (पृ० ६५ ख)

१७८६ में अपनी कई सहस्र सेना के साथ वहाँ चढ़ आया। महाराज छत्रसाल रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह का बहुत सा राज्य छीन चुके थे अतः रीवाँ-नरेश भी वंगश को सहायता दे रहे थे। इस कुदशा पर छत्रसाल ने जो अब ७५-७६ वर्ष के वृद्ध थे पेशवा बाजीराव को एक पत्र में सब वृत्तान्त लिख कर अन्त में लिखा—

"जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति जानहु आज।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज।"

यह पत्र पाते ही पेशवा ने एक महती सेना भेजी और उसकी सहायता से छत्रसाल ने वंगश को परास्त किया। वंगश ने बुन्देलों का जीता हुआ इलाका लौटा दिया और भविष्य में बुन्देलखंड की ओर पैर न बढ़ाने की शपथ खाई।

महाराजा ने इस उपकार के बदले बाजीराव को अपना एक तिहाई राज्य दे दिया और शेष अपने दो बड़े लड़कों में बाँट दिया। सं० १७९० में वह वीर-केसरी इस असार संसार को छोड़ गया।

छत्रसाल स्वयं कवि थे और कवियों का बड़ा आदर करते थे। इन के बनाये हुए कई काव्य-ग्रन्थ मिलते हैं। इन के दरबारी कवियों में से 'लाल' कवि सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। लाल ने 'छत्र प्रकाश' नामक ग्रन्थ में इनका गुण-गान किया है।

भूषण की रचनाएँ

शिवराज-भूषण—महाकवि भूषण की रचनाओं में से केवल 'शिवराज-भूषण' ही एक ऐसा स्वतंत्र ग्रंथ है जो आजकल उपलब्ध है। इसके नाम ही से प्रकट है कि इसमें शिवाजी की चर्चा है, और यह भूषण (अलंकार) का ग्रंथ है, अथवा इसे कवि भूषण ने बनाया है। इस तरह इसका नाम नायक, कवि तथा विषय सभी का द्योतक है। कवि ने सुन्दर अलंकार-ग्रन्थों का अध्ययन कर अपने मत के अनुसार इस ग्रंथ में अलंकारों का लक्षण दोहों में देकर उनके उदाहरण सवैया, कवित्त आदि विविध छंदों में दिये हैं। ये उदाहरण सब शिवाजी के चरित्र पर आश्रित हैं।

पुस्तक के अंत में दी गई अलंकारों की सूची में एक सौ अर्थालंकार चार शब्दालंकार तथा एक उभयालंकार—इस प्रकार कुल एक सौ पाँच अलंकार गिनाये गए हैं। इस गणना में कहीं कहीं अलंकारों के भेद भी सम्मिलित हैं, पर कई अलंकारों के भेदों को अंतिम सूची में सम्मिलित नहीं किया गया; जैसे—लुप्तोपमा, न्यून रूपक, गम्योत्प्रेक्षा आदि। इस अलंकार-सूची को देखने से पता लगता है कि भूषण ने मोटे तौर पर दो एक अलंकारों को छोड़कर बाकी सभी मुख्य अलंकारों का वर्णन कर दिया है। जितने अलंकार लिखे हैं, उनमें से कुछ के पूरे भेद कहे हैं, कुछ के कुछ ही भेद कहे हैं, और कुछ के भेद नहीं भी लिखे। भूषण ने दो एक नये अलंकारों का उल्लेख भी किया है; जैसे—सामान्य-विशेष तथा भाविक छवि। ऐसे ही भूषण ने विरोध और विरोधाभास को भिन्न-भिन्न

अलंकार माना है। इसमें उन्हें कितनी सफलता मिली है इसको विवेचना आगे की जायगी।

इस ग्रन्थ में संवत् १७१३ से १७२० तक की शिवाजी के जीवन की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं तथा विजयों, उनके प्रभुत्व, आतंक, यश तथा दान आदि का वर्णन है। जिन घटनाओं का इस ग्रन्थ में उल्लेख हुआ है, उनकी तालिका आगे दी जाती है।

घटना	पद संख्या	संवत्
जावली को ज़ब्त करना	२०७	१७१३
नौशेरखाँ से युद्ध और उसे लूटना	१०२, २०८	१७१४
औरंगज़ेब द्वारा दारा तथा मुराद का मारा जाना, और शाहशुजा का भगाया जाना	२१८	१७१५
अफ़ज़लखाँ वध	४२,६३,९८,१६१,१७४ २४१,२५३,३१३,३२९	१७१६
रुस्तमे जमानखाँ का पलायन	२४१	१७१६
खवासखाँ से युद्ध	२५५,३३०	१७१८
सिंगारपुर लेना	२०७	१७१८
रायगढ़ में राजधानी स्थापित करना	१४,२४	१७१९
कारतलबखाँ को लूटना	१०२	१७१९
शाइस्ताखाँ की दुर्दशा	१०२,१७४,१९०,३२२ ३२५,३३९,३४०	१७२०

सूरत की लूट	२०१, ३३६, ३५६	१७२१, १७२७
जयसिंह से संधि और गढ़ देना	२१३, २१४	१७२२
शिवाजी की औरंगज़ेब से भेंट	३४, ३८, १८७, १९९ २०५, २१०, २६६, ३१०, ३११,	१७२३
कैद से निकल आना	७९, १४८, १९९	१७२३
सिंहगढ़ और लोहगढ़ की पुनः प्राप्ति	९९, २६०, २८६	१७२७
सीदी सरदार फत्तेखाँ से संधि	२४१	१७२७
सलहेरि का युद्ध	९६, १०२, १६१, २२७, २४१, २९३, ३३३, ३५७	१७२९
बहादुरखाँ का सेनानायक होना	७७, ३२२	१७२९
जवारि रामनगर की विजय	१७३, २०७	१७२९
तिलंगाना की लूट	३५९	१७२९
परनाला किले की विजय	१०६, १७९, २०८, २५५, ३५९	१७३०
बीजापुर पर धावा	२०७, २५५, ३१३,	१७३०
बहलोल के दल का कुचला जाना	१७४,१६१,२४१ ३५८, ३६०, ३६१	१७३०

इसको देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भूषण ने शिवाजी के जातीय जीवन की घटनाओं पर ही कुछ लिखा है; उनके यशःशरीर का ही चित्र खींचा है। एक भी छंद शिवाजी के वैयक्तिक जीवन के विषय में नहीं कहा।

शिवराज-भूषण में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख होने पर भी वह एक स्फुट काव्य है, प्रबन्धकाव्य नहीं—अर्थात् उसका प्रत्येक छन्द अपने आप में पूरा है, एक पद का दूसरे पद से कोई आनुपूर्वी संबंध नहीं है। उसमें किसी समय का तारीखवार इतिहास या किसी घटना-विशेष का क्रमबद्ध वर्णन नहीं है। केवल घटनाओं का उल्लेख मात्र है। और वह उल्लेख केवल काव्य के चरित-नायक वीर-केसरी शिवाजी के गौरव-गान के लिए है। इसी प्रकार यद्यपि शिवराज-भूषण एक अलंकार ग्रंथ है, पर अलंकारों की गूढ़ छानबीन करने के लिए वह नहीं लिखा गया। भूषण का उद्देश्य तो केवल शिवाजी के यश को अजर-अमर करना था और उस ने ऐतिहासिक घटनाओं तथा अलंकारों को उस उज्ज्वल चरित्र को अलंकृत करने का एक साधन-मात्र बनाया है। उस पवित्र चरित्र को देखकर ही कवि के हृदय में जो अलंकार-मय काव्य-रचना की लालसा उत्पन्न हुई थी उसी लालसा को पूर्ण करने के लिए उसने यह अलंकार-मय ग्रंथ बनाया। कवि स्वयं कहता है—

'सिव-चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषण के चित्त
भाँति भाँति भूषननिसों, भूषित करों कवित्त।'

शिवाबावनी—इस नाम का भूषण ने कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं बनाया था। यह भूषण के शिवाजी-संबंधी ५२ स्फुट पद्यों का संग्रह मात्र है। बावनी के संबंध में यह किंवदंती प्रचलित है कि जब भूषण और शिवाजी की प्रथम भेंट हुई तब भूषण ने छद्मवेशी शिवाजी को जो ५२ भिन्न-भिन्न कवित्त सुनाये थे, वे ही शिवाबावनी में संगृहीत है। परन्तु यह किंवदन्ती सर्वथा सारहीन है, क्योंकि शिवाबावनी के नाम से आजकल जो संग्रह मिलते हैं उनमें सं० १७३० तक की घटनाओं का उल्लेख है। कई संग्रहों में तो ऐसे पद्य भी हैं, जिनमें संवत् १७३६ तक की घटनाओं का ज़िक्र है। यह संग्रह भूषण का अपना किया हुआ प्रतीत

नहीं होता। ऐसा जान पड़ता है कि किसी ने भूषण के शिवाजी-विषयक फुटकर पद्यों में से अच्छे-अच्छे पद छाँट कर शिवाबावनी नाम से संग्रह छपवाया होगा। तभी से यह नाम प्रसिद्ध हो गया।

शिवाबावनी नाम से जो संग्रह मिलते हैं, उनमें पदों का क्रम प्रायः भिन्न-भिन्न है और कुछ पद भी भिन्न हैं। हमने इसमें प्रायः मिश्रबन्धुओं का क्रम रखा है, क्योंकि अधिकांश संग्रहों में मिश्रबन्धुओं का ही अनुकरण किया गया है। शिवाबावनी में दो पद (सं० १२ और १३) औरंगजेब की निन्दा के हैं। इन्हें 'शिवाबावनी' में रखना उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इनका शिवाजी से कोई सम्बन्ध नहीं। पर अब तक के अधिकांश संस्करणों में ये चले आते हैं, अतः विद्यार्थियों की सुविधा के लिए हमने उन्हें रहने दिया है। शिवाबावनी में अधिकतर पद शिवाजी की सेना के प्रयाण का शत्रुओं पर प्रभाव, शिवाजी के आतंक से शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा, शिवाजी का पराक्रम तथा शिवाजी को विजय करने में औरंगजेब की असफलता, और यदि शिवाजी न होते तो हिन्दुओं की क्या दशा होती, आदि विषयों पर हैं। अलंकार के बंधनों के कारण शिवराज-भूषण में कवि जिस ओज का परिचय न दे सका था, उसका परिचय इन छंदों में मिलता है। स्वतंत्रता-पूर्वक निर्मित होने के कारण इन छंदों में प्राबल्य और गौरव विशेष रूप से है। वीर, रौद्र तथा भयानक रस के कई अनूठे उदाहरण इनमें पाये जाते हैं।

छत्रसाल-दशक—यह छोटा सा ग्रन्थ भी शिवाबावनी की तरह एक संग्रह-मात्र है। इसमें वीर-केसरी छत्रसाल बुन्देला विषयक पद्यों का संग्रह है। भूषण दक्षिण में आते-जाते जब कभी इस वीर के यहाँ ठहरते रहे, तभी समय समय पर इन पदों का निर्माण हुआ।

प्रारम्भ में दो दोहों में छत्रसाल हाड़ा और छत्रसाल बुंदेला की तुलना है। उसके बाद नौ कवित्त और एक छप्पय वीर बुंदेले की प्रशंसा

के हैं, और मुख्यतया उनमें उनकी विजयों का उल्लेख है। कई प्रतियों में छत्रसाल हाड़ा-विषयक कुछ पद भी सम्मिलित कर दिए गए हैं, पर उनमें कवि का नाम न होने से स्वर्गीय गोविन्द गिल्लाभाई उन्हें भूषण-कृत नहीं मानते।

शिवाबावनी के समान छत्रसाल-दशक के पद्य भी उच्चकोटि के हैं और इनमें रस का परिपाक भी अच्छा हुआ है।

फुटकर—शिवराज-भूषण तथा उपरिलिखित दो संग्रहों के अतिरिक्त भूषण के कुछ और स्फुट पद्य भी मिलते हैं। अब तक प्राप्त पद्यों की संख्या ६५ के लगभग है, जिनमें से २६ तो शिवाजी-विषयक हैं और १० शृंगार-रस के हैं, शेष शाहूजी या अन्य राजाओं के वर्णन में है।

शिवाजी-विषयक छन्दों में शिवाबावनी की तरह या तो शिवाजी की धाक का वर्णन है अथवा शिवाजी के अन्तिम-जीवन की घटनाओं—करनाटक पर चढ़ाई, गोलकुंडा के सुलतान का शिवाजी को कर देने की प्रतिज्ञा करना, तथा शिवाजी द्वारा बीजापुर की रक्षा—का उल्लेख है। शिवाजी के बाद ४ पद्य उनके पोते शाहूजी पर हैं। एक एक पद्य सुलंकी-नरेश तथा रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह पर, फिर एक-एक पद्य आमेराधिपति महाराज जयसिंह तथा उनके पुत्र महाराज रामसिंह पर, उसके बाद एक पद्य पौरच-नरेश पर तथा दो पद्य राव बुद्धसिंह हाड़ा पर मिलते हैं। एक पद्य कुमाऊँ-नरेश के हाथियों की प्रशंसा में भी मिलता है। इसके बाद एक पद्य दारा तथा औरंगज़ेब के युद्ध पर भी मिलता है। उसमें कवि का नाम है, अतः भूषण का कहना पड़ता है। परन्तु पता नहीं भूषण ने वह छन्द किस अवसर पर बनाया। इसके बाद के शृंगार रस को छोड़कर शेष जितने पद्य दिए गए हैं वे सब संदिग्ध हैं और उनके नीचे ही संदेह का कारण दे दिया गया है। कुछ अन्य पद्य भी भूषण के नाम से प्राप्त हुए हैं, पर वे भी भूषण-कृत हैं या नहीं इसमें संदेह है।

हिन्दी के वीर-काव्य और रीतिग्रन्थों पर एक विहंगम दृष्टि

भूषण वीर कवि थे, स्वतंत्रता के प्रेमी थे, बन्धन और परतन्त्रता उन्हें चुभती थी। परन्तु रीतिकाल के कवि होने के कारण उन्हें भी अपनी कविता को अलंकारों के बन्धन में बाँधना पड़ा। अतः भूषण की कविता की आलोचना करने से पहले जहाँ हमें हिन्दी के अन्य वीर कवियों की कविता पर दृष्टि डालनी पड़ेगी, वहाँ तत्कालीन साहित्यिक विचार-धारा का भी विहगावलोकन करना होगा।

उत्तर भारत के जिस भूभाग में जिस समय अपभ्रंश भाषाओं से उत्पन्न होकर हिन्दी-साहित्य अपना शैशवकाल व्यतीत कर रहा था, उस समय उसी भूभाग में घोर अशांति का साम्राज्य छाया हुआ था। महाराज हर्षवर्धन के बाद से भारत में एकछत्र सम्राट् दिखाई न दिया था। देश कई टुकड़ों में बँट चुका था, और उन पर भिन्न-भिन्न राजपूत राजाओं का राज्य था। ये राजागण निरन्तर गृह-कलह में व्यस्त रहते थे। इधर भारत के पश्चिमीय भूभागों पर मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गए थे। वे पहले यहाँ की अतुल संपत्ति को लूट ले जाने की इच्छा से ही आक्रमण करते थे, पर कुछ काल के उपरान्त वे कुछ तो धर्मप्रचार की इच्छा से और कुछ यहाँ के विपुल धन-धान्य से आकृष्ट होकर इस देश पर अधिकार जमाने की धुन में लगे। यहाँ के राजपूत राजाओं को समय समय पर उनके साथ लोहा लेना पड़ता था। इन युद्धों में उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए मारू-राग गाने वाले वीर कवियों की आवश्यकता थी। भीषण हलचल तथा घोर अशांति के उस

युग में वीर-गाथाओं की ही रचना संभव थी। राजपूतों द्वारा शासित भूभाग में वीरोल्लासिनी कविता की गूँज सुनाई पड़ने लगी। हिन्दी के आदि-युग में जो केवल वीर-रस की कविताएँ मिलती हैं उसका यही कारण है।

उस समय की वीरगाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं—कुछ तो प्रबन्ध काव्य के साहित्यिक रूप में और कुछ वीरगीतों के रूप में। हिन्दी की वीरगाथाओं में प्रबंध-रूप से सब से प्राचीन ग्रन्थ जिसका उल्लेख मिलता है, दलपतिविजय का 'खुम्मानरासो' है। ऐसा कहा जाता है कि उसमें चित्तौड़ के दूसरे खुम्माण (वि० सं० ८७०-९००) के युद्धों का वर्णन था। इस समय इस पुस्तक की जो प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें महाराणा प्रतापसिंह तक का वर्णन है। वीर-गाथा-सम्बन्धी प्रबन्ध काव्यों में दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक चन्दवरदाई-कृत 'पृथ्वीराज-रासो' है। इसके रचयिता चन्द वरदाई महाराज पृथ्वीराज के समकालीन तथा उनके राज-कवि, सामन्त और सखा बताए जाते हैं। यह ढाई हज़ार पृष्ठों का बड़ा ग्रन्थ है। जिसमें ६९ समय (सर्ग या अध्याय) हैं। यही विशाल-काव्य ग्रन्थ हिन्दी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। समस्त वीर-गाथा युग की यह सब से अधिक महत्वपूर्ण रचना है। उस काल की जितनी स्पष्ट झलक इस एक ग्रन्थ में मिलती है उतनी दूसरे किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती। इसमें अनेकों युद्धों का वर्णन है, युद्धों के साथ प्रेम का अनूठा सम्मिश्रण है। इस प्रकार वीर और शृंगार-रस की स्थान स्थान पर अद्भुत छटा दिखाई देती है। रसात्मकता के विचार से उसकी गणना हिन्दी के थोड़े से उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थों में हो सकती है। परन्तु इसकी आजकल जितनी भी प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें आकाश-पाताल का अंतर है। उनमें वर्णित घटनाएँ इतिहास के विरुद्ध भी दिखाई देती हैं, भाषा की भी बड़ी विभिन्नता है। अतः ऐतिहासिकों में इसकी प्राचीनता के

विषय में बड़ा मत भेद है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ओझा तो इसके लेखक चंदबरदई के महाराज पृथ्वीराज के दरबार में होने में संदेह करते हैं।

इस काल के अन्य प्रबन्ध-काव्यों में केदार भट्ट का 'जयचंद-प्रकाश' मधुकर का 'जयमयंक-जसचन्द्रिका' सारंगधर का हम्मीर-काव्य' और नल्लसिंह का 'विजयपाल-रासो' उल्लेखनीय हैं।

वीरगीतों में सब से प्रसिद्ध नाल्ह-रचित 'बीसलदेव-रासो' तथा जगनिक कृत 'आल्हखंड' हैं। बहुत काल तक लिपि-बद्ध न होने के कारण और भाट तथा चारणों में परंपरा रूप से मौखिक चले आने के कारण इनके रूप, भाषा और वर्णित विषयों में पर्याप्त परिवर्त्तन आ गया है। 'बीसलदेवरासो' में साँभर के बीसलदेव के राज-कन्या राजमती से विवाह तथा रूठ कर उड़ीसा की ओर जाने और फिर उनके पुनर्मिलन का उल्लेख है। वर्तमान समय में इसे एक प्रेम-गाथा ही माना जा सकता है। परन्तु इसमें वीरों के सरल हृदय की व्यंजना होने से यह वीर-गीत कहलाता है। आल्हखंड में आल्हा-ऊदल आदि की वीर वाणी तथा वीर कृत्यों का जमघट-सा है, उनके अनेक विवाहों तथा ५२ लड़ाइयों का वर्णन है। प्रचार की दृष्टि से तत्कालीन रचनाओं में से सब से अधिक इसी ग्रन्थ ने आदर पाया है। ये गीत आज तक हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में बरसात में गाए जाते हैं।

तत्कालीन प्रसिद्ध ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि उस काल की प्रायः सारी कविता राजाओं के आश्रय में ही हुई, अतः उनमें राजाश्रित कविता की सभी विशेषताएँ मिलती हैं। इन कवियों की वाणी अपने स्वामियों के कीर्ति-कथन में कभी कुंठित नहीं हुई। किसी राजा की कन्या के रूप का समाचार पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रति-पक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हर लाना उस समय वीर राजाओं के गौरव और अभिमान का कार्य समझा जाता था। अतः जो

भाट या चारण किसी राजा के पराक्रम, विजय, शत्रु-कन्या-हरण आदि का अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन करता या रण-क्षेत्रों में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंगें भर सकता वही सम्मान पाता था। इस कारण उस समय के काव्यों में गौण रूप में शृंगार का भी मिश्रण रहता था, पर प्रधान वीर रस ही रहता था। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर किसी रूपवती स्त्री को ही कारण कल्पित करके रचना की जाती थी। जैसे 'पृथ्वीराज रासो' में शहाबुद्दीन के यहाँ से एक रूपवती स्त्री का पृथ्वीराज के यहाँ आना ही लड़ाई का कारण लिखा है। हम्मीर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का भी ऐसा ही कारण कल्पित किया गया है। उस समय के वीर-काव्यों के रचयिता प्रायः राजपूताने के भाट या चारण थे। कुछ काव्यों में उनके जन्म-स्थान की भाषा का प्रयोग था जिसे 'डिंगल' कहा जाता है, और कुछ काव्यों में सामान्य काव्य-भाषा का प्रयोग होता था, जिसे 'पिंगल' कहा जाता है। पर 'पिंगल' में भी राजस्थानी का पुट पर्याप्त रहता था।

जब देश का शासनाधिकार मुसलमानों के हाथ में जाकर स्थिर हो गया और जब रणथंभौर तथा चित्तौड़ आदि को छोड़कर शेष सभी देशी रजवाड़ों ने विदेशियों को आत्म-समर्पण कर दिया तब वीर-गाथाओं की रचना में शिथिलता आगई। जनता आतंकित और विलासी होकर आत्म-विस्मृत-सी हो गई। अब वीरगाथाओं तथा कर्कश रणनाद का स्थान सन्तों, प्रेमियों और भक्तों की वाणी ने लेना प्रारंभ किया। सन्त कबीर, सूफी फकीर मलिक मुहम्मद जायसी, महात्मा सूरदास, रामधन तुलसीदास तथा इन सब के अनुयायियों ने कविता का रूप ही बदल दिया। कविता राजदरबारों से निकल कर जनता के सेवक वैरागियों की कुटिया में आ गई।

यह हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-युग था। हिन्दी-काव्य इस समय पूर्ण प्रौढ़ता को पहुँच चुका था। ऐसे समय कुछ लोगों का ध्यान भाषा और भावों को अलंकृत करने और संस्कृत की काव्य-रीति का अनुसरण करने की ओर खिंच रहा था। फलतः रस और अलंकारों का विवेचन प्रारंभ हुआ। संवत् १५९८ में कृपाराम ने थोड़ा बहुत रस-निरूपण किया। उस के बाद गोप कवि ने अलंकारों की ओर ध्यान दिया। पर हिन्दी में पहले आचार्य जिन्होंने काव्य के सब अंगों का विवेचन संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति से किया, वे थे केशवदास। वे अलंकारों को ही काव्य की आत्मा मानने वाले चमत्कारवादी कवि थे। रति पर उन्होंने दो प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे—कविप्रिया और रसिकप्रिया। कविप्रिया में उन्होंने बहुत से विषयों का समावेश किया—जैसे, काव्य-भेद अलंकार-भेद, दोष, काव्य के वर्ण्य विषय आदि। रसिक-प्रिया में उन्होंने दांपत्य रीति-भाव को ही लेकर उस के कई भेद दिखाते हुए श्रृंगार रस के आलंबन आदि का विस्तार से वर्णन किया। इन ग्रन्थों का विद्वानों में पर्याप्त आदर हुआ। पर हिन्दी में रीति-ग्रन्थों का अविरल और अखंडित प्रवाह केशव की 'कवि-प्रिया' के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला, और वह भी एक भिन्न आदर्श को ले कर। केशव ने दण्डी, रुय्यक आदि संस्कृत के आचार्यों की अलंकारों की विस्तृत विवेचनात्मक और छान-बीन की प्रणाली का अनुकरण किया था, पर हिन्दी के पिछले कवियों ने संस्कृत के 'चंद्रालोक' और 'कुवलयानंद' की संक्षिप्त शैली का अनुकरण किया, अर्थात् एक दोहे के पूर्वार्द्ध में या एक पूरे दोहे में किसी अलंकार या रस का पूरा या अधूरा लक्षण लिख कर उत्तरार्द्ध में या अलग कवित्त अथवा सवैये में उसका उदाहरण देने की प्रथा चल पड़ी। यह बाढ़ अथवा परंपरा भूषण के भाई चिंतामणि त्रिपाठी से प्रारंभ हुई और इसका इतना प्रचार हुआ कि बिना लक्षण-ग्रन्थ लिखे कवि-कर्म अधूरा समझा जाने लगा। रीति-ग्रन्थों को इतना

महत्त्व दिया जाने लगा कि कवि कहलाने के लिए उसी परिपाटी पर ग्रंथ-रचना करना प्रायः अनिवार्य हो गया। इसमें श्रृंगार-रस को ही प्रधानता मिली। भक्त-कवियों के कृष्ण और राधिका के लीला-वर्णन में वासना के कीड़े ने प्रवेश किया। तत्कालीन राजाओं की विलास-चेष्टाओं की परितृप्ति और अनुमोदन के लिए कृष्ण एवं गोपियों की ओट में कवियों ने कलुषित प्रेम की शत-सहस्र उद्भावनाएँ की। श्रृंगार के आलंबन नायक नायिकाओं के अनेक भेद-विभेद किये गये। रस-ग्रन्थ प्रायः नायिका-भेद के ही ग्रन्थ हैं। उद्दीपन के लिए षड्-ऋतु वर्णन की प्रथा चली। सूर और तुलसीदास जैसे महाकवियों ने काव्य-कला को साधन बना कर अलंकारों को केवल सहायक समझ कर उनका उपयोग किया था, पर रीति-काल के कवियों ने काव्य-कला को ही साध्य समझा, और अलंकारों को ही कविता का सौंदर्य। उन्होंने काव्यकला को ही प्रधान मान कर शेष सब बातों की उपेक्षा की और मुक्तकों के द्वारा एक-एक अलंकार, एक-एक नायिका अथवा एक-एक ऋतु का वर्णन किया।

संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दोनों भिन्न-भिन्न थे। अर्थात् कवि अपने काव्य की रचना कर अलग हो जाते थे, वे लक्षण-ग्रन्थों के निर्माण में न पड़ते थे और जो लोग अलंकार आदि के लक्षणों से युक्त ग्रन्थ लिखते थे, वे केवल लक्षणों का निरूपण एवं प्राचीन काव्य की समालोचना में ही भिड़ते थे, स्वयं लक्षणानुसार उदाहरणों का निर्माण न करते थे। इस कारण संस्कृत में लक्षण-ग्रन्थों के लिखने में पर्याप्त छान-बीन से काम लिया गया। कई नये-नये वाद निकले। रसवादी रस को ही काव्य की आत्मा मानते थे। उनका कहना था कि रस-युक्त वाक्य ही काव्य है। अलंकार-वादी अलंकारों को ही काव्य में प्रधान मानते थे। उनकी सम्मति में रस आदि अलंकारों से गौण थे। वे ओज, प्रसाद माधुर्य आदि गुणों की भी अलंकारों में गिनती करते थे। तीसरे रीतिवादी,

रीति को ही काव्य की आत्मा मानते थे। रीति शब्दों के नियमित और संघटित प्रयोग को कहते हैं। उन्होंने वैदर्भी, गौड़ी तथा पांचाली कुल तीन प्रकार की रीतियों का विवेचन किया। चौथे वक्रोक्ति संप्रदाय वालों का कहना था कि कवि वस्तुओं के सम्बन्ध का अभिव्यंजन जो कुछ चमत्कार और बाँकेपन से करता है वही वक्रोक्ति है, और वक्रोक्ति ही काव्य का सर्वस्व है, वक्रोक्ति-रहित साधारण कथन काव्य नहीं है। पाँचवाँ सम्प्रदाय ध्वनि-संप्रदाय था। वे ध्वनि को ही काव्य के उत्तम स्वरूप का निदर्शक मानते हैं। ध्वनि तीन प्रकार की कही जाती है—रसध्वनि, अलंकार-ध्वनि, और वस्तु-ध्वनि। वे यह भी कहते हैं कि जिस काव्य से रस-सिद्धि नहीं होती वह निष्प्रयोजन है। इस प्रकार वह रस-संप्रदाय से अपना घनिष्ठ संबंध जोड़ते हैं; साथ ही वे अलंकारों, गुणों आदि को रसोत्पादन में सहायक मात्र मानकर गौण स्थान देते हैं। पीछे इसी संप्रदाय की शैली सर्वमान्य होगई। पर हिन्दी के रीतिकारों में न इस प्रकार के संप्रदाय थे और न गहरी छान-बीन ही हुई, क्योंकि यहाँ कवि और आचार्य एक ही थे। प्रायः रीति-ग्रन्थ लिखने वाले भावुक सहृदय और निपुण कवि थे, उनका उद्देश्य कविता करना था न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। ऐसे कवि लोग एक दोहे में अपूर्ण लक्षण देकर अपने कवि-कर्म में प्रवृत्त हो जाते थे। उनका लक्षण-ग्रंथों का सहारा लेना तो एक बहाना मात्र था। उनकी दृष्टि तो काव्य-रचना में ही टिकी हुई थी। फलतः काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन तथा नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ न हुआ; अपितु उनके अपूर्ण लक्षण साहित्य-शास्त्र का सम्यक् बोध कराने में सर्वथा असमर्थ रहे। बहुत स्थलों पर तो उनके द्वारा अलंकार आदि के स्वरूप का भी ठीक बोध नहीं होता और कहीं-कहीं उदाहरण भी ठीक नहीं है।

इस प्रकार लगभग दो या ढाई शताब्दी तक इन रीति-ग्रन्थकार कवियों

का ताँता बँधा रहा । इने-गिने प्रबन्ध-काव्य-लेखकों, नीति या ज्ञान संबन्धी सूक्तियों के प्रणेताओं तथा कुछ एक श्रृंगाररस के प्रेमी कवियों को छोड़ कर प्रायः सबने रीतिबद्ध ग्रन्थ लिखने की ही प्रणाली का सहारा लिया। इनमें से चिंतामणि त्रिपाठी, मतिराम, जसवंतसिंह, कुलपति मिश्र, देव, श्रीपति, भिखारी दास (दास), पद्माकर और प्रतापसाहि अधिक प्रसिद्ध हैं। चिंतामणि और मतिराम महाकवि भूषण के भाई थे। चिंतामणि ने छन्द-विचार, काव्य-विवेक, कविकुल-कल्पतरु, काव्य-प्रकाश तथा रामायण ये पाँच ग्रन्थ लिखकर काव्य के किसी अंग को भी अधूरा न छोड़ा। मतिराम ने ललित-ललाम नामक अलंकार ग्रंथ, छन्दसार नामक पिंगल-ग्रंथ तथा रसराज नामक रस-ग्रंथ लिखा। इसके अतिरिक्त इन्होंने साहित्यसार, लक्षणश्रृंगार तथा मतिराम-सतसई नामक ग्रन्थ भी लिखे। मतिराम की गिनती हिंदी के प्रतिनिधि कवियों में की जाती है। मिश्र-बंधुओं ने इन्हें नवरत्नों में स्थान दिया है। महाराज जसवन्तसिंह का भाषा-भूषण ग्रंथ अलंकारों पर एक बहुत ही प्रचलित पाठ्यग्रंथ रहा है। इस ग्रंथ को इन्होंने वास्तव में आचार्य के रूप में लिखा है, कवि के रूप में नहीं। भाषा-भूषण के एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों दिये गये हैं। कुलपति मिश्र का रसरहस्य नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसमें शास्त्रीय पद्धति से काव्य-विवेचन का प्रयत्न किया गया है। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में शायद सबसे अधिक ग्रन्थरचना देव ने की है। ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभा-संपन्न कवि थे। इनकी गणना भी हिंदी के नवरत्नों में की जाती है। श्रीपति ने काव्य के सब अंगों का निरूपण विशद रीति से किया है। इन का काव्य-सरोज नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है। इस में काव्य-दोषों का विस्तृत विचार किया गया है। भिखारीदास (दास) को काव्यांगों के निरूपण कर्ताओं में सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है, क्योंकि इन्होंने छन्द, रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, शब्द-शक्ति आदि सब

विषयों का औरों की अपेक्षा अधिक विस्तार से प्रतिपादन किया है। पर सच्चे आचार्य का पूरा रूप इन्हें भी प्राप्त नहीं हुआ। ये भी वस्तुतः कवि के रूप में ही हमारे सामने आते हैं। रीति-काल के कवियों में सहृदय-समाज पद्माकर को सर्वश्रेष्ठ स्थान देता आया है। इनका जगद्विनोद काव्य-रसिकों और अभ्यासियों दोनों का कंठहार रहा है। इसके अतिरिक्त इनके पद्माभरण, गंगालहरी आदि अन्य भी कई ग्रन्थ हैं। इनकी भाषा में वह अनेकरूपता है जो एक बड़े कवि में होनी चाहिये। प्रतापसाहि हिंदी के रीतिकाल के अंतिम आचार्य और कवि हुए हैं। इनके काव्यार्थ-कौमुदी, काव्य-विलास आदि ग्रन्थों से पांडित्य तथा कवित्व दोनों का पता चलता है। आचार्यत्व और कवित्व का ऐसा सुन्दर संयोग बहुत थोड़े कवियों में दीख पड़ता है।

महाकवि भूषण भी रीतिकाल के कवि थे। उन्हें भी सामयिक प्रवाह में पड़कर अपने भाइयों की तरह रीति-ग्रन्थ लिखना ही पड़ा। उनका 'शिवराज-भूषण' अलंकार का ग्रन्थ है और उनके बनाये जो अन्य ग्रंथ कहे जाते हैं, उनमें से भी 'भूषण-उल्लास' तथा 'दूषण-उल्लास' रीति-ग्रन्थ ही जान पड़ते हैं। इतने पर भी उनमें जातीय उत्थान और वीरगुणगान की सच्ची लगन थी, और उनके नायक थे शिवाजी तथा छत्रसाल जैसे वीर। फलतः सामयिक प्रवाह में बहते हुए भी उन्होंने उस लगन को नहीं छोड़ा, उन्होंने अपने नायकों के अनुरूप अपने ग्रन्थ में वीर रस को ही अपनाया।

भूषण के समान ही उस शृंगारी समय में हम अन्य कुछ वीर कवियों की भी भीम-गर्जना सुन पाते हैं। इनमें लाल और सूदन प्रमुख हैं। यद्यपि वीरगाथा-काल से अब तक वीर कवियों का सर्वथा लोप न हो गया था, समय-समय पर विलास-प्रिय नृपतियों को खुश करने के लिए कितने ही स्वार्थ-साधक खुशामदी कवियों ने अर्थलोलुपतावश

अपने नायक की प्रशंसा में कवि-वाणी के तिरस्कार-स्वरूप अनेक वीर रस की कविताएँ कीं, परन्तु मिथ्या-स्तुति पर अवलम्बित होने के कारण वे थोड़े ही दिनों में विनष्ट होगईं, अथवा उन राजाओं के दरबारों तक ही सीमित रहीं।

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का समय शांति का समय था। उस समय स्वतंत्रता की आग मेवाड़ की स्वतंत्रता-प्रिय भूमि को छोड़कर अन्य सब जगह कुछ काल के लिए शांत-सी हो चुकी थी। अतः वास्तविक वीर-कविता भी शांत थी। औरंगज़ेब के धार्मिक कट्टरपन ने दक्षिण में महाराष्ट्र शक्ति को, तथा पंजाब में सिक्खों को जागरित किया। मराठा-वीर शिवाजी के ज्वलंत उदाहरण को देखकर बुन्देलखंड-केसरी छत्रसाल भी स्वतंत्रता के लिए तड़पने लगे और इनके साथ ही साथ भूषण और लाल जैसे वीर कवियों का उदय हुआ।

लाल कवि द्वारा वीर-केसरी छत्रसाल की प्रशंसा में रचित 'छत्रप्रकाश' प्रबन्धकाव्य है। भूषण की कविता को भाँति ही इसमें जातीयता की भावना मिलती है, और उसी की भाँति छत्रप्रकाश श्रृंगाररस से अछूता है। इसकी रचना प्रौढ़ और काव्य-गुणयुक्त है, और कवि ने प्रबंध-कौशल भी अच्छा दिखाया है, पर छंद के निर्वाचन में कवि ने भूल की है। उसने वीर-रस के इस काव्य को रामचरित-मानस की भाँति दोहों और चौपाइयों में लिखा है, जो कि वीर-रस के लिए अनुपयुक्त छंद है। अतएव उसमें वह ओज नहीं दिखाई देता जो भूषण के कवित्तों में है, परन्तु लाल के जो फुटकर कवित्त मिलते हैं, वे उसकी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय देते हैं।

इस काल के तीसरे वीर-कवि सूदन द्वारा रचित 'सुजान-चरित्र' में भी वीररस की अच्छी झलक मिलती है। यह ग्रंथ भरतपुर के महाराज सुजानसिंह उपनाम सूरजमल की प्रशंसा में लिखा गया था, जिन्होंने

संवत् १८०२ में मेवाड़ को जीता था, तत्कालीन जयपुर-नरेश की सहायता से मराठों पर विजय पाई थी, और दिल्ली के मुगल-सम्राट् से भी युद्ध किया था। वीर रस का अच्छा परिपाक होने पर भी इसमें जातीयता की वह चेतना नहीं दिखाई देती जो भूषण और लाल की रचनाओं में मिलती है। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर घोड़ों, तलवारों तथा विभिन्न अस्त्रों की लंबी सूची देने और इसी प्रकार वस्तुओं के अनेक प्रकारों के नाम ढूँढ ढूँढ कर गिनाने की प्रवृत्ति के कारण ग्रन्थ की सरसता बहुत कुछ मारी गई है।

इन तीन कवियों की रचनाओं के अतिरिक्त फर्रुखसियर और जहाँदारशाह के युद्ध के वर्णन में श्रीधर का लिखा 'जंगनामा' भी वीररस के उल्लेखनीय ग्रंथों में से है। यह एक छोटी सी रचना है, पर इसमें सेना की चढ़ाई आदि का अच्छा वर्णन है। इसी प्रकार प्रसिद्ध श्रृंगारी कवि पद्माकर की 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' नामक पुस्तक भी इसी काल की है। रचयिता की प्रारंभिक रचना होने के कारण तथा नायक का विशेष व्यक्तित्व न होने के कारण यह रचना विशेष आदर न पा सकी। पर इस युग की एक और रचना अवश्य उल्लेखनीय है। वह है चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा लिखित 'हम्मीरहठ'। यद्यपि इसमें नवीन उद्भावनाओं की कमी है, और कथा-भाग चारणों की चली आती हुई रासो की पद्धति पर रचे गये हम्मीर-काव्यों से ही लिया गया है, तथापि भाषा के सौष्ठव और वर्णन की समीचीनता तथा रस के अनुकूल पद-विन्यास की दृष्टि से यह वीर-काव्यों में उच्च स्थान पाने का अधिकारी है। 'तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार' इसी काव्य की प्रसिद्ध उक्ति है।

इस युग में अन्य भी कई वीर कवि हुए। हनुमान, रामचन्द्र, दुर्गा आदि की प्रशंसा में कुछ वीर देव-काव्य भी लिखे गये। पर वे उल्लेखनीय नहीं। इस युग के अन्त में हम भारत को पराधीनता की बेड़ी

पहनते देखते हैं। उनके हाथों से अस्त्र-शस्त्र छिन जाते हैं, और रण-नाद की भी इतिश्री हो जाती है। [परन्तु धीरे-धीरे भारतीय पराधीनता की पीड़ा को अनुभव करने लगे। निश्शस्त्र होने के कारण रण-नाद तो कहीं सुनाई न पड़ा, परन्तु राष्ट्रीय जाग्रति की गूँज सब ओर से सुनाई देने लगी। फलतः कविता में भी इसकी छाया पड़ी और वर्तमान परिस्थिति में प्रोत्साहन के रूप में या प्राचीन वीरों की प्रशस्तियों के रूप में वीर-कविता लिखी जाने लगी। इस प्रकार के वीर अथवा राष्ट्रीय कविताकारों में पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बालकृष्ण शर्मा, पं० गयाप्रसाद शुक्ल, श्री वियोगी हरि, तथा श्री माधव शुक्ल आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं। स्वर्गीय लाला भगवानदीन का 'वीर पंचरत्न' और श्री वियोगी हरि की 'वीर सतसई' अर्वाचीन वीर काव्यों में उच्च स्थान रखते हैं।

आलोचना

भूषण-रीति-ग्रंथ-कार

[भूषण रीतिकाल के कवि थे। उस काल के अन्य कवियों की भाँति उन्होंने भी रीतिबद्ध ग्रंथ लिखने की प्रणाली को अपनाया। परन्तु इस कार्य में वे कहाँ तक सफल हुए यह एक विचारणीय प्रश्न है।

भूषण ने अपने ग्रन्थ शिवराजभूषण में अलंकारों के लक्षण दोहों में देकर चलते कर दिए हैं, और उनके उदाहरण सवैया, कवित्त आदि छंदों में दिये हैं। उनके उपलब्ध ग्रंथ में इस से अधिक अन्य किसी काव्यांग पर कुछ लिखा नहीं मिलता। अलंकार क्या वस्तु है, अलंकारों का काव्य में क्या स्थान है, इन बातों का भी भूषण ने कोई विवेचन नहीं किया। भूषण के कई अलंकारों के लक्षण अपर्याप्त और अधूरे हैं, तथा कई स्थानों

पर उदाहरण ठीक नहीं बन पड़े। इन सब त्रुटियों का निदर्शन मूल पुस्तक में स्थान-स्थान पर कर दिया गया है। यहाँ केवल उनका उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा।

भूषण ने सबसे पहले उपमा अलंकार को स्थान दिया है, पर इसका लक्षण इतना स्पष्ट नहीं है और इसका उदाहरण तो पर्याप्त दोष-पूर्ण है। इसमें शिवाजी की इन्द्र से और औरंगजेब की कृष्ण से उपमा दी गई है, जो कि सर्वथा अनुचित है, और पौराणिक कथा के अनुकूल भी नहीं है[1]।

पंचम प्रतीप का जो लक्षण भूषण ने दिया है, वह अन्य ग्रंथों से नहीं मिलता पर जो उदाहरण दिये हैं उनमें से दो भूषण के अपने लक्षण से मेल नहीं खाते वरन् वास्तविक लक्षण के अनुकूल हैं[2]।

परिणाम अलंकार के पहले उदाहरण की पहली, दूसरी तथा चौथी पंक्ति में तो परिणाम अलंकार ठीक है, पर तीसरी पंक्ति में परिणाम के स्थान पर रूपक अलंकार हो गया है[3]।

भ्रम अलंकार का उदाहरण ठीक नहीं है लक्षण भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं हुआ[4]। निदर्शना अलंकार के तीनों ही उदाहरण चमत्कारहीन अथवा अस्पष्ट हैं।

भूषण का समासोक्ति का लक्षण भी अधूरा है। समासोक्ति में समान अर्थ वाले विशेषण शब्दों के द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है। यह वर्णन कभी श्लेष के द्वारा होता है और कभी बिना श्लेष के। पर भूषण के लक्षण से यह बात प्रकट नहीं होती, वे केवल इतना कहते हैं—"वर्णन कीजे आन को ज्ञान आन को होय" अर्थात् वर्णन किसी और का किया जाय और ज्ञान किसी और वस्तु का हो। अप्रस्तुत

---

१. पृ० २२ विवरण। २. पृ० ३१ सूचना। ३. पृ० ४९ सूचना। ४. पृ० ५७ विवरण।

प्रशंसा में भी वर्णन किसी और (प्रस्तुत) का होता है और उससे किसी और (अप्रस्तुत) का ज्ञान हो जाता है। अतः यह कहना पड़ेगा कि भूषण का लक्षण अधूरा और अतिव्याप्ति दोषयुक्त है और उसमें उदाहरण केवल श्लेष से अप्रस्तुत का ज्ञान होने के लिये हैं।

अन्य कवियों ने अप्रस्तुत-प्रशंसा के पाँच भेद माने हैं। पर भूषण ने भेदों का उल्लेख नहीं किया और उदाहरण भी केवल कार्य-निबंधना के ही दिये हैं[१]। पहले दो उदाहरणों में एक ही बात को दोहराया गया है।

सम अलंकार का उदाहरण अस्पष्ट है[२]। विकल्प अलंकार के उदाहरण की भी वही गति हुई है। पहली तीन पंक्तियों में विकल्प प्रकट किया गया था पर चौथी पंक्ति में निश्चय प्रकट कर उसका गला घोंट दिया गया है[३]।

अर्थान्तरन्यास के कई भेदों में भूषण ने केवल दो भेद दिये हैं, पर उनमें भी दूसरा उदाहरण ठीक नहीं बैठता[४]।

छेकानुप्रास के लक्षण में भूषण 'स्वर समेत' अक्षरों की पुनः आवृत्ति आवश्यक समझते हैं, परन्तु उनके उदाहरण "दिल्लिय दलन दबाय" में व्यंजनों की आवृत्ति तो है, पर स्वर-साम्यता नहीं। इसके अतिरिक्त भूषण ने वृत्यनुप्रास को छेकानुप्रास में ही सम्मिलित कर दिया है[५]।

संकर का जो लक्षण भूषण ने दिया है, वह भ्रामक है, वह वस्तुतः उभयालंकार का लक्षण है। उसमें संकर तथा संसृष्टि दोनों प्रकार के उभयालंकार आ जाते हैं[६]।

भूषण ने समान्यविशेष, विरोध तथा भाविकछवि तीन नये अलंकार माने हैं। सामान्यविशेष में विशेष का कथन करके सामान्य का ज्ञान

---

१. पृ० १२६, सूचना। २. पृ० १५५ विवरण। ३. पृ० १८३ विवरण। ४. ११५ विवरण। ५. पृ० २५४ सूचना। ६. पृ० २६६ सूचना।

कराया जाता है। यह अलंकार प्राचीन साहित्यशास्त्रियों के अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार की विशेष-निबंधना से भिन्न नहीं है। इसके उदाहरण भी वैसे स्पष्ट नहीं, जैसे होने चाहिए।

इसी प्रकार भूषण ने विरोध, विरोधाभास और विषम तीन भिन्न भिन्न अलंकार माने हैं। पर वास्तव में विरोध और विरोधाभास में कोई अंतर नहीं है। विरोध अलंकार में यदि वास्तविक विरोध हो तो उसमें आलंकारिकता न रहेगी। उसमें या तो विरोध का आभास होता है अथवा विषमता होती है। भूषण ने जो विरोध का लक्षण दिया है, उसे अन्य कवियों ने विषम का दूसरा भेद माना है। यही उचित प्रतीत होता है।

भूषण का तीसरा नया अलंकार है—भाविकछवि। अन्य लोगों ने इसे भाविक में परिगणित किया है। भाविक में समय की दूरी होती है और भाविक-छवि में स्थान की दूरी। भाविक-छवि को चाहे स्वतंत्र अलंकार माना जाय अथवा भाविक का भेद, पर इसमें आलंकारिकता अवश्य है, और भूषण द्वारा दिया गया उस अलंकार का उदाहरण है भी बहुत उत्कृष्ट।

भूषण ने अंत में जो अर्थालंकारों की सूची दी है, उसमें उन्होंने सौ अलंकार तो गिना दिये हैं पर उसमें कई अलंकारों के भेदों की संख्या भी शामिल है। कई अर्थालंकारों का भूषण ने वर्णन ही नहीं किया, जैसे अल्प, विकस्वर, ललित, मुद्रा, गूढ़ोत्तर, सूक्ष्म, आदि।

जो अलंकार भूषण ने दिए भी हैं उनमें से कुछ के पूरे भेद लिखे हैं, कुछ के कुछ ही भेद कहे हैं और कुछ अलंकारों के भेद लिखे ही नहीं।

अपर्याप्त और अधूरे लक्षणों को देखकर तथा अलंकारों की छानबीन न पाकर यह मानना पड़ता है कि रीति-ग्रन्थकार के रूप में भूषण किसी प्रकार भी सफल नहीं हो सके और रीति-ग्रन्थ की दृष्टि से 'शिवराज भूषण' का कुछ भी महत्त्व नहीं है, प्रत्युत रीतिबद्ध ग्रन्थ-लेखन-प्रणाली

ने भूषण की कविता का स्वतंत्र विकास ही नहीं होने दिया। इसी कारण शिवराज-भूषण में वैसा सौंदर्य और रसपरिपाक नहीं दिखाई देता जैसा उनकी दूसरी कविताओं में है। इसका कारण यह नहीं कहा जा सकता कि भूषण को अलंकार का अभ्यास बहुत कम था। इसका कारण तो यह है कि भूषण निर्बन्ध कवि थे, रीतिग्रन्थ के बंधन में पड़ना उनका उद्देश्य नहीं था। उनका उद्देश्य तो केवल शिवाजी का यशोगान करना था। रीति-ग्रंथ तो उनके उस उद्देश्य का साधन मात्र था। तत्कालीन साहित्यिक प्रवाह से विवश हो कर उन्हें इस पचड़े में पड़ना पड़ा। तत्कालीन अन्य कवियों की भाँति उनकी दृष्टि कविता की ओर ही टिकी हुई थी। यही कारण है कि जहाँ उनको कोई बन्धन न था, वहाँ उन्होंने स्वाभाविक रूप से बहुत ही उत्तम अलंकार-योजना की है। विशेषतः शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों को अलंकारों द्वारा पाठक के मन में अंकित कर देने का श्रेय तो केवल उन्हें ही प्राप्त है, जो कि आगे दिए गये कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा।

औरंगज़ेब ने और सब हिन्दू राजाओं को वश में कर लिया था, पर केवल शिवाजी ही ऐसे थे, जिनसे वह कर न वसूल कर सका। इस ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने कैसे अच्छे उपमा-मिश्रित रूपक द्वारा प्रकट किया है! और प्रतिनायक के अपार पराक्रम को दिखाकर नायक के यश को कितना बढ़ा दिया है।

> कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
>
> गौर है गुलाब राना केतकी विराज है।
>
> पाँडर पँवार जूही सोहत है चंदावत,
>
> सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है॥
>
> 'भूषन' भनत मुचकुंद बड़गूजर है,
>
> बघेले बसंत सब कुसुम-समाज है।

लेइ रस एतेन को बैठ न सकत अहै,

अलि नवरंगज़ेब चंपा सिवराज है ॥

भ्रमर सभी पुष्पों का रस लेता है, पर चंपा पर उसकी तीव्र गंध के कारण नहीं बैठ सकता। इस प्राकृतिक तथ्य के अनुसार इस कविता में औरंगज़ेब को भ्रमर और शिवाजी को—जिसका औरंगज़ेब कभी रस न ले सका—चंपा बनाना कैसा उपयुक्त है। जयपुर-महाराज को कमल और राणा को केतकी बनाना भी कम संगत नहीं। भारत के राजपूत राजाओं में से सब से अधिक रस या सहायता मुगल-सम्राट् को जयपुर-नरेश रूपी कमल से ही मिली थी। ऐसे ही राणा-रूपी कंटकयुक्त केतकी के रस लेने में औरंगज़ेब रूपी भ्रमर को पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ा था।

× × × × × ×

शिवाजी का दमन करने के लिए औरंगज़ेब बारी-बारी से जसवंतसिंह शाइस्ताखाँ, दाऊदखाँ, दिलेरखाँ, महावतखाँ, और बहादुरखाँ आदि सरदारों को भेज रहा था, पर शिवाजी के तेज के सामने वे टिक न सकते थे, और औरंगज़ेब घबरा कर बड़ी तेज़ी से उनकी अदला-बदली कर रहा था। इस पर कवि की उक्ति दर्शनीय है।

यों पहिले उमराव लरे रन जेर किये जसवंत अजूबा।

साइतखाँ अरु दाऊदखाँ पुनि हारि दिलेर महम्मद डूबा ॥

भूषन देखें बहादुरखाँ पुनि होय महावतखाँ अति ऊबा।

सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरंग सूबा ॥

पान यदि उलटा पलटा न जाय तो वह गरमी से सूख या सड़ जाता है। इस प्राकृतिक तथ्य तथा ऐतिहासिक घटना के मेल से कवि ने अपने नायक के तेज का कैसा मनोहारी चित्रण किया है!

× × × × × ×

शिवाजी को जीतने के लिए औरंगज़ेब हाथी, घोड़े, बारूद तथा

अस्त्र-शस्त्र के साथ बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजता है, पर शिवाजी हर बार विजय प्राप्त कर सेना का सब सामान लूट लेते हैं, जिससे शिवाजी का यश और कोप दोनों बढ़ रहे हैं। कवि कितनी अच्छी उत्प्रेक्षा करता है—

मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि शिवाजी पै भेजत रिसाल है।

× × × ×

औरंगज़ेब के सरदार दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण मारे मारे फिरते हैं, दक्षिण में जाते हैं तो शिवाजी उन्हें मार कर भगा देते हैं उत्तर की तरफ आते हैं तो औरंगजेब उन्हें झिड़क कर फिर दक्षिण भेज देता है, इस पर भूषण क्या अच्छा कहते हैं—

"आलमगीर के वीर वजीर फिरैं चउगान बटान के मारे"

× × × × ×

शिवाजी को रात दिन बीजापुर के सुलतान ऐदिलशाह, गोलकुंडा के सुलतान कुतुबशाह तथा मुगल-सम्राट् औरंगजेब से लोहा लेना पड़ता था। इनमें से पहले दो तो विवश होकर शिवाजी को कर देने लग गये थे, तीसरे को भी शिवाजी ने खूब नीचा दिखाया था। इस ऐतिहासिक तथ्य की पौराणिक कथा से समता प्रकट कर कवि ने व्यतिरेक का क्या ही अच्छा उदाहरण दिया है—

एदिल कुतुबसाह औरंग के मारिबे को
भूषन भनत को है सरजा खुमान सों
तीनपुर त्रिपुर को मारे सिव तीन बान,
तीन पातसाही हनी एक किरवान सों॥

× × × × × ×

शिवाजी ने दुश्मनों से लोहा लेने के लिए आस-पास के सब पर्वतों पर गढ़ बनाकर उन्हें अपने पक्ष में (अपने अधिकार में) कर लिया था,

इस ऐतिहासिक तथ्य को पौराणिक कथा से मिलाकर कवि ने कैसा अच्छा अधिक रूपक दिखाया है—

मघवा मही मैं तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किए सैल है।

× × × × ×

सूरत जैसे प्रसिद्ध व्यापारिक शहर को लूटकर और जला कर शिवाजी ने मुगल सल्तनत को खूब नीचा दिखाया था। सूरत को लूटने और जलाये जाने का हाल सुनकर औरंगजेब क्रोध से जल भुन गया था। इसका कवि कैसा आलंकारिक वर्णन करता है।

सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाह मुख झलकी।

सारांश यह कि यद्यपि भूषण सफल रीति-ग्रंथकार न थे, तथापि उनके काव्य में अलंकारों की योजना उच्च-कोटि की है। उसमें अन्य कवियों की तरह पिष्टपेषण नहीं है, क्लिष्ट कल्पना नहीं है, पर है मौलिकता और नवीनता।

रस-परिपाक

रस काव्य की आत्मा है, रसयुक्त वाक्य को ही काव्य कहा जाता है। काव्य में शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस माने गये हैं। जिस वाक्य, पद्य या लेख में इनमें से कोई रस न हो, वह काव्य नहीं कहा जा सकता। अतः काव्य की कसौटी पर कसते समय यह देखना आवश्यक है कि उसमें रस-परिपाक कैसा हुआ है।

भूषण की कविता वीर-रस की है। शत्रु का उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनों की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी पात्र के हृदय में उनको मिटाने के लिए जो उत्साह उत्पन्न होता और जिससे वह क्रिया-शील हो जाता है, उसी के वर्णन से वीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता के मन में उमड़ता है।

वीर चार प्रकार के माने जाते हैं; युद्धवीर, दयावीर दानवीर और धर्मवीर। इस रस के चारों प्रकारों में स्थायीभाव उत्साह है। उत्साह वह मनोवेग है जो किसी महत्कार्य के संपन्न करने में प्रवृत्त कराता है। युद्ध-वीर में शत्रु-नाश का, दयावीर में दयापात्र के कष्ट-नाश या सहायता का, दानवीर में त्याग का, और धर्मवीर में अधर्म-नाश एवं धर्म-संस्थापन का उत्साह होता है।

रस के परिपाक के लिए स्थायी-भाव के साथ विभाव, अनुभाव आदि भी आवश्यक हैं। जो व्यक्ति या वस्तु स्थायी भाव को विशेष रूप में प्रवर्त्तन करती है, वह विभाव कहलाती है। जिनका आश्रय लेकर रस की उत्पत्ति होती है, वे आलंबन विभाव और जिनसे रसनिष्पत्ति होने पर उद्दीप्ति प्राप्त होती है वे उद्दीपन विभाव कहाते हैं। उद्बुद्ध स्थायीभाव को बाहर प्रकट करने वाले कार्य अनुभाव कहाते हैं और स्थायीभाव में क्षण भर के लिए उत्पन्न और नष्ट होने वाले गौण और अस्थिरभाव संचारी-भाव कहाते हैं। इन सब से पुष्ट होने पर ही रसपरिपाक होता है।

भूषण की कविता के नायक शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर हैं, जिन में चारों प्रकार का वीरत्व पाया जाता है। अतः भूषण ने चारों प्रकारों के वीरों का वर्णन किया है। उनकी कविता में से कुछ उदाहरण आगे दिये जाते हैं।

दानवीर का उदाहरण देखिए—

साहितनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी बितान छिति छोर छाइयतु है ।
भूषन भनत ऐसो भूप भौंसिला है,
जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है ॥
महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है ।
रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किये हाथी पाइयतु है ॥

इस कवित्त में शिवाजी के दान का वर्णन है । यहाँ भिक्षुक लोग आलंबन हैं । दान-पात्र की सत्पात्रता, यश और नाम की इच्छा उद्दीपन हैं । याचक की इच्छा से भी अधिक दान देना अनुभाव है और याचक की संतुष्टि देखकर हर्ष आदि उत्पन्न होना संचारी भाव हैं । इस तरह यहाँ रस का बहुत अच्छा परिपाक है । धर्मवीर का भी उदाहरण आगे देखिए ।

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं ।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मैं ॥
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
वैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं ।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ॥

शरणागत पीड़ित राजा दयावीर शिवाजी का आश्रय पाकर कैसे निश्चिंत हो जाते हैं, इसका भी वर्णन कवि ने कैसा अनूठा किया है ।

जाहि पास जात सो तौ राखि न सकत याते,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूपन भनत सिवराज तव कित्ति सम,
और की न कित्ति कहिवे को काँधियतु है॥
इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातें,
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसायवे को,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥

साहित्य में उपरिलिखित तीनों प्रकार के वीरों से युद्ध-वीर को प्रधानता दी जाती है। नीचे युद्ध-वीर का उदाहरण दिया जाता है।

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट मैं॥
'भूषण' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मैं॥

इस कवित्त में युद्ध के समय शिवाजी द्वारा युद्ध की आज्ञा दिये जाने पर उनके सैनिकों का उत्साह सहित शत्रुओं को ज़ख्मी करते हुए किलों में कूद जाने का वर्णन है। यहाँ शत्रुओं की उपस्थिति आलंबन है। शत्रुओं का गोला आदि चलाना तथा नायक की आज्ञा उद्दीपन है। मूछों पर ताव देना, शत्रुओं को घायल करना आदि अनुभाव हैं, धृति और उग्रता आदि संचारी भाव हैं। वीर रस का यह अनूठा उदाहरण

है। इसी तरह के वीर रस के और भी कितने ही अच्छे-अच्छे उदाहरण भूषण की कविता में मिल सकते हैं।

रौद्र और भयानक रस वीर रस के सहकारी माने गये हैं। इनमें से भयानक रस का तो भूषण ने बहुत अधिक वर्णन किया है। शिवाजी के प्रताप से भयभीत शत्रुओं और उनकी स्त्रियों का सजीव चित्र भूषण ने कितने ही पद्यों में खींचा है। और इस रस के वर्णन में भूषण को सफलता भी बहुत मिली है। एक उदाहरण देखिये—

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करपति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिनी की नारी फरकति है॥
थर-थर काँपत कुतुबशाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

रौद्र-रस के भी भूषण ने कई अच्छे अच्छे पद कहे हैं, आगे इनमें से एक दिया जाता है।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हज़ारिन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे॥
'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे॥

भयंकर युद्ध के अनंतर युद्ध-क्षेत्र की दशा श्मशान-सी हो जाती है, अतः उसके वर्णन में बीभत्स रस का आना भी आवश्यक है, भूषण की कविता में भी वह स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। फुटकर छंद संख्या ४, ५, ६ तथा ७ इस रस के अच्छे उदाहरण हैं। उनमें से एक पद नीचे दिया जाता है।

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषण तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकति कालिका कलेजे को कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं॥
कहुँ रुंड-मुंड कहुँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहुँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध पर,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं॥

भूषण का बीभत्स वर्णन भोंडा कहीं भी नहीं होने पाया। उन्होंने इस रस का सदा संयत वर्णन किया है, जो वीरता के आवेश से प्रायः सब जगह दबा सा रहा है। इस प्रकार वीर और भयानक के योग में भूषण ने श्रृंगार को छोड़कर अन्य सब रसों को दिखा दिया है। किसी सरदार को औरंगज़ेब ने दक्षिण का सूबेदार बना दिया। बेचारा नौकर था, इनकार न कर सकता था, परन्तु उसकी विचित्र अवस्था को देख उसकी बेगम के वचनों में स्मित हास्य की रेखा भी मिलती है

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि,
बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै।
भूपन भनत बूझे आए दरबार तें,
कँपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहि नै॥

सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गये हौ सुखाय तुम्हें,
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै॥

सब धन-दौलत के लुट जाने पर, फकीर हो जाने पर निर्वेद का होना स्वाभाविक होता है, अतः भूषण ने वीर रस की लपेट में शान्त रस के स्थायी भाव निर्वेद का भी नीचे लिखे पद्य में कैसा अच्छा निदर्शन किया है।

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं।
भूषन ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस बिदेस गए हैं॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं।
देत रिसाय कै उत्तर यों हमहीं दुनियाँ ते उदास भए हैं॥

शत्रुओं के मर जाने पर उनकी स्त्रियों में शोक घर कर लेता है। उस शोक के वर्णन में कहीं कहीं करुण का आभास भी भूषण की कविता में आ गया है जैसे—

बिज्जपुर, बिदनूर, सूर सर-धनुष न संधहिं।
मंगल बिनु मल्लारि-नारि धम्मिल नहिं बंधहिं॥

अद्भुत रस को भी भूषण ने अछूता नहीं छोड़ा।

सुमन मैं मकरन्द रहत हे साहिनन्द,
मकरन्द सुमन रहत ज्ञान बोध है।
मानस मैं हंस-बंस रहत हैं तेरे जस,
हंस मैं रहत करि मानस विरोध है॥
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भूमि,
तेरी करतूति रही अद्भुत रस ओध है।

पानी मैं जहाज रहे लाज के जहाज,
महाराज सिवराज तेरे पानिप पयोध है ॥

राजाश्रित कवियों ने अपने विलासी आश्रयदाताओं की मनस्तृप्ति के लिए श्रृंगार और वीर का एक दम मिश्रण कर दिया था। भूषण इससे चिढ़ते थे, वे इसे वाणी का तिरस्कार मानते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कहा है—

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने वलमीकिहु व्यास के अंग सुहानी॥
भूषन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य-चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

अतएव भूषण ने अपनी वीर-रस की कविता में श्रृंगार को कहीं स्थान नहीं दिया। उन्होंने दस-बारह पद्य श्रृंगार-रस के कहे अवश्य हैं, पर वे उन्होंने अपने नायक के विलास-वर्णन के लिए नहीं कहे। उन श्रृंगार रस के पद्यों में भी भूषण की वीर-रसात्मक प्रवृत्ति का आभास मिलता है। संभोग श्रृंगार में भी कवि ने 'रति-संगर' का कैसा अनूठा वर्णन किया है, इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है।

नैन जुग नैनन सों प्रथमे लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टरे नाहि टेरे हैं।
अड़ि अड़ि पिलि पिलि लड़े हैं उरोज बीर,
देखो लगे सीसन पै घाव ये घनेरे हैं॥
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति-संगर को,
भए अंग-अंगनि ते केते मुठभेरे हैं।
पाछे परे बारन कों बाँधि कहै आलिन सों,
भूषण सुभट येई पाछे परे मेरे हैं॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण ने वीर रस की लपेट में सब रसों का सुन्दर और अनूठा वर्णन किया है। रसों का परिपाक भी अच्छा और स्वाभाविक हुआ है । रसात्मकता की दृष्टि से भूषण का काव्य अनूठा है।

भूषण की भाषा

वीरगाथा-काल के राजस्थानी कवियों ने अपनी कविता में पिंगल का प्रयोग किया था, पर उसमें उनकी प्रान्तीय भाषा का पुट पर्याप्त रूप में पाया जाता था । उनके बाद प्रेममार्गी सूफी कवियों ने तथा राम के उपासकों ने अवधी भाषा को अपनाया, पर कृष्ण-भक्तों ने ब्रजविहारी के लीला-वर्णन के लिए ब्रज की भाषा को ही उपयुक्त समझा। महाकवि तुलसीदास के बाद उन जैसा अवधी का कोई पोषक नहीं हुआ। रीति-काल के शृंगारी कवियों ने कृष्णभक्त कवियों के प्रेमावतार कृष्ण को ही अपना नायक बनाया था, अतः भाषा भी उन्होंने वही ब्रज की पसंद की। फलतः ब्रजभाषा साधारण काव्य की भाषा होगई। सुकवि भिखारी-दास ने अपने ग्रंथ में उसी ब्रजभाषा को ज्ञान का साधन बताते हुए लिखा है—

सूर केशव मंडन विहारी कालिदास ब्रह्म,
चिंतामणि मतिराम भूषण सुजानिए।
लीलाधर, सेनापति, निपट नेवाज निधि,
नीलकंठ मिश्र सुखदेव, देव मानिए॥
आलम रहीम रसखान सुन्दरादिक,
अनेकन सुकवि भये कहाँ लौं बखानिए।

ब्रजभाषा हेत ब्रजवास ही न अनुमानौं,
ऐसे ऐसे कविन की बानी हू सों जानिए ॥

इसमें भिखारीदास ने जिन सब कवियों की भाषा को ब्रजभाषा कहा है उनमें से शायद किन्हीं भी दो की भाषा एक जैसी न थी। उसका कारण यह था कि यद्यपि रीतिकाल में ब्रजभाषा ही काव्य की भाषा थी पर अन्य-प्रान्त-वासी अथवा ब्रजप्रदेश से कुछ हटकर रहने वाले कवियों की भाषा में उनके देश की बोली की कुछ न कुछ छाप पड़ ही जाती थी। इसके अतिरिक्त मुसलमानों का राज्य होने के कारण अरबी फारसी के कई शब्द भी यहाँ की भाषा में घर कर चुके थे या कर रहे थे। किसी कवि ने उनको थोड़ा अपनाया, किसी ने अधिक, और किसी ने उनको तोड़-मरोड़ कर इस देश का चोला पहना कर उनका रूप ही बदल दिया। सारांश यह कि तत्कालीन कवियों की बाणी वैयक्तिकता की छाप के कारण पर्याप्त भिन्नता लिये हुए थी।

भूषण की भाषा में विदेशी शब्दों की बहुलता है। उसमें विदेशी भाषाओं के साधारण शब्द ही नहीं अपितु ऐसे कठिन शब्द भी पाये जाते हैं, जिनके लिए कोष देखने की आवश्यकता पड़ती है; जैसे—तसबीह, नकीब, कौल, जसन, तुजुक, खबीस, जरबाफ, खलक, दराज, गनीम आदि। विदेशी शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने में भी भूषण ने ज़रा भी दया नहीं दिखाई। कई स्थानों पर उन्होंने शब्दों का ऐसा मनमाना रूप कर दिया है कि वास्तविक शब्द का पता लगाना भी कठिन हो जाता है; जैसे—कलक से कलकान, औसान से अवसान, पेशानी से पिसानी, ऐलान से इलाम।

विदेशी शब्दों से हिन्दी व्याकरण के अनुसार क्रिया पद बनाने में भी भूषण ने कसर नहीं की। जैसे—तिनको तुजुक देखि नेकहु न लरजा।

मुसलमानों के प्रसंग में अथवा दरबार के सिलसिले में भूषण ने फारसी-मिश्रित खड़ी बोली अथवा उर्दू का भी प्रयोग किया है। जैसे—

१. देखत मैं खान रुस्तम जिन खाक किया।

२. पंच हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।

३. बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने

भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।

उपरिलिखित विदेशी शब्दों के अतिरिक्त प्रान्तीयता के नाते भूषण ने बैंसवाड़ी और अन्तर्वेदी शब्दों का भी कहीं कहीं प्रयोग किया है, क्योंकि ये दोनों प्रदेशों की सीमा पर रहते थे। जैसे—

१. लागैं सब ओर छितिपाल छिति में छिया।

२. काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर।

३. गजन के ठेल पेल सैल उसलत है।

क्रियाओं में कहीं कहीं बुन्देली के भविष्यत्-काल के रूप भी मिलते हैं। जैसे—

धीर धरबी न धर कुतुब के धुरकी। कीबी कहैं कहा। इत्यादि

कहीं-कहीं क्रियाएँ संस्कृत के मूल रूप से भी ली गई हैं। जैसे—तीन पातसाही हनी एक किरवान तें। ऐसे ही 'जहत हैं,' 'सिदति हैं' आदि रूप भी दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं माधुर्य उत्पन्न करने के लिए अवधी की उकार वाली पद्धति भी ग्रहण की गई है। जैसे—दीह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है; तेरे बाहुबल लै सलाह बाँधियतु है, हरजू को हारु हरगन को अहारु दै।

कहीं-कहीं तद्भव एवं ठेठ शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। जैसे—धोप (तलवार), ओत (आश्रय), पैली (उस पार) आदि। अपभ्रंश काल के शब्दों का भी सर्वथा अभाव नहीं है, वे भी उनकी कविता में कहीं कहीं दिखाई देते हैं। जैसे—"पब्बय से पील" "पुहुमि के पुरुहूत", "और गढ़ोई नदी नद सिव गढ़पाल दरियाव", "बैयर बगारन की।"

लंकाकांड में वीर या रौद्ररस के छप्पय में जिस प्रकार महाकवि तुलसीदास जी ने पुरानी वीरगाथा-काल की पद्धति का अनुसरण किया है उसी प्रकार भूषण ने भी कहीं कहीं किया है—विशेषतः शिवराज-भूषण के शब्दालंकारों के उदाहरण में आये हुए अमृत ध्वनि छन्दों में। अपभ्रंश और प्राकृतिक शब्दों के प्रयोग के कारण ये छन्द कुछ क्लिष्ट से हो गये हैं। अमृतध्वनि छन्द प्रायः युद्ध-वर्णन के लिए ही प्रयुक्त होता है। इन छन्दों में संभवतः प्राचीन प्रथा के पालन के लिए ही भाषा का यह रूप रखा गया है, यह उनकी साधारण शैली प्रतीत नहीं होती।

इस प्रकार भूषण की भाषा साहित्यिक दृष्टिकोण से शुद्ध नहीं कही जा सकती। मौलिकता से कोसों दूर भागनेवाले तथा पुरानी पिष्टपेपित बातों में ही इस्लाह करनेवाले रीतिकाल के शृंगारी कवियों की भाषा के समान वह मँजी हुई भी नहीं है, अपितु वह एक खासी खिचड़ी है। पर उसका भी कारण है। भूषण को अपने नायक शिवाजी और उनके वीर मराठा सैनिकों को रणक्षेत्र में उत्साहित और उत्तेजित करना था। उनकी भाषा ऐसी होनी चाहिए थी जो कि वीरों के लिए साधारण तौर पर बोध-गम्य हो और साथ ही ओजगुण युक्त हो। अतः वे भाषा को सजाकर अथवा काव्योत्कर्ष के कृत्रिम साधनों को अपना कर भाषा को ऐसी दुरूह न बना सकते थे, जो मराठों की समझ न आये। उस समय मराठी साहित्य में अरबी फ़ारसी का बहुत प्रयोग हो रहा था। केवल मराठों की बोलचाल में ही नहीं अपितु उनकी कविता में भी विदेशी शब्द बहुत अधिक घर कर रहे थे। परन्तु संस्कृत की पुत्री मराठी में जाकर उन विदेशी शब्दों का उच्चारण भी बदल जाता था। अरबी के 'तफ़सील' शब्द का मराठी में 'तपशील' रूप हो गया था, जो कि शुद्ध संस्कृत का मालूम पड़ता है। अतएव भूषण को भी ब्रजभाषा में ऐसे शब्दों को डालना पड़ा और मराठी का ही

अनुकरण कर के उन्होंने आदिलशाह को 'एदिल' बहादुरखाँ को बादरखाँ, शरजः को सरजा और संस्कृत के आयुष्मान को खुमान लिखा तथा अन्य विदेशी शब्दों को तोड़ा मरोड़ा। छत्रसालदशक तथा शृंगार-रस की कविता में उन्होंने जैसी मँजी हुई भाषा का प्रयोग किया है, वह उपर्युक्त कथन को पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है। सुदूर महाराष्ट्र में अपनी कविता का प्रचार करने के लिए ही उन्हें शिवाजी-सम्बन्धी कविता की भाषा को खिचड़ी बनाना पड़ा। पर उस खिचड़ी में भी ओज की कमी नहीं है। उनकी भाषा का सौंदर्य तो केवल इसी में है कि उसे पढ़ या सुनकर पाठकों और श्रोताओं के हृदय में वीरों के आतंक, युद्ध कौशल, रणचंडी-नृत्य इत्यादि का पूरा चित्र खिंच जाता है। रस के अनुकूल शब्दों में भैरीरव की विकट ध्वनि लक्षित होती है। प्रभावोत्पादन के लिए अथवा अनुप्रास के लिए जिस प्रकार की भाषा समीचीन है वैसी भाषा का भूषण ने प्रयोग किया है और ऐसा करने में उन्होंने शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ शुद्ध विदेशी शब्दों को मिलाने में भी संकोच नहीं किया। जैसे—"ता दिन अखिल खलभलै खल खलक में" में 'अखिल' और 'खल' शुद्ध संस्कृत शब्द हैं, 'खळभलैं' देशज है तथा 'ख़लक' अरबी भाषा का है; पर इनका ऐसा अनुप्रास और ओजपूर्ण सम्मिलन करना भूषण का ही काम है। ऐसे ही 'निखिल नकीब स्याह बोलत विराह को' 'पान पीकदान स्याह सेनापति मुख स्याह' तथा 'जिनकी गरज सुन दिग्गज बेआब होत, मद ही के आब गरकाब होत गिरि हैं' में संस्कृत, देशज तथा विदेशी शब्दों का जोड़ देखने लायक है। इस अनुप्रास-योजना के लिए तथा ओज लाने के लिए भूषण ने स्थान-स्थान पर 'शिवाजी गाजी' का भी प्रयोग किया है। गाजी का अर्थ धर्मवीर अवश्य है, परन्तु साधारणतया वह काफिरों पर विजय प्राप्त करनेवाले मुसलमान योद्धाओं के लिए ही प्रयुक्त होता है।

भाषा को सजाने की ओर भूषण का ध्यान था ही नहीं। अतः उन्होंने मुहावरों और लोकोक्तियों की ओर भी ध्यान नहीं दिया, फिर भी कई स्थानों पर मुहावरों का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में प्रयुक्त कुछ लोकोक्तियाँ या मुहावरे आगे दिये जाते हैं—

मुहावरे—१. तारे सम तारे मुँदि गये तुरकन के
२. तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के
३. दंत तोरि तखत तरें ते आयो सरजा
४. नाह दिवाल की राह न धायो
५. कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है
६. तिन ओठ गहे अरि जात न जारे।

लोकोक्ति—१. सिंह की सिंह चपेट सहे गजराज सहे गजराज को धक्का
२. सौ सौ चूहे खाय कै बिलारी बैठी जप के
३. छागो सहै क्यों गयंद को खप्पर
४. कालिह के जोगी कलींदे को खप्पर

इन सबको देखकर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यद्यपि भूषण की भाषा खिचड़ी है तथापि उसमें ओज आदि गुण होने के कारण वह अपने ही ढंग की है।

वर्णन-शैली

भूषण वीर-रस के कवि थे, युद्ध के मारु राग गाने वाले थे। उन्हें नागरिक या प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण का अवसर ही कहाँ मिल सकता था। पुस्तक के प्रारम्भ में शिवाजी की राजधानी के नाते रायगढ़ के वर्णन में तीन-चार छन्द हैं तथा ऐसे ही बीच में कहीं-कहीं एक-आध

छन्द है, जो खासे अच्छे हैं। 'ऐसो ऊँचो दुरग महावली को जामें नखता-वली सों बहस दीपावली करत है' कितना अच्छा वर्णन है! दुर्ग की ऊँचाई कैसे व्यक्त की गई है! प्राकृतिक सौंदर्य पर भूषण ने एक पद भी नहीं लिखा। उनके तो वर्ण्य-विषय थे—युद्ध, शिवाजी का यश, शिवाजी का दान, शिवाजी का आतंक, शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा।

युद्ध-वर्णन में भूषण ने कुछ स्थानों पर वीरगाथा-काल के कवियों की

युद्ध वर्णन

तरह अमृतध्वनि छन्द तथा अपभ्रंश शब्दों की बहुलता रखी है, पर कई स्थानों पर भूषण ने मनहरण कवित्त का ही प्रयोग किया है। लोमहर्षण युद्ध की भयंकरता दिखाने के लिए अमृतध्वनि छंद ही उपयुक्त है, पर जहाँ साधारण आक्र-मण आदि का वर्णन करना हो वहाँ अन्य छंदों का प्रयोग भी हो सकता है। भूषण ने इसका बहुत ध्यान रखा है। प्राचीन परंपरा के अनुसार ही युद्ध-वर्णन में कई स्थानों पर चंडी और भूत-प्रेतों का समावेश कराया है। आगे दो एक उदाहरण दिये जाते हैं—

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषण तेज कियो अटल।
सिवराज साहि सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोलदल॥

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकति कालिका कलेजे को कलल करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं॥

कहुँ रुंड मुंड कहुँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहुँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं ।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध पर,
धाय धाय धरनि कबन्ध धमकत हैं ॥

भयंकर जननाश से उमड़ते खून के समुद्र पर क्या ही अच्छी कल्पना है—

पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
सोनित समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़ि कै ।
नाँदिया की पूँछ गहि पैरि कै कपाली बचै,
काली बची माँस के पहारु पर चढ़ि कै ॥

अपने नायक के यशवर्णन के उद्देश्य से ही भूषण ने ग्रन्थ रचना प्रारंभ की थी और महाकवि भूषण से पहले

नायक-यश-वर्णन किसी कवि ने अपने नायक के यश-वर्णन मात्र के लिए कोई संपूर्ण ग्रन्थ हिंदी में रचा भी न था । अतः उनका नायक का यश-वर्णन होना भी अनूठा चाहिये । किसी महत्कार्य को संपन्न करने वाला नायक ही यश प्राप्त करता है । यदि उसका प्रतिपक्षी महान हो, अमित पराक्रमी हो, तो उसको विजय कर नायक भी अमित यश का भागी होता है । अतः कुशल कवि नायक के यश का वर्णन करने के लिए पहले प्रतिनायक के पराक्रम और ऐश्वर्य का खूब बढ़ा कर वर्णन करते हैं। महाकवि भूषण को तो जिस प्रकार सौभाग्य से शिवाजी जैसे नायक मिले थे उसी प्रकार प्रतापी मुगल-सम्राट् औरंगज़ेब जैसा प्रतिनायक भी मिल गया था जो हिन्दू जाति को कुचल देने के लिए कटिबद्ध हो रहा था । अतः भूषण को उसके अत्याचारों के वर्णन करने का, उसके अनंत बल और ऐश्वर्य को दिखाने का, तत्कालीन अन्य हिन्दू राजाओं की दुर्दशा का चित्र खींचने का तथा फिर अकेले धर्मवीर शिवाजी

द्वारा उसका विरोध किये जाने और उसमें उनकी सफलता दिखाने का अनूठा अवसर मिल गया था। 'हम्मीर हठ' के लेखक चन्द्रशेखर वाजपेयी ने—जिनका उल्लेख वीर कवियों में किया जा चुका है—चुहिया के कूदने से हम्मीर के प्रतिनायक दिल्ली-सम्राट् अलाउद्दीन के डरने का वर्णन किया है। पर भूषण औरंगज़ेब का पराक्रम दिखाने में कभी नहीं चूके। भूषण जहाँ शिवाजी को सरजा (सिंह) की उपाधि से भूषित करते हैं, वहाँ औरंगज़ेब को 'मदगल गजराज' के नाम से पुकारते हैं। जहाँ शिवाजी के विषय में 'आप धरयो हरि ते नर रूप' अथवा "म्लेच्छन को मारिबे को तेरो अवतार है" आदि पद प्रयुक्त करते हैं, वहाँ वे औरंगज़ेब को 'कुम्भकर्ण असुर औतारी' कहते हैं। इस प्रकार अनेक पद्यों की प्रारंभ की पंक्तियों में वे औरंगज़ेब के पराक्रम तथा अत्याचारों का वर्णन करते हैं और अंतिम पंक्तियों में उस पर विजय प्राप्त करने वाले शिवाजी का उत्कर्ष दिखाते हैं। देखिए, औरंगज़ेब के प्रभुत्व का वर्णन—

श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल,
भेजत रिसाल चौंर, गढ़ कुही बाज की।
मेवार, ढुँढार, मारवाड़ औ बुँदेलखंड,
झारखंड बाँधौ धनी चाकरी इलाज की॥
भूषन जे पूरब पछाँह नरनाह ते वै,
ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की।
जगत् को जेतवार जीत्यो अवरंगज़ेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की॥

औरंगज़ेब के अत्याचारों का भी वर्णन कैसे ज़ोर से किया है।

औरंग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को।

देवल डिगाने राव-राने मुरझाने अरु,
धरम ढहाना, पन मेठ्यो है पुराना को ॥
कीनो घमसाना मुगलाना को मसाना भरे,
जपत जहाना जस बिरद वखाना को ।
साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यो है खुमाना वर वाना हिन्दुवाना को ॥

इसी प्रकार शिवाबावनी के "सिवाजी न होतो तो सुनति होती सब की" वाले अनेक छन्दों में अगर शिवाजी न होते तो हिन्दुओं और हिन्दुस्तान की क्या दशा होती इसका अत्युत्कृष्ट वर्णन कर भूषण ने नायक को बहुत ऊँचा उठाया है। साथ ही "अलि नवरंगज़ेब चंपा सिवराज है" वाले पद्यों से कवि ने शिवाजी को अधीन करने में सारे भारत को विजय करने वाले औरंगज़ेब की असमर्थता का बड़ा अच्छा चित्र खींचा है।

शिवाजी को अकेले औरंगज़ेब से ही नहीं लड़ना पड़ता था। बीजापुर, गोलकुंडा आदि के सुलतान भी औरंगज़ेब के साथ मिल कर या अलग अलग शिवाजी से लड़ते रहते थे। भूषण ने (शिवराज भूषण की पद संख्या ६२ में) उन सब को मिलाकर 'अत्याचारी कलियुग' का बड़ा अच्छा 'मुसलिम शरीर' बनाया है, जिसका शिवाजी ने खंडन किया। इसी तरह उस समय एक ओर किस प्रकार अकेले शिवाजी थे, और दूसरी ओर सारा भारत था, इसका वर्णन फुटकर छन्द संख्या ११ में किया है, तथा अन्तिम पंक्ति में 'फिर एक ओर सिवराज नृप एक ओर सारी खलक' कह कर शिवाजी के अनंत साहस का सुन्दर चित्र खींचा है। भूषण में एक और खूबी है—वह बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों को शिवाजी का प्रतिनायक (बराबर का विरोधी) नहीं बनाता, उनको तो वह इतना ही कह देता है—"जाहि देत दंड सब डरिकै अखंड सोई, दिल्ली-

दल भली तो तिहारी कहा चली है" अथवा "बापुरो एदिल साहि कहाँ, कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी।"

शिवाजी के सदा सफल होने का उल्लेख भूपण ने 'भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषण भाखत शत्रु मुधा को' कहकर किया है। "भूषण भनत महाराज सिवराज तेरे राजकाज देखि कोई पावत न भेद है" कह कर कवि ने शिवाजी की गूढ़ राजनीति का भी परिचय दिया है। शरणागत शत्रुओं पर शिवाजी हाथ न उठाते थे, अतः कवि कहता है—"एक अचंभव होत बड़ो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे"। हिन्दुओं की उन्नति में शिवाजी किस प्रकार उत्साहित होते हैं, और घर के भेदी विभीषण, रूपी हिन्दुओं तक को मारने में भी उन्हें कितना कष्ट होता है, इस का मर्म निम्नलिखित पद्य में उद्घाटन कर कवि शिवाजी के देश और जाति-प्रेम को प्रकट करता है।

> काज मही सिवराज बली हिन्दुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
> भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै॥
> हिन्दु बचाय बचाय मही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।
> चन्द अलोक तें लोक सुखी यहि कोक अभागे को सोक न छूटै॥

प्रतापी मुगल-सम्राट् का विरोध करने वाले शिवाजी ने क्या क्या किया इसका उल्लेख 'राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो' तथा "वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत" आदि छन्दों में (पृ० ६० ख, ६१ ख) करके "पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को" और 'सो रँग है सिवराज बली जिन नौरँग में रँग एक न राख्यो' कह कर कवि अपने नायक के अधिकार और बल का खूब पोपण करता है। 'कुंद कहा पय वृन्द कहा अरु चंद कहा सरजा जस आगे" कह कर अपने नायक के धवल यश के सामने अन्य सब श्वेत वस्तुओं को तुच्छ समझता है और उस शुभ्र यश से धवलित

त्रिभुवन में से अन्य धवल वस्तुओं के ढूँढने की कठिनाई का 'इन्द्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु' (पृ० २१९) में बढ़िया वर्णन करता है। माना कि यह अतिरंजन है, पर ऐसा अतिरंजन साहित्य में पुराना चला आता है। संस्कृत के किसी कवि ने जब यहाँ तक कह डाला 'महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते, पयःपारावारं परमपुरुषोयं मृगयते' तो भला भूषण अपने यशस्वी नायक के वर्णन में ऐसा लिखने में कैसे चूक सकते थे। सारांश यह कि अपने नायक के यश-वर्णन में भूषण ने कोई बात छोड़ी नहीं और कहीं भी उन्हें असफलता नहीं मिली। साथ ही यह भी लिख देना आवश्यक है कि शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों का यश वर्णन करनेवाला कवि केवल भाट या खुशामदी नहीं कहा जा सकता अपितु वह तो हिन्दुओं के उस समय के भावों को ही व्यक्त करता है। क्योंकि शिवाजी के अवतार के बाद ही तो पराधीन हिन्दू जाति कह सकती थी कि "अब लग जानत हे बड़े होत पातसाह, सिवराज प्रकटे ते राजा बड़े होत हैं"। यदि आज के कवि भारत का उद्धार करने वाले महात्मा गांधी को भगवान कृष्ण का अवतार तथा उनके चरखे को सुदर्शन चक्र बना सकते हैं तो उस समय के हिन्दुओं के उद्धार में संलग्न तथा अत्याचार का विरोध करनेवाले वीर को "तू हरि को अवतार सिवा" कहने में अतिरंजन नहीं कहा जा सकता।

दान वर्णन

शिवाजी के यश की तरह भूषण ने शिवाजी के दान का भी बड़ा उदात्त वर्णन किया है। भूषण कहते हैं—"ऐसो भूप भौंसिला है, जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है" और उसके दान का अंदाज़ा यों लगाया जाता है—"रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों, हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है"। उस महादानी ने जो गजराज कविराजों को दिये हैं, उनका वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

ते सरजा सिवराज दिए, कविराजन को गजराज गरूरे,
सुंडन सों पहिले जिन सोखिकै फेरि महा मद सों नद पूरे ।

× × ×

तुंडनाथ सुनि गरजत गुंजरत भौंर
भूषण भनत तेऊ महामद छकसै ।

× × ×

जिनकी गरज सुन दिग्गज बेआब होत
मद ही के आब गरकाब होत गिरि हैं ।

कृपापात्र कविराजों के निवासस्थान के ऐश्वर्य का वर्णन भूषण ने इस प्रकार किया है—

लाल करैं प्रात तहाँ नीलमणि करैं रात,
याही भाँति सरजा की चरचा करत हैं ।

इतने बड़े दानी के दान का संकल्प-जल भी तो बहुत अधिक होगा, अतः भूषण उसका वर्णन करने में भी नहीं चूके ।

भूषण भनत तेरो दान संकलप जल
अचरज सकल मही मैं लपटत है
और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो
कर कोकनद नदी नद प्रगटत है ।

कार्य से कारण की कैसी विचित्र उत्पत्ति बताई गई है। इतने बड़े दानी के सामने कल्पवृक्ष और कामधेनु की गिनती हो ही क्या सकती है ! क्योंकि कामधेनु और कल्पवृक्ष का वर्णन तो केवल पुस्तकों में है और ये शिवाजी तो प्रत्यक्ष इतना दान देने वाले हैं। तभी तो भूषण कहते हैं—"कामना दानि खुमान लखे न कछू सुररूख न देवगऊ है ।" उस कामना-दानी के दान का बखान सुनकर और "भूषण जवाहिर

जलूस जरवाफ जाति, देखि देखि सरजा के सुकवि सुमाज की" लोग तप करके कमलापति से यही माँगते हैं—

"वैपारी जहाज के न राजा भारी राज के
भिखारी हमें कीजै महाराज सिवराज के"

इस प्रकार भूषण ने अपने उस नायक के दान का विशद वर्णन किया है, जिससे उन्हें पहली भेंट के अवसर पर ही अनेक लाख रुपए, अनेक हाथी और अनेक गाँव मिले थे। उसी दान से संतुष्ट होकर ही तो भूषण ने सारे भारत के राजाओं के यहाँ घूमने के अनन्तर कहा था—

मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतु बरसैं सरसैं, उमड़ै नदियाँ ऋतु पावस पाए॥

इस दानवर्णन को जो लोग अतिरंजित कहते हैं उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए यह उस दानी के दान का वर्णन है जिस के दान की अद्भुत कहानियाँ महाराष्ट्र बखरों में और जदुनाथ सरकार जैसे इतिहासज्ञों ने भी अपनी पुस्तकों में दी हैं, मुसलमान इतिहास-लेखक कैफीखाँ तक ने जिसके बारे में यह लिखा है कि आगरा से भाग कर जब शिवाजी तीर्थ-यात्री के वेश में बनारस पहुँचे थे, तब उन्होंने घाट पर स्नान करानेवाले पंडे को ९ हीरे, ९ अशरफी और ९ हून दे डाले थे, और जिसने शंभाजी को रायगढ़ पहुँचाने वाले ब्राह्मणों को एक लाख सोने की मोहरें नकद तथा दस हज़ार हून सालाना देने किए थे, जिसने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर एक लाख ब्राह्मण, स्त्री, पुरुष और बच्चों का पेट चार महीने तक मिठाइयों से भरा था, और लाखों रुपये दान में दे दिए थे*। कवि उस दानी के दान का वर्णन इससे कम कर ही क्या सकता था। यदि वह उसके दान की वस्तुओं की

---

* देखिए Sarkar : *Shivaji and His Times*, पृ० १७१–१७२, १७४, २४२।

केवल गिनती मात्र करने बैठता तो वह कविता न रह जाती, वह तो केवल सूखा ऐतिहासिक वर्णन हो जाता। काव्य में तो अतिशयोक्ति और अत्युक्ति अलंकारों का होना आवश्यक ही है। भूषण ने तो छत्रपति शिवाजी जैसे महाराज से कविराजों को गजराज दिलाकर उन्हें केवल बेफिक्र ही किया है, पर रीतिकाल के अन्य कवियों के अतिरंजित वर्णन की तो कोई सीमा ही नहीं। पद्माकर ने तो नागपुर के राजा रघुनाथ राव के दान का वर्णन करते हुए जगन्माता पार्वती को भी डरा दिया है—

दीन्हे गज बकस महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहुँ काहू देइ डारै ना
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरितें गरेतें निज गोदतें उतारै ना।

सारांश यह कि भूषण द्वारा किया गया शिवाजी के दान का वर्णन उदात्त अवश्य है, पर इतना अतिरंजित नहीं जितना रीतिकाल के अन्य कवियों का।

आतंक वर्णन

भूषण ने शिवाजी के यश और शौर्य का उतना वर्णन नहीं किया, जितना शत्रुओं पर उनकी धाक का तथा वह वर्णन है भी बहुत ओजस्वी, प्रभावोत्पादक और सजीव। क्योंकि शिवाजी के आतंक का वर्णन केवल वाणी-विलास के लिए अथवा अर्थ-प्राप्ति के लिए नहीं किया गया, परन्तु उसका उद्देश्य शिवाजी की धाक को चारों ओर फैलाना था, और उससे विपक्षियों को विचलित करना था। भूषण इसमें इतने सफल हुए हैं कि कई समालोचकों का मत हो गया है कि भूषण वीररस से भी अधिक भयानक रस में विशेषता रखते हैं। पर कई लोग भूषण के इस वर्णन में भी अतिरंजन का दोष लगाते हैं। उनके लिए हम इतना ही कह सकते हैं कि यदि वे भूषण के आतंक-वर्णन के अंतर्निहित उद्देश्य को समझ सकते और यदि वे इतिहास की पुस्तकों को देखते तो शायद ऐसा न कहते।

शिवाजी की नीति सहसा आक्रमण की थी। खुलकर युद्ध करना उन की नीति के प्रतिकूल था। इसी नीति के बल से उन्होंने बीजापुर को नीचा दिखाया, अफ़ज़लखाँ का बध किया, और दिल्ली के बड़े-बड़े सरदारों को नाकों चने चबवाये। शाइस्ताखाँ की दुर्दशा भी इसी प्रकार हुई थी। इन घटनाओं से शत्रु शिवाजी को शैतान का अवतार समझने लगे थे‡। कोई भी स्थान उनके आक्रमणों से सुरक्षित न समझा जाता था, और कोई काम उनके लिए असंभव न माना जाता था।

शत्रु उनका और उनकी सेना का नाम सुनकर काँपने लगते थे, और आक्रमण-स्थान पर उनके पहुँचने से पहले ही शहर खाली कर देते थे। सूरत की लूट के समय किसी को शिवाजी का मुकाबिला करने का साहस नहीं हुआ था। शिवाजी का यह आतंक मुसलमानों में इतना छा चुका था कि जब शिवाजी औरंगज़ेब के यहाँ कैद थे, तब उन्होंने औरंगज़ेब से एकान्त में भेंट करने की आज्ञा माँगी पर औरंगज़ेब ने डर के मारे इनकार कर दिया। इस पर जब शिवाजी उसके प्रधान मंत्री जफरखाँ के पास गये, तब जफरखाँ की बीवी ने पति को देर तक शिवाजी से बातचीत करने से रोका और जफरखाँ जल्दी ही वहाँ से बिदा हो गया।*

---

‡ He was taken to be an incarnation of Satan; no place was believed to be proof against his entrance and no feat impossible for him. The whole country talked with astonishment and terror of the almost superhuman deed done by him. *Shivaji and His Times* by J. N. Sarkar, *page 96.*

*. He then begged for a private interview with the Emperor..............................The prime-minister Jafar Khan, warned by a letter from Shaista Khan, dissuaded the Emperor from risking his person in a private interview

शिवाजी के औरंगज़ेब के दरबार से निकल भागने पर तो मुसलमान उसे जादूगर ही कहने लगे थे। वे कहते थे 'गंधरब देव है कि सिद्ध है?' सलहेरि के युद्ध के बाद तो उनका आतंक बहुत बढ़ गया था, और दक्षिण विजय कर लेने पर दूर-दूर तक उनका आतंक छा गया था। दिल्ली-सम्राट् उनकी विजयों के कारण चिंतित था, बीजापुर और गोलकुंडा उनसे अभय-दान माँगते थे। हबशी, पुर्तगीज़ तथा अंगरेज़ भी उनसे काँपते थे। भूषण इसका क्या ही अच्छा वर्णन करते हैं—

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखति बिजैपुरपति,
फिरति फिरंगिनि की नारी फरकति है॥

---

with a magician like Shiva. But Aurangzeb hardly needed other people's advice in such a matter. He was too wise to meet in a small room with a few guards the man who had slain Afzal Khan almost within sight of his 10,000 soldiers, and wounded Shaista Khan in the very bosom of his harem amidst a ring of 20,000 Mughal troops, and escaped unscathed. Popular report credited Shiva with being a wizard with "an airy body," able to jump across 40 or 50 yards of space upon the person of his victim. The private audience was refused.

Shivaji next tried to win over the Prime-Minister, and paid him a visit, begging him to use his influence over the Emperor to send him back to the Decan with adequate resources for extending the Mughal Empire there. Jafar Khan warned by his wife (a sister of Shaista Khan) not to trust himself too long in the company of Shiva, hurriedly ended the interview, saying "All right; I shall do so." *Shivaji and His Times* by J. N. Sarkar, *pp. 161-162.*

थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते पातसाहन की छाती दरकति है॥

इसके सिवाय भूषण ने शिवाजी के डर से डरे हुए सूबेदारों और मनसबदारों का भी बड़ा आकर्षक वर्णन किया है; कभी वे कहते हैं कि लोमश ऋषि के समान दीर्घ आयु होवे तो शिवाजी से जाकर लड़ें, और कभी कहते हैं—

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।
भूषन कहैं यों अवरंग सों वजीर जीति
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय, नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते॥

× × × ×

दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजे,
उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही।

शिवाजी की सेना के प्रयाण का भी बड़ा प्रकृष्ट वर्णन है—

बाने फहराने बहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव-राने, देस-देस के।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने, सुनि,
बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के॥

हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात विहराने फन सेस के॥

कच्छप की पीठ के टूटने और शेषनाग के फणों के फटने का वर्णन पढ़कर आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि भूषण उस रीति-काल के कवि हैं जिस काल की विरहिणी कृशांगी नायिका की आह से आसमान फट जाता था। फिर भला विशाल मुगल-साम्राज्य से टक्कर लेने वाले शिवाजी के दल के दबाव से कच्छप की पीठ टूट जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

जब शत्रुओं का यह हाल था, तब उनकी सहजभीरु स्त्रियों का बेहाल होना तो स्वाभाविक ही था। भूषण ने शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा का बहुत अधिक और आलंकारिक वर्णन किया है। स्वर्णलता के समान उन कामिनियों के मुख-रूपी चन्द्रमा में स्थित कमल-रूपी नेत्रों से पुष्परस-रूपी जो आँसू टपकते हैं, उनका भूषण क्या ही सुन्दर वर्णन करते हैं।

कनकलतानि इन्दु, इन्दु माँहि अरविन्द
झरैं अरविन्दन ते बुंद मकरंद के।

बादलों से अंगार एवं रक्त की वर्षा आदि अनहोनी बातों का होना अशुभ-सूचक है। भूषण भागती हुई शत्रुस्त्रियों के केशों से गिरते हुए लालों को देखकर कैसी सुन्दर कल्पना करते हैं—

छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषण सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होंहि बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन घुमड़ि अंगारे बरखत हैं॥

शिवाजी के डर से भागती हुई शत्रु-स्त्रियों का भूषण ने कई स्थानों

पर ऐसा वर्णन किया है जो आजकल आपत्तिजनक कहा जा सकता है, सभ्यसमाज़ शायद उसे अब पसंद न करेगा। जैसे—

अन्दर ते निकसीं न मन्दिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा ते बिहाल भई,
लाखन की भीर मैं सम्हारती न छाती हैं॥
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हयादारी चीर फारि मन झुँझलाती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं॥

यद्यपि हम भी इस वर्णन को पसन्द नहीं करते, फिर भी कवि के साथ न्याय करने के लिए इतना कहना ठीक होगा कि हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु संस्कृत साहित्य में भी शत्रुओं की दुर्दशा वर्णन करने के लिए उनकी नारियों की दुर्दशा वर्णन करने की परिपाटी रही है। 'हम शत्रु को मार गिराएँगे' के स्थान पर 'हम शत्रु-स्त्रियों को विधवा कर देंगे,' या 'उनकी स्त्रियों के बाल खुलवा देंगे' कहने को अधिक पसंद किया जाता रहा है। महाकवि विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस नाटक में मलयकेतु अपनी प्रतिज्ञा की घोपणा करते हुए कहता है—

"कर-वलय उर ताड़त गिरे आँचरहु की सुधि नहिं परी
मिलि करहिं आरतनाद हा हा अलक खुलि रज-सों भरी
जो शोक सों भइ मातगण की दशा सो उलटाइहैं
करि रिपु-जुवतिगन की सोइ गति पितहिं तृप्ति कराइहैं"

वेणीसंहार नाटक में भी द्रौपदी की चेरी दुर्योधन की स्त्री भानुमती से कहती है—'अयि भानुमति, युष्माकममुक्तेषु केशहस्तेषु कथमस्माकं देव्याः केशाः संयम्यन्त इति।'

सारांश यह कि शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा के वर्णन में भूषण ने परंपरा का ही पालन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण के वर्ण्य-विषय यद्यपि बहुत थोड़े थे तो भी जिस पर उन्होंने कलम उठाई है, उसे अच्छी तरह निभाया है, और उसमें कहीं त्रुटि नहीं रहने दी।

काव्य-दोष

भूषण की कविता में दोष भी कम नहीं हैं। शिवराज-भूषण में अलंकारों के लक्षणों और उनके उदाहरणों में जो त्रुटियाँ हैं, उनका निदर्शन पीछे किया जा चुका है। छंदों में यतिभंग कई स्थानों पर है। जैसे—जाहिर जहान जाके धनद समान पेखि-

यतु पासवान यों खुमान चित चाय है।

यह मनहरण कवित्त है, जिसमें ३१ वर्ण होते हैं, तथा ८, ८, ८ और ७ वर्णों पर अथवा १६ और १५ वर्णों पर यति होती है। पर इसकी पहली पंक्ति में 'पेखियतु' और दूसरी पंक्ति में 'खुमान' शब्द टूटता है। इसी प्रकार 'गज घटा उमड़ी महा घन घटा से घोर' में गति ठीक न होने के कारण रचना बड़ी उखड़ी सी है, यहाँ हतवृत्तत्व दोष है। भूषण की कविता में यह दोष बहुत अधिक है। इसमें से बहुत से छंद-दोष तो प्रतिलिपिकारों की असावधानी अथवा परंपरा से याद रखने वाले भाटों के अज्ञान के कारण, अथवा बड़े लेखक की कविता में निज रचना को जोड़ देने वालों की कृपा का फल है। तो भी कुछ दोष भूषण से भी रहे होंगे क्योंकि उन्होंने काव्योत्कर्ष की ओर इतना ध्यान नहीं दिया। इनमें से कुछ दोषों का उल्लेख आगे किया जाता है—

कंस के कन्हैया, कामदेव हू के कंठनील,

कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हो।

यहाँ बड़ी ऊँची ऊँची उपमानावलि के बाद तुच्छ बाज पर उतर आना पतत्प्रकर्ष दोष है।

लवली लवंग यलानि केरे, लाख हों लगि लेखिए।

कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करवीर हैं।

यहाँ 'केरे' का अर्थ यदि 'केले' किया जाय तो आगे 'कदली' कहने से पुनरुक्ति दोष है। यदि 'केरे' का अर्थ 'के' मानें तो 'केरे' के आगे 'वृक्ष' होना चाहिये, अन्यथा न्यून-पदत्व दोष होता है।

सातौ वार आठौ याम जाचक नेवाजै नव;

अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा।

यहाँ कृपान का कृपन कर देना खटकता है। इससे कवि की शब्दावलि की संकुचितता प्रतीत होने लगती है।

बिन अवलंब कलिकानि आसमान मैं है,

होत बिसराम जहाँ इंदु औ उदथ के।

यहाँ 'उदथ' का अर्थ 'उदय + अथ (अस्त) होने वाला अर्थात् सूर्य' है। शब्द गढ़ा हुआ है, पर बहुत बिगड़ गया है, जिसका अर्थ सहसा स्फुरित नहीं होता, यहाँ क्लिष्टत्व दोष है।

नर लोक में तीरथ लसैं महि तीरथों की समाज में।

महि मैं बड़ी महिमा भली महिमैं महारज लाज में॥

इन पंक्तियों में 'महि' शब्द का अर्थ अस्पष्ट है। यहाँ 'महि' का अर्थ 'महाराष्ट्र भूमि' लगाया गया है, जिसके लिए बड़ी खींचातानी करनी पड़ती है। 'रजलाज' का अर्थ 'लज्जायुक्त राज्यश्री' भी ज़बरदस्ती करना पड़ता है। इस तरह इस सारे पद्य का अर्थ अस्पष्ट है; यहाँ कष्टार्थत्व दोष है।

वीर रस की कविता को शृंगार रस के उपयुक्त ब्रजभाषा में लिखने वाले पहले कवि भूषण थे। भूषण को अपना रास्ता स्वयं ही निकालना पड़ा था, अतएव भूषण को शब्दों को खूब तोड़ना मरोड़ना पड़ा। इसी कारण कुछ दोष भी आगए हैं, पर वे उल्लेखयोग्य नहीं है।

भूषण की विशेषताएँ

भूषण की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जातीय भावों की प्रधानता है। भूषण के पहले जितने भी वीर-रस के कवि हुए उनकी कविता में इन भावों का अभाव था। उनकी कल्पनानुसार एक कामिनी ही लड़ाई का कारण हो सकती थी। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध हुआ, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर किसी रूपवती कामिनी को ही कारण कल्पित करके उन वीर कवियों ने अपनी रचनाएँ कीं। भूषण ही ऐसे महाकवि थे जिनकी कविता में सबसे पहले हिन्दू जाति का नाम सुना गया, जो अपने नायक की प्रशंसा केवल इसलिए करते हैं कि उसने हिन्दुओं की रक्षा की और हिन्दुओं के नाम को उज्ज्वल किया।

जातीयता की भावना

अपने नायक की विजयों को भूषण उनकी वैयक्तिक विजय नहीं मानते अपितु हिन्दुओं की विजय मानते हैं और कहते है—"संगर में सरजा सिवाजी अरि सैनन को, सारु हरि लेत हिन्दुवान सिर सारु दै।" भूषण ही ऐसे कवि थे, जिन्होंने सब से पहले यह घोषणा की "आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुवान टूटे"; जिन्हें उस समय के हिंदू राजाओं की असहायावस्था चुभती थी, विशेषतः महाराणा प्रताप के वंशज उदयपुर

के राणा की; जिन्होंने शिवाजी के बाद छत्रसाल बुन्देला की केवल इसलिए प्रशंसा की थी कि उन्होंने 'रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिन्दुवाने की।'

सारांश यह कि भूषण की कविता में जातीयता की भावना सर्वत्र व्याप्त है और वह तत्कालीन वातावरण तथा हिंदुओं की मानसिक अवस्था की सच्ची परिचायक है। भूषण की वाणी हिंदू जाति की वाणी है। इसी विशेषता के कारण भूषण हिंदुओं के प्रतिनिधि कवि कहाते हैं। उन्हें हिंदू जाति का जितना ध्यान और अभिमान था, उतना प्राचीन काल के अन्य किसी कवि को नहीं हुआ। "परन्तु भूषण की जातीयता में भारतीयता का भाव उतना नहीं है, जितना हिन्दूपन या हिन्दूधर्म का। यद्यपि उस समय हिंदूपन का संदेश ही एक प्रकार से भारतीयता का संदेश था, क्योंकि मुसलमान प्रायः विदेशी थे," तथापि उसमें "मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस" आदि मुसलमानों के प्रति कुछ ऐसी कटूक्तियाँ भी हैं, जो वर्त्तमान समय की दृष्टि से कुछ अनुचित सी प्रतीत होती हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या भूषण की ये कटूक्तियाँ मुस्लिम धर्म से स्वाभाविक द्वेष के कारण हैं अथवा औरंगजेब के अत्याचारों से तंग आए हुए जातीयता-प्रेमी व्यक्ति के उद्गार हैं। हम समझते हैं कि भूषण स्वभावतः मुस्लिम-द्वेषी न थे, परन्तु औरंगजेब के अत्याचारों ने ही भूषण को मुस्लिम-विरोधी बना दिया था। वे अत्याचारी के रूप में ही उसकी और उसके साथियों की निन्दा करते थे, तथा उस पर रोष और घृणा प्रकट करते थे। वे औरंगजेब की अत्याचार-प्रवृत्ति से हिन्दुओं में जाग्रति होना पाते हैं—"भूषण कहत सब हिंदुन को भाग फिरै चढ़े ते कुमति चकताहू की पिसानी मैं"। इसीलिए वे औरंगजेब को उसके पुरखाओं—बाबर और अकबर—की याद दिला कर शिवाजी से मेल करने की सलाह देते हैं।

भूषण की कविता की दूसरी विशेषता उसकी ऐतिहासिकता है।

ऐतिहासिकता

यद्यपि उसमें तिथि और संवत् के अनुसार घटनाओं का क्रम नहीं है, तथापि शिवाजी-संबंधी सब मुख्य राजनीतिक घटनाओं का—उनकी मुख्य-मुख्य विजयों का—उल्लेख है। "ऐतिहासिक घटनाओं के साथ इनकी सत्यप्रियता बहुत प्रशंसनीय है।" किसी भी घटना में भूषण ने तोड़मरोड़ नहीं की तथा अपनी ओर से कुछ जोड़ा नहीं। भूषण की कविता में जिन घटनाओं का उल्लेख है उनमें से बहुतों का हमने शिवाजी की जीवनी में निर्देश कर दिया है। कई स्थानों पर हमने प्रसिद्ध इतिहास-लेखकों के उद्धरण भी दिये हैं, जिनको देखने से पता लग सकता है कि भूषण ने ऐतिहासिक सत्यों का किस तरह पालन किथा है। कई स्थानों पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐतिहासिकों ने भूषण के पद्य का अनुवाद करके ही रख दिया है। हम तो इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मराठा इतिहास को टीक ठीक पढ़े बिना जिन्होंने भूषग की कविता का अर्थ लगाने का प्रयत्न किया है उन्होंने स्थान स्थान पर भूलें की हैं और यदि भूषण की कविता से ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेखयुक्त पद्यों को छाँट कर तिथि क्रम से रख दिया जाय तो शिवाजी की खासी अच्छी जीवनी तैयार हो सकती है। भूषण से पहले किसी भी कवि ने ऐतिहासिकता का इस तरह पालन नहीं किया।

भूषण की कविता की तीसरी विशेषता है उसका मौलिक और सरल भाव व्यंजना से युक्त होना।

मौलिकता और सरलभाव व्यंजना

यद्यपि काल-दोष से भूषण को रीतिबद्ध ग्रंथ-रचना करनी पड़ी, परन्तु उस रीति-बद्ध ग्रन्थ-रचना में भी भूषण ने अपनी मौलिकता और सरल भावव्यंजना का परित्याग नहीं किया। मौलिकता के कारण ही उन्होंने तत्कालीन श्रृंगार-प्रणाली को छोड़कर

नये रस और नई प्रणाली को अपनाया। इसके अतिरिक्त उनकी आलोचना करते हुए हम यह दिखा चुके हैं कि किस तरह शुष्क ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते हुए उन्होंने नवीन और मौलिक ढंग की अलंकार-योजना की है। उनकी कविता में पुरानी ही उक्तियों का पिष्टपेषण नहीं है; तथा न केवल शब्दों का इन्द्रजाल ही है, अपितु सीधे सरल शब्दों में प्राकृतिक तथ्यों का इतिहास से अनुपम मेल दिखाया गया है। भाषा की स्वच्छता तथा काव्योत्कर्ष के कृत्रिम साधनों पर उन्होंने उतना ध्यान नहीं दिया, जितना सीधे किंतु प्रभावशाली ढंग के वर्णन पर दिया है।

इन्हीं तीनों विशेषताओं के कारण भूषण ने अपने लिए विशेष स्थान बना लिया है।

हिन्दी-साहित्य में भूषण का स्थान

भूषण का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है यह एक विचारणीय प्रश्न है। हम देख चुके हैं कि वीरगाथा-काल के कवियों में किसी भी कवि ने शुद्ध वीर रस की कविता नहीं लिखी। उनकी कविता में शृंगार रस का पर्याप्त पुट था, साथ ही उनकी कविता में जातीय चेतना न थी। राजाश्रित होने के कारण उनमें उच्च भावों की भी कमी थी। अतः उनकी तुलना भूषण और लाल जैसे विशुद्ध वीर रस के कवियों से नहीं हो सकती जिनकी कविता में जातीय भावना की पद पद पर झलक है। वीरगाथा काल के द्वितीय उत्थान में ही हम शुद्ध वीर रस की कविता पाते हैं। इस काल के तीन कवि प्रमुख हैं, भूषण, लाल और सूदन। सूदन की कविता में यद्यपि वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है, पर उसमें भी जातीयता की वह चेतना नहीं मिलती जो भूषण और लाल में है। इसके अतिरिक्त सूदन ने स्थान-स्थान पर अस्त्र-शस्त्रों की सूची

देकर तथा अरबी फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग कर अपनी कविता को नीरस कर दिया है। इस प्रकार भूषण और लाल दो ही वीर-रस के प्रमुख कवि रह जाते हैं। इनमें भी भूषण का पलड़ा भारी है। यद्यपि कविवर लाल की कविता में प्रायः सब गुण हैं, और दोष बहुत कम हैं पर लाल छन्द के निर्वाचन में चूक गये हैं। साथ ही उनकी रचना भूषण की रचना की तरह मुक्तक नहीं है अपितु प्रबंधकाव्य है। इस कारण कई स्थानों पर वह केवल ऐतिहासिक कथा मात्र रह गई है, जिससे लालित्य कम हो गया है। इसलिए वीर-रस के कवियों में भूषण ही सर्व-श्रेष्ठ ठहरते हैं।

अब प्रश्न यह है कि भूषण का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है। विद्वान् समालोचक मिश्रबंधु 'हिन्दी-नवरत्न' में लिखते हैं—"भूषण की कविता के ओज और उद्दण्डता दर्शनीय हैं। उसमें उत्कृष्ट पद्यों की संख्या बहुत है। हमने इनके प्रकृष्ट कवित्तों की गणना की, और उन्हें केशवदास एवं मतिराम के पद्यों से मिलाया, तो इनकी कविता में वैसे पद्यों की संख्या या उनका औसत अधिक रहा। इसी से हमने भूषण का नंबर बिहारी के बाद और इन दोनों के ऊपर रक्खा है।" इस प्रकार वे हिन्दी कवियों में भूषण को तुलसी, सूर, देव और बिहारी के बाद पाँचवाँ नंबर देते हैं। हम उनके इस क्रम के साथ पूर्णतया सहमत नहीं है, परन्तु इतना हम मानते हैं कि जातीयता आदि गुणों के कारण भूषण का स्थान हिन्दी के इने-गिने कवियों में है। "हिन्दी नवरत्न में वीर रस के पूर्ण प्रतिपादक एक मात्र यही महाकवि हैं।" "भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीरकाव्य का विषय बनाया वे अन्याय-दमन में तत्पर, हिन्दू-धर्म के संरक्षक, दो इतिहास-प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दू जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बराबर बनी रही

या बढ़ती गई। इसी से भूषण के वीर रस के उद्गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति हुए। भूषण की कविता कवि-कीर्त्ति-संबंधी एक अवि-चल सत्य का दृष्टान्त है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्त्ति तब तक बराबर बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी। क्या संस्कृत साहित्य में, क्या हिन्दी साहित्य में, सहस्रों कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में ग्रन्थ रचे जिनका आज पता तक नहीं है। जिस भोज ने दान दे दे कर अपनी इतनी तारीफ कराई उसके चरितकाव्य भी कवियों ने लिखे होंगे। पर उन्हें आज कौन जानता है?"

शिवराज-भूषण

मंगलाचरण

गणेशस्तुति

कवित्त मनहरण ※

विकट[1] अपार भव-पंथ के चले को स्रम-
हरन, करन-विजना से ब्रह्म ध्याइए[2]।
यहि लोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिए आनि कै जुड़ाइए।
अलिकुल-कलित-कपोल, ध्यान[3] ललित,
अनंदरूप-सरित मैं भूषण अन्हाइए।
पाप-तरु-भंजन, विघन-गढ़-गंजन
जगत[4]-मन-रंजन, द्विरदमुख गाइए।

※ यह वर्णवृत्त है। इसमें ३१ वर्ण होते हैं, गुरु लघु का कोई नियम नहीं होता, किन्तु १६ और १५ वर्णों पर यति होती

पाठान्तर—

१. अकथ (अवर्णनीय)। २. बर-दाइए (बलदायो)। ३. ध्याइ। ४. भगत।

शब्दार्थ—करन = कर्ण, कान। बिजना=व्यजन, पंखा। ब्रह्म= श्रीगणेश जी, भवानी, सूर्य, विष्णु और महादेव ये पाँच ब्रह्म रूप माने जाते हैं, यहाँ गणेशजी से तात्पर्य है। भूषण जी ने इनमें से आदि तीन की स्पष्ट रूप से स्तुति की है, विष्णु और शिव की क्रमशः चौथे और पाँचवें दोहों में केवल चर्चा-मात्र की है। कोकनद=लालकमल। जुड़ाइए = शीतल कीजिये। कुल = वंश, समूह। कलित = युक्त। ललित = सुन्दर। भंजन = तोड़ना। गंजन = नाश करना। द्विरद = हाथी। द्विरद-मुख = हाथी के समान मुख वाले, श्री गणेश जी।

अर्थ—ब्रह्मस्वरूप श्री गणेश जी का ध्यान कीजिए जो अपने कान-रूपी पंखे (के झलने) से इस विकट अपार संसार-रूपी मार्ग में चलने की थकान को दूर करते हैं। इस लोक और परलोक में मनोरथ सफल करने के लिए श्री गणेशजी के लाल-कमल के समान चरणों को हृदय में धारण कर उसे शीतल कीजिए। भूषण कवि कहते हैं कि जिनके कपोल भौरों के समूह से युक्त हैं (मद के कारण भौंरे हाथी के गंडस्थल पर मँडराते रहते हैं) और जिनका ध्यान धरना बड़ा सुन्दर है, ऐसे श्रीगणेश जी की आनन्द देने वाली रूप-नदी (अथवा आनंद-रूपी नदी) में स्नान कीजिए। पाप-रूपी वृक्ष के तोड़ने वाले, विघ्नों के किले को नाश करने वाले और संसार के मन को प्रसन्न करने वाले श्री गणेशजी के गुणों का गान करना चाहिए।

अलंकार—भव-पंथ, अनन्द-रूप-सरित, पाप-तरु, विघन-गढ़ में रूपक है। कोकनद से चरन, और द्विरद-मुख, में उपमा है। पद में वृत्यनुप्रास भी है।

है। यदि ८, ८, ८ तथा ७ वर्णों पर यति हो तो लय अच्छी रहती है। अंत में लघु गुरु होना चाहिए।

भवानी-स्तुति

छप्पय अथवा षट्पद †

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-विमर्दिनि ॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनी ।
जै सुरक्त जै रक्तबीज बिड्डाल-बिहंडिनि ॥
जै जै निसुंभ सुंभद्दलनि, भनि भूषन जै जै भननि।
सरजा समत्थ शिवराज कहँ, देहि बिजै जै जग-जननि ॥२॥

शब्दार्थ—जयंति = विजयिनी, देवी। कपार्दिनी = कपर्दि (शिव) की स्त्री पार्वती, भवानी। मधुकैटभ = मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य थे, जिन्हें विष्णु भगवान ने मारा था। योगमाया (देवी) ने इनकी बुद्धि को छला था, तभी ये मारे गये थे। महिष = एक राक्षस जिसे दुर्गा ने मारा था। विमर्दिनी = मर्दन करने वाली, नाश करने वाली। चमुंड = चामुंडा, दुर्गा। चंड मुंड = दो राक्षस, इन्हें दुर्गा ने मारा था, ये शुंभ निशुंभ के सेनापति थे। भंडासुर = इस नाम का कोई प्रसिद्ध राक्षस नहीं पाया जाता जिसे दुर्गा ने मारा हो, यह विशेषण शब्द जान पड़ता है—भंड + असुर = भंड (पाखंडी) राक्षस, पाखंडी राक्षस। चंड मुंड भंडासुर = पाखंडी चंड और मुंड राक्षस। सुरक्त रक्तबीज = रक्तबीज और सुरक्त ये दो राक्षस थे, इन्हें दुर्गा ने मारा था। बिड्डाल=विडालाक्ष दैत्य, इसे दुर्गा ने मारा

---

† यह छः पद का मात्रिक छन्द है, इस में प्रथम चार पद रोला छन्द के और अन्तिम दो उल्लाला छन्द के होते हैं। रोला छन्द प्रत्येक पद २४ मात्रा का होता है और उसमें ११ और १३ मात्राओं पर यति होती है। उल्लाला छन्द २८ मात्रा का होता है, जिसमें पहली यति १५ वीं मात्रा पर होती है।

था। बिहंडिनि=मारने वाली। निसुंभ सुंभ=ये दोनों दैत्य कश्यप ऋषि के पुत्र थे। तपस्या से वरदान पाकर ये बड़े प्रबल हो गये थे और बड़ा अत्याचार करने लगे थे। इन्होंने देवताओं को जीत लिया था। जब इन्होंने रक्तबीज से सुना कि देवी ने महिषासुर को मार डाला, तब इन्होंने देवी को नष्ट करने की ठानी। तब देवी ने इन सब को सेना सहित मार डाला। भनि=कहता है। भननि= कहने वाली, सरस्वति। सरजा=(फ़ारसी) सरजाह उपाधि जो ऊँचे दर्जे के लोगों को मिलती थी। शिवाजी के किसी पूर्व पुरुष को यह उपाधि मिली थी, सरजा=(अरबी) शरज:=सिंह। समत्थ= समर्थ, शक्तिशाली। कहँ=के लिए।

अर्थ—हे विजयिनी! आदि शक्ति, कालिका भवानी! आपकी जय हो। आप मधु और कैटभ दैत्यों को छलनेवाली तथा महिषासुर का नाश करने वाली हो। हे चामुंडे! आप चंड मुंड जैसे पाखंडी राक्षसों को नष्ट करने वाली हो, आपही ने सुरक्त, रक्तबीज और विडाल को मारा है, आप की जय हो। भूषण कवि कहते हैं कि आप निसुंभ और सुंभ दैत्यों का नाश करने वाली हो और आप ही सरस्वती-रूप हो अथवा 'जय-जय' शब्द कहने वाली हो, आपकी जय हो। हे जगन्माता! आप शक्तिशाली सरजा राजा शिवाजी के लिये विजय प्रदान कीजिए, आप की जय हो।

अलंकार—उल्लेख और वृत्यनुप्रास, 'ड' की कई बार आवृत्ति हुई है।

सूर्यस्तुति

दोहा ‡—तरनि, जगत-जलनिधि-तरनि, जै जै आनंद-ओक।
कोक-कोकनद-सोकहर, लोक लोक आलोक ॥३॥

---

‡ यह मात्रिक छन्द है, इसके पहले और तीसरे चरण में १३ और दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं।

शब्दार्थ—तरनि=सूर्य, नौका। जगत-जलनिधि=संसार-रूपी समुद्र। ओक=स्थान। कोक=चक्रवाक पक्षी, यह सूर्य को देखकर बड़ा प्रसन्न होता है। कोकनद=कमल। आलोक=प्रकाश,

अर्थ—हे आनन्द के स्थान श्री सूर्यभगवान ! आप संसार-रूपी समुद्र के लिए नौका स्वरूप हैं। आपही चक्रवाक और कमलों का दुख दूर करने वाले हैं। समस्त संसार में आपही का प्रकाश है, आपकी जय हो।

अलंकार—'तरनि, जलनिधि-तरनि', 'लोक लोक-आलोक में' यमक है। 'क' अक्षर की आवृत्ति कई बार होने से वृत्यनुप्रास। जगत-जलनिधि-तरनि में रूपक है।

अथ राजवंश-वर्णन

दोहा—राजत है दिनराज को, बंस अवनि अवतंस।
जामैं पुनि पुनि अवतरे, कंसमथन[1] प्रभुअंस॥४॥

शब्दार्थ—दिनराज=सूर्य। अवतंस=कर्णभूषण, सर्वश्रेष्ठ। कंसमथन=कंस का नाश करने वाले, श्रीकृष्ण (विष्णु)। प्रभु=ईश्वर। प्रभु अंश=ईश्वरांश, अंशावतार। अवनि-पृथ्वी।

अर्थ—सूर्य वंश पृथिवी पर सर्व-श्रेष्ठ है। जिस वंश में समय समय पर विष्णु भगवान के अंशावतार हुए हैं।

अलंकार—उदात्त, यहाँ सूर्यवंश की प्रभुता का वर्णन है।

दो०—महावीर ता बंस मैं, भयो एक अवनीस।
लियो बिरद "सीसौदिया" दियो ईस[2] को सीस॥ ५॥

---

१. यहाँ विष्णु नाम-निर्देश से विष्णु-वंदना लक्षित होती है।

२. यहाँ भी ईश नाम निर्देश से महादेव की वंदना लक्षित है।

शब्दार्थ—अवनीस = अवनीश, पृथ्वीपति, राजा। बिरद = पदवी। सीसौदिया = सीसौदिया-वंशज क्षत्रिय जो उदयपुर और नैपाल के राज्याधिकारी हैं। इनके पूर्व-पुरुषाओं में राहप जी एक बड़े प्रतापी राजा हुए। उनके सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उन्होंने भूल से एक बार शराब पी ली थी। इसके प्रायश्चित्त में उन्होंने गरम शीशा पीकर अथवा अपना शीश महादेव को चढ़ा कर प्राण त्याग दिये। तभी से इस वंश को 'सीसौदिया' पदवी मिली। किसी किसी का मत है कि ये 'सिसौदिया' ग्रामवासी थे। शिवाजी इसी वंश के थे।

अर्थ—इसी वंश में एक बड़े बली राजा हुए जिन्होंने भगवान् शिव को अपना शीश देकर "सीसौदिया" की पदवी पाई।

अलंकार—निरुक्ति, यहाँ सीसौदिया नाम का अर्थ निरूपण किया गया है।

दो०—ताकुल मैं नृपबृंद सब, उपजे बखत बलन्द।
भूमिपाल तिन मैं भयो, बड़ो "माल मकरन्द" ॥६॥

शब्दार्थ—बखत बलन्द=(फारसी—बख्त=भाग्य, बलन्द= ऊँचा) भाग्यवान, अपने समय में ऊँचा स्थान रखने वाले। भूमिपाल-राजा। मालमकरन्द=नाम, इन्हें 'मालोजी' भी कहते हैं।

अर्थ—इस वंश में सब राजागण बड़े भाग्यवान उत्पन्न हुए। इन्हीं में मालमकरन्द जी बड़े प्रतापी राजा हुए।

अलंकार—व्यतिरेक, यहाँ मालमकरन्द को अन्य राजाओं की अपेक्षा अधिक बड़ा बतलाया है।

दो०—सदा दान-किरवान मैं, जाके आनन अंभु।
साहि निजाम सखा भयो, दुग्ग देवगिरि खंभु ॥७॥

शब्दार्थ—किरवान = कृपाण। दान किरवान मे = कृपाण दान में, युद्ध के समय। आनन = मुख। अंभु = (अंभस्) जल, आब, कान्ति। दुग्ग = (सं० दुर्ग) किला। शाह निजाम = निजाम शाह, अहमदनगर का बादशाह।

अर्थ—जिसके मुख पर युद्ध के समय सदा आब रहती थी अथवा युद्ध और दान के लिए सदा जिसके मुख में पानी भरा रहता था और देवगिरि किले के स्तम्भस्वरूप निजामशाह भी जिसके मित्र थे।

अलंकार—स्वभावोक्ति, यहाँ मालमकरन्द जी की स्वाभाविक वीरता का वर्णन है।

दो०—ताते सरजा बिरद भो, सोभित सिंह प्रमान।
रन-भू-सिला सुभौंसिला[1], आयुषमान खुमान ॥८॥

शब्दार्थ—प्रमान = समान। रन-भू-सिला = रणभूमि में पत्थर के समान अचल। खुमान = आयुष्मान, दीर्घजीवी, राजाओं को संबोधन करने की एक पदवी।

अर्थ—वे सिंह के समान शोभित हुए, इसी हेतु उनको 'सरजा' की उपाधि मिली। रणभूमि में पत्थर की शिला के समान अचल रहने के कारण उनका नाम 'भौंसिला' पड़ा। और इस आयुष्मान (चिरंजीव) राजा का नाम खुमान भी प्रसिद्ध हुआ।

अलंकार—निरुक्ति, यहाँ भौंसिला नाम के अर्थ का निरूपण किया है।

---

१. शिवाजी के वंश का नाम भौंसिला क्यों पड़ा था, इसके लिए भूमिका में शिवाजी का चरित्र देखिए।

सूचना—सरजा, भौंसिला और खुमान ये उपाधियाँ हैं। ये मालोजी को मिली थीं। भूषण जी इन्हीं उपाधियों से शिवाजी को पुकारते थे।

दो०—भूषन भनि ताके भयो, भुव-भूषन नृप साहि।
रातौ दिन संकित रहैं, साहि सबै जगमाहि ॥९॥

शब्दार्थ—भुव = भूमि, पृथिवी। भूषन = भूषण, गहना भुव-भूषन = पृथिवी का भूषण, सर्वश्रेष्ठ। नृपसाहि = राजा शाहजी। साहि = शाह, बादशाह।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सर्वश्रेष्ठ महाराजा शाहजी ने इन्हीं (मालो जी) के घर जन्म लिया, जिनके भय से सारी दुनियाँ के बादशाह रात-दिन भयभीत रहते थे।

अलंकार—यमक, 'भूषन,भुव-भूषन' में और 'नृपसाहि,साहि में।'

शाहजी का वैभव-वर्णन

कवित्त-मनहरण

एते हाथी दीन्हे माल मकरंदजू के नंद,
जेते गनि सकति बिरंचि हू की न तिया।
भूषन भनत जाकी साहिबी सभा के देखे,
लागैं सब ओर छितिपाल छिति मैं छिया॥
साहस अपार, हिंदुवान को अधार धीर,
सकल सिसौदिया सपूत कुल को दिया।
जाहिर जहान भयो, साहिजू खुमान वीर,
साहिन को सरन, सिपाहिन को तकिया ॥१०॥

शब्दार्थ—नन्द = पुत्र। बिरंचिहू की न तिया = बिरंचि(ब्रह्मा) की तिया (स्त्री) सरस्वती भी नहीं। साहिबी = वैभव। छितिपाल = क्षिति + पाल, पृथिवीपाल, राजा। छिया = छुएहुए,मलीन। जाहिर =

प्रकट, प्रसिद्ध । जहान = (फा०) संसार। सरन = शरण, स्थान। तकिया = आश्रय, सोते समय सिर के नीचे लगाने की वस्तु।

अर्थ—माल मकरन्दजी के पुत्र शाहजी ने इतने हाथी दान में दिये जिनको सरस्वती भी नहीं गिन सकती। भूषण कवि कहते हैं कि इनकी सभा के वैभव को देख पृथ्वी के अन्य राजागण अत्यन्त मलीन मालूम होते थे। अपार साहसी, हिन्दुओं के आधार, धैर्यवान, समस्त सिसौदिया-कुल के दीपक, वीर शाहजी खुमान, बादशाहों को शरण और सिपाहियों को आश्रय देने में संसार भर में प्रसिद्ध होगये।

अलंकार—प्रथम पंक्ति में सम्बन्धातिशयोक्ति। द्वितीय पंक्ति में व्यतिरेक और तीसरी और चौथी में उल्लेख है।

शिवाजी का जन्म

दो०—दसरथ जू के राम भे, वसुदेव के गोपाल।
सोई प्रकटे साहि के, श्री शिवराज भुवाल ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—भे = भये, पैदा हुए। भुवाल = भूपाल, राजा।

अर्थ—जिस प्रकार दशरथजी के श्रीरामचन्द्र और वसुदेव के गोपाल (श्री कृष्ण) उत्पन्न हुए उसी भाँति शाहजी के (ईश्वरावतार) शिवाजी प्रकट हुए।

अलंकार—यहाँ शिवाजी का अवतार होना, राम, कृष्ण आदि का नाम उल्लेख कर वचनों की चतुराई से वर्णन किया है अतः पर्यायोक्ति है।

दो०—उदित होत सिवराज के, मुदित भये द्विज-देव।
कलियुग हर्‌यो मिर्‌यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—उदित=प्रकट। द्विज-देव=ब्राह्मण और देवता। अहमेव=अहंकार, अभिमान।

अर्थ—शिवाजी के उत्पन्न होते ही सारे ब्राह्मण और देवता बड़े

प्रसन्न हुए। कल्युग मिट गया अर्थात् कलियुग का सारा दुख दूर हो गया और सब म्लेच्छों का अभिमान नष्ट हो गया।

अलंकार—काव्यलिंग—शिवाजी के अवतार होने का समर्थन उनके जन्म होते ही ब्राह्मण और देवताओं का प्रसन्न होना धर्मापत्ति मिटना और म्लेच्छों का अभिमान नष्ट होना आदि द्वारा होता है।

कवित्त-मनहरण

जा दिन जनम लीन्हों भू पर भुसिल भूप,
ताही दिन जीत्यो अरि उर के उछाह को।
छठी छत्रपतिन को जीत्यो भाग अनायास,
जीत्यो नामकरण मैं करन-प्रवाह को ॥
भूषन भनत, बाल लीला गढ़ कोट जीत्यो,
साहि के सिवाजी, करि चहूँ चक्क चाह को।
बीजापुर गोलकुंडा जीत्यो लरिकाइ ही में,
ज्वानी आए जीत्यो दिल्लीपति पातसाह को ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—उछाह = उत्साह। छठी = जन्म से छठे दिन। छत्र-पति = राजा (छत्र धारण करने वाला)। करन-प्रवाह = राजा कर्ण के दान का प्रवाह। चक्क = (सं० चक्र) दिशा। चाह = चाहना, इच्छा।

अर्थ—जिस दिन पृथ्वी पर भौंसिला राजा शिवाजी ने जन्म लिया उसी दिन वैरियों के दिलों का उत्साह नष्ट होगया। छठी के दिन सहज ही में उन्होंने राजाओं का भाग्य जीत लिया। नामकरण के दिन इतना दान दिया गया कि राजा कर्ण के दान के प्रवाह को भी उसने जीत लिया भूषण कवि कहते हैं कि साहजी के पुत्र शिवाजी ने बाल-क्रीड़ा में चारों दिशाओं के किलों को सहज इच्छा से ही जीत लिया। जब किशोरावस्था (लड़काई) आई तो बीजापुर और गोलकुंडा को विजय किया और जब जवान हुए तो दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेबको परास्त किया।

अलंकार—सार; यहाँ शिवाजी के जन्म से लेकर युवावस्था तक उनके उत्तरोत्तर उत्कर्ष का वर्णन है।

दो०—दच्छिन के सब दुग्ग जिति, दुग्ग सहार विलास।
सिव सेवक सिव गढ़पती, कियो रायगढ़ वास ॥१४॥

शब्दार्थ—जीत = जीतकर। सहार विलास = हार युक्त शोभा धारण किये हुए। 'हार' जंगल को भी कहते हैं।

'सहार, के स्थान पर 'सँहार' पाठ भी मिलता है। यह पाठ मानने पर 'दुग्ग सहार विलास' इस पद का यों अर्थ होगा - किलों का संहार करना जिस के लिए विलास (खिलवाड़) है। यहाँ यह पद शिवाजी का विशेषण है। इस प्रकार इस दोहे के तीन अर्थ हो सकते हैं।

अर्थ—(१) दक्षिण के समस्त किलों को जीत कर उन सबकी हार (माला) के समान शोभा धारण किये हुए (जीते हुए किले सब चारों ओर माला की भाँति थे) रायगढ़ को शिव-भक्त शिवाजी ने अपना निवास-स्थान बनाया। (रायगढ़ जीते हुए किलों के मध्य में था)।

(२) दक्षिण के सब किलों को जीतकर उन किलों के साथ जंगल में अवस्थित रायगढ़ को शिवभक्त शिवाजी ने अपना निवास स्थान बनाया।

(३) किलों का संहार करना जिसके लिए खिलवाड़ है ऐसे शिवभक्त शिवाजी ने दक्षिण के सब किले जीत कर रायगढ़ को अपना निवास-स्थान बनाया।

अथ रायगढ-वर्णन

मालती सवैया†

जा पर साहि तनै सिवराज सुरेस कि ऐसी सभा सुभ साजै।
यों कवि भूषण जंपत है लखि संपति को अलकापति लाजै॥

---

† सात भगण (ऽ।।) और दो गुरु वर्ण का मालती सवैया होता है। इसे मत्तगयंद भी कहते हैं।

जा मधि तीनिहु लोक कि दीपति ऐसी बड़ो गढ़राज बिराजै।
वारि पताल सी माची मही अमरावति की छवि ऊपर छाजै॥

शब्दार्थ—तनै-(सं०-तनय) पुत्र । जंपत=कहता है। अलकापति=कुबेर। दीपति=दीप्ति, छवि। गढ़राज=रायगढ़। बारि=जल, यहाँ खाई, जिसमें जल भरा रहता उससे तात्पर्य है। माची=कुर्सी, पुस्ती मकानों के पीछे बँधती है।

अर्थ—श्री साहजी के पुत्र शिवाजी जिस पर अपनी सुन्दर सभा सुरेश (इन्द्र) की सभा के समान करते हैं, भूषण कवि कहते हैं कि उसके वैभव को देखकर कुबेर भी शर्माता है अर्थात् उसकी अलकापुरी भी ऐसी उत्तम नहीं, तीनों लोकों की छवि को धारण करने वाला ऐसा बड़ा सुन्दर रायगढ़ शोभित है। उसकी खाई पाताल के समान, कुर्सी पृथ्वी के समान और ऊपरी भाग अमरावती (इन्द्रपुरी) के समान शोभायमान है।

अलंकार—संबन्धातिशयोक्ति । यहाँ शिवराज की सभा से सुरेश की सभा का, रायगढ़ की संपत्ति का अलकापुरी की संपत्ति से, वारि का पाताल से, माची का पृथ्वी से कोई सम्बन्ध न रहते हुए भी सम्बन्ध प्रकट किया गया है।

हरिगीतिका छन्द *

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ़ मैं राजहीं।
लखि जच्छ किन्नर असुर सुर गंधर्व हौंसनि साजही॥
उत्तंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदंग जु बाजहीं।
घन-समै मानहु घुमरि करि घन घनपटल गल गाजहीं॥१६॥

शब्दार्थ—जच्छ=यक्ष। किन्नर=देवताओं की एक जाति।

---

* इसमें २८ मात्रा होती हैं। १६ और १२ मात्रा पर यति होती है, अन्त में लघु गुरु होता है।

हौंस = हविस, इच्छा । उत्तंग = ऊँचे । मरकत = मणि, नीलम । घन-समै = वर्षा ऋतु में । घन पटल = बादल की तरह । गल गाजहीं = ज़ोर से गरजते हैं ।

अर्थ—शिवाजी के रायगढ़ में मणि-जटित महल ऐसे शोभायमान हैं जिन्हें देखकर यक्ष, किन्नर, गंधर्व सुर (देवता) और असुर (राक्षस) भी रहने की इच्छा करते हैं । ऊँचे-ऊँचे नीलम जड़े हुए महलों में मृदंग ऐसे बजते हैं मानो वर्षा ऋतु में उमड़ घुमड़ कर मेघ-मालाएँ ज़ोर ज़ोर से गर्जन करती हों ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, 'घन समै मानहु घुमरि करि में' ।

हरिगीतिका

मुकतान की झालरिन मिलि मनि-माल छज्जा छाजहीं ।
सन्ध्या समय मनहुँ नखत गन लाल अम्बर राजहीं ॥
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं ।
मानो गगन-तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं ॥१७॥

शब्दार्थ—मुकतान = मुक्ता, मोती, मोतियों । नखत = नक्षत्र । अम्बर=आकाश । ऊरध=(सं० ऊर्ध्व) ऊँचे पर, ऊपर । तनाय= (फा० तनाव) रस्सी, जिससे तंबू ताना जाता है ।

अर्थ—मोतियों की झालरें मणिमालाओं के साथ छज्जों पर ऐसी शोभित हो रही हैं मानों सन्ध्या समय लाल आकाश में नक्षत्र (तारे) हों । और जहाँ तहाँ ऊँचे स्थानों पर जड़े हुए हीरों की किरणें ऐसी घनी चमक रही हैं मानो गगन (आकाश) में तंबू की श्वेत रस्सियाँ हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, मानो गगन-तंबू तन्यो में ।

हरिगीतिका

भूषन भनत जहँ परसि कै मनि पुहुप रागन की प्रभा ।
प्रभु पीत पट की प्रगट पावत सिंधु मेघन की सभा ॥

मुख नागरिन के राजहीं कहुँ फटिक महलन संग मैं।
विकसंत कोमल कमल मानहु अमल गंग तरंग मैं ॥१८॥

शब्दार्थ—पुहुपराग = पुखराज, इनका पीला रंग होता है। प्रभा = प्रकाश। प्रभु = भगवान, कृष्ण। सिन्धु = समुद्र। सजल = जल से भरे, यहाँ सिन्धु शब्द का मेघों के साथ जोड़ने से कवि का अभिप्राय उन्हीं बादलों से है जो जलपूर्ण हैं। सिन्धु मेघन की सभा = जलपूर्ण बादलों का समूह। नागरिन = नगर की रहने वाली स्त्रियाँ, चतुर स्त्रियाँ। फटिक = स्फटिक, बिल्लौर पत्थर।

अर्थ—भूषण जी कहते हैं कि वहाँ सजल मेघों का समूह (महलों के शिखर पर जड़ी) पीली पुखराज मणियों को छूकर भगवान् कृष्ण के पीतांबर की शोभा प्राप्त करता है। और कहीं चतुर स्त्रियों के मुख स्फटिक मणियों के महलों में ऐसे दिखाई देते हैं मानों स्वच्छ गंगा की लहरों में कोमल कमल खिल रहे हों।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, विकसंत कोमल कमल मानहु अमल गंग तरंग में' इस पद में।

आनंद सों सुंदरनि के कहुँ बदन-इंदु उदोत हैं।
नभ सरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल कुल होत हैं॥
कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्धमनि सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चक्रवाक विहार करत सनान हैं ॥१९॥

शब्दार्थ—बदन-इन्दु = मुख चन्द्र। नभ सरित = आकाश गंगा। रात्रि के समय आकाश में तारों का एक घना समूह आकाश के एक ओर से दूसरी ओर तक नदी की धारा के समान फैला हुआ दिखाई देता है। अंग्रेजी में इसे मिल्की वे (milky way) कहते हैं। इसे ही कवि लोग आकाशगंगा मानते हैं। कुमुद = रात्रि में खिलने वाला लाल कमल, कुमुदिनी। मुकुलित = संकुचित। बद्धमनि = मणियों से जड़ी। सोपान = सीढ़ी।

अर्थ—कहीं सुंदरियों के मुखचन्द्र (स्फटिक महलों में) आनन्द से चमक रहे हैं, जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानों आकाश-गंगा में पूर्ण खिले कुमुद और अधखिले कमलों का समूह हो (यहाँ प्रफुलित कुमुद और मुकुलित कमल से क्रमशः पूर्ण-यौवना और अर्ध-स्फुटित-यौवना का भाव लक्षित होता है)। कहीं मणि-जटित सीढ़ियों वाले तालाब, बावली और कुएँ हैं जिनमें हंस, सारस और चकवा चकवी स्नान करते हुए क्रीड़ा कर रहे हैं।

अलंकार—'वदन-इन्दु में रूपक'। प्रथम दोनों पंक्तियों में 'गम्योत्प्रेक्षा' शेष पंक्तियों में 'अतिशयोक्ति'।

कितहूँ बिसाल प्रबाल जालन जटित अंगन भूमि है।
जहँ ललित बागनि द्रुमलतनि मिलि रहै झिलमिल झूमि है॥
चंपा चमेली चारु चन्दन चारिहू दिसि देखिए।
लवली लवंग यलानि केरे लाख हों लगि लेखिए॥२०॥

शब्दार्थ—प्रबाल=मूँगा। जाल=समूह, बहुत से। लवली=एक वृक्ष (हरफा=रेवड़ी)। यलानि=इलायची। केरे=के।

अर्थ—किसी ओर आँगन में पृथ्वी पर बड़े-बड़े बहुत से मूँगे जड़ रहे हैं, जहाँ पर बाग के सुन्दर वृक्ष और लता मिलकर झूमते और झिलमिलाते हैं अर्थात् उनके घने पत्तों से छन कर झिलमिला प्रकाश पड़ रहा है। चारों ओर सुन्दर चंपा, चमेली, चन्दन, लवली, लवंग और इलायची आदि के लाखों प्रकार के वृक्ष दिखाई देते हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति। स्वाभाविक वर्णन होने से।

कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु करवीर हैं।
कहुँ दाख दाड़िम सेव कटहल तूत अरु जंभीर हैं॥
कितहूँ कदंब कदंब कहुँ हिंताल ताल तमाल हैं।
पीयूष ते मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं॥२१॥

शब्दार्थ—कदली=केला। करबीर=कनेर। जंभीर=नींबू। कदंब=एक वृक्ष का नाम तथा समूह। हिंताल=एक वृक्ष। ताल=ताड़। तमाल=तिलक वृक्ष, आबनूस। पीयूष—अमृत। रसाल=रसीला (मीठा) तथा आम।

अर्थ—कहीं केतकी, केला, करौंदा, कुंद, कनेर, अंगूर, अनार, सेव, कटहल, शहतूत और नींबू के वृक्ष हैं। कहीं कदंब वृक्षों के झुंड हैं। कहीं हिंताल, ताड़, आबनूस के वृक्ष हैं और कहीं अमृत से भी अधिक मीठे रसीले आम फल रहे हैं।

अलंकार—'कदंब कदंब' और 'रसाल रसाल में' यमक है।

सूचना—छन्द सं० २० में आये शब्द केरे और छंद सं० २१ के 'कदली' में अन्तर है। केरे का अर्थ 'के' है केला नहीं, अतः पुनरुक्ति दोष नहीं है।

पुन्नाग कहुँ कहुं नागकेसरि कतहुं बकुल असोक हैं।
कहुं ललित अगर गुलाब पाटल-पटल बेला थोक हैं॥
कितहूँ नेवारी माधवी सिंगारहार कहूँ लसैं।
जहँ भाँति भाँतिन रंग रंग बिहंग आनंद सों रसैं॥२२॥

शब्दार्थ—पुन्नाग=देव बल्लभ, पुष्प वृक्ष। बकुल=मौलसिरी। पाटल=लाल और सुफेद गुलाब, अथवा ताम्रपुष्पी। पटल=झुंड समूह। थोक=समूह। नेवारी=जूही, नववल्ली। माधवी=चन्द्रवल्ली, इकबौंढ़ी। सिंगारहार=हारसिंगार, पुष्प वृक्ष। रसैं=रसीले बोलते हैं या प्रफुल्लित होते हैं।

अर्थ—कहीं देव-बल्लभ, नागकेसर, मौलसिरी, और अशोक वृक्ष हैं, तो कहीं सुन्दर अगर, गुलाब, पाटल गुलाब (या ताम्र पुष्पी) के समूह और बेले के झुंड के झुंड खड़े हैं। किसी ओर जूही, चन्द्रवल्ली और हारसिंगार शोभायमान हैं, जहाँ अनेक प्रकार के रंग बिरंगे विहंग [पक्षी] आनन्द पूर्वक रसीले बोल रहे हैं या प्रफुल्लित हो रहे हैं।

अलंकार—स्वभावोक्ति ।

पटपद—लसत विहंगम बहु लवनित बहु भाँति बाग महँ ।
कोकिल कीर कपोत केलि कलकल करत तहँ ॥
मंजुल महरि मयूर चटुल चातक चकोर गन ।
पियत मधुर मकरन्द करत झंकार भृंग घन ॥
भूषन सुवास फल फूल युत, छहुँ ऋतु वसत वसंत जहँ ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर, सुखदायक सिवराज कहँ ॥२३॥

शब्दार्थ—लवनित = लावण्ययुक्त, मनमोहक । कीर = तोता । कपोत = कबूतर । केलि = क्रीड़ा, विहार । कलकल = सुन्दर शब्द । मंजुल = सुन्दर । महरि = ग्वालिन पक्षी । चटुल = गौरैया पक्षी । मकरन्द = पुष्परस । राजदुग्ग = रायगढ़ ।

अर्थ—बाग में अनेक प्रकार के अत्यधिक मनमोहक पक्षी शोभित हो रहे हैं। जिनमें कोयल, तोते, कबूतर, ग्वालिन, मयूर (मोर) गौरैया चातक (पपीहा) और चकोर आदि अनेक पक्षी विहार करते हुए सुन्दर शब्द कर रहे हैं। भौंरे मीठा-मीठा मकरंद पीकर गूँज रहे हैं। भूषण कवि कहते हैं कि जहाँ छहों ऋतुओं (वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर अर्थात् बारहों महीनों) में सुगन्धित फूल फल वाली वसंत ऋतु ही रहती है, वह शिवाजी को सुख देने वाला रायगढ़ इस प्रकार सुशोभित है ।

अलंकार—अत्युक्ति ।

दोहा—तहँ नृप रजधानी करी, जीति सकल तुरकान ।
सिव सरजा रुचि दान मैं, कीन्हों सुजस जहान ॥२४॥

शब्दार्थ—रुचि = इच्छा, यहाँ इच्छित से तात्पर्य है ।

अर्थ—महाराज शिवाजी ने सारे तुर्कों (मुसलमानों) को जीत कर वहाँ (रायगढ़) में अपनी राजधानी बनाई और इच्छित (मुँह-माँगा) दान देकर अपना सुन्दर यश सारे संसार में फैलाया ।

अलंकार—हेतु । 'रुचि दान में कीन्हो सुजस जहान' यही हेतु है ।

कवि-वंश-वर्णन

दो०—देसन देसन ते गुनी, आवत जाचन ताहि।
तिन में आयो एक कवि, भूषन कहियतु जाहि ॥२५॥

शब्दार्थ गुनी=गुणी, विद्वान्। कहियतु=कहा जाता है।

अर्थ—उसके (अर्थात् शिवाजी के) पास देश देश से विद्वान् याचना (पुरस्कार प्राप्ति) की इच्छा से आते हैं, उन्हीं में एक कवि भी आया जिसे 'भूषण' नाम से पुकारा जाता था।

अलंकार—अनुप्रास।

दो०—दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत तिविक्रम पुर सदा, तरनि-तनूजा तीर ॥२६॥

शब्दार्थ—दुज=द्विज, ब्राह्मण। कनौजकुल=कान्यकुब्ज। रतनाकर=रत्नाकर, भूषण के पिता का नाम है। तिविक्रमपुर=त्रिविक्रमपुर, वर्तमान तिकवाँपुर,, यह जिला कानपुर में है। तनूजा=पुत्री। तरनि तनूजा=सूर्य की पुत्री, यमुना।

अर्थ—वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण कश्यप गोत्र, धैर्यवान श्री रत्नाकर जी का पुत्र था और यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर ग्राम में रहता था।

अलंकार—यहाँ 'क' और 'त' वर्णों को कई वार आवृत्ति होने से 'वृत्यनुप्रास' है।

दो०—बीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप ॥२७॥

शब्दार्थ—बीरबर=अकबर के मन्त्री बीरबल। विश्वेश्वर=श्री विश्वेश्वर महादेव। तद्रूप=समान।

अर्थ—(जिस गाँव में) बीरबल के समान महाबली राजा और कवि हुए तथा श्री विश्वेश्वर महादेव के समान बिहारीश्वर महादेव का जहाँ मंदिर था।

अलंकार—'बीर बीर' में यमक। 'बीरबर से कवि अरु भूप' में उपमा। 'देवबिहारीश्वर विश्वेश्वर तद्रूप, में रूपक।

दो०—कुल सुलंक चितकूटपति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषन पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—कुल सुलंक = सोलंकी वंशीय क्षत्रिय । रुद्र = हृदय राम सोलंकी के पुत्र 'रुद्रशाह', चित्रकूट के राजा ।

अर्थ—हृदयरामजी के पुत्र चित्रकूट के महासाहसी, शील के समुद्र, राजा रुद्रशाह सोलंकी ने भूषण जी को 'कवि भूषण' की पदवी प्रदान की।

दो०—सिव चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषन के चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों, भूषित करों कवित्त॥ २९ ॥

अर्थ—शिवाजी के चरित्र को देखकर भूषण कवि के चित्त में यह बात उत्पन्न हुई कि इनके विषय में भिन्न भिन्न अलंकार सहित काव्य रचना करूँ।

अलंकार—यमक ।

सुकविन हूँ की कछु कृपा, समुझि कविन को पंथ।
भूषन भूषनमय करत, "शिव भूषन" सुभ ग्रंथ ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—पथ = मार्ग । शिव भूषन = शिवराज भूषण (पुस्तक)।

अर्थ—भूषण जी कहते हैं कि श्रेष्ठ कवियों की कुछ कृपा से उनका मार्ग जान कर इस श्रेष्ठ "शिवराज भूषण" पुस्तक को अलंकारमय लिखता हूँ।

अलंकार—भूषण भूषण में 'यमक'।

दो०—भूषन सब भूषननि में उपमहिं उत्तम चाहि।
याते उपमहि आदि दै, बरनत सकल निबाहि ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—चाहि = देखकर, जानकर । आदि दै = आरम्भ में रखकर । सकल निबाहि = सब नियमों को निबाहते हुए, पालते हुए।

अर्थ—भूषण जी कहते हैं कि समस्त अलंकारों में उपमा को ही सबसे उत्तम जानकर, (काव्य के) सब नियमों का पालन करते हुए आरम्भ में मैं उसका ही वर्णन करता हूँ।

अलंकार यमक ।

अलंकार-निरूपण

उपमा

लक्षण

दोहा—जहाँ दुहुन की देखिए, सोभा बनति समान।
उपमा भूषण ताहि को, भूषन कहत सुजान ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—दुहुन = दोनों (उपमेय और उपमान)

अर्थ—जहाँ दो वस्तुओं की [आकृति, गुण और दशा की] शोभा एक-सी वर्णन की जाय, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ विद्वान् उपमा अलङ्कार मानते हैं।

जाको बरनन कीजिए, सो उपमेय प्रमान।
जाकी सरवरि कीजिए, ताहि कहत उपमान ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ--प्रमान = ठीक, निश्चय कर मानो। सरवरि = समता।

अर्थ—जिसका वर्णन किया जाता है, उसे उपमेय मानते हैं और जिस वस्तु से समता की जाती है उसे उपमान कहते हैं।

उदाहरण—मनहरण कवित्त

मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हों,
सरजा, सुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज को।
भूषण, कुमिस गैर मिसिल खरे किए को,
किये म्लेच्छ मुरछित करि कै गराज को ॥

अरे ते गुसुलखाने* बीच ऐसे उमराय,
लै चले मनाय महाराज सिवराज को।
दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को ॥३४॥

शब्दार्थ—कुरुख=बुरा रुख, अप्रसन्न। चकत्ता—चंगेज़खाँ के

---

* इस गुसलखाने वाली घटना का भिन्न-भिन्न इतिहास-लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। सभासद और चिटनीस आदि मराठा बखर के लेखकों ने लिखा है कि जब शिवाजी औरंगज़ेब के दरबार में पहुँचे तब वे अपनी श्रेणी के आगे जोधपुर-नरेश (बुँदेला-मेमायर्स के मतानुसार यह उदयपुर के भीमसिंहजी का पुत्र रामसिंह सीसौदिया था) को देखकर बिगड़ गये और उसे मारने के वास्ते रामसिंह जी (मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र) से कटार माँगी, उसके न मिलने पर अपमान के कारण शिवाजी बेहोश होगये और गुसलखाने में लेजाकर इत्र आदि सुँघाने पर इन्हें होश हुआ। ओर्मी (Orme) ने लिखा है शिवाजी ने सम्राट् की बहुत निन्दा की और पंचहज़ारियों में खड़ा कर देने के कारण क्रोध और अपमान के मारे आत्मघात करना चाहा, परन्तु पास वालों ने रोक दिया। जनानखाने में भाग जाने वाली घटना अमरसिंह राठौर और बादशाह शाहजहाँ को प्रसिद्ध हैं। शिवाजी और औरंगज़ेब के विषय में ऐसी घटना होने का वर्णन इतिहास में नहीं मिलता। केवल भूषण कवि ने इसका वर्णन किया है। सम्भव है ऐसा हुआ हो। किसी महाशय ने 'गुसलखाने' का अर्थ गोसलखाँ किया है और इस नाम का कोई व्यक्ति विशेष औरंगज़ेब का अंग-रक्षक माना है, किन्तु "गुसलखाने', के आगे 'बीच' शब्द और होने से उनका गोसलखाँ वाला अर्थ ठीक नहीं बैठता।

वंशज, औरङ्गज़ेब । सुरेस = इन्द्र । यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार श्री व्रजराज (कृष्ण) ने इन्द्र की पूजा बंद कर दी तब क्रुद्ध हो इन्द्र ने व्रजमंडल पर वर्षा की । श्रीकृष्ण ने वर्षा से बचने के लिए गोवर्धन पर्वत को अपने कर पर धारण किया । वर्षा की अधिकता के कारण एक बार श्रीकृष्ण को भी दुविधा होगई थी । दुचित्त=दुविधावान, शंकायुक्त । कुमिस = झूठा बहाना । गैरमिसिल= (फा०) अयोग्यस्थान, बेमौक़े । गराज = गर्जना । दाबदार = मस्त । दीह = (सं० दीर्घ), बड़ा । दलराय = दल का राजा, दलपति, झुंड का मुखिया । गड़दार = भाला ले कर चलने वाले लोग जो मस्त हाथी को पुचकार कर आगे बढ़ाते हैं । अड़दार = मस्त, अड़ियल ।

अर्थ—शिवाजी ने औरंगजेब से मिलते ही उसे ऐसा अप्रसन्न कर दिया जैसे सुरेश (इन्द्र) ने व्रजराज (श्रीकृष्ण) को किया था । भूषण कवि कहते हैं कि झूठे बहाने से बेमौक़े (अनुचित स्थान पर) खड़ा करने के कारण उन्होंने गर्जना करके सब मुसलमानों को मूर्छित कर दिया । गुसलखाने के निकट अड़ने से (ठिठकने पर) ही सारे उमराव अमीर उनकी खुशामद करके ऐसे ले चले जैसे कि सोटेमार लोग अत्यन्त क्रोधित मस्त अड़ियल बड़े दलपति हाथी को पुचकार करके ले जाते हैं ।

विवरण—इसमें पहले शिवाजी और औरंगज़ेब (उपमेयों) को क्रमशः इन्द्र और कृष्ण की उपमा दी है, फिर शिवाजी को मस्त हाथी की उपमा दी गई है । इसमें औरंगज़ेब को श्रीकृष्ण की उपमा देना उचित प्रतीत नहीं होता; वरन् कुछ लोग इसे दोष समझते हैं ।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

**साइतखाँ दुरजोधन सो औ दुसासन सो जसवन्त निहार्यो ।
द्रोन सो भाऊ, करन्न करन्न सो, और सबै दलसो दल भार्यो ॥
ताहि विगोय सिवा सरजा, भनि भूषन, औनि छता यों पछार्यो ।
पारथ कै पुरुषारथ भारथ जसे जगाय जयद्रथ मार्यो ॥३५॥**

शब्दार्थ—सासताखाँ—शाइस्ताखाँ, दिल्ली का एक बड़ा सरदार और सेनानायक था। यह सन् १६६३ ई० में चाकन को जीतता हुआ पूना में ठहरा। ५ अप्रैल १६६३ ई० की रात को शिवाजी २०० योद्धाओं को साथ लेकर इसके महल में घुस गये और उन्होंने इसके पुत्र को मार डाला। इस पर भी तलवार चलाई, परन्तु यह एक खिड़की से कूद गया। इसके एक हाथ की कुछ अँगुलियाँ कट गईं। जसवन्त—मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह जी, ये शाइस्ताखाँ के साथ १६६३ ई० में गये थे। भाऊ—बूँदी के छत्रसाल हाड़ा के पुत्र थे। ये सन् १६५८ ई० में गद्दी पर बैठे और औरंगजेब की तरफ़ से शिवाजी से लड़े थे। करन्न—करणसिंह, बीकानेर के महाराजा रायसिंह जी के पुत्र थे। इन्होंने सन् १६६३ ई० से सन् १६७४ ई० तक राज किया। इन्हें दो हज़ारी का मनसब औरंगज़ेब ने दिया था। बिगोय = (सं० विगोपन) छुपाकर, नष्ट करके। औनिछता = औनि (अवनि) पृथ्वी, छता = छत्र, पृथ्वी का छत्र, औरंगजेब।*

---

*औनिछता का अर्थ मिश्रबन्धुओं द्वारा सम्पादित भूषण-ग्रन्थावली की पाद-टिप्पणी में कुकुरमुत्ता (बरसात की फूली लकड़ी) दिया है। इस अर्थ के मानने पर न अर्थ संगत बैठता है न रोचकता ही रहती है। बंगवासी प्रेस वाली प्रति में इस पाठ के स्थान पर 'अल्लिफतें' पाठ मिलता है जिसका अभिप्राय फतहअली से है। किन्तु फतहअली कोई इतना प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं था कि जिसे 'जयद्रथ' की उपमा दी जाय। जयद्रथ के मारने में अर्जुन को अन्य शत्रुओं की अपेक्षा कहीं अधिक श्रम करना पड़ा था। दूसरे इस पाठ के रखने पर पहले से चला आया हुआ अनुप्रासों का सिलसिला भी टूटता है, अतः हमें यह 'अल्लिफतें' वाला पाठ सर्वथा अग्राह्य जान पड़ता है। 'औनिछता' पाठ से अनुप्रास का ताँता नहीं टूटता। इस

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने शाइस्ताखाँ को दुर्योधन के समान, जसवन्तसिंह को दुःशासन के समान, भाऊ को द्रोणाचार्य और करणसिंह को कर्ण के समान और समस्त प्रबल सेना को (कौरवों की बड़ी भारी) सेना के समान देखा (समझा) तथा उन्हें नष्ट करके औरंगज़ेब को इस तरह से पछाड़ा (हराया) जैसे पार्थ (अर्जुन) ने महाभारत के युद्ध में जयद्रथ को सावधान करके मारा था।

विवरण—यहाँ शाइस्ताखाँ, जसवंतसिंह, भाऊ और करण-सिंह आदि उपमेयों को दुर्योधन, दुशासन, द्रोणाचार्य और कर्णादि की उपमा दी है।

लुप्तोपमा

लक्षण—दोहा

उपमा वाचक पद धरम, उपमेयो उपमान।
जा मैं सो पूर्णोपमा, लुप्त घटत लौं मान ॥३६॥

शब्दार्थ—वाचकपद=सा, सम, जिमि आदि। धरम=धर्म, स्वभाव। गुण=काला, पीला कठोर, कोमल आदि।

अर्थ—जिस उपमा में वाचकपद, धर्म, उपमेय और उपमान ये चारों हों उसे पूर्णोपमा कहते हैं और जहाँ इनमें से किसी की कमी हो उसे लुप्तोपमा कहते हैं।

का लक्ष्यार्थ 'औरंगज़ेब' लेने से अर्थ की उचितता एव रोचकता दोनों ही बढ़ती हैं। इसमें संदेह नहीं कि औरंगज़ेब स्वयं कभी किसी युद्ध में शिवाजी से नहीं लड़ा किन्तु उस की सेना का परास्त होना ही 'औरंगज़ेब' को पछाड़ना है। जयद्रथ भी उस दिन लड़ा नहीं था, केवल लक्ष्य था।

उदाहरण (धर्मलुप्ता)—मालती सवैया ।

पावकतुल्य अमीतन को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को ।
आनन्द भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को ॥
भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषन भाखत शत्रु मुधा को ।
बंदन तेज त्यों चंदन कीरति सोंधे सिंगार बधू बसुधा को ॥३७॥

शब्दार्थ—धाम सुधा को = सुधा को धाम । (सुधा = अमृत + धाम = स्थान) = सुधाधाम, चन्द्रमा । कुमुद = रात को खिलने वाला कमल । कुमुदावलि = कुमुद + अवलि = कुई (नीलोफर) की पंक्ति । बहुधा = बहु + धा अनेक प्रकार । मुधा = निष्फलता अथवा असत्य । बन्दन = ईंगुर, सिंदूर । सोंधे = सुगंधि ।

अर्थ—शिवाजी शत्रुओं के लिए अग्नि के समान (तपाने वाले) और अपने मित्रों को अमृत के भंडार चन्द्रमा के समान वैसे ही सुखदायक होगये जैसे, गहरे समुद्र, कुमुदों और तारों के लिए चन्द्रमा अनेक प्रकार से आनन्द देने वाला होता है । भूषण कवि कहते हैं कि पृथ्वी पर महाबली राजा शिवाजी निष्फलता अथवा असत्य के शत्रु होगये अर्थात् उनका कार्य सदा सफल होता था, अथवा वे कभी असत्य भाषण नहीं करते थे । और सिंदूर के समान उनका तेज और चंदन के समान उनका यश, पृथिवी-रूपी नव-वधू के लिए सुगंधित श्रृंगार की वस्तुएँ हो गईं ।

विवरण—यहाँ अग्नि का धर्म 'गर्मी' और चन्द्रमा का धर्म 'शीतलता' नहीं दिया है । अतः धर्मलुप्तोपमा अलंकार है ।

दूसरा उदाहरण—मनहरण

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि,
जापता करन हारे नेक हू न मनके ।
भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भए, उमराय तुजुक करन के ॥

साहि रह्यो जकि, सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि, बने ब्योंत अनबन के।
ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूँदि तुरकन के ॥४८॥

शब्दार्थ—बिललाने=व्याकुल हो कर असम्बद्ध बातें करने लगे। जापता=(फ़ा० ज़ाब्ता) प्रबन्ध। मनके=हिले डुले। तुजुक=(तुर्की अदब) आदर, सत्कार। जकि=जड़ीभूत, भौंचक्का सा। चकि=चकित। ब्योंत=मामला। तारे=आकाश के तारे, आँखों की पुतली।

अर्थ—शिवाजी को दरबार में आया हुआ देख कर चोबदार लोग व्याकुल हो उठे और (दरबार के) प्रबन्धक गण सब सन्न रह गये, हिले तक नहीं। भूषण कवि कहते हैं कि कोई कोई सरदार तो शिवाजी का अदब बजा लाने की इच्छा करने लगे। पर औरंगजेब भौंचक्का सा रह गया। शिवाजी भी औरंगजेब की ओर देखने लगे, इस प्रकार सब अनबन होगया, सारा मामला बिगड़ गया। ग्रीष्म के सूर्य के समान शिवाजी के प्रताप को देख कर तारों के समान तुर्कों की आँखों की पुतली मुँद गई।

विवरण—यहाँ सूर्य का धर्म 'तेज' लुप्त है।

अनन्वय

लक्षण—दोहा

जहाँ करत उपमेय को, उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वै कहत हैं, भूषन सकल सुजान ॥३६॥

शब्दार्थ—उपमेय=स्वयं उपमेय ही।

अर्थ—जहाँ उपमेय का उपमान स्वयं उपमेय ही वर्णन किया जाय अर्थात् एक ही वस्तु उपमान और उपमेय का काम दे वहाँ चतुर लोग अनन्वय अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसमें दूसरी वस्तु (उपमान) नहीं होती, किन्तु

उपमेय और उपमान एक ही वस्तु होती है । उपमा अलंकार में उपमेय और उपमान दो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ होती हैं ।

उदाहरण—मालती सवैया ।

साहि तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुंदुभि बाजै ।
भूषन भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढ़ि मौजनि साजै ॥
राजन को गन, राजन ! को गनै ? साहिन मैं न इती छवि छाजै ।
आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै ॥४०॥

शब्दार्थ—दुंदुभि=नगाड़ा । भोज=उज्जयिनी के प्रसिद्ध दानी महाराजा भोज । गरीबनेवाज=(फा०) गरीबों पर कृपा करने वाले ।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र शिवाजी ! आपके दरवाज़े पर प्रतिक्षण दान के नगाड़े बजते रहते हैं । भिक्षुकों की भीड़ (आपके यहाँ) राजा भोज से भी अधिक मौज (आनन्द) प्राप्त करती है । हे राजन् ! आपके सम्मुख अन्य राजाओं की तो क्या गिनती है ? बादशाहों में भी इतनी छवि नहीं मिलती । आज कल पृथिवी पर दीनों पर कृपा करने वाले आप के समान, हे शिवाजी ! आप ही हैं ।

विवरण—यहाँ 'तो सों तुही' इस पद में उपमान और उपमेय एक ही वस्तु है ।

प्रथम प्रतीप

लक्षण—दोहा

तहँ प्रसिद्ध उपमान को, करि बरनत उपमेय ।
तहँ प्रतीप उपमा कहत, भूषन कविता प्रेय ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—प्रेय -प्रेमी

अर्थ—जहाँ प्रसिद्ध उपमान को उपमेय के समान वर्णन किया जाय वहाँ कविता-प्रेमी सज्जन प्रतीप अलंकार कहते हैं ।

सूचना—प्रतीप पाँच प्रकार के होते हैं । यह प्रथम है । यह

उपमा का ठीक उलटा होता है, इसमें उपमेय तो उपमान हो जाता है और उपमान उपमेय हो जाता है। जैसे, नेत्र से कमल।

उदाहरण—मालती सवैया

छाय रही जितही तितही अति ही छवि छीरधि रंग करारी।
भूषन सुद्ध सुधान के सौधनि सोधति सी धरि ओप उज्यारी॥
यों तम तोमहि चाबि कै चंद चहूँ दिसि चाँदनि चारु पसारी।
ज्यों अफजल्लहि मारि मही पर कीरति श्री सिवराज बगारी॥४२॥

शब्दार्थ—छीरधि=क्षीर सागर, दूध का समुद्र। करारी=चोखी सुन्दर। सुधान=सुधा का बहुवचन, (चूना)। सौधनि=महलों को। सोधति=साफ करती। ओप=चमक। तोप=समूह। बगारी=फैलाई।

अर्थ—क्षीर-सागर के (शुभ्र) रंग की छबि के समान चाँदनी जहाँ तहाँ छाई हुई है और वह स्वच्छ चूने के बने महलों को साफ करके उज्वल चमक दे रही है। भूषण कहते हैं कि चन्द्रमा ने अंधकार के समूह को दबाकर चारों ओर सुन्दर चाँदनी ऐसे फैलाई है, जैसे शिवाजी ने अफ़जलखाँ को मारकर पृथिवी पर अपनी कीर्ति फैलाई थी।

विवरण—यहाँ 'चाँदनी' उपमान को उपमेय कथन किया है। और कीर्ति उपमेय को उपमान बनाया गया है, यही उलटापन है।

द्वितीय प्रतीप

लक्षण—दोहा

करत अनादर बर्न्य को, पाय और उपमेय।
ताहू कहत प्रतीप जे, भूषन कविता प्रेय॥४३॥

शब्दार्थ—बर्न्य=उपमेय।

अर्थ—जहाँ दूसरे उपमेय के मिलने से वर्ण्य (प्रस्तुत उपमेय) का अनादर हो वहाँ कविता-प्रेमी सज्जन द्वितीय प्रतीप कहते हैं।

सूचना—इसमें उपमान को उपमेय मानकर उपमेय का अनादर किया जाता है।

उदाहरण—दोहा ।

शिव ! प्रताप तव तरनि सम, अरि पानिप हर मूल ।
गरब करत केहि हेत है, बड़वानल तो तूल ॥४४॥

शब्दार्थ = पानिप = तेज, कान्ति (पानी) । बड़वानल=समुद्र के अन्दर एक अग्नि । तूल–(सं०) तुल्य, समान

अर्थ—हे शिवाजी ! आपका प्रताप सूर्य के समान है, और वह शत्रुओं के तेज (कान्ति) को समूल नष्ट करने वाला है, परन्तु आप अभिमान क्यों करते हैं, बड़वानल अग्नि भी तो आपके समान है ।

विवरण—यहाँ शिवाजी का प्रताप उपमेय है, किन्तु बड़वानल जो उपमान होना चाहिए उसे यहाँ उपमेय बना कर 'गरब करत केहि हेत' द्वारा उपमेय (शिवाजी के प्रताप) का अनादर किया गया है ।

तृतीय प्रतीप

लक्षण—दोहा

आदर घटत अबर्न्य को, जहाँ बर्न्य के जोर ।
तृतिय प्रतीप बखानहीं, तहँ कविकुल सिर मौर ॥४५॥

शब्दार्थ—अबर्न्य = उपमान ।

अर्थ—जहाँ उपमेय के प्रभाव के कारण उपमान का अनादर हो वहाँ सर्व श्रेष्ठ कवि तृतीय प्रतीप कहते हैं ।

उदाहरण—दोहा

गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान ।
फैली इती समाजगत, कीरति सिवा खुमान ॥४६॥

शब्दार्थ —कत=क्यों, क्या । छीर = क्षीर, दूध । समाजगत= दुनियाँ में ।

अर्थ—हे दूध और हीरे के समान उज्ज्वल चाँदनी ! तू (अपनी उज्ज्वलता का और संसार में व्यापक होने का) क्या घमंड करती है, खुमान राजा शिवाजी की कीर्ति भी दुनियाँ में इतनी ही फैली हुई है ।

विवरण—यहाँ 'चाँदनी' उपमान है, इसकी उज्ज्वलता एवं व्यापकता के गर्व को 'शिवाजी की कीर्ति' उपमेय ने दूर किया है।

चतुर्थ प्रतीप

पाय बरन उपमान को, जहाँ न आदर और।
कहत चतुर्थ प्रतीप हैं, भूषन कवि सिर मौर ॥४७॥

शब्दार्थ—बरन—वर्ण्य, उपमेय।

अर्थ—जहाँ उपमेय को पाकर अन्य किसी उपमान का आदर न हो [अयोग्य बताया जाय] वहाँ श्रेष्ठ कवि चतुर्थ प्रतीप अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चंदन में नाग, मद भरयो इंद्रनाग,
विष भरो सेस नाग, कहै उपमा अबस को।
भोर ठहरात न, कपूर बहरात मेघ,
सरद उड़ात बात लाके दिसि दस को॥
शंभु नीलग्रीव, भौंर पुंडरीक ही बसत,
सरजा सिवाजी सन भूषन सरस को?
छीरधि मैं पंक, कलानिधि मैं कलंक याते,
रूप एक टंक ए लहैं न तव जस को॥४८॥

शब्दार्थ—नाग=सर्प, । इन्द्रनाग = ऐरावत । अबस = व्यर्थ । बहरात = उड़ जाता है ।·भोर = प्रभात । ग्रीव = कंठ । पुंडरीक = श्वेत कमल । छीरधि = क्षीर सागर । कलानिधि = चन्द्रमा । टंक = एक तोल जो २४ रत्ती का होता है, यहाँ तात्पर्य 'रत्तीभर' से है।

अर्थ - चन्दन में सर्प लिपटे रहते हैं; ऐरावत हाथी मदमत्त है, शेषनाग में विष है इसलिए इन (दूषित वस्तुओं) से शिवाजी के शुभ्र यश की कौन व्यर्थ उपमा दे ? अर्थात् कोई नहीं देता । प्रभात ठहरता नहीं; कपूर उड़ जाता है; वात (हवा) के लगने से शरद ऋतु के बादल भी दसों दिशाओं

को उड़ जाते हैं, शिवजी का कंठ नीला है और कमलों में भौंरे रहते हैं। अतः भूषण कवि कहते है कि सरजा राजा शिवाजी की बराबरी इनमें से भी कोई नहीं कर सकता। क्षीर सागर में कीचड़ है, चंद्रमा में कलंक है। इसलिए ये भी आपके यश के रूप की समानता रत्ती भर नहीं पा सकते।

विवरण—यँहा चन्दन, ऐरावत, शेषनाग, प्रभात और कर्पूरादि उपमानों में दोष होने से उनको शिवाजी के यश 'उपमेय' से अयोग्य सिद्ध किया गया है। कीर्ति (यश) का रंग श्वेत माना जाता है। उक्त चन्दन ऐरावत, पुंडरीक, शिव, शेषनाग, प्रभात और कर्पूरादि उपमान भी श्वेत होते हैं, किंतु कुछ न कुछ दोष होने से वे अयोग्य सिद्ध किये गये हैं।

पंचम प्रतीप

लक्षण—दोहा

हीन होय उपमेय सों, नष्ट होत उपमान।
पंचम कहत पतीप तेहि, भूषन सुकवि सुजान ॥४०॥

शब्दार्थ—हीन तुच्छ, न्यून, घटकर। नष्ट होत=लुप्त होता है व्यर्थ सिद्ध किया जाय।

अर्थ—उपमान उपमेय से किसी प्रकार घटकर होने के कारण जहाँ नष्ट हो जाय (छिप जाय) वहाँ श्रेष्ठ कवि पंचम प्रतीप कहते हैं।

सूचना—भूषण का यह पंचम प्रतीप का लक्षण ठाक नहीं है। इसका वास्तव में लक्षण यह है—"व्यर्थ होई उपमान जब बर्ननीय लखि सार" अर्थात् जब यह कह कर उपमान का तिरस्कार किया जाय कि उपमेय ही स्वयं उसका (उपमान का) कार्य करने में समर्थ है तब उस 'उपमान' की आवश्यकता ही क्या ! भूषण जी के दिये हुए तीन उदाहरणों में प्रथम तो उनके दिए हुए लक्षण के

अनुसार है; परन्तु शेष दो पंचम प्रतीप के वास्तविक लक्षण से मिलते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तो सम हो सेस, सो तो बसत पताल लोक,
ऐरावत गज, सो तो इन्द्रलोक सुनियै।
दुरे हंस मानसर ताहि मैं कैलासधर,
सुधा सरबर सोऊ छोड़ि गयो दुनियै।
सूर दानी सिरताज महाराज सिवराज,
रावरे सुजस सम आजु काहि गुनियै ?।
भूषन जहाँ लौं गनौं तहाँ लौं भटकि हार्‌यौ,
लखिए कछू न केती बातैं चित चुनियै ॥५०॥

शब्दार्थ—कैलासधर = महादेव। सुधा सरबर = अमृत का श्रेष्ठ सरोवर। रावरे=आपके। गुनियै = जानिये। चुनियै = चुनी, ढूँढी।

अर्थ—तुम्हारे यश के समान शुभ्र शेषनाग था, पर वह तो अब पाताल में रहता है; ऐरावत हाथी था, वह अब इन्द्रलोक में सुना जाता है; हंस मानसरोवर में जा छुपे हैं, उसी में शिवजी भी लुप्त हो गए हैं और अमृत का सरोवर भी दुनियाँ को छोड़ कर चला गया है। हे बलवानों और दानियों में श्रेष्ठ शिवाजी महाराज ! आपके यश के सम्मुख आज किस की गिनती की जाय अर्थात् आपके यश से किसकी उपमा दें क्योंकि आपके यश के समान शुभ्र जो पदार्थ थे वे आपके यश की उज्ज्वलता को देखकर इधर उधर जा छिपे हैं। भूषण जी कहते हैं कि जहाँ तक मैंने सोचा वहाँ तक खोज कर थक गया, सब व्यर्थ रहा, जितनी बातें मन में सोचीं उन में से कोई भी आपकी बराबरी की नहीं दिखाई देती।

विवरण—यहाँ दिखाया गया है कि शेष, ऐरावत, हाथी, हंस, शिव, अमृत, आदि उपमान, शिवाजी के यश उपमेय से घट कर

होने के कारण क्रमशः पाताल, इन्द्रलोक, मानसरोवर और स्वर्गलोक में जा छिपे हैं।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

कुन्द कहा, पय वृन्द कहा, अरु चन्द कहा, सरजा जस आगे ?
भूपन भानु कृसानु कहाऽब खुमान प्रताप महीतल पागे ?
राम कहा द्विजराम कहा, बलराम कहा, रन मैं अनुरागे ?
बाज कहा, मृगराज कहा, अति साहस मैं सिवराज के आगे ?॥५१॥

शब्दार्थ—कुन्द = एक सफेद फूल। पय वृन्द = दूध का समूह क्षीर सागर। कृसानु = आग। कहाऽब = कहा अब, अब क्या। पागे- फैले हुए। द्विजराम = परशुराम। अनुरागे = अनुरक्त होने पर। रन में अनुरागे = युद्ध में लड़ने पर। मृगराज = सिंह।

अर्थ—शिवाजी के यश के सामने कुन्द पुष्प, क्षीरसागर और चन्द्रमा क्या हैं ? अर्थात् कुछ भी नहीं हैं। भूपण कहते हैं, खुमान राजा शिवाजी के सारी पृथ्वी पर फैलते हुए प्रताप के आगे सूर्य और कृशानु (अग्नि) भी क्या हैं, अर्थात् तुच्छ हैं। युद्ध में जब शिवाजी भिड़ जाते हैं तब उनके सामने श्रीराम, बलराम, और परशुराम भी क्या हैं ? अर्थात् वे शत्रुओं का इतनी भयंकरता से संहार करते हैं कि इन बड़े-बड़े बलवानों की भयंकरता भी फीकी पड़ जाती है। साहस में उनके सम्मुख बाज और सिंह भी क्या हैं ?

विवरण—यहाँ शिवाजी के यश (उपमेय के सामने कुन्द) क्षीर सागर और चन्द्रमा आदि उपमान व्यर्थ दिखाये गये हैं। पुनः शिवाजी के प्रताप (उपमेय) के सामने भानु, अग्नि, आदि उपमानों की व्यर्थता प्रकट की गई है। फिर शिवाजी की वीरता 'उपमेय' के सामने राम, परशुराम, बलराम आदि उपमानों की वीरता को तुच्छ

दिखाया गया है, इसी प्रकार अन्त में शिवाजी के साहस 'उपमेय' के सामने बाज और सिंह 'उपमानों' की व्यर्थता दिखाई गई है।

यहाँ उपमेयों के सामने उपमानों की व्यर्थता प्रकट की गई है; उन्हें नष्ट नहीं किया गया। यह उदाहरण भूषण के दिए हुए लक्षण से नहीं मिलता किंतु वास्तविक लक्षण से मिलता है।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

यों सिवराज को राज अडोल कियो सिव जोऽब कहा धुव धू है।
कामना-दानि खुमान लखे न कछू सुर-रूख न देवगऊ है?
भूषन भूपन‡ में कुल भूषन भौंसिला भूप धरे सब भू है।
मेरु कछू न कछू दिग्दन्ति न कुण्डलि कोल कछू न कछू है ॥५२॥

शब्दार्थ—जोऽब = जो अब। धुव=ध्रुव, तारे का नाम। धू धुव निश्चल (ध्रुव तारा निश्चल माना जाता है)। कामना दानि=मनोवांछित दान देने वाला। सुररूख=कल्पवृक्ष (इस वृक्ष के नीचे जिस प्रकार की भावना की जाती है वह सिद्ध होती है)। देव गऊ = काम धेनु, इसमें भी कल्पवृक्ष जैसा ही गुण है। दिग्दन्ति = दिग्गज, दिशाओं के हाथी। कुण्डलि=सर्प, शेषनाग। कोल=शूकर; वराह कछू=कच्छप, कछुवा।

अर्थ—श्री महादेव जी ने शिवाजी के राज को ऐसा अटल कर दिया

---

‡ यहाँ 'भूपन' के स्थान पर 'भूषन पाठ भी मिलता है, परन्तु वह ठीक नहीं प्रतीत होता, यदि 'भूषण भूषण में कुल भूषण' पाठ किया जाय तो दूसरे भूषण को भूखन पढ़ना चाहिये, जिसका अर्थ भूखण्ड अर्थात् पृथिवी है। तब अर्थ इस प्रकार करना होगा—भूषण कहते हैं कि भूमंडल में कुलश्रेष्ठ महाराजा शिवाजी भौंसले समस्त पृथ्वी को इस प्रकार धारण किये हुए हैं।

कि ध्रुव तारा भी अब उसके सम्मुख क्या अटल है ? मनोवांछित दान देने वाले शिवाजी को देखकर कल्पवृक्ष और कामधेनु भी कुछ नहीं जँचते अर्थात् तुच्छ दिखाई देते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि राजाओं के कुल में भूषण (श्रेष्ठ) भौंसिला राजा शिवाजी समस्त भूमि का भार अपने ऊपर इस तरह धारण किए हुए हैं कि न मेरु पर्वत की आवश्यकता है न दिग्गजों की और न शेष नाग, वराह तथा कच्छप की आवश्यकता है।

सूचना—पुराणों में वर्णन आता है कि पृथ्वी कहीं हवा में उड़ न जाय, अतएव पृथ्वी को दबाये रखने के लिए दसों दिशाओं में दस बड़े-बड़े हाथी हैं। भगवान ने वराहावतार लेकर पृथ्वी को अपने दाँत से उबारा और धारण किया था, अतएव वराह की गणना भी पृथ्वी के धारण करने वालों में है। ऐसा कहा जाता है कि सब से नीचे कच्छप है, उसकी पीठ पर शेषनाग कुंडली लगाए बैठा है। उसके फणों पर ही इस पृथ्वी का सारा भार है। अतः कच्छप और शेष भी पृथ्वी को धारण करने वाले हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी उपमेय के सम्मुख मेरु पर्वत, दिग्गज, शेष नाग आदि उपमानों की व्यर्थता प्रकट की है।

उपमेयोपमा

लक्षण—दोहा

जहाँ परस्पर होत है, उपमेयो उपमान।
भूषन उपमेयोपमा, ताहि बखानत जान ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—जान=जानो।

अर्थ—जहाँ आपस में उपमेय और उपमान ही एक दूसरे के उपमान और उपमेय हों, वहाँ उपमेयोपमा अलंकार होता है।

सूचना—इस में उपमेय की उपमान से और उपमान की

उपमेय से उपमा दी जाती है, किसी तीसरी वस्तु की उपमा नहीं दी जाती।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सो है,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।
भौंसिला भुवाल! तेरो जस हिमकर सो है,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
भूषन भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकरौ है तेरो हिए सुखकर सो।
साहि के सपूत सिव साहि दानि! तेरो कर
सुरतरु सो है, सुरतरु तेरो कर सो ॥५४॥

शब्दार्थ—समत्थ=(सं०) समर्थ, शक्तिशाली। दिनकर=सूर्य। सो है=समान है। सोहै=शोभित होता है। निकर=समूह। भुवाल=भूपाल। हिमकर=चन्द्रमा। अकर=आकर, खान। रतनाकर=समुद्र। सुखकर=सुखदाई। सुरतरु=कल्पवृक्ष।

अर्थ—हे शक्तिशाली शिवाजी! आपका तेज सूर्य के समान है और सूर्य आपके तेज-पुंज के समान शोभित है। हे भौंसिला राजा! आपका यश (उज्ज्वलता में) चन्द्रमा के समान है और चन्द्रमा आपके यश की खान के समान शोभित है। भूषण कवि कहते हैं कि आपका हृदय (गंभीरता में) समुद्र के समान है और समुद्र आपके सुखदाई हृदय के समान गंभीर है। हे साहजी के सुपुत्र दानी शिवाजी! (मुँह माँगा दान देने में) आपका हाथ कल्पवृक्ष के समान है और कल्पवृक्ष आपके हाथ के समान है।

विवरण—यहाँ प्रथम शिवाजी का तेज, उनका यश, उनका हृदय और उनका कर, क्रमशः उपमेय हैं फिर ये ही, सूर्य, हिमकर,

रत्नाकर और कल्पवृक्ष आदि के (जो पहले उपमान थे और बाद में उपमेय हो गए हैं) क्रमशः उपमान कथन किये गए हैं।

मालोपमा

लक्षण—दोहा

जहाँ एक उपमेय के, होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा, भूषन सुकवि सुजान ॥५५॥

अर्थ—जिस स्थान पर एक ही उपमेय के बहुत से उपमान हों उसे श्रेष्ठ कवि मालोपमा अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रवाह पर राम-द्विजराज है।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
'भूषन' बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है ॥५६॥

शब्दार्थ—अम्भ=(सं० अंभस्) जल, यहाँ समुद्र से तात्पर्य है। दंभ=घमंडी। रघुकुलराज=रामचन्द्र। बारिवाह=(वारि+वाह) जल वहन करने वाला, बादल। रतिनाह=रति के स्वामी, कामदेव। रामद्विज-राज=परशुराम। दावा=वन की अग्नि। द्रुमदण्ड=वृक्षों की शाखाएँ। बितुण्ड=हाथी। तम अंस=अंधकार का समूह। कान्ह=कृष्ण।

अर्थ—जिस प्रकार इन्द्र ने जंभ राक्षस को, श्री राम ने घमंडी रावण को, महादेव जी ने रतिनाथ (कामदेव) को, परशुराम ने सहस्रबाहु

को और श्रीकृष्ण ने कंस को नष्ट किया* और जैसे बाड़व (बड़वानल) समुद्र को, पवन बादलों की, दावाग्नि (जंगल की आग) वृक्षों की शाखाओं को, चीता हिरनों के झुंडों को, सिंह हाथियों को और सूर्य का तेज अंधकार समूह को नष्ट कर देता है उसी प्रकार शिवाजी मुसलमान वंश का नाश करने वाले हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी 'उपमेय' के इन्द्र, राम, महादेव, कृष्ण, बड़वानल आदि अनेक उपमान कथन किए गए हैं।

ललितोपमा

लक्षण—दोहा

जहँ समता को दुहुन की, लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा, सकल कविन के गोत ॥५७॥

शब्दार्थ—लीलादिक पद=पद विशेष, (जिनका वर्णन अगले दोहे में है)। गोत=समूह, वंश, सब।

अर्थ—जिस स्थान पर उपमेय और उपमान की समता देने को लीलादिक पद आते हैं, उसे सब कवि ललितोपमा अलंकार कहते हैं।

बहसत, निदरत, हँसत जहँ, छवि अनुहरत बखानि।
सत्रु मित्र इमि औरऊ, लीलादिक पद जान ॥५८॥

शब्दार्थ—निदरत=अपमान करना।

---

* जम्भ नामक राक्षस महिषासुर का पिता था। इसे इन्द्र ने मारा था। समाधिस्थ महादेव ने अपने तीसरे नेत्र द्वारा समाधि भंग करने के लिए आये हुए कामदेव को भस्म कर दिया था, यह प्रसिद्ध है। सहस्रबाहु (कार्तवीर्य) एक बड़ा पराक्रमी राजा था। इसकी एक सहस्र भुजाएँ थीं। इसने परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि का सिर काटा था। इस पर क्रुद्ध परशुराम ने इसे मार डाला था।

अर्थ—वहस करना, अपमान करना, हँसना, छवि की नक़ल करना, शत्रु है, मित्र है आदि तथा इसी प्रकार के और भी शब्द लीलादिक पद कहलाते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहि तनै सरजा सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है।
भूपन भनत जाके एक एक सिखरते,
केते धौं नदी नद की रेल उतरति है।
जोन्ह को हँसत जोति हीरा मनि मन्दिरन,
कन्दरन मैं छवि कुहू की उछरति है।
ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामैं
नखतावली सों बहस दीपावली करति है ॥५९॥

शब्दार्थ—सिखर = (सं०) शिखर, चोटी। रेल = रेला, प्रवाह। रेल उतरति है = बहते हैं। जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी। कन्दर = कन्दरा, गुफा। कुहू की छवि = अमावस्या की रात का अंधकार। उछरत है = उछल कर भागती है, नष्ट होती है। नखतावली = (सं० नक्षत्र+अवली) तारों की पंक्ति।

अर्थ—जिस किले में शाह जी के पुत्र सरजा राजा शिवाजी की ऐसी सभा है, जो कि इन्द्र की मेरु पर्वत वाली (देवताओं की) सभा को भी लज्जित करता है, भूषण कवि कहते हैं कि जिस किले के पहाड़ की प्रत्येक चोटी से कितने ही नदी नालों के प्रवाह वहते हैं, जिस किले के महलों में जड़े हुए हीरे और मणियों के प्रकाश से चाँदनी की हँसी होती है और समस्त गुफाओं में रहने वाला अमावस्या की रात्रि का सा घना अँधेरा नष्ट हो जाता है, शिवाजी का वह किला इतना ऊँचा है कि इसकी दीपावली तारों की पंक्तियों से वहस करती है।

विवरण—यहाँ शिवाजी की सभा से इन्द्र की सभा का लज्जित होना, और हीरों की चमक से चाँदनी की हँसी होना वर्णित है। यही ललितोपमा है।

सूचना—ललितोपमा में प्रसिद्ध वाचक शब्दों के द्वारा उपमा न कह कर विशेष प्रकार के शब्दों (लीलादिक पदों) से उसका लक्ष्य कराया जाता है, इसीलिए इसे लक्ष्योपमा भी कहते हैं।

रूपक

लक्षण—दोहा

जहाँ दुहुन को भेद नहिं बरनत सुकवि सुजान।
रूपक भूषन ताहि को, भूषन करत बखान ॥६०॥

अर्थ—जहाँ चतुर कवि उपमेय और उपमान दोनों में कुछ भेद वर्णन न करें, वहाँ भूषन कवि रूपक अलंकार कहते हैं।

सूचना—उपमा में उपमेय और उपमान का भेद बना रहता है, परन्तु रूपक में दोनों में एकरुपता होती है। यद्यपि उपमेय और उपमान दोनों का अलग-अलग अस्तित्व रहता है फिर भी दोनों एक ही रूप प्रतीत होते हैं। जैसे—मुखचन्द्र अर्थात् मुख ही चन्द्र है। इसके दो भेद हैं—अभेद रूपक और ताद्रूप्यरूपक। भूषण ने केवल अभेद रूपक का वर्णन किया है। उक्त दो भेदों के भी तीन-तीन और भेद होते हैं—सम, अधिक और न्यून। इनमें से भूषण ने छन्द सं० ६४ में केवल न्यून और अधिक दिये हैं।

उदाहरण—छप्पय

कलियुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उर्म्मिमय।
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगर चय॥
नृपति नदीनद वृन्द होत जाको मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस॥

हिन्दुवान पुन्य गाहक बनिक, तासु निबाहक साहि सुव।
बर बादवान किरवान धरि जस जहाज सिवराज तुव ॥६१॥

शब्दार्थ—उद्ध=(सं० ऊर्ध्व) ऊपर उठा हुआ, प्रबल। उर्मिमय=लहर वाला। लच्छनि लच्छ=लक्षणि-लक्ष, लाखों। कच्छ=कछुए। चय=समूह। सुअप्प=सुन्दर जल या अपना जल। निबाहक=सं० निर्वाह करने वाला, कर्णधार। सुव=सुत, पुत्र। बादवान=(फा०) नाव में कपड़े का पाल, जिसमें हवा भरने पर नौका चलती है। किरवान=स० कृपाण, तलवार।

अर्थ—कलियुग-रूपी अपार समुद्र है जो अधर्म की प्रबल तरंगों से युक्त है, लाखों मुसलमान ही जिसमें कछुए, मछली और मगर-समूह हैं, और जिसमें छोटे-छोटे राजा-रूपी नदी नाले मिलकर नीरस हो जाते हैं (नदियाँ एवं नाले जब समुद्र में मिल जाते हैं तब उनका भी जल खारी हो जाता है), भूषण कहते हैं कि इस प्रकार कलियुग रूपी समुद्र ने समस्त पृथ्वी को घेर कर अपने जल के वश में कर लिया है (अर्थात् कलियुग रूपी समुद्र सारे संसार में फैल गया है) उस समुद्र में हिन्दू लोग पुण्य का (सौदा) खरीदने वाले बनिये हैं। हे शाह जी के पुत्र शिवाजी ! आप ही उनको पार उतारने वाले (कर्णधार) हैं और तलवार-रूपी सुन्दर पाल को धारण करने वाला आपका यश उनका जहाज है।

विवरण—यहाँ कलियुग उपमेय में समुद्र उपमान का अभेद वर्णन किया है। दोनों में एकरूपता है। यहाँ समुद्र का पूर्णरूप—कलियुग--समुद्र; अधर्म--ऊर्मि; म्लेच्छ--कच्छ मच्छ और मगर, राजा-नदी नद, हिन्दुवान--पुण्यग्राहक व्यापारी; शिवाजी--कर्णधार; कृपाण-पाल; यश--जहाज़ वर्णित हैं; अतः अभेद रूपक है। इसे सांग रूपक भी कहते हैं क्यों कि इसमें सब अवयवों (अंगों) का वर्णन है।

दूसरा उदाहरण—छप्पय

साहिन मन समरत्थ जासु नवरंग साहि सिरु।
हृदय जासु अब्बास साहि बहुबल बिलास थिरु॥
एदिलसाहि कुतुब्ब जासु जुग भुज भूषन भनि।
पाय म्लेच्छ उमराय काय तुरकानि आनि गनि॥
यह रूप अवनि अवतार धरि जेहि जालिम जग दंडियब।
सरजा सिव साहस खग्ग गहि कलियुग सोइ खल खंडियब॥६२॥

शब्दार्थ—मन = मणि (श्रेष्ठ)। नवरंग साहि = औरंगज़ेब बादशाह। सिरु = सिर। बिलास = विलास, क्रीडा। थिरु = स्थिर। अब्बास = तत्कालीन फारस के बादशाह का नाम। इसके साथ शाहजहाँ और औरंगज़ेब का मेल और लिखा पढ़ी थी। इसका दूत औरंगज़ेब के दरबार में रहता था। एदिलशाह = आदिलशाह, बीजापुर का बादशाह शिवाजी के पिता शाहजी इसी के यहाँ नौकर थे। कुतुब्ब = कुतुबशाह, गोलकुंडा बादशाह। जुग = युग, दोनों। पाय = पैर। काय = शरीर। आन = अन्य, और। दंडियब = दंडित किया, सताया। खंडियब = खंडित किया, मार डाला।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं बादशाहों में श्रेष्ठ, शक्तिशाली औरंगज़ेब बादशाह जिसका सिर है, महाबली किंतु विलासरत (आमोद-प्रमोद में लगा हुआ) अब्बासशाह जिसका हृदय है, आदिलशाह और कुतुबशाह जिसकी दो बाहु हैं, म्लेच्छ (मुसलमान) उमराव जिसके पैर हैं और अन्य तुर्क लोग जिस के अन्यांग हैं; ऐसे शरीर से पृथ्वी पर अवतार धारण कर अत्याचारी कलियुग ने सारे संसार को बहुत सताया। परन्तु उसी नीच को शिवाजी ने साहस की तलवार पकड़ कर खंड खंड कर डाला।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब, अब्बासशाह, कुतुब शाह आदि को कलियुग खल के अंगों का रूप दिया है। यहाँ भी सांग रूपक है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।*
भूषन भनत, देखि भभरि, भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धरि काहुवै न हटक्यो॥
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यो।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो॥६३॥

शब्दार्थ—थरि = स्थली, जगह। जावली = यह प्रान्त कोयना नदी की घाटी में ठीक महाबलेश्वर के नीचे था। यह एक तीर्थ स्थान था। शिवाजी ने सन् १६५६ में इस स्थान को जीतकर यहाँ प्रतापगढ़ क़िला बनवाया था। इसी स्थान पर उन्होंने अफ़ज़ल खाँ को मारा था। भठी = सिंह की भट्टी, माँद। भटक्यो = भटका, धोखा खाया, भूल की। भभरि = हड़बड़ा कर, घबड़ा कर। काहुवै = किसी ने भी। न हटक्यो = हटका नहीं, रोका नहीं। गाजी = मुसलमानों में वह वीर जो धर्म के लिए विधर्मियों से युद्ध करे, वीर। मदगल = मद झड़ता हुआ, मस्त। कहँ = को। आकुत = सिद्दी कासिम याकूतखाँ, यह बीजापुर का एक वीर सरदार था। सटक्यौ = चुपचाप चला गया। आंकुस = अंकश।

---

*सम्मेलन द्वारा प्रकाशित प्रति में इसका निम्नलिखित पाठ है।

सिंह थरि जाने बिन जावली जंगल हठी
भठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।

और भठी का अर्थ सेनापति (भटी, भट = सैनिक, भटी = सैनिकों वाला) करके 'भठी गज' का अर्थ सेनापति (अफ़ज़ल खाँ) रूप हाथी किया गया है।

अर्थ—हठी आदिल शाह ने जावली देश के जंगल को सिंह के रहने की भट्ठी (स्थान) न जान कर (अफ़ज़लखाँ) रूपी हाथी को वहाँ भेज कर बड़ी भूल की—अर्थात् शिवाजी रूपी सिंह के पराक्रम को न जान कर आदिलशाह ने अफ़ज़लखाँ को भेज कर बड़ी भूल की। भूषण कवि कहते हैं कि वीरकेसरी शिवाजी को देख-सारी सेना हड़बड़ा कर भाग गई और हृदय में हिम्मत धारण कर किसी ने उन्हें न रोका। शाह जी के समर्थ पुत्र शिवाजी-रूपी सिंह ने अफ़ज़लखाँ रूपी मदमस्त हाथी को अपने पंजे (बघनखे) के जोर से पछाड़ दिया*। उस अफ़जलखाँ के बिना याक़ूतखाँ-रूपी महावत बेकार हो अपने (प्रेरणा रूप) अंकुश को ले चुपचाप चला गया (याक़ूतखाँ ने अफ़ज़लखाँ को शिवाजी से एकान्त में मिलने की सलाह दी थी)।

विवरण—यहाँ शिवाजी में सिंह का, अफजलखाँ में मदगलित हाथी का और याक़ूतखाँ में महावत का आरोप किया गया है।

रूपक के दो अन्य भेद (न्यून तथा अधिक)

लक्षण—दोहा

घटि बढ़ि जहँ बरनन करै, करिकै दुहुन अभेद।
भूषन कवि औरौ कहत, द्वै रूपक के भेद ॥६४॥

अर्थ—जहाँ उपमान का उपमेय में अभेद आरोपण करके उन के गुण घटा बढ़ा कर वर्णन किये जायँ वहाँ कवि रूपक के न्यून और अधिक दो और भेद करते हैं।

सूचना—जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ अधिकता दिखाई जाती है, तब अधिक रूपक, और जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ न्यूनता दिखाई जाय तब न्यून रूपक होता है।

---

* अफ़ज़लखाँ के वध का वर्णन भूमिका में देखिये।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहि तनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगिरि कलंक चंद उर आनियतु है।
पंचानन एक ही वदन गनि तोहि,
गजानन गजबदन विना बखानियतु है॥
एक सीस ही सहससीस कला करिबे को,
दुहूँ दृग सों सहसदृग मानियतु है।
दुहूँ कर सों सहसकर मानियतु तोहि,
दुहूँ बाहु सों सहसबाहु जानियतु है॥६५॥

शब्दार्थ—उर=हृदय। बिगिरि=बिना, रहित। आनियतु है=लाते हैं, मानते हैं। पंचानन=शिव। गजानन=हाथी के समान मुख वाले, गणेश। सहससीस=शेषनाग। बखानियतु है=कहते हैं। सहसदृग=इन्द्र, इन्द्र के हज़ार नेत्र माने जाते हैं। सहसकर=सूर्य (कर का अर्थ किरन भी है)। सहसबाहु=सहस्रबाहु।

अर्थ—हे साह जी के पुत्र शिवा जी! भूषण कवि आपके शुभ्र यश को बिना कलंक का चन्द्रमा मानते हैं। एक ही मुख वाले आपको वे पंचानन और हाथी के मुख बिना ही आपको गणेश कहते हैं। एक ही शीश वाले आपको वे हज़ार फण वाला शेषनाग और दो नेत्र वाले होने पर भी आपको हज़ारों आँख वाला इन्द्र मानते हैं। आपके दो हाथ होने पर भी वे आप को हज़ार (किरणों) वाला सूर्य मानते हैं और दो भुजाएँ होने पर भी आपको हज़ार बाहु वाला सहस्रबाहु समझते हैं।

विवरण—यहाँ "बिगरि कलंक चंद" में अधिक रूपक है, किन्तु अन्याङ्गों में न्यूनता होने पर भी उनका क्रमशः शिव, गणेश और शेषनाग आदि उपमानों में आरोप किया है, अतः न्यून रूपक है।

जेते हैं पहार भुव पारावार माहिं,
तिन सुनि कै अपार कृपा गहे सुख फैल है।
भूषन भनत साहि तनै सरजा के पास,
आइबे को चढ़ी उर हौंसनि की ऐल है॥
किरवान बज्र सों बिपच्छ करिबे के डर,
आनि के कितेक आए सरन की गैल है।
मघवा मही मैं तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल है॥६६॥

शब्दार्थ—पारावार=समुद्र। ऐल=रेल, ज़ोरों का प्रवाह। हौंस=हविस, इच्छा। कोट करि=किले बना कर। मघवा=इन्द्र।

अर्थ—समस्त पृथ्वी और समुद्र में जितने भी पहाड़ हैं उन्होंने शिवाजी की अपार कृपा को सुन कर अत्यधिक सुख पाया है। भूषण कवि कहते हैं कि उन सब के मन में महाराज शिवाजी के आश्रय में आने की बड़ी हविस पैदा होगयी है, उत्कट इच्छा उत्पन्न होगई है। (शिवाजी पृथ्वी पर के इन्द्र हैं अतएव) बहुतों ने तो उनके तलवार-रूपी वज्र से पक्षहीन होने के भय से शरण मार्ग ग्रहण कर लिया, अर्थात् इस डर से कि कहीं शिवाजी अपने तलवार-रूपी वज्र से हमारे पंख न काट दें, वे स्वयं शिवाजी की शरण में आगये हैं, क्योंकि महापुरुष शरणागत को कष्ट नहीं देते। इस प्रकार पृथ्वी पर तेजस्वी तथा महाबली शिवाजी रूपी इन्द्र ने इन सब पर्वतों पर किले बना बना कर उन्हें सपक्ष कर दिया अर्थात् अपने पक्ष में ले लिया। (इस पद में कवि ने ऐतिहासिक तथ्य को बड़ी कुशलता से वर्णन किया है। शिवाजी ने अपने प्रबल शत्रुओं से लोहा लेने के लिए आस-पास की पहाड़ियों पर अनेक किले बनाये थे, और इस प्रकार उन पहाड़ियों को अपने पक्ष में कर लिया था जिन पर उस समय तक अन्य किसी का राज्य न था। यह देख कर और शिवाजी के पराक्रम से डर कर आस पास

के अनेक पहाड़ी किलों के मालिक भी शिवाजी की शरण में आगये थे। उन्हें इस बात का डर था कि कहीं हमने शिवाजी के विरुद्ध कार्य किया, तो शिवाजी हमारा किला नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। इसी ऐतिहासिक तथ्य को कवि ने आलंकारिक ढंग से वर्णन किया है)।

सूचना—यहाँ उपमेय शिवाजी में इन्द्र उपमान का आरोप है, किन्तु 'शैल का सपक्ष करना' रूप गुण इन्द्र में नहीं था, इन्द्र ने तो उन्हें पक्ष-रहित किया था, वह शिवाजी में आरोपित कर अधिकता प्रकट की है। अतः अधिक रूपक है।

सूचना—पुराणों में लिखा है कि पहले पहाड़ों के पंख थे, वे इधर उधर उड़ कर जहाँ तहाँ बैठते थे और इस प्रकार बड़ा जन-संहार करते थे। अतः इन्द्र ने अपने वज्र से एक बार इन पहाड़ों के पंख काट डाले। केवल मैनाक पर्वत ही समुद्र में छिप जाने के कारण बच गया, उसके पंख नहीं कटे और वह अभी तक छिपा पड़ा है।

परिणाम

लक्षण—दोहा

जहँ अभेद कर दुहुन सों, करत और स्वे काम।
भनि भूषन सब कहत हैं, तासु नाम परिनाम ॥६७॥

शब्दार्थ—स्वे = स्वकीय, अपना।

अर्थ—जहाँ उपमान से उपमेय एक रूप होकर अपना कार्य करे भूषण कहते हैं कि वहाँ सब परिणाम अलंकार मानते हैं।

सूचना—इसमें उपमान स्वयं किसी काम के करने में असमर्थ होने के कारण उपमेय के साथ एक रूप होकर उस काम को करता है। अथवा उपमेय के करने का काम उपमान करता है। रूपक की तरह इस अलंकार में उपमान और उपमेय की एक-रूपता ही

नहीं दिखाई जाती अपितु उपमेय को उपमान में परिणत कर उसके द्वारा उस कार्य के किये जाने का भी वर्णन होता है, जो कार्य उपमान द्वारा किया जाना चाहिए था । 'यशरूपी चन्द्रमा' इतने में केवल रूपक अलंकार है, पर 'यशरूपी चन्द्रमा अपनी ज्योत्स्ना से जगत को धवलित कर रहा है' इसमें परिणाम अलंकार हो गया । भूषण का यह लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं है ।

उदाहरण—मालती सवैया

भौंसिला भूप बली भुव को भुज भारी भुजंगम सों भरु लीनो ।
भूषन तीखन तेज तरन्नि सों वैरिन को कियो पानिप हीनो ॥
दारिद दौ करि बारिद सों दलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो ।
साहि तनै कुलचंद सिवा जस चंद सों चंद कियो छबि छीनो ॥६८॥

शब्दार्थ—भुजंगम = सर्प । भरु = भार । तरन्नि = तरनि, सूर्य । पानिप=आब, कान्ति । दौ = दावाग्नि (सूखे जंगल में चारों ओर से लगने वाली अग्नि) । छीनों = क्षीण, हीन, मलीन । करि = हाथी ।

अर्थ—वीर भौंसिला राजा शिवाजी ने अपनी बलवान भुजा-रूपी सर्प (शेषनाग) पर पृथ्वी का भार उठा लिया । भूषण कहते हैं कि उन्होंने अपने प्रबल तेजस्वी सूर्य से शत्रुओं के मुख की कान्ति फीकी कर डाली । दरिद्रता रूपी अग्नि को हाथी (दान) रूपी मेघों से नष्ट करके पृथ्वी-तल को शीतल कर दिया—अर्थात् हाथियों का दान देकर दरिद्रों की दरिद्रता को दूर कर दिया । साहजी के पुत्र, कुल के चन्द्रमा शिवाजी ने अपने यश चन्द्र से चन्द्रमा की छवि को मलिन कर दिया ।

विवरण—यहाँ भुजा (उपमेय) से सर्प (उपमान), तेज (उपमेय) से तरनि (उपमान), करि (उपमेय) से वारिद (उपमान) और यश (उपमेय) से चन्द्र (उपमान) एक रूप होकर क्रमशः भार उठाना, पानिप (कान्ति)हीन करना, दारिद्र्याग्नि दूर करना, और प्रकाश करना आदि काम करते हैं ।

सूचना—यहाँ प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्ति में परिणाम अलंकार ठीक बैठता है किन्तु तीसरी पंक्ति में दो रूपक साथ होने से परिणाम न रह कर रूपक होगया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

वीर विजैपुर के उजीर निसिचर,
गोलकुंडा वारे घूघूते उड़ाए हैं जहान सों।
मंद करी मुखरुचि चंद चकता की कियो,
भूषन भुषित द्विज-चक्र खान पान सों॥
तुरकान मलिन कुमुदिनी करी है,
हिंदुवान नलिनी खिलायो विविध विधान सों।
चारु सिव नाम को प्रतापी सिव साहि सुव,
तापी सब भूमि यों कृपान भासमान सों॥६६॥

शब्दार्थ—मुख-रुचि=मुख की कान्ति। भासमान=सूर्य। उजीर=वज़ीर। घूघू=उल्लू।

अर्थ—शिवजा के शुभ नाम वाले शाहजी के बेटे प्रतापी शिवाजी ने अपने कृपाण-रूपी सूर्य के प्रकाश से समस्त भूमंडल को इस प्रकार तपाया (प्रकाशित कर दिया) जिस से कि बीजापुर के वज़ीर रूपी निशिचर (राक्षस) और गोलकुंडा को सर्दार रूपी उल्लू दुनियाँ से उड़ गए (दिन में राक्षस और उल्लू कहीं छिप जाते हैं)। चंगेज़खाँ के वंशज औरंगज़ेब के मुख-चन्द्र की कान्ति फीकी पड़ गई और द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) रूपी चक्रवाक भोजन-सामग्री से युक्त हो गए अर्थात् इनके प्रताप से सुख पाने लगे, (चकवा चकवी दिन में प्रसन्न रहते हैं)। तुर्क-रूपी कुमुदिनी को मुरझा दिया और हिन्दू-रूपी कमलिनी को अनेक भाँति से प्रफुल्लित कर दिया।

विवरण—यहाँ शिवा जी के 'कृपाण' उपमेय से 'सूर्य' उपमान ने एक होकर उपर्युक्त कार्य किये हैं।

उल्लेख

लक्षण—दोहा

कै बहुतै कै एक जहँ, एक वस्तु को देखि।
बहु विधि करि उल्लेख हैं, सो उल्लेख उलेख ॥७०॥

शब्दार्थ—उल्लेख=अलंकार, वर्णन करना।

अर्थ—एक वस्तु को अनेक मनुष्य बहुत तरह से कहें वा एक ही व्यक्ति उसे (विषय-भेद से) अनेक प्रकार से कहे वहाँ उल्लेख अलंकार होता है। (प्रथमावस्था में पहला उल्लेख होता है, द्वितीय में दूसरा)।

उदाहरण—मालती सवैया

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सब की चित चाहै।
एक कहैं अवतार मनोज को यों तन मैं अति सुन्दरता है॥
भूषन, एक कहैं महि इंदु यों राज बिराजत बाढ्यो महा है।
एक कहैं नरसिंह हैं संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है॥७१॥

शब्दार्थ—पूरत=पूरी करता है। चित चाहै=इच्छा। मनोज=कामदेव। इन्दु=चन्द्रमा। संगर=संग्राम, युद्ध।

अर्थ—शिवाजी को सब की इच्छाओं का पूर्ण करने वाला जान कोई तो उसे कल्पद्रुम बताता है। उनके शरीर की अत्यधिक सुन्दरता देख कोई उन्हें काम का अवतार मानता है। भूषण कवि कहते हैं कि कोई उनके खूब फैले हुए राज की समुज्ज्वल कीर्ति को देख कर उन्हें पृथिवी का चन्द्रमा कहता है। कोई कहता है कि शिवाजी संग्राम में मनुष्य रूप सिंह हैं और कोई उन्हें नृसिंहावतार* ही मानता है।

---

* कश्यप और दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु ने घोर तप कर ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया था कि मनुष्य देवता आदि किसी के हाथ से न मारा जाऊँ। यह वर प्राप्त कर वह अत्यधिक अत्याचार

विवरण—यहाँ अनेक मनुष्य केवल एक शिवाजी (एक ही पदार्थ) का अनेक भाँति वर्णन करते हैं, अतः प्रथम उल्लेख है ·

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कवि कहैं करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्ह्यों इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धराधरन को मेट्यो अहमेव है।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज-काज देखि कोई पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहैं,
वहरी निजाम के जितैया कहैं देव है ॥७२॥

शब्दार्थ—करनजीत = कर्ण को जीतने वाला, अर्जुन। कमनैत = तीर कमान चलाने वाले, धनुषधारी। छेव = छेद, क्षत, घाव। धरेस = राजा। धराधर = पृथ्वी को धारण करने वाला, (राजा वा शेषनाग)। अहमेव = अहंकार, घमंड। कहरी = कहर ढाने वाला, विपत्ति डालने वाला। यदिल = आदिलशाह। लहरी = मौजी। वहरी निज़ाम = बहरी निज़ामुल्मुल्क, यह अहमदनगर के निज़ाम-शाही बादशाहों की उपाधि थी।

अर्थ—कवि लोग शिवाजी को (अत्यधिक दान देने के कारण) कर्ण कहते हैं (कर्ण दानवीर के रूप में प्रसिद्ध हैं); उन्होंने शत्रुओं के हृदय में इस प्रकार घाव किये हैं कि धनुषधारी लोग उन्हें अर्जुन मानते हैं। शिवाजी ने पृथिवी के पालन करने वाले अन्य सब

करने लगा। अपने प्रभु-भक्त पुत्र प्रल्हाद को भी वह नाना प्रकार से सताने लगा। तब भगवान ने नृसिंह (आधा सिंह और आधा मनुष्य रूप में) अवतार धारण किया, और उस दैत्य को नष्ट कर भक्त प्रल्हाद की रक्षा की।

राजाओं के अहंकार को नष्ट कर दिया, अतः सारे राजा उन्हें 'पृथ्वी को धारण करने वाला शेषनाग' कहते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवा जी ! आपके राजकार्यों को देख कर कोई आपका भेद नहीं पा सकता अर्थात् आपकी राजनीति बड़ी गूढ़ है क्योंकि आपको आदिलशाह क़हरी, (कहर ढाने वाला, ज़ालिम), कुतुबशाह मनमौजी (जो मनमें आये वही करने वाला) और बहरी निज़ाम को जीतने वाले दिल्ली के मुगल बादशाह तुम्हें देव (उर्दू-देओ—राक्षस) कहते हैं।

विवरण—यहाँ भी शिवाजी का अनेक लोगों ने अनेक भाँति से वर्णन किया है इसीलिए यहाँ प्रथम उल्लेख है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल,
चहुँ चक्क को अमाल भयो दण्डक जहान को।
साहिन को साल भयो ज्वारि को जवाल भयो,*
हर को कृपाल भयो हार के विधान को॥
बीर-रस ख्याल सिवराज भुवपाल तुव
हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को ?
तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो,
हिन्दु को दिवाल भयो काल तुरकान को॥७३॥

शब्दार्थ—पैज = (सं०) प्रतिज्ञा। हमाल = (अ० हम्माल) धारण करने वाला। भूमि भार को हमाल = पृथ्वी के भार को उठाने वाला रक्षक। चहुँचक्क = चारों दिशाएँ। अमाल = आमिल, हाकिम। साल = सालने वाला, चुभने वाला, शूल। ज्वारि = जवारि या जौहर

---

*भूषण ग्रन्थावली की अधिकांश प्रतियों में 'ज्वाल को जबाल भयो' पाठ है पर उसका कुछ ठीक अर्थ नहीं बनता। प्राय: उसका अर्थ 'अग्नि का तूफान होगया' करते हैं।

नाम का कोंकण के पास का कोरी राज्य, जिसे सलहेरि के घेरे के बाद मोरोपंत पिंगले ने जीता था। जवाल = आफ़त। हार के विधान को = हार (मुंडमाला जो शिवजी पहनते हैं) का प्रबन्ध करने के कारण। करवाल = तलवार। ढाल = रक्षक।

अर्थ—हे शिवाजी ! आपकी इस करवाल (तलवार) का कौन वर्णन करे। यह आपकी पैज (प्रतिज्ञा; शत्रुओं को नष्ट करने की प्रतिज्ञा)का पालन कराने वाली है, भूमि के भार को धारण करने वाली है अर्थात् भूमि-भार को धारण करने में सहायक है, चारों दिशाओं की अधिकारिणी (हाकिम) और संसार को दंड देने वाली है। वह बादशाहों को चुभने वाली, जवारि या जौहर प्रदेश के लिए आफ़त और महादेवजी की मुंडमाला का प्रबन्ध करने से उन पर कृपा करने वाली अथवा कृपालु है (अर्थात् युद्ध में शत्रुओं के सिर काट कर उनसे महादेव की मुंडमाला बनाने वाली है)। वह वीररस का ख्याल (ध्यान दिलाने वाली) है और हे महाराज शिवाजी ! आपके हाथ को बड़ा करने वाली (अर्थात् बड़प्पन देने वाली) है, अथवा (यदि यहाँ 'भूषण' कवि का नाम न समझा जाय और उसका आभूषण अर्थ किया जाय तो 'विसाल' 'भूषण' का विशेषण होगा और तब इसका अर्थ होगा कि वह आपके हाथ के लिए विशाल आभूषण है। इसी प्रकार 'वीररस ख्याल' भी 'सिवराज' का विशेषण हो सकता है; और तब इसका अर्थ होगा—हे वीररस के ध्यान करने वाले—भारी वीर महाराज शिवाजी ! यह तलवार आपके हाथ के लिए बड़प्पन का कारण है या विशाल आभूषण है। यह दक्षिण देश की ढाल (रक्षक) है, हिन्दुओं के लिए दीवार (आक्रमण से बचाने वाली) है और मुसलमानों की काल है।

विवरण—यहाँ शिवाजी की 'करवाल' को एक ही व्यक्ति ने अनेक भाँति से वर्णन किया है, अतः द्वितीय उल्लेख है।

स्मृति

लक्षण—दोहा

सम सोभा लखि आन की, सुधि आवत जेहि ठौर।
स्मृति भूषन तेहि कहत हैं, भूषन कवि सिरमौर ॥७४॥

शब्दार्थ—आन = अन्य, दूसरा वस्तु।

अर्थ—समान (गुण, आकृति, रूप) वाली किसी दूसरी वस्तु को देख कर (वा सोच कर) जहाँ किसी (पहले देखी हुई) वस्तु की याद आजाय वहाँ श्रेष्ठ कवि स्मृति अलंकार कहते हैं। (कभी-कभी स्वप्न देख कर भी स्मृति होती है)।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आजु,
तुम ही जगत काज पोषत भरत हौ।
तुम्हैं छोड़ि यातें काहि बिनती सुनाऊँ मैं,
तुम्हारे गुन गाऊँ, तुम ढीले क्यों परत हौ॥
भूषन भनत वाहि कुल मैं नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित मैं धरत हौ।
और बाँभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥७५॥

शब्दार्थ—ब्रजराज = कृष्ण। पोषत भरत हौ = भरण पोषण करते हो, पालते हो। ढीले = शिथिल, उदासीन। बाँभनन = ब्राह्मण। सुदामा = कृष्ण जी का सहपाठी ब्राह्मण, इसे कृष्ण जी ने खूब धन दिया था। भृगु = एक ऋषि थे, जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। कहा जाता है कि एक वार इन्होंने यह निश्चय करना चाहा कि ब्रह्मा, शंकर और विष्णु में कौन बड़ा है। ब्रह्मा और शंकर की परीक्षा के अनन्तर विष्णु जी के रनिवास में जाकर उन्होंने उनके वक्षःस्थल में लात जमाई। इस पर विष्णु बिलकुल क्रुद्ध न हुए

अपितु उन्होंने भृगु जी से पूछा कि मेरी कठोर छाती पर लात मारने से आपके चरण तो नहीं दुखे। इस तरह अद्भुत सहिष्णुता दिखा कर वे सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध हुए।

अर्थ— हे शिवा जी! वर्तमान समय में आप ही श्रीकृष्ण के अवतार हैं, क्योंकि आप ही संसार का भरण-पोषण करते हैं। इस हेतु मैं आपको छोड़ कर किस से विनती करूँ? मैं तो आपका ही गुण-गान करता हूँ, परन्तु पता नहीं आप मुझ से उदासीन क्यों रहते हैं? भूषण कवि कहते हैं कि मैं भी उसी ब्राह्मण-कुल (भृगु कुल) में उत्पन्न हुआ हूँ— मेरा यह एक नया अपराध आप नाहक (व्यर्थ ही) मन में सोचते हैं। अन्य ब्राह्मणों को देख कर तो आपको सुदामा की याद आती है अर्थात् उन पर आप प्रसन्न रहते हैं उनकी इच्छाओं को पूरा कर देते हैं और मुझे देख कर न जाने आपको भृगु ऋषि की क्यों याद आती है अर्थात् मुझ से न जाने आप क्यों नाराज़ रहते हैं।

विवरण— शिवाजी ब्रजराज के अवतार हैं। अन्य ब्राह्मणों को देख कर उनको अपने सुदामा का स्मरण हो आने से और (विष्णु का अवतार होने के कारण) भूषण को देख कर भृगु का स्मरण हो आने से यहाँ स्मृति अलंकार हुआ।

भ्रम

लक्षण—दोहा

आन बात को आन मैं, होत जहाँ भ्रम आय।
तासों भ्रम सब कहत हैं, भूषन सुकवि बनाय ॥७६॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य बात में अन्य बात का भ्रम हो वहाँ श्रेष्ठ कवि भ्रम अलंकार कहते हैं।

सूचना—भूल से किसी वस्तु को कोई और वस्तु मान बैठना भ्रम या भ्रांति है, इसी प्रकार जब उपमेय में उपमान का भ्रम हो तब

भ्रम या भ्रांतिमान अलंकार होता है। इस अलंकार का 'रूपक' और 'रूपकातिशयोक्ति' से यह भेद है कि उक्त दोनों अलंकारों में उपमेय में उपमान का आरोप वास्तविक नहीं होता, कल्पित होता है पर इस अलंकार में वास्तव में भ्रम हो जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

'पीय पहारन पास न जाहु' यों तीय बहादुर सों कहैं सोषै।
कौन बचैहै नवाब तुम्हैं भनि भूषन भौंसिला भूप के रोषै॥
बन्दि सइस्तखँहू को कियो जसवन्त से भाऊ करन्न से दोषै।
सिंह सिवा के सुबीरन सों गो अमीर न बाचि गुनीजन घोषै॥७७॥

शब्दार्थ—पीय=प्रिय, पति। सोषै=सोखैं, सौगन्ध खिला कर। रोषै=रुष्ट होने पर। दोषै=दूषित कर दिया। बाचि=बचकर। घोषै=घोषणा करके कहते हैं, बार-बार कहते हैं। बहादुर=बहादुर खाँ, सलहेरि के युद्ध में जब मुसलमानों का पूर्ण पराजय हुआ तब औरंगेजब ने महावतखाँ और शाहज़ादा मुअज्जम की जगह बहादुरखाँ को सेनापति बनाकर भेजा था। मराठों से लड़ने की इसकी हिम्मत न होती थी इसलिए इसने युद्ध बंद कर दिया और भीमा नदी के किनारे पेड़गाँव में छावनी डालकर रहने लगा। यहीं इसने बहादुरगढ़ नामक किला बनाया। करणसिंह और भाऊ का उल्लेख छंद सं० ३५ में देखिए।

अर्थ—स्त्रियाँ बहादुरखाँ को (अथवा अपने वीर पतिग्रों को) सौगंध खिला-खिला कर कहती हैं कि हे प्यारे! आप पहाड़ों (दक्षिणी पहाड़ों) के निकट न जाओ, क्योंकि हे नवाब साहब! भौंसिला राजा शिवाजी के क्रुद्ध होने पर आप को कौन बचाएगा अर्थात् कोई भी नहीं बचा सकता। उन्होंने शाइस्ताखाँ भी कैद कर दिया तथा जसवन्तसिंह, करणसिंह और भाऊ जैसे वीरों को भी परास्त करके दूषित कर दिया फिर

आपकी क्या सामर्थ्य है ? सब गुणवान (पंडित लोग) बार-बार यही कहते हैं कि शिवाजी के वीर सरदारों से कोई भी अमीर उमरा अभी तक बच कर नहीं गया अर्थात् जितने भी अमीर-उमराव दक्षिण में सूबेदारी अथवा युद्ध करने के लिए गये वे सब वहाँ मारे गये, इस हेतु आप न जाइये।

विवरण—यहाँ शाइस्ताखाँ, करण और भाऊ की दुर्गति देख अथवा सुनकर शत्रु-स्त्रियों को अपने पतियों की सुरक्षितता में भ्रम होता है कि वे भी वहाँ जाकर न बचेंगे। किन्तु वास्तव में यह उदाहरण ठीक नहीं। इसका ठीक उदाहरण यह है--"फूल समझ कर शकुन्तला-मुख, भन भन उस पर भ्रमर करें।"

सन्देह

लक्षण—दोहा

कै यह कै वह यों जहाँ, होत आनि सन्देह।
भूषण सो सन्देह है, या मैं नहिं सन्देह ॥७८॥

शब्दार्थ—कै = या सन्देह = शक भ्रम।

अर्थ—जहाँ 'यह है वा यह है' इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ सन्देह अलंकार होता है, इसमें सन्देह नहीं।

सूचना—इसमें और भ्रम अलंकार में यह भेद है कि भ्रम में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है पर सन्देह में किसी पर निश्चय नहीं जमता, संदेह ही बना रहता है। धौं, किधौं, कि, कै, वा, आदि शब्दों द्वारा सन्देह प्रकट किया जाता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

आवत गुसलखाने ऐसे कछू त्यौर ठाने,
जाने अवरंग जू के प्रानन को लेवा है।
रस खोट भए ते अगोट आगरे मैं सातौं,
चौकी डाँकि आन घर कीन्हीं हद रेवा है॥

भूषन भनत वह चहूँ चक्क चाहि कियो,
　　　　पातसाही चकता को छाती माँहि छेवा है ॥
जान्यो न परत ऐसे काम है करत कोऊ,
　　　　गंधरब देव है कि सिद्ध है कि सेवा है ॥७६॥

शदार्थ—त्यौर ठाने=त्यौरी चढ़ाये हुए, क्रोधित हुए हुए। रसखोट=अनरस होना, बात बिगड़ जाना। अगोट=आड़, पहरा। डाँकि=उल्लंघन कर, लाँघ कर। रेवा=नर्वदा नदी। चक्क=(सं॰ चक्र) दिशा। चाहि=इच्छा करके। छेवा=छेद, साल। अवरंग--औरंगजेब

अर्थ—(शिवाजी जिस समय औरंगज़ेब से भेंट करने आये थे तब का वर्णन है) शिवाजी भृकुटी चढ़ाए हुए गुसलखाने ❀ के निकट होकर (दरबार में) आते हुए ऐसे दिखाई दिए जैसे कि औरंगज़ेब का काल हो। बात बिगड़ने पर (क्योंकि औरंगज़ेब की ओर से मिर्ज़ा जयसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि आप के साथ प्रतिष्ठा-सहित संधि हो जायगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ बल्कि शिवाजी को कैद कर लिया गया) आगरे की पहरेदारों से रक्षित सातों चौकियों को लाँघ कर वे घर आगये और उन्होंने अपने राज की सीमा रेवा (नर्मदा) को बनाया (राज इतना बढ़ाया कि नर्मदा तक सीमा पहुँच गई) भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने इस भाँति चारों दिशाओं का राज्य प्राप्त करने की इच्छा कर औरंगज़ेब के हृदय में छेद कर दिया (शिवाजी के राज्य की बढ़ती देख औरंगज़ेब बड़ा दुखी हुआ)। वे ऐसा काम करते हैं कि पता नहीं लगता कि वे गंधर्व हैं, या देवता हैं, या कोई सिद्ध हैं अथवा शिवा जी हैं।

❀ 'आवत गुसलखाने' का अर्थ एक-दो टीकाकारों ने 'गोसल-खाँ (औरंगज़ेब का एक अंग रक्षक) के आने पर' भी किया है। कह नहीं सकते कि औरंगज़ेब का इस नाम का कोई अंगरक्षक था या नहीं।

विवरण—यहाँ 'गंधरब्ब देव है कि सिद्ध है कि सेवा है' वाक्य में संदेह प्रकट किया गया है।

शुद्ध-अपन्हुति (शुद्धापन्हुति)

लक्षण—दोहा

आन बात आरोपिए, साँची बात दुराय।
शुद्धापह्नुति कहत हैं, भूषन सुकवि बनाय ॥ ८० ॥

शब्दार्थ—आरोपिए=स्थापन कीजिए, कहिए। दुराय= छिपा कर।

अर्थ—जहाँ सच्ची बात या वास्तविक वस्तु को छिपा कर किसी दूसरी बात अथवा वस्तु का उसके स्थान में आरोप किया जाय वहाँ सुकवि शुद्धापन्हुति अलंकार कहते हैं। ('अपन्हुति' का अर्थ ही 'छिपाना' है)।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चमकती चपला न, फेरत फिरंगै भट,
इन्द्र को न चाप, रूप बैरष समाज को।
धाए धुरवा न, छाए धूरि के पटल, मेघ[1]
गाजिबो न, बाजिबो है दुन्दुभि दराज को ॥
भौंसिला कै डरन डरानी रिपुरानी कहैं,
पिय भजौ, देखि उदौ पावस के साज को।
घन की घटा न, गज-घटनि सनाह साज,
भूषन भनत आयो सेन सिवराज को ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ - फिरंगै=विलायती तलवार। बैरष = झंडा। धुरवा= बादल। पटल=तह। दराज=बड़े। पावस=वर्षा। सनाह=कवच।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी के भय से डरी हुई शत्रुओं की स्त्रियाँ वर्षा के साज (वर्षा होने के लक्षणों) को देखकर अपने

१ 'मेघ' के स्थान पर 'व्योम' पाठ भी है।

पतियों से कहती हैं कि ये चपला (बिजली) नहीं चमकती हैं, ये शूरवीरों की विलायती तलवारें हैं। यह इन्द्र-धनुष नहीं है, यह सेना के झंडों का समूह है। ये आकाश में बादल नहीं दौड़ रहे हैं, वरन् धूल की तह की तह उड़ रही है (जो सेना के चलने पर उड़ती है)। न यह बादलों की गर्जना है, यह तो ज़ोर ज़ोर से नगाड़ों का बजना है। न यह मेघों की घटा है, यह तो हाथियों के झुंड और कवचों से सुसज्जित होकर शिवाजी की सेना आ रही है अतः प्यारे ! आप भागिए, नहीं तो खैर नहीं है।

विवरण—यहाँ बिजली की चमक, इन्द्र धनुष, बादल, मेघ गर्जन और घटाओं को छिपाकर उनके स्थान में तलवारों, झंडों, धूल की तह, दुन्दुभि-ध्वनि, हाथियों और कवचों से युक्त शिवाजी की सेना आदि असत्य बातों का आरोप किया है, अतः अपन्हुति अलंकार है।

हेतु-अपन्हुति (हेत्वपन्हुति)

जहाँ जुगति सौं आन को, कहिए आन छिपाय।
हेतु अपन्हुति कहत हैं, ता कहँ कवि समुदाय ॥ ८२ ॥

अर्थ—जहाँ युक्ति द्वारा किसी बात को छिपा कर दूसरी बात कही जाती है वहाँ कवि लोग हेत्वपन्हुति अलंकार कहते हैं।

सूचना—शुद्धापन्हुति में जब कोई कारण भी कहा जाता है तब हेत्वपन्हुति होती है।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा के कर लसै, सो न होय किरवान।
भुज-भुजगेस-भुजंगिनी, भखति पौन अरि-प्रान ॥ ८३ ॥

शब्दार्थ—भुजगेस = शेष नाग। भुजंगिनी = सर्पिणी। भखति= खाती है। किरवान=कृपाण, तलवार।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी के हाथों में जो वस्तु शोभा पाती है वह

तलवार नहीं है बल्कि वह उसकी भुजा-रूपी शेषनाग की सर्पिणी है जो शत्रुओं के प्राण-रूपी वायु को पीकर जीती है। (कहा जाता है कि साँप केवल वायु ही खाता है)।

विवरण—यहाँ तलवार को तलवार न कह उसे युक्ति से सर्पिणी कहा है क्योंकि वह शत्रुओं के प्राण-वायु को खाती है अतः हेत्वपन्हुति अलंकार हुआ।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

भाखत सकल सिवाजी को करबाल पर,
भूषन कहत यह करि कै विचार को।
लीन्हों अवतार करतार के कहे ते काली,
म्लेच्छन हरन उद्धरन भुव भार को॥
चंडी ह्वै घुमंडि अरि चंड-मुंड चाबि करि,
पीवत रुधिर कछु लावत न बार को।
निज भरतार भूत-भूतन की भूख मेटि,
भूषित करत भूतनाथ भरतार को॥८४॥

शब्दार्थ— करतार=ईश्वर, ब्रह्मा। उद्धरन=उद्धार करने को। चंडी=कालीदेवी। घुमंडि=घूम-घूम कर। चंड=प्रचंड, भयंकर, अथवा एक दैत्य जिसे दुर्गा ने मारा था। मुंड=सिर अथवा एक दैत्य जो शुंभ का सेनापति था, और उसकी आज्ञा से भगवती के साथ लड़ा था और उनके हाथों से मारा गया था। चंड और मुंड को मारने ही के कारण चंडी देवी को चामुंडा कहते हैं। भूतनाथ=भूतों के स्वामी महादेव, अथवा प्रजा के नाथ, प्रजापति शिवाजी।

अर्थ—सब लोग शिवाजी की तलवार को तलवार कहते हैं परन्तु भूषण कवि विचार कर कहते हैं कि यह तलवार नहीं है बल्कि भगवान की आज्ञा से म्लेच्छों को मारने और भूमि-भार का उद्धार करने के लिए (भूमि के भार को हलका करने के लिए) कलियुग में कालीजी ने अव-

तार लिया है। [चंडी ने चंड और मुंड नामक राक्षसों को मारा था और वह अपने पति (शिवजी) के नौकर भूत-प्रेतों की भूख मिटाती हुई स्वयं उन्हें (शिवजी को) मुंडमाला से सुशोभित करती है ऐसा विश्वास है कि युद्ध में मरे हुए वीर पुरुषों के मुंडों की माला शिवजी पहनते हैं] यह चंडी (तलवार) घूमघूम कर प्रचंड शत्रुओं के सिरों को खाती है और उनका रुधिर पान करने में देर नहीं करती (अथवा यह चंडी घूम घूम कर शत्रु रूपी चंड मुंड नामक राक्षसों को चबाती हुई तत्काल उनका रक्त पी लेती है) और अपने स्वामी शिवाजी के नौकरों और प्रजा की भूख मिटाती है, तथा अपने मालिक प्रजापति शिवाजी को भूषित करती है; उनकी कीर्त्ति बढ़ाती है (इस तलवार द्वारा युद्ध जीत कर ही शिवाजी दुश्मनों का खजाना और राज्य हरते हैं, जिससे उनकी प्रजा की भूख मिटती है और इस तलवार द्वारा जितना ही शत्रुओं का नाश होता है उतनी ही शिवाजी की कीर्त्ति बढ़ती है, इस कारण इसे चंडी का अवतार कहना उचित ही है)।

विवारण—यहाँ दूसरे और तीसरे चरण में कारण कथन पूर्वक तलवार का निषेध करके उसे युक्ति से चंडी (काली) सिद्ध किया गया है अतः हेतु-अपहुति है।

पर्य्यस्तापन्हुति

लक्षण—दोहा

वस्तु गोय ताको धरम, आन वस्तु में रोपि।
पर्यस्तापहुति कहत, कवि भूषन मति ओपि ॥८५॥

शब्दार्थ—गोय = छिपाकर। रोपि = आरोपित कर। मतिओपि = चमत्कृतबुद्धि, चतुर, अथवा बुद्धि को चमका कर अर्थात् बुद्धि-मत्ता से।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु को छिपाकर उसका धर्म किसी अन्य

वस्तु में आरोपित किया जाय वहाँ चतुर कवि पर्यस्तापन्हुति अलंकार कहते हैं। जब किसी वस्तु (उपमान) के सच्चे गुण का निषेध कर, उसके गुण या धर्म को अन्य वस्तु में स्थापित किया जाय तब पर्यस्तापन्हुति अलंकार होता है।

सूचना—पर्यस्त का अर्थ "फैंका हुआ" है। इसमें एक वस्तु का अर्थ दूसरी वस्तु पर फैंका जाता है, जो धर्म छिपाया जाता है, वह प्रायः दुबारा आता है।

उदाहरण—दोहा

काल करत कलि काल में, नहीं तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को, सिव सरजा करवाल ॥८६॥

शब्दार्थ—कलि काल = कलियुग। काल = मृत्यु, मौत।

अर्थ—कलियुग में काल (मौत) तुर्कों का अंत नहीं करता किन्तु वीरकेसरी शिवाजी की तलवार उनका अंत(नाश) करती है। अर्थात् कलियुग में तुर्क मौत से नहीं मरते अपितु शिवाजी की तलवार से मरते हैं।

विवरण—यहा 'काल' मे 'काल करने' के धर्म का निषेध करके शिवाजी के करवाल (तलवार) में उसका आरोप किया गया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

तेरे ही भुजन पर भूतल को भार,
कहिबे को सेस-नाग दिगनाग हिमाचल है।
तेरो अवतार जग पोसन भरनहार,
कछु करतार को न तामधि अमल है॥
साहिन में* सरजा समत्थ सिवराज,
कवि भूषन कहत जीवो तेरोई सफल है।
तेरो करवाल करै म्लेच्छन को काल,
बिन काज होत काल बदनाम धरातल है॥८७॥

*पाठान्तर—'साहितनै'।

अर्थ—(हे शिवाजी !) समस्त पृथ्वी का भार आप ही की भुजाओं पर है। शेषनाग, दिग्गज और हिमाचल तो कहने मात्र के लिए ही हैं, अर्थात् उन पर पृथ्वी का भार नहीं है। आपका अवतार दुनियाँ के पालन-पोषण के हेतु हुआ है, इसमें करतार (ब्रह्मा) का कोई दखल नहीं है। भूषण कवि कहते हैं कि हे बादशाहों में वीरकेसरी महाशक्तिशाली शिवाजी! वास्तव में आपका जीना ही सफल है। आपकी तलवार म्लेच्छों को मारती है, मृत्यु बेचारी तो व्यर्थ ही दुनियाँ में बदनाम होती है।

विवरण—यहाँ 'शेषनाग' और 'दिगनाग' के पृथ्वी का धारण करना रूप धर्म को निषेध कर उस (धर्म) का शिवाजी में आरोप किया गया है। पुनः ब्रह्मा के धर्म का निषेध कर शिवाजी में उसका आरोप किया गया है। अन्तिम चरण में फिर मृत्यु के धर्म का उसमें निषेध कर शिवाजी के करवाल में उसका आरोप किया है।

भ्रान्तापन्हुति

लक्षण—दोहा

संक आन को होत ही, जहँ भ्रम कीजै दूरि।
भ्रान्तापह्नुति कहत हैं, तहँ भूषन कवि भूरि ॥८८॥

शब्दार्थ संक = शंका। भूरि = बहुत।

अर्थ—किसी अन्य बात की शंका होते ही जहाँ (सच्ची बात कह कर) भ्रम दूर कर दिया जाय वहाँ कवि भ्रान्तापह्नुति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सरजा के भय सों भगाने भूप,
मेरु में लुकाने ते लहत जाय ओत हैं।
भूषन तहाऊँ मरहट्टपति के प्रताप,
पावत न कल अति कौतुक उदोत हैं॥
'सिव आयो सिव आयो' संकर के आगमन,
सुन कै परान ज्यों लगत अरि गोत हैं।

'सिव सरज़ा न, यह सिव है महेस' करि,
यों ही उपदेस जच्छ रच्छक से होत हैं ॥८९॥

शब्दार्थ—ओत = अवधि, कष्ट की कमी (आराम)। कल = चैन। मरहटपति = शिवाजी। उदोत = उदय, प्रकट। परान= पलान, पालायन भाजड़, दौड़। अरिगोत = शत्रुकुल।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी के भय से शत्रु राजा भाग कर मेरु पर्वत में जा छिपे और वहाँ जाकर छिपने से वे कुछ आराम पाते हैं। लेकिन भूषण जी कहते हैं कि वहाँ भी उन्हें महाराष्ट्रपति के प्रताप के कारण पूरा चैन नहीं मिलता अतएव वहाँ बड़ा तमाशा हुआ करता है। महादेवजी के वहाँ आने पर जब "शिव आये, शिव आये" ऐसा शब्द वे (शत्रु राजा) सुनते हैं तो वे दौड़ने लगते हैं, उनमें गड़बड़ मच जाती है (वे समझते हैं कि शिवाजी आगए)। (इस प्रकार उन्हें भागता हुआ देख) वहाँ के यक्ष यह कह कर कि 'यह वीर-केसरी शिवाजी नहीं हैं अपितु शिव (महादेव) हैं' उनका भ्रम मिटा, इस आपत्ति के समय उनके रक्षक से हो जाते हैं।

विवरण—यहाँ शत्रु राजाओं को 'शिव' नाम से वीर-केसरी शिवाजी का भ्रम उत्पन्न हो गया था वह "सिव सरजा न, यह सिव है महेस" यह सत्य बात कह कर मिटाया गया है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

एक समै सजि कै सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए।
"आवत है सरजा सम्हरौ", यक ओर ते लोगन बोल जनाए॥
भूषन भो भ्रम औरंग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए।
धाय कै "सिंह" कह्यो समुझाय करौलनि आय अचेत उठाए॥९०॥

शब्दार्थ—आलमगीर=औरंगज़ेब। धाक = आतंक। धुकाए= घिरे, रोब में आये। धाकधुकाए=आतंक से घबराये हुए। करौल= शिकारी, जो लोग सिंह को उसकी माँद से हाँक कर लाते हैं।

अर्थ—एक समय बादशाह औरंगज़ेब समस्त सेना सजाकर शिकार खेलने गया। वहाँ (शिकार के समय) एक ओर से लोगों ने आवाज़ दी– 'सँभलिए सरजा, (सिंह) आता है।' भूषण कवि कहते हैं कि भौंसला-नरेश शिवाजी के आतंक से घबराये हुए औरंगजेब को यह सुन कर शिवाजी का भ्रम होगया(उसने सरजा का अर्थ शिवाजी समझा) और वह मूर्छित हो गया। तब शिकारियों ने शीघ्रता से निकट जाकर उसे 'शिवाजी नहीं, अपितु सिंह है, ऐसा समझा कर मूर्छित पड़े हुए को उठाया।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब ने सरजा का अर्थ 'शिवाजी' समझा था, परन्तु शिकारियों ने सत्यार्थ 'सिंह' कह कर भ्रम दूर किया।

छेकापन्हुति

लक्षण—दोहा

जहाँ और को संक करि, साँच छिपावत बात।
छेकापह्नति कहत हैं, भूषन कवि अवदात॥

शब्दार्थ—संक करि=शंका करके। अवदात=शुद्ध, श्रेष्ठ। कवि अवदात=श्रेष्ठ कवि।

अर्थ—जहाँ किसी दूसरी बात की शंका करके सच्ची बात को छिपाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि छेकापन्हुति अलंकार कहते हैं।

सूचना—यह अलंकार भ्रान्तापन्हुति के ठीक उलटा है। भ्रान्तापन्हुति में सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है, किन्तु इसके विपरीत चालाकी से जब सत्य को छिपाकर और असत्य कहकर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है तब छेकापन्हुति अलंकार होता है। शुद्धापन्हुति में जो असत्य का आरोप होता है वह किसी गुप्त बात को छिपाने के लिए नहीं होता। यहाँ एक बात कह कर उससे मुकर जाना होता है, अतः इसे मुकरी भी कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

तिमिर-वंस-हर अरुन-कर आयो सजनी भोर ?
'सिव सरजा', चुप रह सखी, सूरज-कुल-सिरमौर ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—तिमर=अंधकार, तैमूरलंग। तिमिरवंसहर=अंधकार को नष्ट करने वाला सूर्य, अथवा तैमूरलंग के वंश (मुगलों) को नष्ट करने वाला शिवाजी। अरुनकर=लाल किरनों वाला सूर्य, लाल हाथों वाला (मुगलों के रक्त से लाल हाथों वाला)। भोर= प्रात:काल। सूरज कुल सिरमौर = वंश में श्रेष्ठ सूर्य, सूर्य वंश में श्रेष्ठ।

अर्थ—हे सखि तैमूरलंग के वंश को नष्ट करने वाला (अँधेरे को नष्ट करने वाला) और लाल हाथों वाला (लाल किरणों वाला) प्रातः होते ही आया। क्या सखि 'वीरकेसरी शिवाजी ?' नहीं सखि, चुप रह मैं तो सूर्य की बात करती हूँ।

विवरण—कोई स्त्री ऐसी शब्दावली में अपनी सखी से बात करती है जिससे शिवाजी और सूर्य दोनों पक्षों में अर्थ लगता है और फिर वह 'सिव सरजा' की सच्ची बात छिपाकर सूर्य की झूठी बात कहती है, अत: यहाँ छेकापन्हुति है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

दुरगहि बल पंजन प्रबल, सरजा जिति रन मोहिं।
औरँग कहै देवान सों, सपन सुनावत तोहिं ॥६३॥
सुनि सु उजीरन यों कह्यो, "सरजा सिव महाराज" ?
भूषन कहि चकता सकुचि, "नहिं सिकार मृगराज" ॥६४॥

शब्दार्थ—देवान = दीवान, मन्त्री। सरजा सिव महाराज = क्या वीरकेसरी शिवाजी महाराज ? मृगराज = शेर।

अर्थ—औरंगज़ेब अपने वज़ीरों से कहता है कि मैं तुम्हें अपना सपना सुनाता हूँ, (स्वप्न में मैंने देखा) कि दुर्गों के बल से (या दुर्गा के

बल से—सिंह दुर्गा का वाहन है, अतः उसे दुर्गा की कृपा-प्राप्त है) और अपनी प्रबल भुजाओं से (अपने प्रबल पंजों से)सरजा ने मुझे रण में जीत लिया। यह सुनकर वजीरों ने पूछा—'क्या सरजा (वीरकेसरी)शिवाजी महाराज ने ?' भूषण कहता है कि तब लज्जा से सकुचा कर (झेंप कर) औरंगज़ेब बोला—नहीं, (युद्ध में शिवाजी ने मुझे नहीं जीता) शिकार में मृगराज (सिंह) ने मुझे जीत लिया।

विवरण—यहाँ भी शब्दों के हेर-फेर से सिंह की बात कहकर असल बात शिवाजी को छिपा दिया है अतः यहाँ छेकापन्हुति अलंकार है।

कैतवापन्हुति

लक्षण—दोहा

जहँ कैवत, छल, व्याज, मिस, इन सों होत दुराव।
केतवऽपह्नुति ताहि सों, भूषण कहि सति भाव ॥६५॥

शब्दार्थ—कैतव=छल। साति भाव = सत्य भाव से, वस्तुतः।

अर्थ—जहाँ किसी बात को कैतव, व्याज और मिस आदि शब्दों के द्वारा छिपाया जाय वहाँ भूषण कवि कैतवापह्नुति अलंकार मानते हैं।

सूचना—यह भी अपन्हुति का एक भेद है, पर अपन्हुति के अन्य भेदों में कोई न कोई नकारात्मक शब्द आकर बात को छिपाने में मदद पहुँचाता है, परन्तु जब ऐसा नकारात्मक शब्द न आवे और 'बहाने से' 'व्याज से' आदि शब्दों के द्वारा सत्य बात को छिपा कर असत्य की स्थापना की जाती है तब कैतवापन्हुति अलंकार होता है। अतः इस अंलकार में ऐसे शब्दों का आना ज़रूरी है।

उदाहरण—मनहरण कवित्त

साहितनै सरजा खुमान सलहेरि पास,
कीन्हौ कुरुखेत खीझि मीर अचलन सों।

भूषन भनत वलि करी है अरीन धर,
धरनी पै डारि नभ प्राण दै दलन सों ॥
अमर के नाम के बहाने गो अमरपुर,
चन्दावत लरि सिवराज के वलन सों ।
कालिका प्रसाद के बहाने ते खवायो महि
वावू उमराव राव पसु के छलन सों ॥६६॥*

शब्दार्थ—सलहेरि=यह क़िला सूरत के पास था । इसे शिवाजी के प्रधान मोरोपंत ने १६७१ ई० में जीत लिया था । सन् १६७२ में दिल्ली के सेनापति दिलेरखाँ ने इसे घेरा और यहाँ मराठों और मुगलों में भयंकर युद्ध हुआ । जिसमें मुगलों

---

* इस कवित्त के दूसरे और चौथे चरणों का पाठ कहीं-कहीं इस प्रकार भी मिलता है:—

भूषन भनत करि कूरम बहानो,
रन-धरनी सों जान घर प्रान दै वलन सों ।
सरजा वचायो भजे काजी के बहाने, वावू
राव, उमराव ब्रह्मचारी के छलन सों ।

इस पाठ का अर्थ इस प्रकार होगा —

शब्दार्थ—कूरम=कछवाहे राजा । रन धरनी=रण क्षेत्र । काजी=मुसलमान न्याय करने वाले हाकिम । राव = छोटे राजा । उमराव=बड़े सरदार । छलन = बहाने

अर्थ—(३) सेना में प्राण देने के (भय के) कारण कछवाहे राजा वर जाने का बहाना कर के युद्ध भूमि से चले गये ।

(४) काजी के वहाने से भागने वालों को शिवाजी महाराज ने वचा दिया । वावू, राव और उमराव 'ब्रह्मचारी' (वन कर) के बहाने से भाग गये ।

को बड़ी हानि पहुँची और उनके मुख्य सेनानायकों में से २२ मारे गये और अनेक बंदी हुए एवं समस्त सेना तितर-बितर हो गई। इसीलिए भूषण ने कई स्थानों पर इसका वर्णन किया है। कुरुखेत कीन्हों = कुरुक्षेत्र सा किया, घोर युद्ध किया। बलि करी = बलि दे दी। अरीन धर = शत्रुओं को पकड़ कर। धरनी पै डारि नभ प्रान दै बल्लन सों = बल से (ज़बर्दस्ती उन शत्रुओं को) पृथ्वी पर पटक कर उनका प्राण आकाश को दे दिया (उन्हें मार डाला)। अमर = अमरसिंह चंदावत, यह भी सलहेरि के युद्ध में मारा गया था। कालिकाप्रसाद = काली (देवी) की भेंट।

अर्थ—शाहजी के पुत्र वीरकेसरी चिरंजीव शिवाजी ने अटल (दुर्जय) अमीरों से नाराज़ होकर सलहेरि के पास कुरुक्षेत्र मचा दिया अर्थात् घमासान युद्ध किया। भूषण कवि कहते हैं कि उन्होंने सारे शत्रुओं को ज़बर्दस्ती पकड़ पकड़ कर उनकी बली दे दी, (उन्हें) पृथ्वी पर पटक कर उनके प्राण आकाश को दे दिये (उन्हें मार डाला), अमरसिंह चंदावत ·नकी सेना से युद्ध कर अपने नाम (अमर) के बहाने अमरपुर (देवलोक) को चला गया और कालीजी के प्रसाद के बहाने से बाबू, उमराव तथा सरदार रूपी पशुओं को उन्होंने पृथिवी को खिला दिया।

उत्प्रेक्षा

लक्षण—दोहा

आन बात को आन में, जहँ संभावन होय।
वस्तु हेतु फल युत कहत, उत्प्रेक्षा है सोय ॥९७॥

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की संभावना की जाती है, वहाँ वस्तु, हेतु या फलोत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इसके वाचक शब्द हैं—मनु, जनु, मानो, मनहु, आदि।

सूचना—उत्प्रेक्षा (उत् + प्र + ईक्षन) शब्द का अर्थ है "बल

पूर्वक प्रधानता से देखना"। अतः इसमें कल्पना शक्ति के ज़ोर पर कोई उपमान कल्पित किया जाता है।

वस्तूत्प्रेक्षा

उदाहरण—मालती सवैया

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भार्‌यो।
भूषन बाहुबली सरजा तेहि भेंटिवे को निरसंक पधार्‌यो॥
बीछू के घाय गिरे अफ़ज़ल्लहि ऊपर ही सिवराज निहार्‌यो।
दाबि यों बैठो नरिन्द अरिन्दहि मानो मयन्द गयन्द पछार्‌यो॥९८॥

शब्दार्थ—दानव = राक्षस (यहाँ अफ़ज़लखाँ से अभिप्राय है) दीह = दीर्घ, बड़ा। भयारो = भयंकर। भार्‌यो = भरा हुआ। घाय = घाव, ज़ख्म। नरिन्द = (नरेन्द्र) राजा। अरिन्द = प्रबल शत्रु। मयन्द = (मृगेन्द्र) सिंह। गयन्द = (गजेन्द्र) हाथी।

अर्थ—जब बड़े अभिमान में भरा हुआ महाभयंकर दानव (अफ़ज़ल खाँ) धोखा करके (छल करने की इच्छा से) जावली स्थान पर आया, भूषण कहते हैं कि, तब बाहुबली शिवाजी बिना किसी शंका के (बेधड़क) उससे मिलने को गये। (जब उसने धोखे से शिवाजी पर तलवार का वार करना चाहा तो) शिवाजी ने बघनखे के घाव से उसे नीचे गिरा दिया, (और शीघ्र ही) बीछू शस्त्र (बघनखा) के घाव से गिरे हुए अफ़ज़लखाँ के ऊपर ही वे दिखाई देने लगे। राजा शिवाजी अपने शत्रु (अफ़-ज़लखाँ) को ऐसे दबाकर बैठे, मानो किसी सिंह ने हाथी को पछाड़ा हो (और वह उस पर बैठा हो)

विवरण—यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है। कवि का तात्पर्य पछाड़े हुए अफ़ज़लखाँ पर शिवाजी के बैठने का वर्णन करना है,

परन्तु अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक हाथी पर बैठे हुए सिंह उपमान की ओर ले जाता है जिससे कि पाठक शिवाजी के उस बैठने की शोभा का अनुमान कर सकें।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सिव साहि निसा मैं निसाँक लियो गढसिंह सोहानौ।
राठिवरो को सँहार भयो लरिकै सरदार गिरयो उदैभानौ॥
भूषन यों घमसान भो भूतल घेरत लोथिन मानो मसानौ।
ऊँचै सुछज्ज छटा उचटी प्रगटी परभा परभात की मानौ॥९९॥

शब्दार्थ—निसाँक = निःशंक। गढ़सिंह = सिंहगढ़। सुहानौ = सुहावना, सुन्दर। राठिवरो = राठौर क्षत्रिय। उदैभानो = उदयभानु एक वीर राठौर क्षत्रिय जो औरंगज़ेब की ओर से सिंहगढ़ का किलेदार था। लोथिन = लाशों। मसानो = श्मशान। सिंहगढ़ इस किले का पहला नाम कोंडाणा था। सन् १६४७ ई० में शिवाजी ने इसे जीता। जयसिंह से संधि करते समय शिवाजी को यह किला, और बहुत से किलों के साथ, औरंगज़ेब को देना पड़ा। औरंगज़ेब की कैद से छूटने के बाद, सन् १६७० में शिवाजी ने तानाजी मालुसुरे को कोंडाना वापिस लेने के लिए भेजा। अँधेरी रात में तानाजी और उसके भाई सूर्याजी ने धावा किया। घमासान युद्ध हुआ। क़िला शिवाजी के हाथ आया पर वीर तानाजी लड़ते लड़ते मारा गया। उस पुरुषसिंह की मृत्यु पर शिवाजी ने कहा 'गढ़ आया पर सिंह गया', तभी से इसका नाम सिंहगढ़ पड़ा। इसी घटना का यहाँ वर्णन है।

अर्थ—शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी ने निःशंक हो (निर्भयता-पूर्वक) सिंहगढ़ को रात में युद्ध करके विजय कर लिया। समस्त राठौर क्षत्रिय (जो क़िले में थे) मारे गए और लड़ कर राठौर सरदार उदयभानु भी

इस युद्ध में गिर गया! भूषण कवि कहते हैं कि ऐसा घमासान युद्ध हुआ मानो पृथ्वी-तल ही लोथों (लाशों) से घिरा हुआ श्मशान हो अर्थात् पृथ्वीतल ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों लोथों से घिरा हुआ श्मशान हो। (उसी समय अर्धरात्रि को दुर्गविजय की सूचना किले से ९ मील दूर पर बैठे हुए शिवाजी को देने के लिए घुड़सवारों की फूस की झोपड़ियों में आग लगा दी गई; अतएव) ऊँचे सुन्दर छज्जों पर (विजय-सूचक जलाई गई) आग इस प्रकार उचटी (भड़की) मानो प्रभात-काल की प्रभा (छटा, लाली) फैल गई हो।

विवरण—यहाँ लाशों से पटे हुए स्थान को श्मशान के समान और ऊँचे छज्जों पर जलाई गई विजयसूचक आग को प्रभात की लालिमा कल्पित किया गया है, अतः वस्तूत्प्रेक्षा है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

दुरजन-दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं,
उत्तर पहार डरि सिवजी नरिंद तें।
भूषन भनत, बिन भूषन बसन, साधे,
भूखन पियासन हैं नाहन को निंदते॥
बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिंद तें।
दृग-जल कज्जल कलित बढ्यो कढ्यो मानो
दूजो सोत तरनि तनूजा को कलिंद तें॥१००॥

शब्दार्थ—दुरजन = खल, नीच, यहाँ मुसलमान शत्रुओं से तात्पर्य है। बेसम्हार=बेशुमार, अनगिनत अथवा बिना सँभाल के (अस्तव्यस्त)। बसन = वस्त्र। साधे = साधन किए हुए, सहते हुए। नाह = पति। अयाने = (अज्ञानी) अबोध। बिलाने = विलीन होगए, खो गए। अरबिंद = कमल। कलिंद = वह पहाड़ जिस से यमुना जी निकली हैं, इसी से यमुना जी को कालिन्दी कहते हैं।

अर्थ—महाराज शिवाजी के भय से शत्रुओं की अनगिनत (अथवा अस्त व्यस्त हुई) स्त्रियाँ भाग-भाग कर उत्तर दिशा के पहाड़ों (विन्ध्याचल तथा हिमालय) पर चढ़ गईं। भूषण कवि कहते हैं कि वे न अपने गहने कपड़ों को सम्हालती थीं और न उन्हें भूख प्यास थी (वे भूख प्यास को साधे थीं) और वे अपने अपने पतियों को कोसती जाती थीं (कि उन्होंने नाहक ही शिवाजी से शत्रुता की)। उनके अबोध बच्चे मार्ग ही में (घबराहट के कारण) खो गये और स्वच्छ तथा सुंदर कमलों से भी कोमल उनके मुख मुरझा गये। उनकी आँखों से निकल कर कज्जल-मिश्रित आँसू ऐसे बह चले मानो कलिंद पर्वत से यमुना का दूसरा स्रोत निकला हो। कवियों ने यमुना के जल का रंग काला और गंगा-जल का रंग सफेद माना है। आँखों से निकला जल भी काजल से मिला होने के कारण काला है, और स्त्रियाँ पहाड़ों पर तो चढ़ी हुई हैं ही। काला जल ऐसे निकलने लगा मानो कलिंद पहाड़ से यमुना जी का स्रोत।

विवरण—यहाँ नेत्रों के काले जल में कालिन्दी के द्वितीय स्रोत की संभावना की है अतः वस्तूत्प्रेक्षा है।

चौथा उदाहरण—दोहा

महाराज सिवराज तव, सुघर धवल ध्रुव कित्ति।
छवि छटान सों छुवति-सी, छिति-अंगन दिग-भित्ति ॥१०१॥

शब्दार्थ—ध्रुव = ध्रुव, अचल। कित्ति = कीर्ति, बड़ाई दिगभित्ति = दिशा-रूपी भीत।

अर्थ—हे महाराज शिवराज, तेरी सुंदर, शुभ्र (सफेद) और निश्चल कीर्ति अपनी कान्तिरूपी छटा से पृथ्वी रूपी आँगन और आकाशरूपी दीवारों को मानो छू रही है; पोत रही है। (कई प्रतियों में 'छुवति' के स्थान पर 'छवति' पाठ है; वहाँ अर्थ इस प्रकार होगा—हे महाराज शिवराज, तेरी सुंदर शुभ्र और निश्चल कीर्ति पृथ्वी रूपी आँगन और दिशा रूपी दीवारों पर अपनी सुन्दरता से छा रही है, छत डाल रही है।)

विवरण—यहाँ शिवाजी के यश को चारों ओर फैलते देखकर यह कल्पना की गई है कि मानो उनका यश पृथ्वी-रूपी आँगन और दिशा-रूपी दीवारों पर सफेदी कर रहा है, अतः वस्तूत्प्रेक्षा है। वस्तूत्प्रेक्षा के दो भेद होते हैं,एक उक्तविषया (जहाँ विषय कहकर फिर कल्पना की जाय) दूसरा अनुक्तविषया (जहाँ कल्पना का विषय न कहा गया हो)। इस दोहे में अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है, क्योंकि यहाँ (कीर्ति के फैलने का) कथन नहीं किया गया।

हेतूत्प्रेक्षा

उदाहरण—कवित्त मनहरण

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूट्यो कारतलबखाँ मानहु अमाल है।
भूषन भनत लूट्यो पूना में सइस्तखान,
गढ़न में लूट्यो त्यों गढ़ोइन को जाल है॥
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है ॥१०२॥

शब्दार्थ—खानदौरा=दक्षिण का मुगल सूबेदार नैशीरखाँ खानदौरा जिसकी उपाधि थी। सफजंग=सफदरजंग नामक दिल्ली का एक सरदार अथवा यह किसी सरदार की उपाधि होगी। फारसी में सफजंग का अर्थ युद्ध की तलवार होता है। कारतलबखाँ=यह शाइस्ताखाँ का सहायक सेनापति था, अंबराखिंडी के पास इसे मराठों ने घेर लिया था, अन्त में बहुत सा धन लेकर इसे जीवनदान दिया था। अमाल=(अरबी अमल) आमिल, अधिकारी, हाकिम। हेरि हेरि=देख देखकर, खोजकर। गढ़ोइन = गढ़पति। रिसाल- = इरसाल, खिराज, कर।

अर्थ—शिवाजी ने महाबली खानदौरा और सफ़दरजंग को लूट लिया। कारतलबखाँ को भी खूब लूटा। भूषण कवि कहते हैं कि पूना में शाइस्ताखाँ को भी लूट लिया और ऐसे ही शत्रुओं के जितने किले थे उनके सारे किलेदारों को भी लूट लिया। और सलहेरि के रणस्थल में खोज खोज कर सरदारों को कुचल डाला और चारों ओर से भयंकर सेना से भी सब कुछ छीन लिया। (यह समस्त लूट की सामग्री ऐसी मालूम होती थी) मानों शिवाजी ही शासक हैं और औरंगज़ेब उनसे डर कर अमीर उमरावों के साथ घोड़े और हाथियों का ख़िराज भेजता है। अर्थात् औरंगज़ेब अपनी सेना चढ़ाई के लिए नहीं भेजता अपितु शिवाजी को शासक समझ उनके डर से खिराजरूप में भेजता है।

विवारण—जहाँ अहेतु को (अर्थात् जो कारण न हो, उसे) हेतु मान कर उत्प्रेक्षा की जाय वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है। यहाँ औरंगज़ेब के बार-बार सेना भेजने का कारण शिवाजी को खिराज भेजना बताया गया है, जो कि असली कारण नहीं। अत: अहेतु को हेतु मानने से यहाँ हेतु-उत्प्रेक्षा अलंकार है।

फलोत्प्रेक्षा

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहि पास जात सो तौ राखि न सकत याते,
तेरे पास अचल सुप्रीति नाधियतु है।
भूषन भनत सिवराज तव कित्ति सम,
और की न कित्ति कहिबे को काँधियतु है॥
इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अवतार यातें
तेरो बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पायतर आय नित निडर बसायबे को
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥१०३॥

शब्दार्थ—नाधियतु=जोड़ते हैं। काँधियतु=ठानते हैं, स्वीकार करते हैं। उपेन्द्र=विष्णु। पायतर=पैरों के तले, चरणाश्रय में। पग=पगड़ी। कोट=किला।

अर्थ—मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित राजा लोग जिसके पास शरणार्थ जाते हैं वे तो उन्हें अपनी शरण में रख नहीं सकते (उनमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि वे उनके शत्रुओं से लड़कर उन्हें बचा सके) इस हेतु हे शिवाजी, वे (शरणार्थी) आप से अटल प्रीति जोड़ते हैं। अतएव भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! आपके यश के समान अन्य राजाओं के यश का वर्णन करना स्वीकृत नहीं किया जाता। आप इन्द्र के छोटे भाई विष्णु के अवतार हैं (हिन्दुओं की रक्षा करने के कारण विष्णु का अवतार कहा है)-इसलिए (दुखी) लोग आपके बाहुबल का आश्रय ले अपनी राय निश्चित करते हैं, (आगे क्या करना है उसका निश्चय आपके बल पर करते हैं)। निडर बसने के लिए शरण आये लोगों के सिर पर आप पगड़ी क्या बाँधते हैं मानों उनके निर्भय होकर रहने के लिए किले ही बनवा देते हैं।

विवरण—यहाँ पगड़ी बाँधने में किले बनवाने की तथा फल रूप निडर होने की उत्प्रेक्षा की गई है, अतएव यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

दुवन सदन सबके बदन, 'सिव सिव' आठों याम।
निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम ॥१०४॥

शब्दार्थ—दुवन=शत्रु। बदन=मुख।

अर्थ—शत्रुओं के घरों में सब के मुख से आठों पहर (रात-दिन) 'शिव-शिव' शब्द निकलता है (शिवाजी के भय से शत्रु लोग रात-दिन उनकी

चर्चा करते रहते हैं, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि) मानों तुर्क भी रक्षा के लिए शिव (महादेव) का नाम जपते हैं।

विवरण—हिन्दूशास्त्रानुसार शिव के नाम के जाप से प्राणरक्षा होती है, परन्तु मुसलमानों का शिव का जाप करना अफल को फल मानना है। साथ ही यहाँ शिवनामोच्चारण भय के कारण है न कि अपनी रक्षा के हेतु, किन्तु इस फल के अर्थ उस का कथन करना ही फलोत्प्रेक्षा है।

गम्योत्प्रेक्षा

लक्षण—दोहा

मानो इत्यादिक बचन, आवत नहिं जेहि ठौर।
उत्प्रेक्षा गम, गुप्त सो, भूषन भनत अमौर ॥१०५॥

अर्थ—'मानो' 'जनु' इत्यादि उत्प्रेक्षा-वाचक शब्द जहाँ नहीं आते वहाँ भूषण कवि अमूल्य गम्योत्प्रेक्षा या गुप्तोत्प्रेक्षा अलंकार मानते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

देखत ऊँचाई उदरत पाग, सूधी राह
द्योसहू में चढ़ैं ते जे साहस निकेत हैं।
सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन,
सलहेरि परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं ॥
सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि
दुग्ग पर जात मावली दल सचेत हैं ॥
भूषन भनत ताकी बात मैं बिचारी, तेरे
परताप रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं ॥१०६॥

शब्दार्थ—उदरत = गिरती है। द्योस = दिवस, दिन। परनाला = एक किले का नाम जो आजकल के कोल्हापुर से २२ मील उत्तर पश्चिम की ओर था, जिसे १६५९ सन् के अन्त में शिवाजी ने अपने

अधिकार में कर लिया था। मई १६६० में बीजापुर की ओर से सिद्दी जौहर ने इसे शिवाजी को पकड़ने के विचार से आ घेरा पर वह सफलमनोरथ न हुआ। किला उसे मिल गया, पर शिवाजी वहाँ से निकल चुके थे। इसके बाद शिवाजी की बीजापुर वालों से संधि हो गई, अतः यह किला बीजापुर वालों के हाथ में ही रहा। सन् १६७२ में अली आदिलशाह की मृत्यु होगई। उसके बाद १६७३ में शिवाजी के सेनापति कान्होजी अँधेरी रात में कुल ६० सिपाहियों के सहायता से इस किले पर चढ़ गये। किलेदार भाग गया और वह किला शिवाजी के हाथ में आ गया। कुहू=अमावस्या की रात। मावली=पहाड़ी देश के रहने वाले लोग जो शिवाजी के पैदल सैनिक थे।

अर्थ—जिन किलों की ऊँचाई देखने में पगड़ी गिर पड़ती है, अर्थात् जो किले इतने ऊँचे हैं कि उनकी चोटी को देखने के लिए इतना सिर झुकाना पड़ता है कि पगड़ी गिर पड़ती है और जिन पर दिन में भी सीधी राह से वे ही व्यक्ति चढ़ पाते हैं जो साहसनिकेत (अत्यधिक साहसी) हैं, हे शिवाजी तेरा हुक्म पाकर होशियार मावली सेना पैदल ही सावन और भादों की अमावस्या की घोर अँधेरी रात में उन सलहेरि और परनाले के किलों पर चढ़ जाती है, और उन को ऐसे जीत लेती है, मानों वे समतल खेत हों। भूषण कवि कहते हैं कि इतनी आसानी से ऐसी घोर अँधेरी रात्रि में उनके किले पर चढ़ जाने की बात को मैंने सोचा तो जान पाया कि (मानो) तेरे प्रताप-रूपी सूर्य के उजियाले में ही वे किले जीत पाते हैं।

विवरण—यहाँ द्वितीय चरण में तो 'जनु' वाचक आया है परन्तु चौथे चरण में जनु आदि कोई प्रसिद्ध वाचक शुद्ध नहीं है। अतः गम्योत्प्रेक्षा है। यदि भूषण इस पद में 'बात मैं विचारी' का प्रयोग न करते, जो एक प्रकार का वाचक ही है, तो यह उदाहरण अधिक उपयुक्त होता।

दूसरा उदाहरण—दोहा

और गढ़ोई नदीनद, सिव गढ़पाल दरयाव।
दौरि दौरि चहुँ ओर ते, मिलत आनि यही भाव ॥१०७॥

शब्दार्थ—गढ़ोई = छोटे छोटे किलों के गढ़पति । गढ़पाल = गढ़पति । दरयाव = दरिया, नदी, समुद्र ।

अर्थ—छोटे छोटे किलेदार सिवाजी की अधीनता सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं और उन से मिल जाते हैं, इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानों और जितने भी छोटे छोटे किलों के स्वामी हैं वे सब नदी-नाले हैं, गढ़पति शिवाजी ही समुद्र हैं। इसीलिए वे छोटे-छोटे किलेदार चारों ओर से दौड़े दौड़े आकर इसी प्रकार शिवाजी से मिलते हैं जैसे नदी नाले समुद्र में गिरते हैं

विवरण—यहाँ वाचक शब्द 'मानो' नहीं है अतः गम्योत्प्रेक्षा है।

अतिशयोक्ति

जहाँ किसी की अत्यन्त प्रशंसा के लिये बढ़ा-चढ़ा कर लोक-सीमा के बाहर की बात कही जाय वहाँ अतिशयोक्ति, अलंकार होता है। अतिशयोक्ति के पाँच मुख्य भेद हैं—रूपकातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, चंचलातियोक्ति, अत्यन्तातिशयोक्ति। भाषा-भूषण में सापन्हवातिशयोक्ति, और संबंधातिशयोक्ति दो भेद और दिये हैं। कहीं-कहीं इससे अधिक भेद भी मिलते हैं।

१ रूपकातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

ज्ञान करत उपमेय को, जहँ केवल उपमान।
रूपकातिसद-उक्ति सो, भूषण कहत सुजान ॥१०८॥

अर्थ—जहाँ केवल उपमान ही उपमेय का ज्ञान कराये अर्थात् उपमान ही के कथन से उपमेय जाना जाय वहाँ चतुर लोग रूपकातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

वासव से बिसरत बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत बीर बखत-बुलंद के।
जागे तेज-बृन्द सिवाजी नरिंद मसनंद,
माल-मकरंद कुलचंद साहिनंद के॥
भूषन भनत देस-देस वैरि-नारिन मैं,
होत अचरज घर घर दुख-दंद के।
कनक-लतानि इंदु, इंदु माहि अरविंद,
झरैं अरबिंदन तें बुंद मकरंद के॥१०६॥

शब्दार्थ—वासव = इन्द्र। बिसरत = भूल जाता है। बिक्रम= विक्रमादित्य, पराक्रम। मसनन्द = गद्दी। माल-मकरन्द=मालोजी। दंद = द्वंद्व, उपद्रव। इंदु = चंद्रमा।

अर्थ—सौभाग्यशाली वीर शिवाजी के पराक्रम को देखकर लोग इन्द्र को भी भूल जाते हैं अर्थात् इन्द्र जैसे पराक्रमी की गाथाओं को भी भूल जाते हैं, राजा विक्रमादित्य की तो बात ही क्या है। भूषण कवि कहते हैं कि मालोजी के कुल में चन्द्र-रूप शाहजी के पुत्र, गद्दी-स्थित महाराज शिवाजी के तेज-समूह के जागरित होने पर देश-देश के शत्रुओं की स्त्रियों में घर-घर बड़ा दुःख और उपद्रव होता है तथा यह देख कर आश्चर्य होता है कि स्वर्णलता में जो चन्द्रमा है उस चन्द्रमा में कमल हैं और उनमें से पराग की बूँदें गिरती हैं—अर्थात् सोने की लता के समान रंग वाली कामिनियों के मुख-रूपी चंद्रमा के कमल-रूपी नेत्रों से पुष्परस-रूपी आँसू गिरते हैं।

विवरण—यहाँ केवल उपमान कनकलता, इन्दु, अरविन्द और मकरन्द-बुन्द ही कथित हैं उनसे ही क्रमशः स्त्रियाँ, उनके मुख तथा नेत्र और अश्रु-बूँदों का ज्ञान होता है, अतः रूपकातिशयोक्ति है।

२. भेदकातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

जेहि थर आनहि भाँति की, बरनत बात कछूक।
भेदकातिसय-उक्ति सो, भूषन कहत अचूक ॥११०॥

शब्दार्थ—थर=स्थल, जगह। अचूक=ठीक, निश्चय ही।

अर्थ—जहाँ किसी अन्य प्रकार का ही कुछ वर्णन किया जाय भूषण कहते हैं वहाँ अवश्य भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

सूचना—इसके वाचक शब्द 'और' 'न्यारी रीति है', 'और ही बात है' 'अनोखी बात है', इत्यादि होते हैं। 'भेदक' का अर्थ 'भेद करने वाला' है। जहाँ यथार्थ में कुछ भेद न होने पर भी भेद कथन किया जाय, वहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल,
भेजत रिसाल चौंर, गढ़, कुही बाज की।
मेवार, ढुँढार, मारवाड़ औ बुँदेलखंड,
झारखंड बाँधौ धनी चाकरी इलाज की॥
भूषन जे पूरब पछाँह नरनाह ते वै,
ताकत पनाह दिलीपति सिरताज की।
जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगज़ेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की ॥१११॥

शब्दार्थ—श्रीनगर=काश्मीर की राजधानी। नयपाल=नैपाल।

जुमिला = सब कहीं के। चौंर=चंवर । कुही=एक शिकारी चिड़िया जो बाज़ से छोटी होती है। मेवार=उदयपुर रियासत। ढुँढार = रियासत अंबर अर्थात् जयपुर। मारवाड़=जोधपुर राज्य। झारखंड=उड़ीसा। बाँधौं=बाँधव, रीवाँ। धनी=स्वामी। जैतवार= जीतने वाला।

अर्थ—श्रीनगर, नैपाल आदि सब देशों के राजा खिराज (कर) स्वरूप में जिसे चँवर, किले, कुही, बाज आदि पक्षी भेजते हैं; उदयपुर, जयपुर, मारवाड़, बुँदेलखंड, झारखंड (आधुनिक उड़ीसा का एक भाग) और रींवा के राजाओं ने जिसकी नौकरी करना स्वीकार कर के ही अपना इलाज (लाभ) समझा है; भूषण कवि कहते हैं कि पूरब और पश्चिम दिशाओं के राजा भी जिस दिल्लीपति औरंगज़ेब की शरण ताकते हैं, संसार को जीतने वाले उस ज़बरदस्त औरंगज़ेब को भी शिवाजी ने जीत लिया। पृथ्वी पर शिवाजी की यह निराली ही रीति दिखाई देती है! जहाँ भारत भर के सब राजा औरंगज़ेब से पनाह माँगते हैं, उसको कर देना स्वीकार करते हैं वहाँ शिवाजी ही एक ऐसे निराले राजा हैं जो उसको भी जीत लेते हैं।

विवरण—यहाँ 'न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की' इस से भेदकातिशयोक्ति प्रकट है। यद्यपि और सब राजाओं की तरह शिवाजी भी राजा हैं, परन्तु उनकी रीति ही निराली है, वे लोक से परे हैं; इस में औरों से शिवाजी का भेद प्रकट किया गया है।

३. *अक्रमातिशयोक्ति*

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु अरु काज मिलि, होत एक ही साथ।
अक्रमातिशय-उक्ति सो, कहि भूषन कविनाथ ॥११२॥

अर्थ—जहाँ कारण और कार्य मिलकर एक साथ हों वहाँ कवीश्वर

भूषण अक्रमातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। साधारण नियमानुसार कारण पहले और कार्य पीछे होता है, पर जहाँ ऐसा अंतर न हो, कारण और कार्य एक साथ हो जायँ वहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार होता है।

सूचना—संग ही, साथ ही, एक साथ अथवा इस प्रकार के अर्थ, वाले शब्दों को इस अलंकार का वाचक समझना चाहिए।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

उद्धत अपार तव दुन्दुभी धुकार साथ,
लंघैं पारावार बाल-वृंद रिपुगन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के अंग-रज,
साथ ही उड़ात रजपुंज हैं परन के॥
दच्छिन के नाथ सिवराज! तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
भूषन असीसैं, तोहिं करत कसीसैं पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के॥११३॥

शब्दार्थ—उद्धत = उग्र, प्रचंड। धुकार = ध्वनि, आवाज़। पारावार=समुद्र। चतुरंग = चतुरंगिणी सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल हों। रज=धूल, राज्यश्री। अंगरज=शरीर की धूल, खुरों की धूल। परन = दूसरों, शत्रुओं। कसीसैं=कशिश करते ही, कर्षण करते ही, खींचते ही।

अर्थ—हे दक्षिण के नाथ, महाराज शिवराज! तुम्हारे नगाड़ों की अति प्रचंड गड़गड़ाहट के साथ शत्रुओं के बाल-बच्चे (परिवार) समुद्र को लाँघ जाते हैं अर्थात् इधर चढ़ाई के लिए आपके नगाड़े बजे और उधर मुसलमान अपने बाल-बच्चों को अपने देश में भेजने के लिए समुद्र पार करने लगे। तुम्हारी चतुरंगिणी सेना के घोड़ों के खुरों की धूल के उड़ने के साथ ही शत्रुओं की राज्य-श्री का समूह भी उड़ जाता है

अर्थात् ज्यों ही चढ़ाई के लिए उद्यत तुम्हारी सेना के घोड़ों के खुरों से धूल उड़ती है त्यों ही शत्रुओं के राज्य उड़ जाते हैं और तुम्हारे धनुष चढ़ाने के साथ ही दुर्जनों के किले भी तुम्हारे हाथ में चढ़ जाते हैं। फिर भूषण कवि आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि तुम्हारे धनुष की डोरी खींच कर वाणों के छूटने के साथ ही तुर्कों के प्राण छूट जाते हैं।

विवरण—यहाँ दुंदुभि का बजना, चतुरंगिणी-सेना का चढ़ाई करना धनुष चढ़ाना और बाण छूटना आदि कारण और कुटुंब का समुद्र पार करना, राज्यश्री का उड़ना, किलों का जीता जाना तथा तुर्कों के प्राण छूटना रूपी कर्म एक साथ ही कथित हुए है, इसलिए यहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार है।

चंचलातिशयोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु चरचाहि मैं, काज होत ततकाल।
चंचलातिसय उक्ति सो, भूषन कहत रसाल ॥११४॥

अर्थ—जहाँ कारण की चर्चा में ही (कहते, सुनते या देखते ही) कार्य हो जाय वहाँ रसिक भूषण चंचलातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—कहते ही, सुनते ही, चर्चा चलते ही, आदि शब्द इसके वाचक होते हैं। जैसे चंचला (बिजली) चमकते ही एक दम दिखती है इसी प्रकार कारण की चर्चा होते ही जहाँ कार्य होता दिखाई दे वहाँ यह अलंकार होता है।

उदाहरण—दोहा

'आयो आयो' सुनत ही सिव सरजा तुव नाँव।
वैरि नारि दृग-जलन-सों बूड़ि जाति अरि-गाँव ॥११५॥

शब्दार्थ—नाँव = नाम। बूड़िजात = डूब जाते हैं।

अर्थ—'शिवाजी आया' 'शिवाजी आया' इस प्रकार आपका नाम सुनते ही, हे वीर-केसरी शिवाजी, शत्रुओं की स्त्रियों के अश्रुजल से वैरियों

के गाँव के गाँव डूब जाते हैं अर्थात् चारों ओर गाँवों में इतना रोना शुरू हो जाता है कि अश्रुजल में गाँव ही बह जाता है।

विवरण—अक्रमातिशयोक्ति में कारण और कार्य एक साथ होते हैं, पर यहाँ कारण की चर्चा होते ही कार्य हो जाता है। शिवाजी गाँव में नही आये, केवल उनकी आने की चर्चा ही हुई है, कि स्त्रियों का रोना-धोना प्रारंभ हो गया।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गढ़नेर, गढ़चाँदा, भागनेर बीजापुर,
नृपन की नारी रोय हाथन मलति हैं।
करनाट, हबस, फिरंगहू, विलायती,
बलख, रूम, अरि-तिय छतियाँ दलति हैं॥
भूषन भनत साहितनै सिवराज एते,
मान तव धाक आगे दिसा उबलति हैं।
तेरी चमू चलिबे की चरचा चले तें,
चक्रवर्तिन की चतुरंग चमू बिचलति हैं॥११६॥

शब्दार्थ—गढ़नेर=नगर गढ़, चाँदा प्रान्त में गढ़ नाम की कई बस्तियाँ हैं, जिनमें यह भी एक हो सकता है। नेर नगर ही का छोटा रूप है। चाँदा=मध्य-देश के दक्षिण में एक प्रान्त तथा एक नगर है, यह नागपुर से दक्षिण में है, इसी प्रान्त से होकर वाणगंगा इसकी सीमा पर की प्रणहीत नदी से मिलती है। भागनेर=भाग नगर, गोलकुंडा वाले मुहम्मद कुतबुलमुल्क ने अपनी प्यारी पत्नी भागमती के नाम पर गोलकुंडा से ४ मीलपर बसाया था। करनाट= कर्नाटक। फिरंग=फिरंगियों अर्थात् यूरोप-निवासियों का देश। कुछ ने इस फिरंगाना माना है, शायद भूषण का तात्पर्य हिन्दुस्तान की उस जगह से था जहाँ पुर्तगाल-निवासियों (फिरंगियों) की

कोठी थी। हबस=हबसियों का स्थान, एबीसीनिया के लोगों की बस्ती। १६ वीं शताब्दी से एबीसीनिया के लोग भारत के पश्चिम की घाट पर जंजीरा द्वीप में बस गये थे। वे सीदी कहाते थे। उनसे शिवाजी के पर्याप्त युद्ध हुए थे। विलायत=विदेशी राज्य, मुसलमानी देश, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, फारस आदि। बलख = तुर्किस्तान का एक प्रसिद्ध नगर। रूम = तुर्की, टर्की। उबलति है = खौलती है।

अर्थ—गढ़नेर, चाँदागढ़, भागनगर और बीजापुर के राजाओं की स्त्रियाँ रो-रो कर हाथों को मलती हैं (पछताती हैं)। कर्नाटक, एबीसीनियनों की बस्ती, फिरंगदेश, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, बलख और रूम देश के शत्रुओं की स्त्रियाँ भी शोक से अपनी छाती पीटती हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाह जी के पुत्र शिवाजी! आपकी धाक का इतना प्रबल प्रभाव है कि उसके आगे दिशाएँ खौलने लगती हैं और आपकी सेना के चलने की बात सुनते ही बड़े-बड़े बादशाहों की चतुरंगिणी सेना के भी पैर उखड़ जाते हैं।

विवारण—यहाँ शिवाजी की सेना के चलने रूप कारण की चर्चामात्र से शाहों की सेना का तितर बितर होना रूप कार्य कथन किया गया है।

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु ते प्रथम ही, प्रगट होत है काज।
अत्यन्तातिसयोक्ति सो, कहि भूषण कविराज॥ ११७॥

अर्थ—जहाँ कारण से प्रथम ही कार्य हो जाय वहाँ कविराज भूषण अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—कहीं-कहीं इसके वाचक 'प्रथम ही', 'पूर्व ही' आदि शब्द होते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मंगन मनोरथ के प्रथमहि दाता तोहि,
कामधेनु कामतरु सो गनाइयतु है।
याते तेरे गुन सब गाय को सकत कवि,
बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु हैं॥
भूषन भनत साहितनै सिवराज,
निज बखत बढ़ाय बीर ताहि ध्याइयतु है।
दीनता को डारि औ अधीनता बिडारि,
दीह-दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है॥११८॥

शब्दार्थ—मगन=माँगने वाला, भिक्षु। कामतरु=कल्पवृक्ष। वखतवढ़ाय=सौभाग्य बढ़ाकर। विडारि=दूर करके, दूर फेंक कर। दीह=दीर्घ, भारी।

अर्थ—हे शिवाजी! कविलोग तुम्हें कामधेनु और कल्पवृक्षके समान (इच्छित फल के देनेवाले) गिनाते (वर्णन करते) हैं, परन्तु तुम भिक्षुकों के (मन में) माँगने की इच्छा होने से पूर्व ही देने वाले हो इसलिए तुम्हारे समस्त गुणों का कौन वर्णन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं कर सकता है (क्योंकि कामधेनु और कल्पवृक्ष मनोरथ पैदा होने पर ही वांछित वस्तु देते हैं, किन्तु तुम तो इच्छा करने से भी पहले दे देते हो) फिर भी कवि लोग अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे कुछ गुण गाते हैं—वे तुम्हारी उपमा कामधेनु आदि से दे देते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! लोग अपना भाग्य बड़ा करके (भाग्यशाली होकर) ही तुम्हारा ध्यान करते हैं अर्थात् तुम्हारे गुण-गान करने से पहले ही वे भाग्यवान हो जाते हैं। समस्त दीनजन (गरीब मनुष्य) अपनी दीनता दूर कर, पराधीनता को नष्ट कर और भयंकर दरिद्रता को मार कर फिर तुम्हारे दरवाज़े पर आते हैं अर्थात् तुम्हारे द्वार पर आने से पहले ही उनकी दीनता, अधीनता और गरीबी नष्ट हो जाती है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के निकट आकर दान लेना रूपी कारण है परन्तु इससे प्रथम ही याचकों का धनाढ्य हो जाना रूपी कार्य कथन किया गया है ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

कवि-तरुवर सिव-सुजस-रस, सींचे अचरज-मूल ।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल ॥११९॥

शब्दार्थ—तरुवर=सुन्दरवृक्ष । रस=जल । अचरज-मूल=आश्चर्य रूपी जड़, अद्भुत जड़ । सफल होना=फलीभूत होना, फल लगना । फूल = प्रसन्नता पुष्प ।

अर्थ—शिवाजी के सुन्दर यश-रूपी जल से कविरूपी वृक्ष की चमत्कारपूर्ण जड़ के सींचे जाने से यह वृक्ष पहले सफल (फल युक्त या सफल मनोरथ) होता है, पीछे इसमें फूल लगते हैं (प्रसन्नता होती है)। अर्थात्—कवि लोग धन पाकर पहले सफल मनोरथ होते हैं और तदनन्तर प्रसन्न ।

विवरण—प्रायः फूल पहले लगते हैं, और फिर फल लगते हैं; फूल कारण है फल कार्य, पर यहाँ फल लगने का कार्य पहले होता है और कारण-स्वरूप फूल पीछे होते हैं, अतः अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है ।

सामान्य-विशेष

लक्षण—दोहा

कहिबे जहँ सामान्य है, कहै जु तहाँ बिसेष ।
सो सामान्य-बिसेष है, बरनत सुकवि असेष ॥१२०॥

शब्दार्थ—सामान्य=सब पर घटने वाली बात । विशेष=किसी मुख्य वस्तु पर घटने वाली बात । अशेष=समस्त ।

अर्थ—जहाँ सामान्य रूप से कोई बात कहनी हो वहाँ उसे विशेष रूप से कहा जाय तो श्रेष्ठ कवि सामान्य-विशेष अलंकार कहते हैं ।

सूचनाः—भूषण का यह सामान्य-विशेष अलंकार प्राचीन आचार्यों ने कोई स्वतंत्र अलंकार नहीं माना है। यह तो "अप्रस्तुत प्रशंसा" अलंकार का एक भेद 'विशेष निबंधना' कहा जा सकता है। इसमें सामान्य घटना को लक्ष्य करने के लिए विशेष घटना का वर्णन किया जाता है।

उदाहरण—दोहा

और नृपति भूषन कहैं, करैं न सुगमौ काज।
साहि तनै सिव सुजस तो, करै कठिनऊ आज ॥१२१॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अन्य राजा लोग साधारण सा काम भी नहीं कर पाते, किन्तु हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! आपका यश तो आज कठिन से भी कठिन कार्य कर डालता है।

विवरण—"बड़े पुरुषों के यश से ही कठिन से कठिन कार्य हो जाते हैं" इस सामान्य बात के लिए यहाँ शिवाजी की विशेष घटना का वर्णन किया गया है तथा अन्य राजाओं की दुर्बलता दिखाकर शिवाजी के पराक्रम को विशेष रूप दिया गया है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

जीत लई वसुधा सिगरी घमसान घमंड कै बीरनहू की,
भूषन भौंसिला छीनि लई जगती उमराव अमीरनहू की।
साहितनै सिवराज की धाकनि छूट गई धृति धीरनहू की,
मीरन के उर पीर बढ़ी यों जु भूल गई सुधि पीरनहू की ॥१२२॥

शब्दार्थ—सिगरी = समस्त। घमसान = घोरयुद्ध। धृति=धीरज। पीर = कष्ट, मुसलमानों के गुरु। मीर=सरदार, प्रधान, सैय्यद जाति के मुसलमानों को भी 'मीर' कहा जाता है।

अर्थ—घोर युद्ध करके शिवाजी भौंसिला ने बड़े-बड़े वीर शत्रुओं की समस्त पृथ्वी को जीत लिया। भूषण कहते हैं कि उन्होंने अमीर उमराओं

की ज़मीनों को भी छीन लिया (छोड़ा नहीं)। शाहजी के पुत्र शिवाजी की धाक से बड़े बड़े धैर्यवानों का भी धीरज जाता रहा और मीरों के हृदयों में ऐसी पीड़ा बढ़ी कि वे अपने पीर (पैगंबरों) की भी सुध भूल गये।

विवरण—साधारणतया देखा जाता है कि जब किसी की पृथ्वी छिन जाती है तो उसके होश-हवास भी जाते रहते हैं। यहाँ इस सामान्य बात को प्रकट करने के लिए शिवाजी के कार्यों का विशेष वर्णन किया है।

तुल्ययोगिता

लक्षण—दोहा

तुल्यजोगिता तहँ धरम, जहँ बरन्यन को एक।
कहूँ अबरन्यन को कहत, भूषन बरनि विवेक ॥१२३॥

शब्दार्थ—बरन्यन = उपमेयों का। अबरन्यन = उपमानों का। तुल्ययोगिता = धर्म की एकता।

अर्थ—जहाँ बहुत से उपमेयों का धर्म एक ही कहा जाय अथवा बहुत से उपमानों का एक ही धर्म वर्णन किया जाय वहाँ बुद्धिमान तुल्ययोगिता अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चढ़त तुरंग चतुरंग साजि सिवराज,
चढ़त प्रताप दिन-दिन अति अंग मैं।
भूषन चढ़त मरहट्टन के चित्त चाव,
खग्ग खुलि चढ़त है अरिन के अंग मैं ॥
भौंसिला के हाथ गढ़ कोट हैं चढ़त,
अरि जोट है चढ़त एक मेरु गिरि-श्रृंग मैं।
तुरकान गन व्योम-यान हैं चढ़त बिनु
मान, है चढ़त बदरंग अवरंग मैं ॥१२४॥

शब्दार्थ—जोट = जत्थे, समूह । शृंग = चोटी । व्योमयान = विमान; अर्थी । विनुमान = मानरहित । बदरंग = बुरा रंग, फीका रंग ।

अर्थ—जब शिवाजी अपनी चतुरंगिणी सेना सजाकर घोड़े पर चढ़ते हैं तब उनके अंग अंग में दिन प्रतिदिन तेज चढ़ता (बढ़ता) है, मराठों के चित्त में जोश (युद्ध का उत्साह) चढ़ता है और तलवारें खुलकर बेरोक-टोक शत्रुओं के शरीरों में चढ़ती (घुसती) हैं । शिवाजी के हाथ में किले चढ़ते (आते) हैं और शत्रुओं के समूह पहाड़ों की चोटियों (शृंगों)पर चढ़ते (भाग जाते) हैं । मानरहित होकर तुर्क लोग विमान (अर्थी) में चढ़ते हैं, मर जाते हैं और औरंगज़ेब पर बदरंगी चढ़ जाती है, उसका रंग फीका पड़ जाता है ।

विवरण—यहाँ सिवराज, प्रताप, चाव, खग्ग, गढ़कोट, अरि-जोट तुरकानगन और बदरंग आदि उपमेयों (प्रस्तुत, वर्ण्य वस्तुओं) का 'चढ़त' एक ही धर्म कथित हुआ है ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सिव सरजा भारी भुजन, भुव-भरु धर्यो सभाग ।
भूषण अब निहचिंत हैं, सेसनाग दिगनाग ॥१२५॥

शब्दार्थ—भरु = भार, बोझ ।

अर्थ—सौभाग्यशाली शिवाजी ने अपनी बलवती भुजाओं पर पृथ्वी का भार धारण कर लिया है । भूषण कहते हैं इसी कारण अब शेष नाग और दिशाओं के हाथी निश्चिन्त हो गये हैं । (हिन्दुओं का विश्वास है कि पृथ्वी को शेषनाग और दिग्गज थामे हुए हैं) ।

विवरण—यहाँ शेषनाग और दिगनाग शिवाजी की भुजाओं के उपमान है । उन दोनों का "निहचित है" यह एक धर्म बताया गया है ।

द्वितीय तुल्ययोगिता

लक्षण—दोहा

हित अनहित को एक सो, जहँ बरनत ब्यवहार।
तुल्यजोगिता और सो, भूपन ग्रन्थ विचार ॥१२६॥

शब्दार्थ—हित = भलाई। अनहित = बुराई।

अर्थ—जहाँ हित (मित्र) और अनहित (शत्रु) परस्पर दोनों विरोधियों से समान व्यवहार कथन किया जाय वहाँ भी ग्रन्थ के विचारानुसार तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

गुननि सों इनहूँ को बाँधि लाइयतु पुनि,
गुनन सों उनहूँ को बाँधि लाइयतु है।
पाय गहे इनहूँ को रोज ध्याइयतु अरु,
पाय गहे उनहूँ को रोज ध्याइयतु है॥
भूपन भनत महाराज सिवराज तेरो,
रस, रोस एक भाँति ही को पाइयतु है।
दोहा ई कहे तें कविलोग ज्याइयतु अरु,
दोहाई कहेते अरि लोग ज्याइयतु है॥१२७॥

शब्दार्थ—गुन = गुण तथा रस्सी। पाय गहे = पैर छूकर, और पाकर तथा पकड़ कर (कैदकर)। ध्याइयतु = ध्यान करते हो तथा घर लाते हो। रस = स्नेह, प्रेम। रोस = रोष, क्रोध। दोहा ई = दोहा ही, तथा शरण आने की पुकार 'दोहाई'। ज्याइयतु = पोषण करते हो, जिलाते हो।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! आपका कवियों के प्रति) प्रेम और (शत्रुओं के प्रति) क्रोध एक सा ही है, क्योंकि तुम अपने गुणों से कवियों को बाँधते हो (मोहित करते हो) और अपने

गुण (रस्सी) से ही शत्रुओं को भी बाँध लेते हो। तुम चरण छूकर (कवियों) का नित्य ध्यान करते हो तो शत्रुओं को पाकर और पकड़ कर धर लाते हो। दोहा के ही कहने पर कविजनों की पालना करते हो, और उसी भाँति 'दोहाई' कहने पर शत्रुओं को अभयदान करते हो उन के प्राण बचा लेते हो।

विवरण—इस पद में शब्द-छल से हित और अनहित दोनों से एक-सा व्यवहार बताया गया है, अतः दूसरी तुल्ययोगिता है।

दीपक

लक्षण—दोहा

बर्न्य अबर्न्यन को धरम, जहँ बरनत हैं एक।
दीपक ताको कहत हैं, भूषन सुकवि विवेक ॥१२८॥

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म वर्णन किया जाय वहाँ सुकवि भूषण दीपक अलंकार कहते हैं।

सूचना—तुल्ययोगिता में केवल उपमेयों का वा केवल उपमानों का एक धर्म कथन किया जाता है, पर 'दीपक' में उपमेय और उपमान दोनों के धर्म का एक ही साथ कथन होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

कामिनि कंत सों जामिनि चंद सों दामिनि पावस मेघ घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों प्रीति बड़ी सनमान-महा सों॥
'भूपन' भूपन सों तरुनी नलिनी, नव पूषनदेव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों ॥१२९॥

शब्दार्थ—कंत = पति। जामिनी = रात्रि। दामिनी = बिजली। सूरति = सूरत, स्वरूप, शुक्ल। नलिनी = कमलिनी। पूषनदेव = पूषण + देव सूर्यदेव। ज़ाहिर = प्रकट, प्रसिद्ध।

अर्थ—जिस प्रकार अपने पति से स्त्री, चन्द्रमा से रात्रि, वर्षाकाल

की मेघ-घटा से बिजली, दान से कीर्त्ति, ज्ञान से सूरत (स्वरूप) अत्यधिक सम्मान से प्रीति, आभूषणों से युवती और बाल-सूर्य से कमलिनी शोभा पाती है, वैसे ही चिरंजीव शिवाजी से सारी हिन्दू जाति शोभायमान है, यह बात समस्त संसार में प्रसिद्ध है

विवरण—यहाँ 'खुमान सिवा सों' उपमेय और 'कामिनी कंत सो' आदि अन्य उपमानों का 'लसै' यह एक ही धर्म कथित हुआ है, अतः दीपक अलंकार है।

दीपकावृत्ति

लक्षण—दोहा

दीपक पद के अरथ जहँ, फिर फिर करत बखान।
आवृति-दीपक तहँ कहत, भूषन सुकवि सुजान ॥१२०॥

अर्थ—जहाँ वार वार एक ही अर्थ वाले (क्रिया) पदों की आवृत्ति हो वहाँ चतुर कवि दीपकावृत्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—आवृत्ति दीपक के तीन भेद हैं:—(१) पदावृत्ति दीपक (जिस में एक क्रियापद कई बार आये पर अर्थ भिन्न हो) (२) अर्थावृत्ति दीपक (जिसमें एक ही अर्थ वाले भिन्न-भिन्न क्रिया-पद आवें (३) पदार्थावृत्ति दीपक (जिसमें एक ही क्रियापद उसी अर्थ में एक से अधिक बार आवे)। भूषण कवि ने इन तीनों में से अर्थावृत्ति दीपक और पदार्थावृत्ति दीपक के उदाहरण दिये हैं।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा तव दान को, करि को सकत बखान।
बढ़त नदीगन दान जल, उमड़त नद गजदान ॥ १२१ ॥

शब्दार्थ—दान=पुण्यार्थ धन देना, हाथी का मदजल, जो उसकी कनपटी के पास से झरता है। नद=बड़ी नदी।

अर्थ—हे वीर-केशरी शिवाजी! आपके दान की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? क्योंकि (आप इतना दान देते हैं कि) आपके दान के संकल्प-जल से नदियों में बाढ़ आ जाती है और दान में दिये हुए हाथियों के मद-ज़ल से बड़े-बड़े नद उमड़ उठते हैं।

विवरण—यहाँ 'बढ़त' और 'उमड़त' पृथक पृथक (क्रिया) पद होने पर भी इनका एक ही अर्थ में दो बार कथन हुआ है (इन दोनों क्रियाओं का अर्थ एक ही है) अतः अर्थावृत्ति दीपक है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

चक्रवती चकवा चतुरंगिनि, चारिउ चाप लई दिसि चंका।
भूप दरीन दुरे भनि भूषन एक अनेकन बारिधि नंका॥
औरंगसाहि सों साहि को नन्द लरो सिवसाह बजाय कै डंका।
सिंह की सिंह चपेट सहै गजराज सहै गजराज को धंका॥१२३॥

शब्दार्थ—चाप लई=दबा ली। चंका=(चक्र,) दिशा। दिसि चंका=चारों ओर से। दरीन=गुफाओं में। नंका=नांघा, उल्लंघन किया, पार किया।

अर्थ—चक्रवर्ती औरंगज़ेब की चतुरंगिणी सेना ने चारों ओर से पृथ्वी को दबा लिया (अपने अधीन कर लिया)। भूषण कवि कहते हैं कि बहुत से राजा तो उसके डर के कारण गुफाओं में छिप गये और कितने ही समुद्र पार करके चले गये। ऐसे (दबदबे वाले) बादशाह औरंगज़ेब से शाहजी के पुत्र शिवाजी ने ही डंका बजाकर (खुल्लमखुल्ला) लड़ाई की। सच है सिंह का थप्पड़ सिंह ही सहता है और हाथी का धक्का हाथी ही सह सकता है।

विवरण—यहाँ 'सहै' क्रिया पद दो बार एक ही अर्थ में आया है अतः पदार्थावृत्ति दीपक है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

अटल रहे हैं दिग अंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि भूषन भनत गुन भरि कै॥
हाड़ा रायठौर कछवाहे गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चँवारू धरि डरि कै।
अटल सिवाजी रह्यो दिल्ली को निदरि,
धीर धरि, ऐंड़ धरि, तेग धरि, गढ़ धरि कै॥१२३॥

शब्दार्थ—दिग अंतन=दिशाओं के छोर तक, सारा संसार। रैयति = प्रजा। पेसकरि=पेश करके, भेंट करके। बाना=वेष। हाड़ा = हाड़ा क्षत्रिय बूँदी और कोटा में राज करते हैं। रायठौर= जोधपुर के राजा। कछवाहे = कुश वंशी क्षत्रिय जैसे अंबर (जयपुर) में हैं। गौर = गौर राजाओं की रियासत (राजपूताने) में थी, पृथ्वीराज के समय में गौरों का अच्छा मान था। चँवारू=चँवर।

अर्थ—समस्त दिशाओं के राजा लोग प्रजा का रूप धारण कर अर्थात् औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार कर तथा अपने अपने देश उसे भेंट करके निश्चिन्त होगये। भूषण कवि कहते हैं कि उदयपुर के महाराणा भी अपने वीरता के वेश (परंपरागत हठ) को छोड़कर तथा औरंगज़ेब के गुन गान कर और नौकरी का बहाना कर बेफिक्र होगये। हाड़ा (कोटा बूँदी के राजा), राठौर (जोधपुर के महाराजा), कछवाहे (जयपुर के महाराजा) और गौर-वंशीय क्षत्रिय भी (औरंगज़ेब से) डर कर चवँर डुलाने वाले बन कर निश्चिन्त होगये। परन्तु एक शिवाजी ही ऐसे हैं जो अपनी तलवार और किलों को रखते हुए दिल्ली को ठुकरा कर, धैर्य धारण कर अपने मान की रक्षा करते हुए निश्चिंत रहे। जहाँ और

राजा औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार कर अटल रह सके वहाँ शिवा जी अपनी तलवार और किले के बल पर अटल रहे।

विवरण—यहाँ 'अटल रहे' और 'धरि' क्रिया-पदों की क्रमशः एक ही अर्थ में कई बार आवृत्ति हुई है अतः पदार्थावृत्ति दीपक है।

प्रतिवस्तूपमा

लक्षण—दोहा

वाक्यन को जुग होत जहँ, एकै अरथ समान।
जुदो-जुदो करि भाषिए, प्रतिवस्तूपम जान ॥१३५॥

शब्दार्थ—जुग=युग दो, (उपमेय उपमान ये दो वाक्य)।

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान दो वाक्यों का पृथक-पृथक शब्दों से एक ही धर्म कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार जानना चाहिए।

उदाहरण—लीलावती छंद ❀

मदजल धरन द्विरद बल राजत,
वहु जल धरन जलद छवि साजै।
पुहुमि धरन फनिनाथ लसत अति,
तेज धरन ग्रीषम रवि छाजै ॥
खरग धरन सोभा भट राजत,
रुचि भूषन गुन धरन समाजै।
दिल्लि दलन दक्खिन दिसि थम्भन,
ऐंड़ धरन सिवराज विराजै ॥१३६॥

❀लीलावती छंद का लक्षण इस प्रकार है।

लघुगुरु का जहँ नेम नहिं बत्तिस कल सब ज्ञान।
तरल तुरंगम चाल सो लीलावती बखान ॥

शब्दार्थ—पुहुमि=पृथ्वी। फनिनाथ=शेषनाग। थम्भन=स्तंभन, रोकने वाले, सँभालने वाले, रक्षक। ऐंड़ धरन=स्वाभिमान धारण करने वाले।

अर्थ—मदजल धारण करने से ही (मदमस्त होने पर ही) हाथी का बल शोभित होता है, खूब जल धारण करने से ही बादल की शोभा है। पृथ्वी को धारण करने से ही शेषनाग अत्यन्त शोभित होता है और अत्यधिक तेज-युक्त होने पर ही ग्रीष्म का सूर्य शोभा देता है। तलवार धारण करने से ही वीर पुरुष सुंदर लगते हैं और गुण धारण करने के कारण ही, अर्थात् गुणी होने से ही भूषण कवि समाज में शोभा पाता है। अथवा भूषण कवि कहते हैं कि तलवार धारण करने से ही योद्धा की शोभा है तथा गुण को धारण करने से ही (मनुष्य) समाज में शोभा पाता है। एवं दिल्ली का दलन करने से और दक्षिण दिशा का सहारा होने से तथा स्वाभिमान धारण करने से ही महाराज शिवाजी शोभा पाते हैं।

विवरण—इस में प्रथम तीन चरण उपमान वाक्य हैं और चतुर्थ चरण उपमेय वाक्य है। उपमान वाक्यों के 'राजत', 'साजै' और 'छाजै' शब्द तथा उपमेय वाक्य का 'विराजै' शब्द एक ही धर्म के द्योतक हैं।

दृष्टान्त

लक्षण—दोहा

जुग वाक्यन को अरथ जहँ, प्रतिबिम्बित सो होत।
तहाँ कहत दृष्टान्त हैं, भूषन सुमति उदोत॥१३५॥

अर्थ—जहाँ उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों का (साधारण) धर्म बिम्ब-प्रति-बिम्ब भाव से हो वहाँ विद्वान दृष्टान्त अलंकार कहते हैं।

सूचना—इस में उपमेय और उपमान वाक्यों में समता भी

जान पड़ती है किन्तु वाचक-पद नहीं होता। 'प्रतिवस्तूपमा' में केवल साधारण-धर्म का वस्तु-प्रतिवस्तु भाव होता है अर्थात् एक ही धर्म शब्द-भेद से दोनों में होता है। किन्तु यहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म तीनों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहता है अर्थात् दोनों वाक्यों में धर्म भिन्न-भिन्न होने पर भी जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब दीखता है इसी प्रकार साधारण-धर्म सहित उपमेय-वाक्य का उपमान-वाक्य में छाया (प्रतिबिम्ब) भाव होता है।

उदाहरण—दोहा

सिव औरंगहि जिति सकै, और न राजा राव।
हत्थि मत्थ पर सिंह बिनु, आन न घाले घाव ॥१३७॥

शब्दार्थ—घाले घाव = ज़ख़म करता, चोट करता।

अर्थ—औरंगज़ेब को शिवाजी ही जीत सकते हैं अन्य राजा उमराव लोग नहीं जीत सकते, हाथी के मस्तक पर सिंह के बिना अन्य कोई (वन्यपशु) चोट नहीं कर सकता।

विवरण—यहाँ, पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमान वाक्य। 'जिति सकै' और 'घाले घाव' ये दोनों पृथक्-पृथक् धर्म हैं, परन्तु बिना वाचक शब्द के ही इन दोनों की समता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव झलकता है। 'प्रतिवस्तूपमा' में शब्द-भेद से एक ही धर्म कथन किया जाता है, अतः उससे इस में भेद स्पष्ट है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

देत तुरीगन गीत सुने बिनु देत करीगन गीत सुनाए।
भूषन भावत भूप न आन जहान खुमान की कीरति गाए॥
मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतै बरसे सरसै, उमड़ै नदियाँ ऋतु पावस पाए ॥१३८॥

शब्दार्थ—तुरीगन = तुरंग + गन, घोड़ों का समूह। भुवपाल = राजा। निहाल = संतुष्ट, मालामाल। सरसै बढ़ जाती हैं।

अर्थ—शिवाजी (अपने यश के) गीत बिना सुने ही कवियों को घोड़ों के समूह दे देते हैं और गीत सुनाने पर हाथियों का समूह दे डालते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि चिरजीवी शिवाजी का यशोगान करने पर दुनियाँ में अन्य कोई राजा अच्छा नहीं लगता। याचना के लिए (याचकों को) और बहुत से राजा हैं, परन्तु प्रसन्न किये जाने पर शिवाजी ही उन्हें (कवियों को) निहाल करते हैं, जैसे अन्य ऋतुओं में वर्षा होने पर नदियाँ सरस(जलयुक्त)तो हो जाती हैं,पर उमड़ती हैं, वे वर्षाऋतु आने पर ही। अर्थात् जैसे अन्य ऋतुओं में वर्षा होने पर नदियों का जल थोड़ा बहुत अवश्य बढ़ जाता है, पर वे उमड़ती हैं वर्षाऋतु के आने पर ही,ऐसे ही अन्य राजाओं से थोड़ा बहुत अवश्य मिल जाता है, पर याचकों को निहाल तो केवल शिवाजी ही करते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी का 'निहाल करना' और 'नदियों का उमड़ना' में भी दो भिन्न अर्थवाली किन्तु समान सी जान पड़ती हुई वस्तुओं की एकता दो वाक्यों के द्वारा की गयी है इसी से यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

पहली निदर्शना

लक्षण—दोहा

सद्दश वाक्य जुग अरथ को, करिए एक अरोप।
भूषन ताहि निदर्सना, कहत बुद्धि दै ओप ॥ १३६ ॥

अर्थ—जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में भेद होने पर भी समता का ऐसा आरोप किया जाय कि जिसमें दोनों एक जान पड़ें वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।

सूचना—दृष्टान्त और निदर्शना में यह भेद है कि दृष्टान्त में वाचक पद नहीं होता, निदर्शना में होता है। इसके अतिरिक्त दृष्टान्त में यद्यपि दो वाक्यों के धर्म अलग अलग होते हैं फिर भी उनमें

समानता की झलक दिखाई देती है, इससे उनकी एकता स्वाभाविक सी जान पड़ती है। निदर्शना में दोनों का संबंध असंभव होता है, जो मजबूरी से मानना पड़ता है। प्रतिवस्तूपमा और निदर्शना में यह भेद है कि प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र होते हैं, पर निदर्शना में स्वतंत्र नहीं होते।

उदाहरण—मालती सवैया

मच्छहु कच्छ मैं कोल नृसिंह मैं बावन मैं भनि भूषन जो है।
जो द्विजराम मैं जो रघुराज मैं जोऽब कह्यो बलरामहु को है॥
बौद्ध मैं जो अरु जो कलकी महँ बिक्रम ह्वै को आगे सुनो है।
साहस-भूमि-अधार सोई अब श्री सरजा सिवराज मैं सो है॥१४०॥

शब्दार्थ—मच्छ=मत्स्य, यहाँ मत्स्यावतार से तात्पर्य है। कच्छ=कच्छपावतार। कोल=वराहावतार। नृसिंह=वह अवतार जिसमें भगवान ने हिरण्यकशिपु दैत्य को मारा था और प्रह्लाद भक्त की रक्षा की थी। बावन=वह अवतार, जिस में भगवान् ने बलि को छला था। बौद्ध=बुद्ध भगवान। रघुराज=श्री रामचन्द्र भगवान्। द्विजराम=परशुराम जी। बलराम=श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता। कलकी=इस नाम का अवतार आगे होने वाला है।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो पराक्रम मत्स्य, कच्छप, वराह नृसिंह, बावन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बलदेव, और बुद्धावतार में था और जो (पराक्रम) अब आगे होने वाले कलकी अवतार में होना सुनते हैं, वही भूमि का आधार-रूप (पृथ्वी को सँभालने वाला) साहस अब श्री शिवराज में शोभित है।

विवरण—यहाँ उपर्युक्त अवतारों में और शिवाजी में भेद होने पर भी समता का आरोप किया गया है। यह उदाहरण कुछ अच्छा नहीं है, इस में दोनों वाक्यों में असमता नहीं

है। जैसा पराक्रम मत्स्यादि अवतारों में है वैसा ही शिवाजी में साहस है, यहाँ उपमा की झलक है।

सूचना—इसमें जो, सो, जे, आदि पदों द्वारा असम वाक्यों को सम किया जाता है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कीरति सहित जो प्रताप सरजा में वर,
मारतंड मध्यं तेज चाँदनी सों जानी मैं।
सोहत उदारता औ सीलता खुमान मैं सो,
कंचन मैं मृदुता सुगंधता वखानी मैं॥
भूषन कहत सब हिन्दुन को भाग फिरै,
चढ़े ते कुमति चकताहू की पिसानी मैं।
सोहत सुबेस दान कीरिति सिवा मैं सोई,
निरखी अनूप रुचि मोतिन के पानी मैं॥१४१॥

शब्दार्थ—मारतंड=सूर्य। तेज चाँदनी=तेज-युक्त प्रकाश, यहाँ चाँदनी का लक्ष्यार्थ प्रकाश है, चन्द्रमा की चाँदनी नहीं। कुमति=दुर्बुद्धि। पिसानी=पेशानी, मस्तक।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि वीर-केसरी शिवाजी में जो कीर्ति-सहित प्रताप है, उसे मैं सूर्य में तेजयुक्त प्रकाश मानता हूँ। उस चिरंजीवी में जो उदारता और सुशीलता शोभित है उसे मैं सोने में कोमलता और सुगन्धि कहता हूँ। भूषण जी कहते हैं कि औरंगज़ेब के मस्तक में कुबुद्धि (हिन्दुओं पर अत्याचार करने का कुविचार) पैदा होने से ही हिन्दुओं का भाग्य फिरा (भाग्योदय हुआ, क्योंकि औरंगज़ेब के अत्याचारों से तंग होने से हिन्दुओं में जाग्रति होगी जिससे उनका भाग्य फिरेगा)। शिवाजी में जो सुन्दर दान की कीर्ति है वही सुंदरता मैंने अनुपम मोतियों की आब (चमक) में देखी है।

विवरण—उपर के वाक्यों के अर्थ में विभिन्नता होने पर भी उनमें जो, सो द्वारा समता भाव का आरोप किया गया है, अत: यहाँ निदर्शना अलंकार है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

औरन को जो जन्म है, सो वाको यक रोज।
औरन को जो राज सो, सिव सरजा की मौज ॥१४२॥

अर्थ—अन्य राजाओं का समस्त जीवन शिवाजी का एक दिन है (औरों के जीवन का कोई महत्त्व नहीं अथवा अन्य राजाओं के लिए जो कार्य जीवन भर में साध्य है, वह शिवाजी के लिए एक दिन का काम है) औरों का जो समस्त राज्य है वह शिवाजी की एक (तुच्छ) खेल मात्र है।

विवरण—यह उदाहरण बहुत स्पष्ट नहीं है।

चौथा उदाहरण—दोहा

साहिन सों रन माँडिबो, कीबो सुकवि निहाल।
सिव सरजा को ख्याल हैं, औरन को जंजाल ॥१४३॥

शब्दार्थ—ख्याल=खेल, मनोविनोद। जंजाल—बखेड़ा, विपत्ति।

अर्थ—शिवाजी के लिए बादशाहों से युद्ध करना और श्रेष्ठ कवियों को (इच्छित दान देकर) निहाल करना एक खेल मात्र है, वही बात अन्य राजाओं के लिए बड़ा भारी बखेड़ा है (बड़ा कठिन काम है)।

विवरण—यह उदाहरण भी बहुत स्पष्ट नहीं है। सम्मेलन से प्रकाशित प्रति में ऊपर के ये दोनों दोहे व्यतिरेक के उदाहरण लिखे गये हैं पर इन में व्यतिरेक अलंकार भी नहीं है।

दूसरी निदर्शना

लक्षण—दोहा

एक क्रिया सों निज अरथ और अर्थ को ज्ञान।
ताही सों जु निदर्शना, भूषन कहत सुजान ॥१४४॥

अर्थ—जहाँ एक क्रिया से अपने धर्म और उसी से दूसरे धर्म का ज्ञान हो उसे भी निदर्शना अलंकार कहते हैं अर्थात् जहाँ क्रिया से अपने अर्थ (कार्य) और अन्य अर्थ (कारण) का ज्ञान हो वहाँ दूसरी निदर्शना होती है।

उदाहरण—दोहा

चाहत निर्गुण सगुण को, ज्ञानवंत की बान।
प्रकट करत निर्गुण सगुन, सिवा निवाजै दान ॥१४५॥

शब्दार्थ—निर्गुण=निराकार, गुणहीन। सगुण=साकार, गुणयुक्त। निवाजै=कृपा करके।

अर्थ—(गुणहीन) और सगुण (गुणवान) सब तरह के व्यक्तियों को दान देकर शिवाजी यह प्रकट करते हैं कि ज्ञानी पुरुष का यह स्वभाव है कि वह निर्गुण तथा सगुण दोनों को चाहता है। अर्थात् ज्ञानी पुरुष परमेश्वर के निराकार और साकार दोनों रूपों को एक समान समझते हैं।

विवरण—यहाँ 'प्रगट करत' इस एक ही क्रिया से जहाँ शिवाजी का सगुण और निर्गुण को एक समान समझना और ज्ञानियों का भी निर्गुण और सगुण में अभेदभाव लक्षित होता है, वहाँ शिवाजी के सब को दान देने का कारण भी यही अभेद-भाव बताया गया है, अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है।

व्यतिरेक

लक्षण—दोहा

सम छविवान दुहून में, जहँ बरनत बढ़ि एक।
भूषन कवि कोविद सबै, ताहि कहत व्यतिरेक ॥१४६॥

शब्दार्थ—व्यतिरेक=(वि+अतिरेक) विशेष बढ़कर।

अर्थ—जहाँ समान शोभावाली दो वस्तुओं (उपमान और उपमेय

में से किसी एक को बढ़ाकर वर्णन किया जाय वहाँ पंडित एवं कवि लोग व्यतिरेक अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसमें प्रायः उपमेय को उपमान से बढ़ाकर अथवा उपमान को उपमेय से घटाकर ही वर्णन किया जाता है।

उदाहरण—छप्पय

त्रिभुवन में परसिद्ध एक अरि बल वह खंडिय।
यह अनेक अरिबल बिहंडि रन मंडल मंडिय॥
भूषन वह ऋतु एक पुहुमि पानिपहि बढ़ावत।
यह छहुँ ऋतु निसदिन अपार पानिप सरसावत॥
सिवराज साही सुव सत्थ नित, हय गज लक्खन संचरइ।
यक्कइ गयन्द यक्कइ तुरंग किमि सुरपति सरवरि करइ॥१४६॥

शब्दार्थ—एक अरि=एक शत्रु, वृत्रासुर। खंडिय=खंडन किया, नाश किया। विहंडि= नाश करके। मंडिय=शोभित किया। पुहुमि=पृथ्वी। पानिप=शोभा, पानी। सत्थ=साथ। हय=घोड़ा। गय=हाथी। संचरइ=संचरण करते हैं, चलते हैं। यक्कइ=एक ही। गयन्द=गजेन्द्र। सरवरि=बराबरी।

अर्थ—यह बात तीनों लोकों में प्रसिद्ध है कि इन्द्र ने केवल एक ही शत्रु (वृत्रासुर) को मारा है, परन्तु शिवाजी ने अनेक शत्रुओं को मार कर रणभूमि को सुसज्जित किया है। वह इन्द्र केवल एक (वर्षा) ऋतु में ही (जल बरसाकर) पृथ्वी की शोभा को बढ़ाता है, लेकिन यह शिवाजी छओं ऋतुओं में रात दिन इस पृथ्वी को अपार शोभा से सौन्दर्यमयी बनाते हैं। भूषण कवि कहते हैं उसके पास केवल एक हाथी (ऐरावत) और एक घोड़ा (उच्चैःश्रवा) है और इधर शाहजी के पुत्र शिवाजी के साथ लाखों हाथी और घोड़े चलते हैं। फिर भला इन्द्र शिवाजी की समता कैसे कर सकता है?

विवरण—यहाँ शिवाजी उपमेय में उपमान इन्द्र से विशेषता बताई है, अतः व्यतिरेकालंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
भूषन भनत जंग राख्यो छल मढ़िकै।
धरम धरम, बल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव तेज, चढ़िकै॥
साहि के सिवाजी गाजी, कर्यो आगरे मैं,*
चंड पांडवनहू ते पुरुषारथ सु बढ़िकै।
सूने लाखभौन तें कढ़े वे पाँच राति मैं
जु द्यौस लाख चौकी ते अकेलो आयो कढ़िकै॥१४८॥

शब्दार्थ—दारुन=कठोर। छल मढ़िकै=कपट से ढक कर, कपट में फँसाकर। धरम=धर्म, धर्मसुत, युधिष्ठिर। पैज=प्रण, टेक। क़ढ़िकै=निकल कर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब दुर्योधन से दुगुना दुष्ट है। उसने सारे संसार को अपने कपट में फँसा लिया है। युधिष्ठिर के धर्म, भीम के बल, अर्जुन की प्रतिज्ञा, नकुल की बुद्धि और सहदेव के तेज के प्रभाव से वे पाँचों पांडव (दुर्योधन के बनवाये) सूने लाख के घर से रात को निकल कर अपना उद्धार कर सके थे परन्तु शाहजी के पुत्र धर्म-

* इतिहासकारों का कथन है कि शिवाजी की भेंट औरंगजेब से आगरे में हुई थी दिल्ली में नहीं, कई प्रतियों में 'आगरे' के स्थान पर 'दिल्ली' भी लिखा है, किन्तु वह इतिहास की दृष्टि से अशुद्ध है। छंद सं. ७९ में भी 'रस खोट भये ते अगोट आगरे में' पाठ है जिस से स्पष्ट है कि शिवाजी की औरंगज़ेब से आगरे में भेंट हुई थी।

वीर शिवाजी ने आगरे में पांडवों से भी अधिक पराक्रम दिखाया क्योंकि वे अकेले ही उक्त पाँचों गुणों को धारण करके दिन दहाड़े लाखों पहरेदारों के बीच से निकल आए।

विवरण—यहाँ 'शिवाजी' उपमेय में 'पाँचों पांडव' उपमान से विशेषता कथन की गई है।

सहोक्ति

लक्षण—दोहा

वस्तुन को भाषत जहाँ, जन रंजन सहभाव।
ताहि सहोक्ति बखानहीं, जे भूसन कविराव ॥१४६॥

शब्दार्थ—सह + उक्ति = सहोक्ति; सह शब्द के साथ कथन।

अर्थ—जहाँ 'सह' शब्द (या सह अर्थ को बताने वाले अन्य वाचक शब्दों) के बल से मनोरंजक सह-भाव प्रकट हो (कई वस्तुओं की संगति मनोरंजकता-पूर्वक वर्णित हो) वहाँ कविराज सहोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसके वाचक शब्द, संग, सहित, सह, समेत, साथ आदि होते हैं।

उदाहरण—मनहरण कवित्त

छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यो,
हरम सरम एक संग बिनु ढंग ही।
नैनन तें नीर धीर छूट्यो एक संग छूट्यो,
सुख-रुचि मुख-रुचि त्यों ही बिन रंग ही ॥
भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी,
धाक बिललाने न गहत बल अंग ही।
दक्खिन के सूवा पाय दिली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव-आस एक संग ही ॥१५०॥

शब्दार्थ—हुलास=उल्लास, प्रसन्नता। आम खास=महल का भीतरी मार्ग। हरम=बेगम, अथवा अन्तःपुर। सुख-रुचि=

सुख की इच्छा। मुख-रुचि=मुख की कान्ति, या मुख का स्वाद। बिललाना=व्याकुल होकर असंबद्ध बातें कहना।

अर्थ—प्रसन्नता तथा आम-खास का बैठना, एक साथ छूट गये। बेगमों का सहवास (अन्तःपुर) और लज्जा आदि भी सब एक साथ ही बुरी तरह से छूट गये। नेत्रों से जल, और हृदय का धैर्य भी एक साथ ही छूट गये। ऐसे ही सुखेच्छा और मुख का स्वाद वा मुख की कान्ति भी (बिना रंग, मलीन, उदास) होकर काफूर हो गई। भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी! वीर लोग भी तेरी धाक से व्याकुल हो कर असंबद्ध बातें करते हैं और अपने शरीर में बल नहीं पाते। दिल्ली के अमीर लोग दक्षिण प्रान्त की सूबेदारी पाकर फिर उत्तर आने की आशा और अपने जीवन की आशा को एक साथ ही छोड़ देते हैं। (वे समझ लेते हैं कि दक्षिण पहुँचकर शिवाजी के हाथ से बचना और सही-सलामत दक्षिण से फिर उत्तर पहुँचना अब संभव नहीं है।)

विवरण—यहाँ संग शब्द के बल से जीवन की आशा और उत्तर की आस का छूटना मनोरंजकता-पूर्वक कथन किया गया है।

विनोक्ति

लक्षण—दोहा

बिना कछू जहँ बरनिए, कै हीनो कै नीक।
ताको कहत विनोक्ति हैं, कवि भूषन मति ठीक ॥१५१॥

शब्दार्थ नीक=उत्तम।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु के बिना कोई वस्तु हीन या उत्तम कही जाय वहाँ बुद्धिमान कवि विनोक्ति अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ किसी वस्तु के बिना हीनता पाई जाय अथवा जहाँ किसी वस्तु के बिना उत्तमता पाई जाय दोनों स्थानों में विनोक्ति अलंकार होता है।

सूचना—इसके वाचक पद बिना, हीन रहित आदि होते है। कहीं-कहीं ध्वनि से भी व्यजित होता है।

उदाहरण—दोहा

सोभमान जग पर किये, सरजा सिवा खुमान।
साहिन सो बिनु डर अगड़, बिन गुमान को दान ॥१५२॥

शब्दार्थ—सोभमान=शोभित। अगड़=अकड़। गुमान=घमंड।

अर्थ—चिरजीवी वीर-केसरी शिवाजी ने बादशाहों के डर के बिना अपनी अकड़ और बिना अभिमान के अपने दान को पृथ्वी-तल पर सुशोभित किया। अर्थात् शिवाजी किसी बादशाह से डरते नहीं, अतः उनकी ऐंठ, उनका अभिमान सुन्दर लगता है और उनका दान बिना अभिमान के होता है, अतः वह प्रशंसनीय है।

विवरण—यहाँ बिना डर और बिना गुमान के होने से शिवाजी की ऐंठ और दान को प्रशंसनीय बताया है, अतः विनोक्ति अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

को कविराज विभूषन होत बिना कवि साहिसनै को कहाए ?
को कविराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाए ?
को कविराज भुवालन भावत भौंसिला के मन में बिन भाए ?
को कविराज चढ़ै गज बाजि सिवाजी की मौज मही बिनु पाए ॥१५३॥

शब्दार्थ—विभूषन होत=शोभा पाता है। सभाजित=सभा को जीतने वाले, अति प्रसिद्ध कवि। भुवाल=भूपाल, राजा।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी का कवि कहाए बिना कौन श्रेष्ठ कवि शोभा पा सकता है ? अथवा कौन कवि कविशिरोमणि हो सकता है ? और कौन ऐसा कवि है जो सभा में शिवाजी के गुण वर्णन किये बिना सभाजित कहला सके अर्थात् सभा में ख्याति पा सकता है ? कौन सा ऐसा कविराज है जो बिना शिवाजी को अच्छा लगे

अन्य राजाओं को रुचिकर हो ? और पृथ्वी पर ऐसा कौन-सा कवि है जो शिवाजी का कृपा-पात्र हुए बिना हाथी घोड़ों पर चढ़ सके ? अर्थात् कोई ऐसा नहीं है।

विवरण – यहाँ बिना शिवाजी का कवि कहलाए बिना उन की सभा के गुण गाए और बिना उनके कृपा-पात्र हुए कवियों का शोभा न पाना कथन किया गया है, अतः विनोक्ति है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बिना लोभ को बिबेक, बिना भय जुद्ध टेक,
साहिन सो सदा साहितनै सिरताज के।
बिना ही कपट प्रीति, बिना ही कलेस जीति,
बिना ही अनीति रीति लाज के जहाज के॥
सुकवि समाज बिन अपजस काज भनि,
भूषन भुसिल भूप गरीबनेवाज के।
बिना ही बुराई ओज, बिना काज घनी फौज,
बिना अभिमान मौज राज सिवराज के॥१५४॥

शब्दार्थ—बिबेक=विचार। टेक=प्रण, आन। अनीति=अन्याय। रीति=प्रजा के प्रति व्यवहार। लाज के जहाज=लज्जा के जहाज़, अत्यन्त लज्जाशील। गरीबनेवाज=दीनदयालु।

अर्थ—शाहजी के पुत्र शिवाजी महाराज का विचार लोभ-रहित है और वे सदा बादशाहों से निर्भय होकर युद्ध-टेक (युद्ध की आन) रखते हैं। उनकी प्रीति बिना कपट के होती है, उनकी विजय बिना किसी कष्ट के ही होती है अर्थात् विजय-प्राप्ति के लिए उन्हें बहुत कष्ट नहीं करना पड़ता और (प्रजा के साथ) उन लज्जाशील महाराज का व्यवहार बिना अन्याय के होता है। भूषण कवि कहते हैं कि दीनदयालु भौंसिला राजा शिवाजी का सुकवि-समाज अपयश के कार्यों से रहित है,

और उन शिवाजी का तेज बुराई रहित है और उनकी बड़ी फौज बिना काम के रहती है अर्थात् उनके तेज के कारण सेना कार्य-रहित है, और उनकी प्रसन्नता का उल्लास अभिमान से सर्वथा रहित है।

विवरण—यहाँ विवेक, युद्ध-टेक, प्रीति, जीत, रीति आदि को क्रमशः बिना लोभ, बिना भय, बिना कपट बिना क्लेश और बिना अनीति के शोभायमान कथन किया गया है; अतः विनोक्ति है।

चौथा उदाहरण—मनहरण कवित्त

कीरति को ताजी करी बाजि चढ़ि लूटि कीन्ही,
भइ सब सेन बिनु बाजी बिजैपुर की।
भूषन भनत, भौंसिला भुवाल धाक ही सों,
धीर धरबी न फौज कुतुब के धुर की॥
सिंह उदैभान बिन अमर सुजान बिन,
मान बिन कीन्हीं साहबी त्यों दिलीसुर की।
साहिसुव महाबाहु सिवाजी सलाह बिन,
कौन पातसाह की न पातसाही मुरकी॥१५५॥

शब्दार्थ—बाजी = घोड़ा। बिनु बाजी भई = हार गई। धरबी = धरेगी यहाँ भूतकालिक क्रिया का अर्थ होगा (बुन्देलखंडी प्रयोग)। धुर = केन्द्र-स्थान, किला। मुरकी = मुरक गई, नष्ट हो गई। सलाह = सम्मति, मेल। साहिबी = प्रभुत्व।

अर्थ—घोड़े पर चढ़कर शिवाजी ने खूब लूट की और बिजयपुर की समस्त सेना परास्त होगयी, इस तरह शिवाजी ने अपनी कीर्ति को फिर से फैलाया। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी की धाक ही से कुतुबशाह की केन्द्र-स्थान की सेना भी धैर्य न धरेगी (अथवा कुतुबशाह के किले में रहने वाली सेना भी घबड़ा जायगी) शिवाजी ने औरंगज़ेब के प्रभुत्व को उदयभानु, चतुर

अमरसिंह और मानसिंह से रहित कर दिया अर्थात् उनको मार डाला जिससे उनके बिना औरंगज़ेब का प्रभुत्व फीका पड़ गया। अथवा वीर उदयभानु तथा चतुर अमरसिंह के बिना करके अर्थात् उन प्रधान सेनापतियों से रहित करके औरंगज़ेब के प्रभुत्व को मान रहित कर दिया। भला शाहजी के पुत्र महाबली शिवाजी से मेल न रखने पर कौन, ऐसा बादशाह है, जिसकी बादशाहत नष्ट न हो गई हो।

विवरण—यहाँ औरंगजेब की उदयभानु, अमरसिंह और मानसिंह के बिना हीनता कथन की गई है, पुनः शिवाजी से (मेल किए बिना) अन्य बादशाहों की अशोभनता कथन की है, अतः बिनोक्ति अलंकार है।

समासोक्ति

लक्षण—दोहा

वरनन कीजै आन को, ज्ञान आन को होय।
समासोक्ति भूषन कहत, कवि कोविद सब कोय

शब्दार्थ—आन=अन्य वस्तु, प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत।

अर्थ—जहाँ वर्णन तो किसी अन्य प्रस्तुत वस्तु का किया जाय और उससे ज्ञान किसी अन्य (अप्रस्तुत) वस्तु का भी हो वहाँ समस्त विद्वान एवं कवि समासोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—इस में प्रस्तुत के वर्णन में समान अर्थ-सूचक विशेषण शब्दों द्वारा अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है। यह वर्णन कभी श्लेष के द्वारा होता है कभी बिना श्लेष के ही साधारण शब्दों द्वारा।

उदाहरण—दोहा

वड़ो डील लखि पील को, सबन तज्यो वन थान।
धनि सरजा तू जगत मैं, ताको हर्‌यो गुमान॥१५७॥

शब्दार्थ—डील = शरीर। पील = फील, हाथी।

अर्थ—हाथी का बहुत बड़ा डील (शरीर) देखकर समस्त पशुओं ने (भय से) वन-स्थली को छोड़ दिया, परन्तु हे सिंह, तू धन्य है कि तूने ऐसे हाथी का भी घमंड दूर कर दिया।

विवरण—यहाँ हाथी और सिंह (सरजा) का वर्णन करना अभीष्ट है किन्तु अप्रस्तुत औरंगज़ेब और शिवाजी का वृत्तान्त श्लिष्ट शब्द 'सरजा' द्वारा जाना जाता है। क्योंकि 'सरजा' शब्द का अर्थ (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब है। अतः इससे यह अभिप्राय निकलता है कि औरंगज़ेब की विशाल शक्ति को देखकर सब राजा लोग अपना अपना राज्य छोड़कर भाग गये, परन्तु हे वीर-केसरी शिवाजी आपही इस संसार में धन्य हैं जिन्होंने उसके गर्व को चूर्ण कर दिया। इस प्रकार प्रस्तुत से अप्रस्तुत का ज्ञान होने के कारण यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान ॥१५८॥

शब्दार्थ—द्विजराज=चन्द्रमा, ब्राह्मण। शिव=महादेव, शिवाजी। कला = चन्द्रमा की कला, काव्य-कला।

अर्थ—तू ही सच्चा चन्द्रमा है; तेरी कला ही माननीय है पूज्य है, क्योंकि तुझ पर श्री महादेव जी ने कृपा की है यह बात समस्त संसार में प्रसिद्ध है।

विवरण—यहाँ कवि का तात्पर्य तो चन्द्रमा की प्रशंसा करना है परन्तु 'द्विजराज' और 'शिव' इन दोनों पदों के श्लिष्ट होनों से अप्रस्तुत कवि भूषण और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है। जैसे—हे कवि भूषण, तू ही सच्चा ब्राह्मण है और तेरी ही

कला (काव्य-कला) प्रामाणिक है, क्योंकि तुझ पर शिवाजी ने अनुग्रह किया है, यह संसार जानता है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

उत्तर पहार बिधनोल खँडहर झार,
खँडहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गोर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद की॥
भूषण जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो अपनी ऊँचाई लखे कद की॥
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की॥१५९॥

शब्दार्थ—बिधनोल=बिदनूर, तुंगभद्रा नदी के उद्गम स्थान के पास पश्चिमी घाट पर यह एक पहाड़ी राज्य था। शिवाप्पा नामक राजा यहाँ राज्य करता था। अलीआदिलशाह ने इस राज्य को विजय कर के करद बनाया। इस पराजय के एक वर्ष बाद शिवाप्पा मर गया। तब उसका लड़का गद्दी पर बैठा। सन् १६७६ में शिवाजी ने उसे अपना करद बना लिया। खँडहर=इस नाम का चंबल और नर्मदा के बीच सुल्तानपुर के समीप एक कसबा था। झारखंड=उड़ीसा में एक स्थान। केली=केलि, क्रीड़ास्थान। बिरद=यश। गोर=अफगानिस्थान का एक शहर, जहाँ से मुहम्मद गोरी आया था। बसति=बस्ती। रद की=बरबाद की, नष्ट की।

अर्थ—जिस (हाथी) का सुन्दर यश उत्तर के पहाड़ों में तथा बिदनूर खँडहर और झारखँड आदि देशों में फैला हुआ है; गोर (अफगानिस्थान), गुजरात और पूरब तथा पश्चिम के समस्त जंगली जंतुओं की बस्तियों को जिस हाथी ने चौपट कर दिया है; भूषण कहते हैं कि वह प्रबल मदमस्त

गजराज, एक ऐसे सिंह को जो बिना जाने घोर गर्जना नहीं करता, देख कर अपने कद की ऊँचाई को भूल बैठा और उससे लड़ाई कर अपने पद की—बल की—बड़ाई को खो बैठा।

विवरण—यहाँ भी कवि की इच्छा हाथी के वर्णन की है परन्तु उस में सरजा शब्द श्लिष्ट होने से शिवाजी तथा औरंगज़ेब के व्यवहार का भान होता है। अभिप्राय यह है कि जिस औरंगज़ेब का यश उत्तर के पहाड़ों, तथा बिदनूर (पश्चिमी घाट) खँडहर या कंधार और झारखंड के प्रान्तों में फैला हुआ है, गोर और गुजरात तथा पूरब और पश्चिम के जंगल में रहने वालों की बस्तियों को भी जिस ने मार-मार कर चौपट कर दिया है, भूषण कहते हैं कि औरंगज़ेब रूपी वह प्रबल मदमस्त गजराज शिवाजी-रूपी एक वीर-केसरी से लड़ाई करके अपने कद की ऊँचाई को (अपने विशाल साम्राज्य को) भुला बैठा और अपने पद की—बल की—बड़ाई खो बैठा। इस तरह यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

परिकर तथा परिकरांकुर

लक्षण—दोहा

साभिप्राय विशेषननि, भूषन परिकर मान।
साभिप्राय विशेष्य तें, परिकर अंकुर जान ॥१६०॥

शब्दार्थ—साभिप्राय=अभिप्राय सहित।

अर्थ—जहाँ अभिप्राय सहित विशेषण हों वहाँ परिकर और जहाँ अभिप्राय सहित विशेष्य हों वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है।

सूचना—साभिप्राय विशेषण एवं विशेष्य से एक विशेष ध्वनि निकला करती है, अर्थ वही रहता है, उसकी वास्तविकता भी वैसी ही रहती है, उससे जो ध्वनि निकलती है केवल उसी में विशेषता है, उससे ही चमत्कार होता है।

उदाहरण परिकर – कवित्त मनहरण

बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने,
भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा ॥
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हें गढ़,
जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली-दल का दलन,
अफजल का मलन शिवराज आया सरजा ॥१६१॥

शब्दार्थ—समुहाने=सम्मुख, सामने। दिल आनि=दिल में ला, मान ले। मेरा बरजा=मेरा मना किया। अयाने=मूर्ख। दलन=नाश करने वाला। मलन=मसल डालने वाला। बहलोल खाँ—यह सन् १६३० ई० में निज़ामशाही दरबार में था। फिर सन् १६६१ में इसने बीजापुर सरकार की सेवा ग्रहण कर ली और शिवाजी से युद्ध करने को भेजा गया, परन्तु बीच में ही सिद्दी जौहर नामक सेनापति के बीजापुर से बिगड़ जाने के कारण यह शिवाजी तक न पहुँच सका। तब उसने सिद्दी को परास्त किया। सन् १६७३ में बीजापुर के वजीर खवासखाँ ने इसे शिवाजी से लड़कर पन्हाला का किला लेने भेजा, पर मराठों ने इसे खूब तंग किया। इसे चारों ओर से इस प्रकार घेरा कि बेचारे को पानी पीने को न मिला। पीछे बड़ी कठिनाइयों से इसका पिंड छूटा। सन १६७५ में इसने खवास खाँ को मरवा डाला और स्वयं बीजापुर के नाबालिग बादशाह का मुतवल्ली (Regent) बन बैठा। सन १६७७ ई० में यह कुतुबशाह से लड़ने चला, परन्तु कुतुबशाह के वजीर और शिवाजी के साथी मधुनापन्त ने इसे परास्त किया। सन १६७८ ई० में यह मर गया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अरे मूर्ख बहलोलखाँ मेरा मना करना—कहना—मान ले, अन्यथा तू शिवाजी के सामने जाने पर नहीं बचेगा। तुझ से सवाया (अधिक) वीर तेरा भाई (इखलासखाँ) था परन्तु उसे भी सलहेरि के युद्ध में (शिवाजी ने) कैद कर लिया और उसके साथ का कोई भी वीर चूँ तक न कर सका अर्थात् उसके किसी साथी ने भी उसके छुड़ाने में कुछ पुरुषार्थ प्रकट न किया। शाहों के शाह उस औरंगज़ेब बादशाह के भी किले शिवाजी ने जीत लिये जिसका तू नौकर है और जिसकी तू प्रजा है। शाहजी के प्रिय पुत्र, दिल्ली-पति की सेना के नाश करने वाले, अफ़ज़लखाँ को मसलने वाले (मारने वाले) वीर-केसरी शिवाजी आगये हैं। (तू यहाँ से भाग अन्यथा तुझे भी मार डालेंगे।)

विवरण—यहाँ भूषण कवि बहलोलखाँ को शिवाजी के सम्मुख आने से मना करते है, शिवाजी को दिल्ली के दल का नाशक, अफ़ज़लखाँ का मारने वाला, इखलासखाँ को पकड़ने वाला वर्णन करके उसके भी मरने का भय दिखलाया है। इन साभिप्राय विशेषणों से यही ध्वनि निकलती है कि जो ऐसा वीर है उसके सामने, हे बहलोलखाँ तू क्यों जाता है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सूर सिरोमनि सूर-कुल, सिव सरजा मकरंद।
भूषन क्यों औरंग जितै, कुल मलिच्छ कुल-चंद ॥१६३॥

शब्दार्थ—सूर=शूरवीर, तथा सूर्य। कुल=कुटुंब, सब। मकरंद=माल मकरंद के वंशज। कुल मलिच्छ कुल-चन्द=समस्त म्लेच्छों के कुल का चन्द्र।

अर्थ—माल मकरंद के वंशज वीर शिवाजी सूर्य-कुल के शूर शिरोमणि हैं, (फिर भला) औरंगज़ेब-रूपी समस्त म्लेच्छ-कुल का चन्द्रमा उनको कैसे जीत सकता है अर्थात् नहीं जीत सकता।

विवरण—यहाँ "शिवाजी" और "औरंगज़ेब" के लिए क्रमशः सूर्य और चन्द्र आदि साभिप्राय विशेषण कथन किये गये हैं, क्योंकि चन्द्र सूर्य को नहीं जीत सकता, यह सब जानते हैं। साभिप्राय विशेषण होने से यहाँ परिकर है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

भूषन भनि सबही तबहि, जीत्यो हो जुरि जंग।
क्यों जीतै सिवराज सों, अब अंधक अवरंग ॥१६३॥

शब्दार्थ—अंधक=कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य जिस के सहस्र सिर थे। यह अंधक इस कारण कहलाता था कि यह देखते हुए भी मद के मारे अंधों की तरह चलता था। स्वर्ग से पारिजात लाते हुए यह शिवजी के हाथों मारा गया था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अंधक आदि सब दैत्यों को शिवराज ने युद्ध करके तब ही (पहले ही) जीत लिया था, सो अब अंधक-रूपी औरंगज़ेब (शिवजी के अवतार) शिवाजी को किस प्रकार जीत सकता है?

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब का अंधक साभिप्राय विशेषण है, अतः परिकर अलंकार है।

परिकरांकुर

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहिर जहान जाके धनद समान,
पेखियतु पासवान यों खुमान चित चाय है।
भूषन भनत देखे भूख न रहत सब,
आप ही सों जात दुख-दारिद विलाय है॥
खीझे तें खलक माँहि खलभल डारत है,
रीझे तें पलक माँहि कीन्हे रंक राय है।
जंग जुरि अरिन के अंग को अनंग कीबो,
दीबो सिव साहब को सहज सुभाय है ॥१६४॥

शब्दार्थ—धनद=देवताओं का कोषाध्यक्ष,कुवेर । पेखियतु= दिखाई पड़ते हैं । पासवान=पास रहने वाले नौकर । खीझे तें= नाराज़ होने पर । खलबली=हल-चल । अनंग=अंगहीन, कामदेव ।

अर्थ—इस छन्द का अर्थ शिवजी और शिवाजी दोनों अर्थों में लगता है ।

(शिवजी के पक्ष में) जिसके पास रहने वाले कुवेर जैसे देवता हैं, और जिसके दर्शन-मात्र से भूख मिट जाती है, तथा दुख-दारिद्रय स्वयं नष्ट हो जाता है, और जिनके अप्रसन्न होने पर संसार भर में प्रलय हो जाती है और जो प्रसन्न होने पर पल भर में रंक को राजा कर देते हैं, उन शिवजी महाराज का युद्ध करके अपने शत्रु कामदेव को अनंग कर देना तथा दान देना सहज स्वभाव है ।

(शिवाजी के पक्ष में) संसार में प्रसिद्ध है कि शिवाजी महाराज की ऐसी अभिरुचि है कि उनके पास रहने वाले नौकर भी (ऐसे ठाठ से रहते हैं कि) कुवेर के समान दिखाई देते हैं । भूषण कवि कहते हैं कि जिन (शिवाजी) के देखने से लोगों की भूख उड़ जाती है और दरिद्रता आदि अनेक कष्ट सहज ही अपने आप नष्ट हो जाते हैं, जिनके नाराज़ हो जाने पर समस्त संसार में खलबली मच जाती है और जिनकी प्रसन्नता से पलक भर में ही कंगाल भी राजा हो जाते हैं उन कृपालु शिवाजी का युद्ध में जुटकर शत्रुओं को अंगहीन कर देना और दीनों को दान देना सहज स्वभाव हैं ।

विवरण—यहाँ 'सिव' शब्द साभिप्राय विशेष्य है क्योंकि 'शिव' ने ही कामदेव को भस्म करके अनंग कर दिया था अतः यहाँ परिकरांकुर अलंकार है ।

श्लेष

लक्षण—दोहा

एक वचन में होत जहँ, वहु अर्थन को ज्ञान ।
स्लेस कहत हैं ताहि को, भूषन सुकवि सुजान ॥ १६५ ।

अर्थ—जहाँ एक बात के कहने से बहुत से अर्थों का ज्ञान हो वहाँ चतुर कवि श्लेष अलंकार कहते हैं ।

सूचना—भूषण जी ने श्लेष को अर्थालंकार में ही माना है । शब्दालंकार में इसे नहीं गिनाया, किन्तु उदाहरण शब्द-श्लेष और अर्थ-श्लेष दोनों के दिये हैं । शब्द-श्लेष और अर्थ-श्लेष में यही अन्तर है कि शब्द-श्लेष में श्लिष्ट (अनेक अर्थ वाले) शब्दों से अनेक अर्थों का विधान होता है किन्तु उन शब्दों के स्थान पर उनके पर्याय (समानार्थ) शब्द रख दिये जाँय तो वह श्लिष्टता नहीं रहती । अर्थ-श्लेष में शब्दों का एक ही अर्थ दो पक्षों में घटित होता है, उन शब्दों के पर्याय रख देने पर भी वह श्लेष ज्यों का त्यों रहता है ।

उदाहरण—कवित्त

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके,
भू पर भरत नाम भाई नीति चारु है ।
भूषन भनत कुल-सूर कुल-भूषन हैं,
दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है ॥
अरि-लंक तोर जोर जाके संग बानरहैं
सिंधुरहैं बाँधे जाके दल को न पारु है ॥
तेगहि कै भेंटै जौन राकस मरद जानै,
सरजा सिवाजी रामही को अवतारु है ॥१६६॥

सूचना—इस कवित्त के दो अर्थ हैं—एक अर्थ राम-पक्ष में दूसरा शिवाजी-पक्ष में, यह कवित्त के अन्तिम पद से स्पष्ट प्रकट होता है ।

शब्दार्थ—(राम-पक्ष में)—सीता संग सोभित=जानकी जी साथ शोभित हैं । सुलच्छन=श्रेष्ठ लक्ष्मण जी । भरत=भरत जी ।

भाई = भ्राता। दासरथी = दशरथ के पुत्र। लंक = लंका। बानरहैं = बानर हैं। सिंधु रहैं बाँधे = सिंधु को बाँधा है। ते गहि कै भेंटै = वे पकड़ कर भेंटते हैं। जौन राकस मरद जानै = जो राक्षसों को मर्दन करना जानते हैं।

अर्थ—(राम के पक्ष में) जो श्री सीता जी के संग शोभित हैं, जिन के सहायक सुन्दर लक्ष्मण हैं, पृथ्वी पर सुन्दर नीति वाले भरत नाम के जिनके भाई हैं, भूषण कहते हैं कि जो समस्त सूर्य-कुल के भूषण हैं, जो दशरथ के बेटे हैं, और जिनकी भुजाओं पर समस्त पृथ्वी का भार है, शत्रु (रावण) की लंका को तोड़ने का जिनमें बल है, ऐसे बानर जिनके साथ हैं, जिन्होंने समुद्र को बाँधा था, जिनके दल का कोई पार न था, जो भेंट होने पर (सामना होने पर) राक्षसों को पकड़ कर मर्दन करना जानते हैं, मानों उन्हीं रामचन्द्रजी के शिवाजी अवतार हैं।

शब्दार्थ—(शिवाजी पक्ष में) —सीता संग सोभित = श्री (लक्ष्मी) उसके संग शोभित। सुलच्छन = शुभ लक्षण (वाले व्यक्ति) भरत = भरना, पालन करना। भाई = भाती है। सूर = शूर, योद्धा। दासरथी = रथी हैं दास जिस के, बड़े-बड़े वीर जिसके सेवक हैं। लंक = कमर। बान रहैं = बाण रहते हैं। सिंधुर हैं बाँधे = हाथी (द्वार पर) बँधे रहते हैं। जाके दल को न पारु है = जिसकी सेना अनगनित है। तेगहि कै भेटै = तलवार ही से भेंटता है। जो नराकस मरद जानै = जो [नर = मनुष्य (प्रजा)+अकस = शत्रु] प्रजा के शत्रु का मर्दन करना जानता है।

अर्थ—(शिवाजी पक्ष में)—जो सदा लक्ष्मी के सहित शोभित है, सुंदर लक्षणों वाले व्यक्ति जिसके सहायक हैं, पृथ्वी पर जिसका भर्ता (पालन पोषण करने वाला) नाम प्रसिद्ध है, जिसकी सुंदर नीति सबको भाती है, जो समस्त शूरवीरों का भूषण है, सब रथी जिसके

दास हैं, और जिसकी भुजाओं पर सारी पृथ्वी का भार है, शत्रुओं की कमर तोड़ने का जिनमें बल है, ऐसे तीखे बाण जिसके साथ रहते हैं, जिसके (द्वार पर) हाथी बँधे हुए हैं और जिसकी सेना का कोई पारावार नहीं है, जो शत्रुओं को तलवार से ही भेंटता है, जो मनुष्यों के शत्रुओं का मर्दन करना जानता है, अथवा जो राक्षस अर्थात् म्लेच्छों का मर्दन करना जानता है वह वीर केसरी शिवाजी रामचन्द्र जी का ही अवतार है।

विवरण —यहाँ 'शब्द श्लेष' है। यदि 'सीता' के स्थान पर 'जानकी' रख दिया जाय तो श्लिष्टता नहीं रहेगी। यही बात अन्य शब्दों की है। 'शब्द श्लेष' दो तरह का होता है—एक भंगपद, दूसरा अभंगपद। जहाँ दो अर्थों के लिए पदों को जोड़ा-तोड़ा जाता है, वहाँ भंगपद और जहाँ पदच्छेद न करना पड़े वहाँ अभंगपद होता है। यहाँ भंगपद श्लेष है।

दूसरा उदाहरण—मनहरण कवित्त

देखत सरूप को सिहात न मिलन काज,
जग जीतिबे की जामैं रीति छल बल की।
जाके पास आवै ताहि निधन करति वेगि,
भूषन भनत जाकी संगति न फल की।
कीरति कामिनी राच्यो सरजा सिवा की एक,
बस कै सकै न वसकरनी सकल की।
चंचल सरस एक काहू पै न रहै दारि,
गनिका समान सूबेदारी दिली-दल की ॥१६७॥

सूचना—इस कवित्त के भी दो अर्थ है। एक अर्थ दक्षिण की सूबेदारी पक्ष में दूसरा वेश्या-पक्ष में, यह बात कवित्त के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट प्रकट है।

शब्दार्थ—को न सिहात=कौन अभिलाषा नहीं करता, कौन

नहीं ललचाता, मुग्ध नहीं होता। मिलन काज=प्राप्त करने के लिए अथवा मिलने के लिए। निधन करत=निर्धन करती है, अथवा मार डालती है। बेगि=शीघ्र। राच्यो=अनुरक्त। दारि=दारी, व्यभिचारिणी एवं छिनाल स्त्री। गनिका=गणिका, वेश्या। सरस=रस जानने वाली, बढ़कर।

अर्थ—(वेश्या पक्ष में) सुन्दरी वेश्या के रूप-लावण्य को देखकर ऐसा कौन व्यक्ति है जो उससे मिलने के लिए—आलिंगन करने के लिए न ललचाता हो, जिसमें छलबल से संसार भर (के हृदयों) को जीतने की अनेक रीतियाँ हैं, अर्थात् जो कपट, और नाज़-नखरों से संसार भर को जीतना जानती है। वह जिसके पास आती है उसे शीघ्र ही निर्धन कर देती है, उसका धन चूस लेती है। भूषण कहते हैं कि उसका संग करना भी अच्छा फल नहीं देता। वह रस को जानने वाली चंचल व्यभिचारिणी वेश्या कभी किसी एक व्यक्ति के पास नहीं रहती और वह सबको वश में करने वाली, लपेट लेने वाली है, परन्तु कीर्त्तिरूपी कामिनी में अनुरक्त एक शिवाजी ही ऐसे हैं जिनको वह अपने वश में नहीं कर सकी अर्थात् यशस्वी चरित्रवान् शिवाजी ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें वह नहीं लुभा सकी।

(सूबेदारी के पक्ष में) दिल्ली की सेना की इस सूबेदारी, जिसमें कि संसार भर को जीतने के लिए छलबल की—कपट की अनेक रीतियाँ हैं, के सरूप (वैभव) को देखकर कौन ऐसा प्राणी है जो इसको पाने के लिए न ललचाता हो। पर यह जिसके पास जाती है, शीघ्र ही उसका नाश कर देती है, (क्योंकि सूबेदार बनते ही शिवाजी का सामना करने के लिए जाना आवश्यक होता है. तब शिवाजी के हाथों से कौन बच सकता है, प्रत्येक सूबेदार मारा जाता है। और इसका संग करना—साथ करना भी अच्छा नहीं। इस तरह जो इसे पाता है, शीघ्र ही उसका नाश हो जाता है) यह (दिल्ली की सेना की सूबेदारी) वेश्या के समान चंचल

है, वरन् उससे भी बढ़कर है, और कभी किसी एक के पास नहीं रही (अर्थात्—या तो वह सूबेदार मारा जाता है और नया सूबेदार नियुक्त हो जाता है, अथवा यदि किस्मत से बच जाय तो शिवाजी से हार खाने के कारण औरंगज़ेब उसे पदच्युत कर देता है, इस तरह सूबेदारी कभी किसी एक के पास नहीं रहती)। यह सूबेदारी सब को बश में करने वाली है। कीर्त्तिरूपी कामिनी में अनुरक्त शिवाजी ही एक ऐसे हैं जिन्हें यह नहीं लुभा सकी—अर्थात् जसवंतसिंह आदि सब राजाओं को इस सूबेदारी के लोभ ने फँसा लिया है, एक यशस्वी शिवाजी ही ऐसे हैं जो इसके लोभ में नहीं पड़े और जिन्होंने औरंगज़ेब से स्वतंत्र रहना ही कीर्त्तिकर समझा।

विवरण—यहा श्लिष्ट शब्दों द्वारा उक्त कवित्त के दो अर्थ हुए हैं—एक वेश्या-पक्ष में, दूसरा दक्षिण की सूबेदारी पक्ष में। इसमें अर्थश्लेष का प्राधान्य है, क्योंकि प्राय: ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं यदि उनके पर्याय भी प्रयुक्त होते तब भी अर्थ यही रहता।

अप्रस्तुत-प्रशंसा

लक्षण—दोहा

प्रस्तुत लीन्हे होत जहँ, अप्रस्तुति परसंस।
अप्रस्तुत-परसंस सो, कहत सुकवि अवतंस ॥१६८॥

शब्दार्थ—प्रस्तुत=जो प्रकरण म हो अर्थात् जिसके कहने की इच्छा हो। लीन्हे=लेने, ग्रहण करने। अप्रस्तुत=जिस बात का प्रकरण न हो अथवा जिस के कहने की इच्छा न हो। प्रसंस=वर्णन। अवतंस=श्रेष्ठ।

अर्थ—जहाँ प्रस्तुत के लेने (ग्रहण) के लिए अर्थात् वर्णन के लिए अप्रस्तुत का वर्णन हो वहाँ श्रेष्ठ कवि अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार कहते हैं (इसमें प्रस्तुत को सूचित करने के लिए अप्रस्तुत का वर्णन किया जाता है)।

सूचना—श्लेष में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों मौजूद रहते हैं। समासोक्ति में केवल प्रस्तुत का वर्णन होता है, और उससे अप्रस्तुत का ज्ञान होता है, परन्तु अप्रस्तुत-प्रशंसा में अप्रस्तुत के वर्णन के द्वारा प्रस्तुत की सूचना दी जाती है। अप्रस्तुत-प्रशंसा के पाँच भेद हैं। १. कार्य-निबन्धना (कार्य कह कर कारण लक्षित किया जाना), २. कारण-निबंधना (जहाँ कहना होता है कार्य, पर कहा जाता है कारण), ३. सामान्य-निबंधना (अप्रस्तुत सामान्य के कथन के द्वारा प्रस्तुत विशेष का लक्षित करना), ४. विशेष-निबन्धना(अप्रस्तुत विशेष के द्वारा सामान्य का बोध कराया जाना), ५.सारूप्य-निबन्धना (समान मिलता-जुलता अप्रस्तुत कह कर प्रस्तुत लक्षित किया जाना)। परन्तु महाकवि भूषण ने केवल कार्य-निबन्धना का ही वर्णन किया है, और विशेष-निबन्धना को 'सामान्य विशेष' नामक अलग अलंकार माना है।

उदाहरण—दोहा

हिन्दुनि सों तुरकिनि कहैं, तुम्हें सदा सन्तोष।
नाहिन तुम्हरे पतिन पर, सिव सरजा कर रोष ॥१६६॥

शब्दार्थ—हिन्दुनि=हिन्दू स्त्रियाँ। तुरकिनि=मुसलमान स्त्रियाँ।

अर्थ—हिन्दू स्त्रियों से तुर्कों की स्त्रियाँ कहती हैं कि तुम ही सदा सुखी हो, क्योंकि तुम्हारे पतियों पर सरजा राजा शिवाजी का क्रोध नहीं है।

विवरण—यहा पराक्रमी शिवाजी का मुसलमानों का शत्रु होना तथा इस कारण मुसलमान-स्त्रियों का सदा अपने पतियों के जीवन के लिए दुःखित-चिन्तित रहना इस प्रकार उनका अपनी दुर्दशा का वर्णन प्रस्तुत है, इसको उन्होंने हिन्दू-स्त्रियों के पतियों पर शिवाजी का क्रोधित न होना, अतएव हिन्दू-स्त्रियों का संतुष्ट रहना रूप अप्रस्तुत कार्य द्वारा प्रकट किया है।

दूसरा—उदाहरण

अरितिय भिल्लिनि सों कहैं, घन बन जाय इकन्त।
शिव सरजा सों वैर नहिं, सुखी तिहारे कन्त ॥१७०॥

अर्थ—शत्रु-स्त्रियाँ एकान्त गहन वन में जाकर भीलनियों से कहती हैं कि तुम्हारे स्वामी ही आनन्द में हैं, क्योंकि उनकी शत्रुता सरजा राजा शिवाजी से नहीं है (पर हमारे पतियों का शिवाजी से बैर है इसलिए वे सुखी नहीं)।

विवरण—यहाँ भी शिवाजी से वैर के कारण अपने पतियों की दुर्दशा का वर्णन न कर अपितु भीलनियों के पतियों को सुखी बता कर अप्रस्तुत वर्णन से प्रस्तुत का संकेत किया है।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

काहू पै जात न भूषन जे गढ़पाल की मौज निहाल रहे हैं।
आवत है जो गुनीजन दच्छिन भौंसिला के गुन-गीत लहे हैं॥
राजन राव सबै उमराव खुमान की धाक धुके यों कहे हैं।
संक नहीं, सरजा सिवराज सों आजु दुनी में गुनी निरभै हैं॥१७१॥

शब्दार्थ—गढ़पाल = गढ़ों के पालक, शिवाजी। धाक धुके = आतंक से घबड़ाए हुए। दुनी = दुनिया, संसार।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि जो गुणीजन (पंडित कवि इत्यादि) दक्षिण में आते हैं और भौंसिला राजा गढ़पति शिवाजी के गुणों के गीत गाते हैं, वे शिवाजी की प्रसन्नता से निहाल हो गये हैं, और वे अब किसी अन्य के पास नहीं जाते। (उन्हें देख कर) चिरजीवी शिवाजी के आतंक से घबड़ाए हुए सब राजा, उमराव और सरदार यह कहते हैं कि आजकल संसार में पंडित ही निर्भय हैं (चैन में हैं) क्योंकि उन्हें शिवाजी से किसी भी प्रकार की भी शंका नहीं है।

विवरण—'शिवाजी बड़ा गुणग्राही है' इस प्रस्तुत कारण को

'गुणियों का शिवाजी से निहाल हो जाना' रूप अप्रस्तुत कार्य कथन द्वारा प्रकट किया है। अथवा अपने निहाल हो जाने और शिवाजी को छोड़ अन्यत्र कहीं न जाने इस प्रस्तुत विषय को भूषण ने अन्य कवियों के निहाल हो जाने से व्यक्त किया है। इस हालत में यहाँ सामान्य-निबन्धना अप्रस्तुत-प्रशंसा होगी।

पर्य्यायोक्ति

लक्षण—दोहा

बचनन की रचना जहाँ, वर्णनीय पर जानि।
परयायोकति कहत हैं, भूषन ताहि बखानि ॥१७२॥

अर्थ—जहाँ वर्ण्य वस्तु का वचनों का चातुरी द्वारा घुमा फिरा कर वर्णन किया जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है। अर्थात् जिसका वर्णन करना हो उसको इस चतुरता से कहा जाय जिससे वर्णनीय का कथन भी हो जाय, और उसका उत्कर्ष भी प्रतीत हो। पर्यायोक्ति दो प्रकार की होती है—एक जहाँ व्यंग से अपना इच्छित अर्थ कहा जाय, दूसरा जहाँ किसी बहाने से कोई काम हो।

सूचना—अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत से प्रस्तुत का ज्ञान होता है। समासोक्ति में प्रस्तुत-वर्णन से श्लिष्ट शब्दों द्वारा किसी अप्रस्तुत का ज्ञान होता है, पर पर्य्यायोक्ति में प्रस्तुत का कथन कुछ हेर-फेर कर दिया जाता है स्पष्ट शब्दों में नहीं, उस में अप्रस्तुत का आभास नहीं होता, प्रत्युत प्रस्तुत का उत्कर्ष ज्ञात होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज तेरे बैर देखियतु,
घन बन ह्वै रहे हरम हबसीन के।
भूषन भनत रामनगर जवारि तेरे,
बैर परवाह बहे रुधिर नदीन के॥

सरजा समत्थ वीर तेरे बैर बीजापुर,
वैरी वैयरनि कर चीह्न न चुरीन के।
तेरे बैर देखियतु आगरे दिली के बीच,
सिन्दुर के बुन्द मुख-इन्दु जवनीन के ॥१७३॥

शब्दार्थ—रामनगर जवारि = रामनगर, तथा जवारि या जौहर नाम के कौंकण के पास ही दो कोरी राज्य थे। सन् १६७२ में सहलेरि-विजय के बाद मोरोपंत पिंगले ने बड़ी भारी फौज लेकर उन को विजय कर लिया। परबाह = प्रवाह। वैयर = वधूवर, स्त्री। चुरीन = चूड़ियाँ। जवनीन = यवन स्त्रियाँ, मुसलमान स्त्रियाँ।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी ! यह देखा जाता है कि आपके वैर के कारण घने जंगल हबशियों के जनानखाने बन गये हैं, अर्थात् जो तातारी हवशी पहरेदार बादशाह के अन्तःपुर में रहते थे, अब बादशाहों के जंगल में चले जाने के कारण वे हबशी गुलाम भी कुटुंब सहित जंगलों में चले गये हैं। भूषण कवि कहते हैं कि आपके ही वैर के कारण रामनगर और जवार नगर में रक्त की नदियों के प्रवाह बहे। हे समर्थ वीर-केसरी शिवाजी ! आपसे वैर होने से बीजापुरी शत्रुओं की स्त्रियों के हाथों में चूड़ियों के चिह्न ही नहीं रहे अर्थात् सब विधवा हो गईं, और आपके ही बैर के कारण आगरे और दिल्ली नगर की मुसलमान-स्त्रियों के चन्द्रमुखों पर सिंदूर की बिंदी दिखाई देती हैं। (मुसलमान स्त्रियाँ सिंदूर का टीका इसलिए लगाती हैं कि वे भी हिन्दू-स्त्रियाँ ही जान पड़ें, और उनकी रक्षा हो जाय)।

विवरण—यहाँ सीधे यह न कह कर कि 'शिवाजी बड़े शत्रुजयी हैं' यों कहा है कि तुमसे बैर होने के कारण जंगलों में शत्रुओं के अन्तः-पुर बन गये, नगरों में खून की नदियाँ बहने लगीं और स्त्रियों के हाथो से चूड़ियों के चिह्न ही मिट गए तथा मुसलमान स्त्रियाँ

हिन्दू स्त्रियों की तरह सिंदूर का टीका लगाने लगी हैं। इस प्रकार यहाँ शिवाजी की विजय का चतुरता से वर्णन है, और उनका उत्कर्ष भी प्रकट हुआ है।

उदाहरण (द्वितीय पर्यायोक्ति)—कवित्त मनहरण

साहिन के सिच्छक सिपाहिन के पातसाह
संगर मैं सिंह के से जिनके सुभाव हैं।
भूषण भनत सिव सरजा की धाक ते वै
काँपत रहत चित गहत न चाव हैं॥
अफजल की अगति, सायस्ताखाँ की अपति
बहलोल-बिपति सों डरे उमराव हैं।
पक्का मतो करिकै मलिच्छ मनसब छाँड़ि,
मक्का के ही मिसि उतरत दरियाव हैं॥१७४॥

शब्दार्थ—सिच्छक=शिक्षक। समर=युद्ध। अगति=दुर्गति, दुर्दशा। अपति=अप्रतिष्ठा। मतो=निश्चय। मनसब=पद।

अर्थ—राजाओं को शिक्षा देने वाले (दंड द्वारा ठीक कर देने वाले) वीर सिपाहियों के स्वामी तथा जो रणक्षेत्र में सिंह के समान पराक्रम दिखाने वाले हैं वे (बादशाह) भी शिवाजी की धाक से काँपते रहते हैं और उनका चित्त कभी प्रसन्न नहीं रहता (सदा सशंक रहता है)। समस्त मुसलमान उमराव, अफजल खाँ की दुर्दशा, शाइस्ताखाँ की अप्रतिष्ठा और बहलोल खाँ का संकट (शिवाजी ने इन तीनों की बड़ी दुर्दशा की थी) सुनकर बहुत डर गए हैं और सब पक्का इरादा कर, अपनी मनसबदारी का पद त्याग कर और मक्का जाने का बहाना कर समुद्र पार करते हैं। (शिवाजी मक्का जाने वालों को नहीं छेड़ते थे)।

विवरण—यहाँ मक्का जाने के बहाने से मुसलमानों का प्राण बचाना दूसरी पर्यायोक्ति है, और इससे शिवाजी का उत्कर्ष भी प्रकट होता है। शत्रु उनके भय से देश छोड़कर भाग रहे हैं।

व्याजस्तुति

लक्षण—दोहा

अस्तुति में निन्दा कढ़ै, निन्दा में स्तुति होय।
व्याजस्तुति ताको कहत, कवि भूषन सब कोय ॥१७५॥

शब्दार्थ—कढ़ै=निकले, प्रकट हो।

अर्थ—जहाँ स्तुति में निन्दा और निन्दा में स्तुति प्रकट हो, भूषण कवि कहते हैं कि वहाँ सब पंडित व्याजस्तुति मानते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पीरी पीरी हुन्नै तुम देत हो मँगाय हमें,
सुबरन हम सों परखि करि लेत हौ।
एक पल ही में लाख रूखन सों लेत लोग,
तुम राजा ह्वै कै लाख दीबे को सचेत हौ॥
भूषन भनत महाराज सिवराज बड़े,
दानी दुनी ऊपर कहाए केहि हेत हौ ?।
रीझि हँसी हाथी हमैं सब कोऊ देत,
कहा रीझि हँसि हाथी एक तुमहियै देत हौ ॥१७६॥

शब्दार्थ—पीरी=पीली। हुन्नै=मुहरें, अशर्फियाँ। सुबरन=(१)सुवर्ण,सोना (२) सु+वर्ण, सुन्दर अक्षर अर्थात् छंद। परखि=परीक्षा करके, खूब देखभाल कर। लाख=(१)एक प्रकार का प्रसिद्ध लाल पदार्थ जो पीपल आदि के पेड़ों की टहनियों पर कई प्रकार के कीड़ों से बनता है। इसकी चूड़ियाँ बनती हैं, चपड़ी भी उसी की होती है। (२) सौ हज़ार की संख्या। रूखन=वृक्षों से। हाथी देत हैं=(१) हाथ मिलाते हैं, (२) हाथी दान करते हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि महाराज शिवाजी! पीली-पीली मुहरें मँगा कर आप हमें देते हैं पर हम से भी तो आप परख-परख

कर सुवर्ण (सुन्दर अक्षर—सुन्दर छंद) लेते हैं—अर्थात् हम से ही सुवर्ण लेकर अशरफी देने में क्या बड़ी बात है। लोग वृक्षों तक से पल भर में ही लाख ले लेते हैं पर आप राजा होकर भी लाख (रुपये) देते समय सचेत होकर देते हैं। हे महाराज, फिर आप किस लिए दुनियाँ में बड़े दानी प्रसिद्ध हो गये हैं ? (अर्थात् आप इस प्रसिद्धि के योग्य नहीं हैं)। प्रसन्न होकर तथा हँस कर क्या केवल आप ही एक हमें हाथी (पुरस्कार में) देते हैं, प्रसन्न होने पर हँस करके तो हमें सब कोई ही हाथी देते हैं (हम से हाथ मिलाते हैं)।

विवरण—यहाँ सुबरन, लाख, हाथी आदि श्लिष्ट शब्द प्रयुक्त कर कवि ने शिवाजी के दान को प्रत्यक्ष तौर पर तुच्छ बताया है। पर वास्तविक अर्थ लेने से शिवाजी की दान-वीरता प्रकट होती है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

तू तौ रातौ दिन जग जागत रहत वेऊ,
जागत रहत रातौ दिन बन-रत हैं।
भूषन भनत तू विराजै रज-भरो वेऊ,
रज-भरे देहिन दरी मैं बिचरत हैं॥
तू तौ सूर गन को बिदारि बिहरत सूर,
मंडलै विदारि वेऊ सुरलोक रत हैं।
काहे तें सिवाजी गाजी तेरोई सुजस होत,
तोसों अरिबर सरिबर सी करत हैं॥१७७॥

शब्दार्थ—वेऊ=वे भी,शत्रु भी। जागत=सावधान रहना,जागना। वन-रत=वन में अनुरक्त लीन, वन में बसे हुए। रज=राज्यश्री तथा धूल। दरी=गुफा। विचरत=घूमते हैं। सूर=शूर। सूरमंडल=सूर्य मंडल। बिदारि=फाड़कर। गाजी=धर्म वीर। सरिबर=बराबरी।

अर्थ—तुम जिस तरह रात दिन संसार में जागते रहते हो

(सावधान रहते हो) उसी तरह तुम्हारे शत्रु भी वनवासी होकर रात-दिन (तुम्हारे भय के कारण) जागते रहते हैं (सोते नहीं, कहीं शिवाजी आकर न मार डालें)। भूषण कवि कहते हैं कि तुम रज से भरे होने के कारण (राज्य-श्री से युक्त होने के कारण) शोभित हो और वे शत्रु भी रज (धूल) से भरे हुए शरीरों से पहाड़ों की गुफाओं में घूमते-फिरते हैं। तुम शूरों (शूरवीरों के) समूह को फाड़कर (युद्ध में) विचरते हो। और वे (शत्रु) भी सूर-मंडल को भेद कर स्वर्ग-लोक में विहार करते हैं, (कहा जाता है कि युद्ध में मरे हुए लोग सूर्यमंडल को भेदकर स्वर्ग को जाते हैं)। हे धर्मवीर शिवाजी ! फिर तुम्हारा ही यश (संसार में) क्यों प्रसिद्ध है ? क्योंकि तुम्हारे श्रेष्ठ शत्रु भी तुम से बराबरी सी करते है (उनका भी वैसा ही यश होना चाहिए)।

विवरण—यहाँ प्रकट में तो शिवाजी के शत्रुओं की स्तुति की गई है, उन्हें शिवाजी के समान कहा गया है, पर वास्तव में उनकी निन्दा है और उनकी दुर्दशा का वर्णन है।

आक्षेप

लक्षण—दोहा

पहले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध।
ताहि कहत आच्छेप हैं, भूपन सुकवि सुमेध ॥१७८॥

श०दार्थ—प्रतिषेध=निषेध। सुमेध=अच्छी मेधा (बुद्धि) वाले।

अर्थ—जहाँ पहले कुछ बात कहकर फिर उसका प्रतिषेध (निषेध) किया जाय वहाँ बुद्धिमान कवि भूषण आक्षेप अलंकार कहते हैं। इसे उक्ताक्षेप भी कहते हैं)।

सूचना—आक्षेप का अर्थ ही 'बाधा डालना' है, अर्थात् जहाँ किसी कार्य के करने में बाधा डालने से तात्पर्य सिद्ध हो। इस में पहले कही बात का तब ही निषेध होता है, जब कि उस से कोई दूसरी बात प्राप्त हो।

उदाहरण—मालती सवैया

जाय भिरौ, न भिरे बचिहौ, भनि भूषन, भौंसिला भूप सिवा सों,
जाय दरीन दुरौ, दरिऔ तजिकै दरियाब लँघौ लघुता सों ॥
सीछन काज वजीरन को कढ़ै बोल यों एदिलसाहि सभा सों।
छूटि गयो तौ गयो परनालो सलाह की राह गहौ सरजा सों ॥१७६

शब्दार्थ—भिरौ = भिड़ो, लड़ो। दुरौ = छिपो। दरिऔ = दरी को भी, गुफा को भी। लँघौ = उल्लंघन करो, पार करो। लघुता-सों = लाघवता से, शीघ्रता से। सीछन काज = शिक्षण के लिए, उपदेशार्थ। सलाह = सुलह, मेल।

अर्थ—भूषण कवि कहते है कि आदिलशाह की सभा से (सभासदों द्वारा) वज़ीरों के प्रति उनके उपदेशार्थ ये वचन (आदेश) निकले हैं कि तुम्हें भौंसिला राजा शिवाजी से जाकर युद्ध करना है तो करो, परन्तु उनसे युद्ध करके बचोगे नहीं अर्थात् मारे जाओगे (इस हेतु युद्ध न करो)। इसलिए या तो पहाड़ों की गुफाओं में जाकर छिपो, (परन्तु इससे अच्छा यही है कि) गुफाओं को भी छोड़कर शीघ्रता से समुद्र पार करो (क्योंकि गुफाओं में भी तुम शिवाजी से छिपकर न बचोगे; अतः सबसे अच्छा यही उपाय है)। यदि परनाले का किला हाथ से छूट गया तो जाने दो, कोई परवाह नहीं, पर अब शिवाजी से सुलह करने का ही मार्ग अपनाओ, उनसे संधि कर लो।

विवरण—यहाँ प्रथम भिरौ, दरीन दुरौ, आदि बातें कहकर पुनः उन्हीं का निषेध किया है और इससे शिवाजी की प्रबलता तथा उत्कर्ष को सूचित किया है। अतः यहाँ प्रथम आक्षेप है।

द्वितीय आक्षेप

लक्षण—दोहा

जेहि निषेध आभास ही, भनि भूषन सो और।
कहत सकल आच्छेप हैं, जे कविकुल सिरमौर ॥१८०॥

शब्दार्थ—आभास = झलक ।

अर्थ—जहाँ निषेध का आभास-मात्र कहा जाय अर्थात् जहाँ स्पष्टतया निषेध न किया जाय, पर बात इस प्रकार कही गई हो कि उस से निषेध का आभास-मात्र मिलता हो वहाँ भी श्रेष्ठ कवि दूसरा आक्षेप अलंकार कहते हैं। (इसे निषेधाक्षेप भी कहते हैं)।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के,
सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते ।
भूषन कहैं यों अवरंग सों वज़ीर, जीति
लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते ।
चाकर हैं उजुर कियो न जाय, नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते ॥१८१॥

शब्दार्थ—पछाँह = पश्चिम । मुहीम = आक्रमण, चढ़ाई । उजुर = उज्र, विरोध, इन्कार । उबरते = बचते, ज़िन्दा रहते ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि वज़ीर लोग औरंगज़ेब से इस प्रकार विनय करते हैं कि हम पूरब, उत्तर और पश्चिम देश के सब ज़बर्दस्त बादशाहों के किलों को भी छीन लेते और पुर्तगाल विजय करने के हेतु समुद्र को भी पार कर जाते, परन्तु (क्या करें) आप हमें शिवाजी पर चढ़ाई करने के लिए भेजते हैं (जहाँ कि बचना कठिन है)। हज़रत ! हम मरने से नहीं डरते, और हम तो आपके सेवक हैं, अतः कोई उज्र भी नहीं कर सकते, परन्तु यदि कुछ दिन और जीने पाते तो आपके बहुत से कार्य करते ।

विवरण—यहाँ शिवाजी को दमन करने के लिए नियुक्त

मुगल सिपहसालार स्पष्टतया शिवाजी पर चढ़ाई करने का निषेध न करता हुआ केवल उसका आभासमात्र देता है कि पीछे कुछ दिन बाद शिवाजी पर भेजा जाऊँ तो बीच में बादशाह सलामत का बहुत कुछ कार्य कर दूँगा। इस प्रकार यह निषेध स्पष्ट शब्दों में नहीं है।

विरोध

लक्षण—दोहा

द्रव्य किया गुन मैं जहाँ, उपजत काज विरोध।
ताको कहत विरोध हैं, भूषन सुकवि सुबोध ॥१८२॥

अर्थ—जहाँ द्रव्य, क्रिया, गुण आदि के द्वारा उनके संयोग से परस्पर विरोधी कार्य उत्पन्न हो अथवा जहाँ दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाय वहाँ बुद्धिमान् कवि विरोध अलंकार कहते हैं।

सूचना—विरोध अलंकार में विरोधी पदार्थों का वर्णन वर्णनीय की विशेषता जताने को होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा-नृप सारे॥
साहि-तनै तव कोप-कृसानु ते बैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे॥१८३॥

शब्दार्थ—सेत=श्वेत, सुफेद। अरुन्न=अरुण, लाल सूर्य। सपेत=सफेद। कुनबा=कुटुंब, कुल। कृसानु=कृशानु, अग्नि। पानिप=अभिमान, पानी। तृन ओंठ गहे=तिनके ओंठ में लेने पर, तिनके ओंठों में लेना दीनता का चिह्न है।

अर्थ—हे वीर-केसरी शिवाजी महाराज! आपके उज्ज्वल यश (यश का रंग सफेद माना गया है) से शत्रुओं के मुख काले पड़ जाते हैं

अर्थात् शिवाजी की कीर्त्ति सुनकर शत्रुओं के मुखों पर स्याही छा जाती है। और आपके रक्त प्रताप (रूपी सूर्य) को देख कर समस्त शत्रु राजाओं के कुटुंब सफेद पड़ जाते हैं अर्थात् डरसे उनके मुखों की लाली उड़ जाती है। हे शिवाजी, आपकी क्रोधाग्नि से समस्त पानिप (अभिमान = ऐंठ) वाले शत्रु गल गये (ठंढे हो गये, निस्तेज हो गये), परन्तु एक बड़ा आश्चर्य यह है कि शत्रु तिनका ओठों में धारण कर लेने पर आपकी क्रोधाग्नि से जलाए नहीं जाते। (जब शत्रु गण ओठों में तृण धारण करके अपनी दीनावस्था का परिचय देते हैं तब शिवाजी का क्रोध पानी हो जाता है)।

विवरण — यहाँ छन्द के प्रथम पाद में 'जस सेत' से 'बैरिन के मुँह कारे' होने का वर्णन है, इसी प्रकार द्वितीय चरण में 'अरुन्न प्रताप' से शत्रु राजाओं के कुटुम्ब का श्वेत होने का वर्णन है, अतः गुण से गुण का विरोध है। अग्नि से वस्तु गलती नहीं पर जल पड़ती है किन्तु इसमें 'कोप कृसानु' से शत्रुओं के गलने का वर्णन है। इसी प्रकार तिनका आग में बहुत जल्दी जलता है, पर यहाँ वर्णन किया गया है कि 'तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे' यह द्रव्य का क्रिया से विरोध है।

सूचना—अन्य कवियों ने इस अलंकार को शुद्ध द्वितीय विषम माना है, 'विरोध' नहीं माना। इस में कारण कार्य का विरोध होता है जैसा कि ऊपर के छन्द से प्रकट है।

विरोधाभास

लक्षण—दोहा

जहँ विरोध सो जानिए, साँच विरोध न होय।
तहाँ विरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोय ॥१८४॥

अर्थ—जहाँ वास्तव में विरोध न हो परन्तु विरोध सा जान पड़े वहाँ सब कोई विरोधाभास अलंकार कहते हैं।

विवरण—वास्तव में विरोधालंकार और विरोधाभास में कोई अन्तर नहीं है। विरोधालंकार में भी विरोध वास्तविक नहीं होता, यदि विरोध वास्तविक होता तो उसमें अलंकारता न होती, उलटा दोष होता। महाकवि भूषण जहाँ स्पष्ट विरोध दिखाई दे वहाँ विरोधालंकार मानते हैं, पर जहाँ शब्द-छल से या समझने की भूल से विरोध की केवल ज़रा सी झलक दिखाई दे वहाँ विरोधाभास अलंकार मानते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

दच्छिन-नायक एक तुही भुव-भामिनि को अनुकूल ह्वै भावै।
दीनदयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै॥
श्री सिवराज भनै कवि भूषन तेरे सरूप को कोउ न पावै।
सूर सुबंस मैं सूर-शिरोमनि ह्वै करि तू कुल-चन्द कहावै॥१८५॥

शब्दार्थ—दाच्छिन नायक = दक्षिण देश का नायक (राजा) अथवा वह पति जिसके कई स्त्रियाँ हों और जो सबसे समान प्रेम करता हो। भामिनि = स्त्री। अनुकूल = वह पति जो एक-स्त्रीव्रत हो; अथवा मुआफिक। भावै = अच्छा लगता है, रुचिकर होता है। दीन = (१) गरीब; (२) मज़हब, धर्म।

अर्थ—हे दक्षिणनायक शिवाजी! पृथ्वी-रूपी स्त्री को एक तुम ही अनुकूल होने के कारण अच्छे लगते हो। तुम्हारे समान पृथ्वी पर दीनों पर कृपा करने वाला अन्य कोई पुरुष नहीं, परन्तु आप म्लेच्छों के दीन (मज़हब) का नाश कर देते हो। भूषन कवि कहते हैं कि श्रीमान् शिवाजी तुम्हारे रूप को कोई नहीं पा सकता। तुम सूर्यवंश में श्रेष्ठ शूरवीर होने पर भी कुल के चन्द्रमा कहलाते हो।

विवरण—यहाँ छन्द के प्रथम पाद में 'दक्षिण नायक' का 'भुवभामिनी को अनुकूल ह्वै भावै' से विरोध है क्योंकि दक्षिण

नायक की अनेक स्त्रियाँ होती हैं और वह सब स्त्रियों को समान प्यार करने वाला होता है। सो शिवाजी यदि दक्षिणनायक है तो वह अनुकूल नायक (एक ही स्त्री से प्रेम करने वाला) कैसे हो सकता है परन्तु 'दक्षिणनायक' का अर्थ 'दक्षिण देश का राजा' और 'अनुकूल' का अर्थ 'अनुग्राहक' होने से विरोध का परिहार हो जाता है। इसी भाँति द्वितीय चरण में 'दीनदयालु' और 'दीनहिं मारि मिटावे' में विरोध झलकता है परन्तु दीनदयालु में 'दीन' का अर्थ 'गरीब' तथा दूसरे 'दीन' का अर्थ मज़हब होने से विरोध का परिहार होता है। चतुर्थ चरण में भी इसी भाँति सूर और चन्द्र में विरोध सा लगता है, परन्तु 'कुलचंद' का अर्थ है कुल को चमकाने वाले।

विभावना

विभावना के कोई छः भेद मानते हैं कोई चार। भूषण ने चार प्रकार विभावना मानी हैं।

प्रथम विभावना

लक्षण—दोहा

भयो काज बिन हेतु ही, बरनत हैं जेहि ठौर।
तहँ विभावना होत है, कवि भूषन सिरमौर ॥१८६॥

अर्थ—जिस स्थान पर बिना कारण के ही कार्य होना वर्णन किया जाय वहाँ कविशिरोमणि भूषण के मतानुसार विभावना अलंकार होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

बीर बड़े बड़े मीर पठान खरो रजपूतन को गन भारो।
भूषन आय तहाँ सिवराज लयो हरि औरंगज़ेब को गारो ॥
दीन्हों कुज्वाब दिलीपति को अरु कीन्हों वजीरन को मुँह कारो।
नायो न माथहि दक्खिननाथ न साथ मैं फौज न हाथ हथ्यारो ॥१८७॥

शब्दार्थ—मीर=सरदार। खरो=खड़ा। गन=गण, समूह। गारो=गर्व, घमंड। कुज्वाब=कुजवाब, मुँहतोड़ उत्तर।

अर्थ—(जिस समय शिवाजी औरंगज़ेब के दरबार में गये थे उस समय का यह वर्णन है)। जहाँ पर बड़े बड़े शूरवीर पठान सरदार और राजपूतों का भारी समूह खड़ा था, भूषण कहते हैं कि वहाँ आकर शिवाजी ने औरंगज़ेब का (समस्त) घमंड नष्ट कर दिया। शिवाजी ने औरंगज़ेब को कोरा मुँह तोड़ उत्तर दिया और उसके वज़ीरों के मुखों को काला कर दिया, (आतंक के कारण) उनके मुखों पर स्याही छा गई। यद्यपि दक्षिणेश्वर महाराज शिवाजी के पास न फौज ही थी और न हाथ में कोई हथियार ही था तो भी इन्होंने औरंगज़ेब को मस्तक नहीं नवाया (प्रणाम नहीं किया, अधीनता स्वीकार न की)

विवरण—निर्भयता का हेतु फौज का साथ होना तथा शस्त्रादि का हाथ में होना है परन्तु यहाँ शिवाजी का इनके बिना ही निर्भय एवं सदर्प होना रूप कार्य कथन किया गया।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सहितनै सिवराज की, सहज टेव यह ऐन।
अनरीझे दारिद हरै, अनखीझे अरि सैन ॥१८८॥

शब्दार्थ—टेव=आदत। ऐन=ठीक, निश्चय ही।

अर्थ—शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी की निश्चय ही यह स्वाभाविक आदत है कि वे बिना ही (किसी पर) प्रसन्न हुए (उसकी) दरिद्रता दूर करते हैं, और बिना ही क्रोधित हुए शत्रु-सेना का नाश करते हैं।

विवरण—प्रसन्न होने पर सब कोई पुरस्कार देते हैं, इस तरह प्रसन्नता पुरस्कारादि का कारण कही जा सकती है, पर प्रसन्नता रूप कारण के बिना शिवाजी का पुरस्कारादि से "दीनों का दारिद्रय

दूर करना" वर्णन किया गया है। ऐसे ही क्रोध रूप कारण के बिना "शत्रुओं की सेना का नाश करना" रूप कार्य का वर्णन किया गया है।

द्वितीय और तृतीय विभावना

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु पूरन नहीं, उपजत है पै काज।
कै अहेतु तें और यों, द्वै विभावना साज ॥१८९॥

शब्दार्थ—साज=सामग्री, आयोजना।

अर्थ—जहाँ कारण अपूर्ण होने पर भी कार्य की उत्पत्ति हो अथवा जो वास्तविक कारण न हो उससे भी कार्य की उत्पत्ति हो, इस प्रकार ये दो विभावना और होती हैं।

उदाहरण (द्वितीय विभावना)—कवित्त मनहरण

दच्छिन को दावि करि बैठो है सइस्तखान,
पूना माहिं दूना करि जोर करवार को।
हिन्दुवान-खंभ गढ़पति दल-थंभ भनि,
भूषन भरैया कियो सुजस अपार को॥
मनसबदार चौकीदारन गँजाय,
महलन में मचाय महाभारत के भार को।
तो सो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सौं,
जीत्यो जंग सरदार सौ हज़ार असवार को ॥१९०॥

शब्दार्थ—दावि कर=दबा कर, अधिकार में करके। करवार=करवाल, तलवार। दलथंभ =सेना को थामने वाला, सेनापति। भरैया=पालक, रक्षक। गँजाय=नाशकरके। मनसबदार=एक प्रकार के पदाधिकारी। असवार=अश्वारोही, घुड़सवार, सिपाही।

अर्थ—शाइस्ताखाँ दक्षिण देश को अपने अधिकार में करके और

अपनो तलवारों का बल दुगना करके (पहिले से दुगुनी सेना बढ़ा कर) पूना में रहने लगा। भूषणजी कहते हैं कि हिन्दुओं के स्तंभ-स्वरूप, किलों के स्वामी, (बड़ी-बड़ी) सेनाओं का संचालन करने वाले, प्रजा के रक्षक महाराज शिवाजी ने (पूना में टिके हुए उस शाइस्ताखाँ के) मुसाहिब तथा चौकीदारों को नष्ट करके महलों में बड़ा भारी महाभारत (युद्ध) कर पृथ्वी पर अपना अपार यश फैलाया। हे महाराज शिवाजी, भला आपके समान अन्य कौन राजा हो सकता है जिसने केवल दो सौ आदमी साथ लेकर ही एक लाख सवारों के सरदार को युद्ध में हरा दिया।

विवरण—यहाँ शिवाजी के पास केवल 'दो सौ आदमी' रूपी कारण की अपूर्णता होने पर भी 'सौ हज़ार (एक लाख) असवारों के सेनापति को युद्ध में जीत लेना' रूप कार्य का होना कथन किया गया है, यही दूसरी विभावना है।

उदाहरण (तीसरी विभावना)—मनहरण कवित्त

ता दिन अखिल खलभलैं खल खलक मैं,
जा दिन सिवाजी गाजी नेक करखत हैं।
सुनत नगारन अगार तजि अरिन की,
दारगन भाजत न बार परखत हैं॥
छूटे बार बार छूटे बारन ते लाल देखि,
भूषन सुकवि बरनत हरखत हैं।
क्यों न उतपात होहिं बैरिन के झुंडन मैं,
कारे घन उमड़ि अँगारे बरखत हैं॥१६१॥

शब्दार्थ—अखिल = समस्त। खलभलैं = खलबला उठते हैं, घबरा जाते हैं। खल = दुष्ट (मुसलमान)। खलक = दुनिया, संसार। करखत हैं = उत्तेजित होते हैं, ताव खाते हैं। अगार = आगार, घर। दारगन = दारागण, स्त्रियाँ। परखत हैं = परीक्षा करती हैं, सँभालती हैं। बार = (१) दिन, (२) बालबच्चे, (३) बाल, केश।

अर्थ—जिस दिन धर्मवीर शिवाजी थोड़े से भी उत्तेजित हो जाते हैं उस दिन समस्त संसार के दुष्टों (मुसलमानों) में बड़ी खलबली मच जाती है। उनके नगारों (की ध्वनि) को सुनकर शत्रु-स्त्रियाँ अपने घरों को छोड़ छोड़ कर ऐसी भागती हैं कि शुभ और अशुभ वार (दिन) का भी विचार नहीं करतीं। उनके बाल-बच्चे छूट गये हैं और उनके बाल खुल गये हैं, और उनके खुले हुए बालों में से गुँथे हुए लाल रत्नों को (जल्दी के कारण) गिरते हुए देख कर भूषण कवि वर्णन करते हुए प्रसन्न होते हैं और कहते हैं कि शत्रु-समूह में क्यों न उपद्रव हों क्योंकि वहाँ काले बादल उमड़ उमड़ कर अँगारे बरसा रहे हैं; अर्थात् शत्रु-स्त्रियों के काले केश-कलापरूपी बादलों से लाल-रूपी अंगारे बरस रहे हैं।

विवरण—बादलों से जल बरसता है, अंगारे नहीं। पर यहाँ काले बादलों से लाल अंगारों का झड़ना बताया गया है, इस प्रकार जो जिसका वास्तविक कारण नहीं है उससे कार्य की उत्पत्ति दिखाई गई है, अतः यहाँ तीसरी विभावना है।

चतुर्थ विभावना

लक्षण—दोहा

जहाँ प्रकट भूषन भनत, हेतु काज ते होय।
सो विभावना औरऊ, कहत सयाने लोय ॥१६२॥

अर्थ—जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति हो चतुर लोग उसे एक और विभावना (चतुर्थ) कहते हैं। अर्थात् साधारणतया कारण से कार्य होता है, पर जहाँ कार्य से कारण हो वहाँ भी एक (चौथी) विभावना होती है।

उदाहरण—दोहा

अचरज भूषन मन बढ्यो, श्री सिवराज खुमान।
तव कृपानु-धुव-धूम ते, भयो प्रताप कृसानु ॥१६३॥

शब्दार्थ—धुव=ध्रुव, अचल।

अर्थ—भूषणजी कहते हैं कि हे आयुष्मान शिवाजी! (लोगों के) मन में यह बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि आपके कृपाण (तलवार) रूपी अचल धुएँ से प्रताप-रूपी कृशानु (अग्नि) उत्पन्न हो गया अर्थात् आपने तलवार के बल से अपना प्रताप फैलाया है। तलवार का रंग नीला माना गया है अतः वह धुएँ के समान है और प्रताप का रंग लाल, अतः वह आग है।

विवरण—अग्नि कारण होता है और धूम कार्य, पर यहाँ धूम (कार्य) से प्रताप रूप कृशानु (कारण) का उत्पन्न होना कहा गया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सिव! तेरो पुनीत नाम,
धाम-धाम सब ही को पातक कटत है।
तेरो जस-काज आज सरजा निहारि कवि,
मन भोज विक्रम कथा तें उचटत है॥
भूषन भनत तेरो दान संकलप जल,
अचरज सकल मही मैं लपटत है।
और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो,
कर कोकनद नदी-नद प्रगटत है॥१६४॥

शब्दार्थ—धाम=घर। पातक=पाप। उचटत=हटता है।

अर्थ—हे साहजी के पुत्र शिवाजी! आपके पवित्र नाम को सुनकर घर घर के सभी लोगों के पाप कट जाते हैं और हे वीर केसरी, आजकल आपके यश-कार्य को देख कर कवियों का मन (प्रसिद्ध दानी) राजा भोज और (पराक्रमी) विक्रमादित्य आदि राजाओं की कथा के वर्णन (यशोगान) से हट जाता है, (कवि

लोग अब आपका ही यश वर्णन करते हैं, भोज आदि राजाओं का नहीं (क्योंकि आपके कार्य उनसे बढ़ कर हैं)। भूपण कहते हैं, कि आपके दान का संकल्प-जल समस्त पृथ्वी में फैल रहा है और यह बड़ा आश्चर्य है कि और जगह तो नदी-नदों में कमल उत्पन्न होते हैं परन्तु आपके कर-कमल से दान के संकल्प के जल द्वारा नदियाँ उत्पन्न होती हैं। आप इतना दान देते हैं, कि दान का संकल्प जल नदियों का रूप धारण कर समस्त पृथ्वी में फैल जाता है।

विवरण—यहाँ भी 'कर कोकनद' रूपी कार्य से 'नदीनद' रूपी कारण का उत्पन्न होना कहा गया है।

विशेषोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ हेतु समरथ भयहु, प्रगट होत नहिं काज।
तहाँ विसेसोकति कहत, भूषन कवि सिरताज ॥१६५॥

अर्थ—जहाँ कारण के समर्थ होने पर भी कार्य की उत्पत्ति न हो, वहाँ सर्व-श्रेष्ठ कवि भूपण विशेपोक्ति अलंकार कहते हैं। (इसके पै, तो, तथापि आदि चिह्न होते हैं।)

उदाहरण—मालती सवैया

दै दस पाँच रुपैयन को जग कोऊ नरेस उदार कहायो।
कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहिन साहिन को विचलायो॥
भूषन कोऊ गरीवनसों भिरि भीमहुँ ते वलवन्त गनायो।
दौलति इन्द्र समान बढ़ी पै खुमान के नेक गुमान न आयो॥१६६॥

शब्दार्थ— बिचलायो=विचलित कर दिया। गुमान=घमंड।

अर्थ—कोई राजा दस पाँच रुपये (पुरस्कार या दान) देकर ही संसार में दानी कहलाने लगा और कोई (राजा) गरीव लोगों से ही भिड़ कर भीमसेन से भी अधिक बलवान गिना जाने लगा, परन्तु वीर-केसरी शिवाजी के सिपाहियों तक ने करोड़ों का दान देकर बादशाहों को भी

विचलित कर दिया और चिरजीवी शिवाजी की संपत्ति देवराज इन्द्र के समान बढ़ गई, तो भी उन्हें ज़रा सा भी घमंड न हुआ।

विवरण—यहाँ 'इन्द्रदेव के समान धन होना' अभिमान का पूर्ण कारण है फिर भी 'शिवाजी को घमंड' रूप कार्य न होना कहा गया है, अतः विशेषोक्ति है।

असंभव

लक्षण—दोहा

अनहूबे की बात कछु, प्रगट भई सी जानि।
तहाँ असंभव बरनिए, सोई नाम बखानि ॥१६७॥

शब्दार्थ—अनहूबे की=अनहोनी।

अर्थ—जहाँ कोई अनहोनी बात प्रकट हुई-सी जान पड़े वहाँ असंभव अलंकार होता है।

सूचना—इसके चिह्न 'कौन जाने' 'कौन जानता था' अथवा ऐसे ही भाव वाले अन्य शब्द होते हैं।

उदाहरण—दोहा

औरंग यों पछितात मैं, करतो जतन अनेक।
सिवा लेइगो दुरग सब, को जानै निसि एक ॥१६८॥

अर्थ—औरंगज़ेब इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ कहता है कि यह कौन जानता था कि शिवाजी एक रात में ही समस्त किलों को विजय कर लेगा। यदि यह जानता होता तो मैं (पहले से ही) अनेकों यत्न करता।

विवरण—यहाँ समस्त किलों का एक रात में जीत लेना रूपी अनहोनी बात का शिवाजी द्वारा संभव होना कथन किया गया है, और वह (अनहोनी बात) "को जानै" इस पद से प्रकट होती है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो, जोऽव
इन्द्र आवै सोऊ लागै औरँग की परजा।

भूषन भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी,
तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा ॥
ठान्यो न सलाम भान्यो साहि को इलाम,
धूम-धाम के न मान्यो रामसिंहहू को बरजा।
जासों बैर करि भूप बचै न दिगंत ताके,
दंत तोरि तखत तरे ते आयो सरजा ॥१६६॥

शब्दार्थ—जसन=जशन, उत्सव । जलूस गहि=उत्सव में सम्मिलित होने वाले लोगों का समूह लगा कर, दरबार जमा कर । तुजुक=शान अथवा प्रबन्ध । लरजा=काँपा । ठान्यो=किया । भान्यो=खंडित किया, तोड़ा । इलाम=ऐलान, हुक्म । रामसिंह= जयपुर के महाराज जयसिंह जी के पुत्र, जब शिवाजी आगरे को गये थे तब ये ही दिल्लीश्वर की ओर से उनकी अगवानी को आये थे ।

अर्थ—(यह उस समय का वर्णन है जब कि शिवाजी मिर्ज़ा राजा जयसिंह की सलाह से औरंगज़ेब से मिलने आये थे) उत्सव के दिन औरंगज़ेब जलूस बनाकर अथवा अमीर उमरावों के साथ अपना दरबार जमाकर ऐसी शान से बैठा था कि इन्द्र भी (यदि अपने देव-समाज के साथ) आवे तो वह भी औरंगजेब की प्रजा के समान (साधारण लोगों जैसा) दिखाई दे । भूषण कहते हैं कि वहाँ भी महावीर शिवाजी उसकी शान देख कर थोड़ा भी न डरा, वरन सदर्प रहा । (यहाँ तक कि) उसने औरंगज़ेब को सलाम भी न किया और बड़ी धूम-धाम के साथ बादशाह के हुक्म को भी तोड़ दिया (बादशाह की आज्ञानुसार भरे दरबार में शिवाजी ने छोटे पदाधिकारियों में खड़ा होना स्वीकार नहीं किया) । और रामसिंह का मना करना अर्थात् रामसिंह का कहा भी न माना । जिस (पराक्रमी) बादशाह से शत्रुता करके दूर-दूर के राजा लोग भी नहीं बच सकते, उसी बादशाह के दाँत खट्टे करके शिवाजी उसके तख्त के नीचे से (पास से) सही-सलामत अपने देश को चला आया ।

विवरण—यहाँ शिवाजी का सबको जीतने वाले औरंगज़ेब के दाँत खट्टे करना और उसके पास से चला आना रूप असंभव कार्य कथित हुआ है।

प्रथम असंगति

लक्षण—दोहा

हेतु अनत ही होय जहँ, काज अनत ही होय।
ताहि असंगति कहत हैं भूषन सुमति समोय ॥२००॥

शब्दार्थ—अनत = अन्यत्र, दूसरी जगह। समोय = संयुक्त। सुमति समोय = सुबुद्धियुक्त, बुद्धिमान।

अर्थ—जहाँ कारण तो किसी दूसरी जगह हो और उसका कार्य अन्यत्र हो वहाँ बुद्धिमान लोग असंगति अलंकार कहते हैं। (इसमें कारण और कार्य एक स्थान पर नहीं होते)।

सूचना—पूर्वोक्त 'विरोध' अलंकार में भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने वाले विरोधी पदार्थों (जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्य) की एक स्थल में स्थिति (संसर्ग) बतलाई जाती है, असंगति में एक जगह रहने वाले कारण कार्य की भिन्न-भिन्न देशों में स्थिति कही जाती है; इस प्रकार दोनों की संगति में विरोध-सा जान पड़ता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत है खरी अखिल खल की॥
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कट नाक सिगरेई दिली-दल की।
सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी ॥२०१॥

शब्दार्थ—जात नै करि = झुक जाती है। गनीम = शत्रु। दरकत = फटती है। खरी = चोखी, खूब अच्छी। सूरत = यह बंबई प्रान्त में एक ऐतिहासिक नगर है, इसे शिवाजी ने सन् १६६४ और १६७० ई० में दो बार लूटा था। उस समय यह बड़ा भारी बंदरगाह था।

अर्थ—जब महाराज शिवाजी घोड़े पर सवार होते हैं तो बड़े-बड़े बलवान शत्रुओं की गरदनें झुक जाती हैं (जब शिवाजी चढ़ाई करने के लिए चलते हैं तब शत्रु गरदन झुकाकर अपनी चिंता प्रकट करते हैं अथवा अधीनता स्वीकार कर सिर झुका लेते हैं) और जब उनकी सेना पृथ्वी पर चलती है तो सब दुष्टों (यवनों) की छातियाँ फटने लगती हैं (वे घबराते हैं कि अब क्या करें ? शिवाजी की सेना हमें मार डालेगी)। शिवाजी ने दौड़ कर घाव (चोट) तो अमीर उमराओं पर किया पर इससे सारी दिल्ली-सेना की नाक कट गई (इज़्ज़त मिट्टी में मिल गई)। शिवाजी ने सूरत नगर को जला कर बादशाह औरंगज़ेब के हृदय में दाह उत्पन्न कर दिया और उसकी कालिमा समस्त बादशाहत के मुख पर प्रकट हो गई (शिवाजी का सूरत जलाने का साहस देखकर औरंगज़ेब गुस्से में जलभुन उठा और दिल्ली की सेना उसे बचा न सकी इस कारण सारी बादशाहत के ऊपर कलंक का टीका लग गया)।

विवरण—यहाँ प्रथम पाद में शिवजी का घोड़े पर चढ़ना रूपी कारण अन्यत्र कथन किया गया है और शत्रुओं की गरदन झुकना रूपी कार्य अन्यत्र हुआ है। द्वितीय पाद में शिवाजी की सेना का चलना रूप कारण अन्यत्र है और शत्रुओं की छाती फटना रूपी कार्य का कथन अन्यत्र किया है। इसी भाँति चोट अमीर-उमरावों पर की गई है, पर इनका फल अन्यत्र है। और शिवा जी ने जलाया सूरत शहर को पर उससे जलन हुई बादशाह के दिल में तथा उसके जलने से कालिमा सारी बादशाहत के मुँह पर पुत गई।

इस प्रकार कारण अन्यत्र है और कार्य अन्यत्र, अतः यहाँ असंगति अलंकार है।

द्वितीय असंगति

लक्षण—दोहा

आन ठौर करनीय सो, करै और ही ठौर।
ताहि असंगति और कवि, भूषन कहत सगौर ॥ २०२ ॥

अर्थ—जो कार्य करना चाहिये कहीं और, तथा किया जाय कहीं और, अर्थात् जिस स्थान पर करना चाहिए वहाँ न करके दूसरे स्थान पर किया जाय तो द्वितीय असंगति अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

भूपति सिवाजी, तेरी धाक सों सिपाहिन के,
राजा पातसाहिन के मन ते अहं गली।
भौंसिला अभंग तू तौ जुरतो जहाँई जंग,
तेरी एक फते होत मानो सदा संग ली।
साहि के सपूत पुहुमी के पुरुहूत कवि,
भूषन भनत तेरी खरगऊ दंगली।
सत्रुन की सुकुमारी थहरानी सुन्दरी औ,
सत्रु के अगारन मैं राखे जंतु जंगली ॥२०३॥

शब्दार्थ—अह=अहंकार। गली=गला, नष्ट होगया। अभंग=कभी न हटने वाला, सदा विजयी। पुरहूत=इन्द्र। खरगऊ=तलवार भी। दंगली=(युद्ध) में ठहरने वाली, युद्ध करने वाली, प्रबल। थहरानी=काँप उठीं।

अर्थ—महाराज शिवाजी! आपके आतंक से (शत्रु) सिपाहियों, राजाओं और बादशाहों के मन का अहंकार नष्ट हो गया। अखंडनीय (सदा विजयी) शिवाजी! आप जहाँ कहीं युद्ध करते हैं वहाँ आपकी

केवल विजय ही होती है. इससे ऐसा मालूम होता है मानो उसे आपने सदा साथ ही ले रखा है। भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र और पृथ्वी के इन्द्र श्री शिवाजी ! आपकी तलवार भी बड़ी प्रबल युद्ध करने वाली है, (उससे) बिचारी सुंदरी कोमलांगी शत्रु स्त्रियाँ काँप उठी हैं और (उसने) शत्रुओं के घरों में जंगली जानवरों का निवास करवा दिया है अर्थात् शत्रु लोग शिवाजी की तलवार के भय से अपने घर छोड़ गये और वहाँ जंगली जानवर रहने लगे।

विवरण—यहाँ कवित्त के अंतिम चरण में जंगली जंतुओं का शत्रुओं के घरों में निवास करवाना वर्णन किया है जो उनके योग्य स्थान नहीं है। वास्तव में उनका निवास-स्थान जंगल है। अतः यहाँ दूसरी असंगति है।

तृतीय असंगति

लक्षण—दोहा

करन लगै औरै कछू, करै औरई काज।
तहाँ असंगति होत है कहि भूषन कविराज ॥२०४॥

अर्थ—जहाँ करना तो कोई और काम शुरू करे, और करते करते कर डाले कोई दूसरा (उसके विरुद्ध) काम, वहाँ भी कविराज (तृतीय) असंगति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सरजा सिव के गुन नेकहु भाषि सक्यो न प्रवीनो।
उद्यत होत कछू करिवे को, करैं कछू वीर महा-रस भीनो॥
ह्याँते गयो चकतै सुख देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो।
जाय दिली दरगाह सुसाहि को भूषन वैरि बनाय ही लीनो ॥२०४॥

शब्दार्थ—रसभीनो = रस में लिप्त, रस में पूरित। दरगाह = तीर्थ स्थान। दिल्ली दरगाह = दिल्ली रूपी तीर्थ स्थान, दिल्ली दरबार।

अर्थ—बड़े बड़े चतुर पुरुष भी शाहजी के पुत्र शिवाजी का थोड़ा-सा यश भी वर्णन नहीं कर सके (क्योंकि) वीर शिवाजी करने को तो कुछ और ही उद्यत होते हैं पर वीररस में पगे होने के कारण कर कुछ और ही कर बैठते हैं। यहाँ से (दक्षिण से) तो वे चगताई के वंशज औरंगज़ेब को प्रसन्न करने के लिए गये थे परन्तु वहाँ दिल्ली में जाकर उन्होंने उसे गुसलखाने में जाकर उलटा दुख दिया। (इस तरह) भूषण कवि कहते हैं कि दिल्ली-दरबार में जाकर बादशाह को (प्रसन्न करना तो दूर रहा) उलटा उन्होंने उसे शत्रु ही बना लिया।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब को प्रसन्न करने के हेतु दिल्ली जाकर शिवाजी ने उलटा उसे गुसलखाने में जाकर कष्ट दिया यही तृतीय असंगति है—गये थे मित्र बनाने, बना लिया शत्रु।

विषम

कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जहँ करत बखान।
तहाँ विषम भूषन कहत, भूषन सुकवि सुजान ॥ २०६ ॥

अर्थ—भूषन कवि कहते हैं कि "कहाँ यह और कहाँ वह" इस प्रकार का जहाँ वर्णन हो वहाँ श्रेष्ठ कवि विषम अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसमें अनमेल वस्तुओं का सम्बन्ध होता है। अन्य साहित्य-शास्त्रियों ने विषम अलंकार के तीन या चार भेद कहे हैं, परन्तु भूषण ने 'विषम' का केवल एक भेद माना है। विषम के दूसरे भेद को (जिसमें कारण और कार्य के गुण या क्रियाओं की विषमता का वर्णन हो) उन्होंने विरोध अलंकार माना है। विषम का तीसरा भेद (जिसमें क्रिया के कर्त्ता को केवल अभीष्ट फल ही न मिले अपितु अनिष्ट की प्राप्ति हो) महाकवि भूषण ने नहीं लिखा।

उदाहरण—मालती सवैया

जावलि बार सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नैरि को गाजी।
भूषन भौंसिला भूपति तें सब दूर किए करि कीरति ताजी ॥

वैर कियो सिवजी सों खवासखाँ, डौंडिये सैन बिजैपुर बाजी ।
बापुरो एदिलसाहि कहाँ, कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी ॥२०७॥

शब्दार्थ—जावलि=देखिए छं० ६३ । बार=पार, जावली के पास एक ग्राम, इसी जगह अफजलखां ने अपना पड़ाव डाला था। सिंगारपुरी=यह नीरा नदी के दक्षिण में और सितारा से लगभग पच्चीस कोस पूर्व है । यहाँ का राजा सूर्यराव शिवाजी से सदैव दुरंगी चाल चला करता था। शिवाजी ने इसे (सन् १६६४ ई० में) अपने अधिकार में कर लिया । जवारि=(देखो छंद १७३) । रामके नैरि=रामनगर (देखो छंद १७३)। खवासखाँ=यह बीजापुर के प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद का लड़का था और पीछे स्वयं मन्त्री भी हुआ। जब प्रसिद्ध बादशाह अली आदिलशाह (एदिलसाहि) मरने लगा तब उसने खवासखाँ को अपने पुत्र सिकन्दर का संरक्षक बनाया। संरक्षक बनते ही इसने शिवाजी को चौथ देना बंद कर दिया । इस पर शिवाजी ने बीजापुर से युद्ध प्रारंभ कर दिया। दामनगीर=पल्ला पकड़ने वाला, पीछे पड़ने वाला ।

अर्थ—जावली,बार, सिंगारपुर,तथा रामनगर और जवारि (जौहर) को विजय करनेवाले हे भोंसिला राजा शिवाजी ! आपने उन प्रदेशों के समस्त राजाओं को (गद्दी से) दूर कर दिया और इस प्रकार अपनी कीर्त्ति को ताजा कर दिया । (ऐसे वीर) शिवाजी से बीजापुर के संरक्षक और प्रधान मंत्री खवासखाँ ने वैर किया, फलतः बीजापुर में शिवाजी की सेना की डोंडी पिट गई, शिवाजी की सेना ने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी। भला कहाँ बिचारा आदिलशाह और कहाँ दिल्ली के बादशाह से भिड़ने वाले महाराज शिवाजी (अर्थात् शिवाजी के मुकाबिले में आदिलशाह बेचारे की क्या गिनती, क्योंकि वे तो शाहंशाह औरंगज़ेब के मुकाबिले में लड़ने वाले हैं ।)

विवरण—यहाँ आदिलशाह और शिवाजी का अयोग्य सम्बन्ध 'कहाँ' 'कहाँ' इन शब्दों द्वारा कहा है। दोनों में महदन्तर है और वह 'कहाँ' से स्पष्ट है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

लै परनालो सिवा सरजा, करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।
बैरिन के भगे बालक वृन्द, कहै कवि भूषन दूरि पहूँचे॥
नाँघत नाँघत घोर घने बन, हारि परे यों कटे मनो कूँचे।
राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वे ऊँचे॥२०८॥

शब्दार्थ—बिगूँचे=धर दबाये, मथ डाले, बरबाद कर दिये। कूँचे=मोटी नसें जो एड़ी के ऊपर या टखने के नीचे होती हैं।

अर्थ—वीर-केसरी शिवाजी ने परनाले के किले को लेकर (विजय कर) करनाटक तक समस्त देशों (करनाटक के हुबली आदि कई धनी शहरों) को मथ डाला। भूषण कवि कहते हैं कि शत्रुओं के बाल-बच्चे (भय के कारण) भाग कर बड़ी दूर चले गये और बड़े बड़े घोर वनों को फाँदते-फाँदते हार कर (शिथिल होकर) गिर पड़े मानो उनके पैरों की नसें ही कट गई हों। कहाँ वे बेचारे सुकुमार राजकुमार और कहाँ वे बड़े ऊँचे-ऊँचे विकराल पहाड़ जिन पर शिवाजी के भय के कारण वे चढ़े थे।

विवरण—'राजकुमार कहा सुकुमार और 'कहाँ विकरार पहाड़ वे ऊँचे' यह अयोग्य सम्बन्ध कथित होने से विषम अलंकार है।

सम

लक्षण—दोहा

जहाँ दुहूँ अनुरूप को, करिये उचित बखान।
सम भूषण तासों कहत, भूषण सकल सुजान॥२०९॥

शब्दार्थ—अनुरूप=तुल्य, एक-सा, समान।

अर्थ—जहाँ दो समान वस्तुओं का उचित सम्बन्ध ठीक ठीक वर्णन किया जाय वहाँ चतुर लोग सम अलंकार कहते हैं। (यह विषमालंकार का ठीक उलटा है)।

उदाहरण—मालती सवैया

पंच हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।
भूषन यों कहि औरंगज़ेब उजीरन सों बेहिसाब रिसाया॥
कम्मर की न कटारी दई इसलाम नै गोसलखाना बचाया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया॥२१०॥

शब्दार्थ—पंच हजारिन=पंचहजारी, पाँच हज़ार सेना के नायक पंचहज़ारी कहलाते थे। शिवाजी को, जब वे आगरे में औरंगजेब से मिलने गये थे, तब इन्हीं छोटे पदाधिकारियों में खड़ा किया गया था, इसी कारण वे नाराज़ हो गये।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब यह कहकर, कि मुझे इसका कुछ भेद नही जान पड़ा कि तुमने शिवाजी को पंचहज़ारी मनसवदारों में क्यों खड़ा किया, वज़ीरों से बहुत नाराज़ हुआ। आज इस्लाम को (इस्लाम के सेवक को) गुसलखाने ने बचा लिया—अर्थात् इस्लाम का सेवक गुसलखाने में छिप कर बच गया। यही भला था कि उसकी (शिवाजी की) कमर की कटारी उसे नहीं दी गई थी (शाही कायदे के अनुसार वह रखवा ली गई थी) और उसके हाथ कोई हथियार नहीं आया, अन्यथा वह बड़ा अनर्थ करता।

विवरण—यह उदाहरण कुछ स्पष्ट नहीं है। यही कहा जा सकता है कि यहाँ हथियार हाथ न आना और अनर्थ न होना एक दूसरे के अनुरूप हैं, और अच्छा हुआ यह कहकर उचित वर्णन किया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

कछु न भयो केतो गयो, हारयो सकल सिपाह।
भली करै सिवराज सों औरँग करै सलाह ॥२११॥

अर्थ—[वज़ीर आपस में बातें कर रहे हैं कि] कितने ही शिवाजी को जीतने गये, पर कुछ न हुआ; सारे सिपाही हो हार गये। यदि शाहनशाह औरंगज़ेब शिवाजी से अब भी मेल कर लें तो अच्छा हो।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब का बार बार हारना और संधि कर लेना इन दोनों अनुरूप बातों का वर्णन है।

विचित्र

लक्षण—दोहा

जहाँ करत हैं जतन फल, चित्त चाहि विपरीत।
भूषण ताहि विचित्र कहि, बरनत सुकवि बिनीत ॥२१२॥

अर्थ—जहाँ वांछित फल की प्राप्ति के लिए उलटा प्रयत्न किया जाय वहाँ श्रेष्ठ विनयशील कवि विचित्र अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

तैं जयसिंहहिं गढ़ दिये, सिव सरजा जस हेत।
लीन्हे कैयो बरस मैं, बार न लागी देत ॥२१३॥

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी! तुमने अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिए मिर्ज़ा राजा जयसिंह को (संधि करते समय) समस्त क़िले दे दिये। उनके विजय करने में तुम्हें कई वर्ष लगे थे, पर देने में तुम्हें कुछ भी देर न लगी, क्योंकि तुम इतने उदार हो, कि तुम मित्रता चाहने वाले को सब कुछ दे सकते हो। औरंगज़ेब ने तुमसे मित्रता करना चाहा, तुमने उसे क़िले दे दिये, इससे तुम्हारा यश बढ़ा।

विवरण—यहाँ कीर्ति बढ़ाने के लिए किलों का देना कथन किया गया है जो कि बिलकुल उलटी बात है, क्योंकि कीर्ति किलों के

जीत लेने पर बढ़ती है न कि क़िलों के देने से। इसी प्रकार इच्छित फल से विपरीत क्रिया का करना विचित्र अलंकार में कथित होता है, इस अलंकार के बल से भूषण ने अपने नायक शिवाजी का दबना भी उनके लिए यशप्रद बताया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

बेदर कल्यान दै परेभा आदि कोट साहि,
एदिल गँवाय है नवाय निज सीस को।
भूषन भनत भागनगरी कुतुबसाई,
दै करि गँवायो रामगिरि से गिरीस को॥
भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल दिन,
द्वैहू ना लगाए गढ़ लेत पँचतीस को।
सरजा सिवाजी जयसाह मिरजा को लीबे,
सौ गुनी बड़ाई गढ़ दीन्हे हैं दिलीस को॥२१४॥

शब्दार्थ—बेदर=वर्त्तमान हैदराबाद शहर से ७८ मील उत्तर-पश्चिम एक कस्बा है। यह बहमनी वंशज बादशाहों की राजधानी थी। उसके बाद बीदरशाही राज्य की राजधानी रही। शिवाजी की सहायता से औरंगज़ेब ने बीजापुर वालों से यह क़िला जीत लिया था। सन् १६५७ में इसे शिवाजी ने ले लिया। कल्याण= इस नाम का सूबा कोंकण प्रदेश के उत्तरी भाग में था। पहले यह अहमदनगर के निज़ामशाही बादशाहों का था, पर सन् १६३६ ई० में बीजापुर के अधिकार में आया और सन् १६५७ ई० में शिवाजी ने इसे आदिलशाह से छीन लिया। परेझा=इस नाम का कोई क़िला या स्थान इतिहास में नहीं मिलता, हाँ एक क़िला परेंदा नाम का था जिसका अपभ्रंश परेझा जान पड़ता है। यह भी पहले अहमदनगर का था और फ़िर आदिलशाह के कब्ज़े में आ गया,

जिससे शिवाजी ने छीन लिया। भागनगर=देखो छन्द ११६, (भागनेर)। रामगिरि=पैनगंगा तथा गोदावरी के बीच गोलकुंडा रियासत में रामगिरि नामक पर्वत था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शाहजी के पुत्र गढ़पति महाराज शिवाजी, अली आदिलशाह ने तुम्हें बेदर तथा कल्यान के किले देकर सिर झुका कर अपने परेंडा आदि किले भी गँवा दिए और कुतुबशाह भी तुम्हें भागनगर देकर रामनगर जैसे श्रेष्ठ पर्वत को खो बैठा। तुमने (इस भाँति) पैंतीस किले जीतने में दो दिन भी नहीं लगाये थे कि वही (किले) मिर्ज़ा राजा जयसिंह से तुमने सौ गुना यश लेने के लिए औरंगज़ेब बादशाह को दे दिये।

विवरण—यहाँ कीर्ति बढ़ाने रूप फल की इच्छा के लिए किलों का देना विपरीत (उलटा) प्रयत्न कथन किया गया है।

प्रहर्षण

लक्षण—दोहा

जहँ मन-वांछित अरथ ते, प्रापति कछु अधिकाय।
तहाँ प्रहरषन कहत हैं, भूषन जे कविराय ॥२१५॥

अर्थ—जहाँ मन-वांछित (मनचाहे) अर्थ से भी अधिक अर्थ की प्राप्ति हो वहाँ श्रेष्ठ कवि प्रहर्षण अलंकार कहते हैं।

सूचना—इसमें इच्छा की हुई वस्तु की प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए उस इच्छा से भी अधिक लाभ होता है।

उदाहरण—मनहरण-कवित्त

साहितनै सरजा की कीरति सों चारों ओर,
चाँदनी वितान छिति छोर छाइयतु है।
भूषन भनत ऐसो भूमिपति भौंसिला है,
जाके द्वार भिच्छुक सदाई भाइयतु है।

महादानि सिवाजी खुमान या जहान पर,
दान के प्रमान जाके यों गनाइयतु है
रजत की हौंस किये हेम पाइयतु जासों,
हयन की हौंस किए हाथी पाइयतु है ॥२१६॥

शब्दार्थ—वितान=वितान, चँदोआ। छिति=क्षिति, पृथ्वी। छाइयतु है=छा जाता है। हेम=सोना।

अर्थ—शाहजी के पुत्र वीरकेसरी शिवाजी की कीर्ति से चाँदनी का चँदोआ पृथ्वी के किनारों तक छा रहा है (अर्थात् शिवाजी की चाँदनी-सी शुभ्र कीर्ति पृथ्वी पर दिगंत तक छा रही है)। भूषण जी कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी ऐसे हैं कि उनके घर का द्वार सदा भिक्षुकों से शोभित रहता है या भिक्षुकों से चाहा जाता है। इस पृथ्वी पर चिरजीवी शिवाजी ऐसे बड़े दानी हैं कि उनके दान का परिमाण (अंदाज़ा) इस प्रकार लगाया जाता है अथवा उनके दान की महिमा इस प्रकार गायी जाती है कि उनसे चाँदी लेने की इच्छा करने पर सुवर्ण मिलता है और घोड़े लेने की इच्छा करने पर हाथी प्राप्त होते हैं।

विवरण—यहाँ वांछित चाँदी और घोड़े की याचना करने पर क्रमशः सुवर्ण और हाथी का मिलना रूपी अधिक लाभ हुआ है।

विषादन

लक्षण—दोहा

जहँ चित चाहे काज तें, उपजत काज विरुद्ध।
ताहि विषादन कहत हैं, भूषन बुद्धि-विसुद्ध ॥२१७॥

अर्थ—जहाँ मन चाहे कार्य के विरुद्ध कार्य उत्पन्न हो वहाँ निर्मल बुद्धि वाले (कवि) विषादन अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ इच्छा किसी बात की जाय और फल उसके विरुद्ध हो, वहाँ विषादन अलंकार होता है। विषादन प्रहर्षण का ठीक उलटा है।

उदाहरण—मालती सवैया

दारहिं दारि मुरादहिं मारि कै संगर साह सुजै बिचलायो।
कै कर मैं सब दिल्ली की दौलति औरहु देस घने अपनायो॥
बैर कियो सरजा सिव सों यह नौरँग के न भयो मन भायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाँठिहुँ के गढ़ कोट गँवायो॥२१८॥

शब्दार्थ—दारहि=दारा को, दारा (दाराशिकोह) औरंगज़ेब का सबसे बड़ा भाई था। दारि=दल कर, पीस कर। मुरादहिं=मुराद को, मुरादबख्श औरंगज़ेब का छोटा भाई था। सन् १६५७ में बादशाह शाहजहाँ अचानक बीमार पड़ा। इस समाचार को सुनते ही उसके लड़कों—दारा, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद—में राज्य पाने के लिए प्रबल युद्ध हुआ। सबसे बड़ा लड़का दारा राजधानी में रहकर पिता के साथ राजकाज करता था। शाहशुजा बंगाल का सूबेदार था, औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार था, मुराद गुजरात का। औरंगज़ेब ने मुराद को यह आश्वासन देकर कि राज्य मिलने पर तुम्हें दिल्ली के तख्त पर बिठाऊँगा, अपने साथ मिला लिया। औरंगज़ेब और मुराद की सम्मिलित सेना ने शाही फौज के ऊपर धावा बोल दिया। धौलपुर के समीप दोनों दलों में युद्ध हुआ। दारा हार गया और बंदी बना लिया गया। उसे दिल्ली की गलियों में घुमाकर अपमानित किया गया। अंत में औरंगज़ेब के दासों द्वारा कतल कर दिया गया। दारा को हराने के बाद औरंगज़ेब ने धोखा देकर मुराद को भी ग्वालियर के किले में वध करा दिया। शाहशुजा को हराकर बंगाल की तरफ भगा दिया, जिसे पीछे अराकान की तरफ भागकर शरण लेनी पड़ी। इसी ऐतिहासिक तथ्य पर भूषण ने यह पद लिखा है।

विचलायो=विचलित किया, हरा दिया। कै = करके, ले के। नौरंग= औरंगज़ेब, (भूषण औरंगज़ेब को 'नौरंग' कहा करते थे)। हुती=थी। गाँठिहु के=गाँठ के भी, पास के भी, अपने भी।

अर्थ—औरंगज़ेब ने दाराशिकोह का दलन कर मुरादबख्श को मारकर शाहशुजा को युद्ध में भगा दिया। इस प्रकार दिल्ली की समस्त दौलत अपने हाथ में करके अन्य बहुत से देशों को भी अपने राज्य में मिला लिया (अधिकार में कर लिया)। तब उसने शिवाजी से शत्रुता की, पर वहाँ उसकी इच्छित बात न हुई, उसकी मनोकामना पूर्ण न हुई। उसने दक्षिण देश के क़िले लेने के लिए अपनी सेना भेजी परन्तु उलटे वह अपनी गाँठ के क़िले भी गँवा बैठा।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब दक्षिण देश के 'गढ़' विजय करना चाहता था, वह न होकर 'गाँठ के गढ़-कोट गँवाना' रूप विपरीत कार्य हुआ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

महाराज शिवराज तव, वैरी तजि रस रुद्र।
बचिबे को सागर तिरे, बूड़े सोक समुद्र ॥२१६॥

शब्दार्थ—रस रुद्र = रौद्र रस, यह नौ रसों में से एक रस है, यहाँ वीर भाव, तथा युद्ध के बाने से तात्पर्य है।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी ! आपके शत्रु युद्ध का बाना (वा वीर-भाव) त्याग कर अपनी रक्षा के लिए समुद्र पार करने लगे (परन्तु तो भी वे) शोक-सागर में डूब गये (वे बड़ी चिन्ता में पड़ गये कि देश, धन, जन, गँवाकर क्या करें ? किधर जायँ ?)

विवरण—यहाँ शिवाजी के शत्रुओं को समुद्र पार करने से 'रक्षा' वांछित थी परन्तु वह न हो के शोक-सागर में डूबना रुप विपरीत कार्य हुआ।

अधिक

लक्षण—दोहा

जहाँ बड़े आधार तें, बरनत बढ़ि आधेय।
ताहि अधिक भूषन कहत, जान सुग्रंथ प्रमेय ॥२२०॥

शब्दार्थ—आधार = जो दूसरी वस्तु को अपने में रक्खे। आधेय = जो वस्तु, दूसरी वस्तु में रक्खी जाय। प्रमेय = जो प्रमाण का विषय हो सके, प्रामाणिक।

अर्थ—जहाँ बड़े आधार से भी आधेय को बढ़ाकर वर्णन किया जाय वहाँ प्रामाणिक श्रेष्ठ ग्रन्थों के ज्ञाता अधिकालंकार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

सिव सरजा तव हाथ को, नहिं बखान करि जात।
जाको बासी सुजस सब, त्रिभुवन में न समात ॥२२१॥

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी! आपके उस हाथ का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिस हाथ में रहने वाला यश (हाथ से ही यश पैदा होता है, दान देकर, अथवा शस्त्र-ग्रहण द्वारा देश विजय कर) समस्त त्रैलोक्य में भी नहीं समाता।

विवरण—यहाँ शिवाजी का हाथ आधार है और त्रिभुवन में न समाने वाला यश आधेय है। हाथ त्रिभुवन का एक अंश ही है परन्तु उसमें रहने वाला यश त्रिभुवन से भी बड़ा है। अतः अधिक अलंकार है अथवा यदि त्रिभुवन को आधार मानें तो भी आधेय यश उस में न समाने के कारण उससे भी बड़ा है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नाहिं अकुलात हैं।
भूषन भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।

सरजा सवाई कासों करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खंड महि-
मंडल की कहा ब्रह्मंड ना समात है ॥२२२॥

शब्दार्थ—सलील=सलिल, जल, मदजल। सलील सील=जल वाले, अथवा मदजल से पूर्ण। डील=शरीर। पब्बय=पर्वत। पील=फील, हाथी। सुमेरु=एक पर्वत, यह सुवर्ण का कहा जाता है। टंक=चार माशे का तोल। सातों दीप=पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े और मुख्य विभाग—जंबू, प्लक्ष, कुश, क्रौंच, शाक, शाल्मलि और पुष्कर। नवखंड=पृथ्वी के नौ भाग, भरत-खंड, इलावर्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हिरण्य, रम्य, हरि, और कुरु। ब्रह्मंड=ब्रह्मांड, चौदहों भुवनों का मंडल, समस्त संसार।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी महाराज जल से पूर्ण नील मेघ के समान रंगवाले अथवा स्वाभाविक मदजल से पूर्ण मदमस्त तथा बादलों के समान नीले रंग वाले और पर्वत के समान (बड़े बड़े) शरीर वाले हाथी (दान) देने में नहीं अकुलाते (अर्थात् शिवाजी बड़े दानी हैं वे बड़े बड़े हाथी दान करते हुए भी नहीं हिचकते, सहर्ष दे डालते हैं)। और वे इतना बड़ा सुवर्ण का ढेर देते हैं जो कि सुमेरु पर्वत के समान दिखाई पड़ता है। हे सरजा शिवाजी! कौन कवि कविता करके आपके उस हाथ की बड़ाई का वर्णन कर सकता है! (अर्थात् सब कवि आपके उस हाथ के यश के वर्णन में असमर्थ हैं) जिसका टंक भर यश पृथिवी के नवखंड और सातों द्वीपों की क्या कहें ब्रह्मांड (चौदह भुवनों) में भी नहीं समाता।

विवरण—यहाँ आधार ब्रह्मांड एवं पृथ्वी की अपेक्षा आधेय "टंक भर यश" वस्तुतः न्यून होने पर भी 'ना समात' इस पद से बड़ा कथन किया गया है।

अन्योन्य

लक्षण—दोहा

अन्योन्या उपकार जहँ, यह बरनन ठहराय ।
ताहि अन्योन्या कहत हैं, अलंकार कविराय ॥२२३॥

शब्दार्थ—अन्योन्या = एक दूसरे के प्रति, आपस में ।

अर्थ—जहाँ आपस में एक दूसरे का उपकार करना (अथवा एक दूसरे से छविमान होना) कथित हो वहाँ श्रेष्ठ कवि अन्योन्य अलंकार कहते हैं ।

सूचना—इसमें एक ही क्रिया द्वारा दो वस्तुओं का परस्पर उपकार करना कहा जाता है ।

उदाहरण—मालती सवैया

तो कर सों छिति छाजत दान है दानहू सों अति तों कर छाजै ।
तैंही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै ॥
भूषन तोहि सों राज बिराजत राज सों तू सिवराज बिराजै ।
तो बल सों गढ़ कोट गजैं अरु तू गढ़ कोटन के बल गाजै ॥२२४॥

शब्दार्थ—तो = तव, तुम्हारा । छाजत = शोभा पाता है । तैं ही=तुझे ही, तू ही । सजै = सजती है, फबती है । साजै = साजती है, शोभित करती है । गजैं = गर्जन करते हैं, सबल है । गाजै=गर्जता है ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि तुम्हारे (शिवाजी के) हाथ से ही पृथ्वी पर दान शोभा पाता है और दान से ही तुम्हारा हाथ अत्यधिक शोभित होता है । गुणवान पुरुषों की प्रशंसा तुम्हें ही फबती है अथवा तू ही गुणियों की बड़ाई करता है, और तुम्हारी ही बड़ाई करने से सब गुणी शोभा पाते हैं । तुमसे ही राज की शोभा है और राज होने से ही तुम्हारी शोभा है । तुम्हारे बल से (सहायता पाकर) समस्त किले गर्जन करते हैं (अर्थात् तुम्हारे बल से सबल एवं दृढ़ होने से वे किसी शत्रु की परवाह नहीं करते) और तुम भी किलों का बल पाकर गर्जना करते हो ।

विवरण—यहाँ कर से दान का और दान से कर का, गुणियों की बड़ाई से शिवाजी का और शिवाजी की कीर्ति से गुणियों का, राज से शिवाजी का और शिवाजी से राज का और अन्तिम चरण में शिवाजी से गढ़ों का और गढ़ों से शिवाजी का आपस में एक दूसरे का शोभित होना रूप उपकार कथित हुआ है।

विशेष

लक्षण—दोहा

बरनत हैं आधेय को, जहँ बिनही आधार।
ताहि विशेष बखानहीं, भूषन कवि सरदार ॥२२५॥

अर्थ—जहाँ किसी आधार के विना ही आधेय (की स्थिति) को कहा जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि विशेष अलंकार कहते हैं।

सूचना—साधारणतया यह कहा जाता है कि जहाँ किसी विशेष (आश्चर्यात्मक) अर्थ का वर्णन हो वहाँ विशेष अलंकार होता है। कइयों ने इसके तीन भेद कहे हैं। भूषण ने दो भेदों के उदाहरण दिये है, एक जहाँ विना आधार के ही आधेय कीस्थिति कही जाय, दूसरा जहाँ एक वस्तु की स्थिति का एक समय में अनेक स्थानों में वर्णन हो।

उदाहरण (प्रथम प्रकार का विशेष)—दोहा

सिव सरजा सों जंग जुरि, चंदावत रजवंत।
राव अमर गो अमरपुर, समर रही रज तंत ॥२२६॥

शब्दार्थ—जंग जुरि = युद्ध करके। रजवंत = राज्यश्री वाले, वीरता वाले। रज तंत = रज + तत्व, रजोगुण का सार, वीरता।

अर्थ—महाराज शिवाजी से युद्ध करके शूरवीर राव अमरसिंह चंदावत अमरपुर चला गया (स्वर्गवासी हो गया) परन्तु उसकी वीरता युद्धस्थल में रह गई।

विवरण—यहाँ राव अमरसिंह चंद्रावत रूप आधार के बिना ही रजतंत (वीरता) रूप आधेय की स्थिति युद्धस्थल में कथन की गई है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिवाजी खुमान सलहेरि मैं दिलीस-दल,
कीन्हों कतलाम करबाल गहि कर मैं।
सुभट सराहे चंदावत कछवाहे,
मुगलौ पठान ढाहे फरकत परे फर मैं।
भूषन भनत भौंसिला के भट उदभट,
जीति घर आए धाक फैली घर घर मैं।
मारु के करैया अरि अमरपुरै गे तऊ,
अजौं मारु-मारु सोर होत है समर मैं ॥२२७॥

शब्दार्थ—सराहे=प्रशंसित। ढाहे=गिरा दिये। फर में=बिछावन में (यहाँ युद्धस्थल में)। उदभट=अनुपम। मारु के करैया=मारो मारो शब्द के करने वाले, वीर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि खुमान राजा शिवाजी ने हाथ में तलवार लेकर सलहेरि के मैदान में दिल्ली के बादशाह की सेना में कत्लेआम मचा दिया। बड़े बड़े प्रशंसनीय वीर चंदावत तथा कछवाहे राजपूत और मुग़ल तथा पठान उन्होंने मार कर गिरा दिये। वे युद्धस्थल में पड़े पड़े फड़कने लगे। भौंसिला राजा शिवाजी के अनुपम वीर विजय प्राप्त करके अपने घरों को आगये और (शत्रुओं के) घर घर में उनका रोब छा गया। यद्यपि मार काट करने वाले शत्रु वीर लड़कर स्वर्ग चले गये परन्तु उनका 'मारो, मारो' का शोर अब भी रणस्थल में गूँज रहा है।

विवरण—यहाँ 'मारु कै करैया' रूप आधार के बिना ही 'मारु मारु शोर' रूप आधेय की स्थिति कथन की गई है।

दूसरे प्रकार के विशेष का उदाहरण—मनहरण कवित्त

कोट गढ़ दै कै माल मुलुक मैं बीजापुरी,
गोलकुंडा वारो पीछे ही को सरकतु है।
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भुजबल,
रेवा ही के पार अवरंग हरकतु है।
पेसकसैं भेजत इरान फिरगान पति,
उनहू के उर याकी धाक धरकतु है।
साहि-तनै सिवाजी खुमान या जहान पर,
कौन पातसाह के न हिए खरकतु है ॥२२८॥

शब्दार्थ—सरकतु=सरकता है, खिसकता है। रेवा=नर्मदा। हरकतु है=रोक देता है। पैसकसैं= पेशकश, भेंट। धरकतु है=धड़कती है।

अर्थ—बीजापुर और गोलकुंडा के बादशाह (शिवाजी को) अपने क़िले देकर देश और वैभव में पीछे ही को सरकते जाते हैं, उनके देश की सीमा और वैभव कम होता जाता है। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी का बाहुबल औरंगज़ेब को नर्मदा नदी के दूसरी ओर ही रोक देता है अर्थात् शिवाजी की प्रबलता के कारण औरंगजेब भी नर्मदा के पार दक्षिण में नहीं आ पाता। ईरान और विलायत के शासक भी शिवाजी को भेंट भेजते हैं और उनके हृदय भी शिवाजी की धाक से धड़कते रहते हैं। शाहजी के पुत्र चिरजीवी शिवाजी महाराज इस दुनियाँ में किस बादशाह के हृदय में नहीं खटकते—अर्थात् सबके हृदय में खटकते हैं।

विवरण—यहाँ एक समय में ही शिवाजी (की धाक) का सब के हृदयों में चढ़ा रहना कहा गया है।

नोटः—कई प्रतियों में यह पद पर्याय का उदाहरण दिया गया है। परन्तु पर्याय में क्रमशः एक वस्तु के अनेक आश्रय

वर्णित होते हैं अथवा क्रम-पूर्वक अनेक वस्तुओं का एक आश्रय वर्णित होता है, पर 'विशेष' में एक ही समय में एक पदार्थ की अनेक स्थलों पर स्थिति वर्णन की जाती है, जैसे उपरलिखित पद में की गई है।

व्याघात

लक्षण—दोहा

और काज करता जहाँ, करै औरई काज।
ताहि कहत व्याघात हैं, भूषन कवि-सिरताज ॥२२६॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य कार्य का करने वाला कोई दूसरा ही कार्य (विरुद्ध कार्य) करने लगे वहाँ श्रेष्ठ कवि व्याघात अलंकार कहते हैं। (व्याघात का अर्थ विरुद्ध है)।

उदाहरण—मालती सवैया

ब्रह्म रचै पुरुषोतम पोसत संकर सृष्टि सँहारनहारे।
तू हरि को अवतार सिवा नृप काज सँवारे सबै हरि वारे॥
भूषन यों अवनी जवनी कहैं कोऊ कहैं सरजा सो हहारे।
तू सबको प्रतिपालनहार विचारे भतार न मारु हमारे॥२३०॥

शब्दार्थ—पुरुषोतम = विष्णु। सँवारे = पूर्ण किये। हहारे = विनती, अथवा हाय! हाय!। अवनी=पृथ्वी। जवनी= मुसलमान स्त्रियाँ। भतार = भर्ता, स्वामी, पति।

अर्थ—ब्रह्मा पृथ्वी की रचना करते हैं, विष्णु भगवान उसका पालन करते हैं और महादेव सृष्टि का संहार करने वाले हैं। हे महाराज शिवाजी! तुम तो विष्णु के अवतार हो, तुमने विष्णु के सब काम पूरे किये हैं अर्थात् जगत् में तुमने पालन-पोषण का कार्य अपने ऊपर लिया है। भूषण कवि कहते हैं कि (इसीलिए) पृथिवी पर सब मुसलमानियाँ इस प्रकार कहती फिरती हैं कि कोई शिवाजी से विनती करके

कहे (अथवा हाय, हाय, कोई शिवाजी से जाकर कहे) कि तुम तो सब का पालन-पोषण करने वाले हो अतएव हमारे पति विचारों को मत मारो।

विवरण—यहाँ शिवाजी को जगत के प्रतिपालक विष्णु का अवतार कह कर उनका यवनों का मारना रूप विरुद्ध कार्य कथन किया गया है जो 'तू सबको प्रतिपालनहार विचार भतार रे' इस पद से प्रकट होता है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

कसत मैं बार बार वैसोई बलंद होत,
वैसोई सरस-रूप समर भरत है।
भूषन भनत महाराज सिव राजमनि,
सघन सदाई जस फूलन धरत है।
बरछी कृपान गोली तीर केते मान,
जोरावर गोला बान तिनहू को निदरत है।
तेरो करवाल भयो जगत को ढाल, अब
सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है ॥२३१॥

शब्दार्थ—कसत = कर्षित, खैंचते, कसते हुए। रूप भरत है = रूप धारण करता है, वेश बनाता है। केते मान = कितने परिमान में, किस गिनती में। हाल = आजकल, इस समय।

अर्थ—(यहाँ शिवाजी की तलवार को ढाल का रूप दिया गया है जो संसार की रक्षक मानी गई है) भूषण कवि कहते हैं कि हे राजाओं में श्रेष्ठ महाराज शिवाजी ! आपकी कृपाण युद्ध में बार-बार खेंच कर चलाए जाने पर (हिन्दुओं की रक्षा करती हुई) उसी भाँति ऊँचा उठती है और वैसी ही सुंदर शोभा को धारण करती है (जैसी कि एक ढाल)। यह आपकी कृपाण बड़ी दृढ़ है और सदा ही यश-रूपी पुष्पों को अत्यधिक धारण करने

वाली है (ढाल में भी लोहे के फूल लगे रहते हैं और उनसे वह दृढ़ होती है)। यह बड़े-बड़े जोरदार गोलों और बाणों को भी लज्जित कर देती है, फिर भला इसके सामने बर्छी, तलवार, तीर और गोलियों की क्या गिनती है, वे तो इसके सामने कुछ भी नहीं कर सकतीं—अर्थात् गोला बारूद आदि से युक्त मुसलमानों की सेना से भी आपकी तलवार हिंदुओं की रक्षा कर गोला बारूद आदि सामग्री को लज्जित कर देती है, उनकी व्यर्थता सिद्ध कर देती है। ऐसी यह आपकी करवाल (कृपाण) समस्त संसार के लिए ढाल स्वरूप है (रक्षक है) परन्तु अब वही म्लेच्छों का अंत करती है।

विवरण—यहाँ करवाल-रूपी ढाल का कार्य रक्षा करना था परन्तु उसका म्लेच्छों को मारना रूप विरुद्ध कार्य कथन किया गया है।

गुम्फ (कारणमाला)

लक्षण—दोहा

पूरब पूरब हेतु कै, उत्तर उत्तर हेतु।
या विधि धारा बरनिए, गुम्फ कहावत नेतु ॥२३२॥

शब्दार्थ—धारा = क्रम। गुम्फ = गुच्छा, धारा। नेतु = निश्चय ही।

अर्थ—पहले कही गई वस्तु को पीछे कही गई वस्तु का, अथवा पीछे कही गई वस्तु को पहले कही गई वस्तु का कारण बनाकर एक धारा की तरह वर्णन करना गुंफ अलंकार कहाता है, इसे कारण-माला भी कहते हैं।

सूचना—इसमें पूर्वकथित वस्तु उत्तरकथित वस्तु का कारण धारा (माला) के रूप में होती है अथवा उत्तरकथित वस्तु पूर्वकथित वस्तु का कारण धारा (माला) के रूप में होती है। इस प्रकार इसके दो भेद हुए। एक जिसमें पूर्व कथित पदार्थ उत्तरो-

त्तर कथित पदार्थों के कारण हों या जो पहले कार्य हों वे आगे हेतु होते चले जाँय। दूसरा जिसमें उत्तरोत्तर कथित पदार्थ पूर्व कथित पदार्थों के कारण हों, अर्थात् जो पहले हेतु हों वे आगे कार्य होते जाँय।

उदाहरण—मालती सवैया

संकर की किरपा सरजा पर जोर बढ़ी कवि भूषन गाई।
ता किरपा सों सुबुद्धि बढ़ी भुव भौंसिला साहितनै की सवाई॥
राज सुबुद्धि सों दान बढ्यो अरु दान सों पुन्य समूह सदाई।
पुन्य सों बाढ्यो सिवाजी खुमान खुमान सों बाढ़ी जहान भलाई॥२३३॥

शब्दार्थ—जोर बढ़ी=जोर से बढ़ी, खूब बढ़ी। गाई=गाता है, कहता है। सवाई=सवा गुनी, ज्यादा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी पर शिवजी महाराज की कृपा ज़ोर से बढ़ी और उस कृपा से पृथ्वी पर शाहजी के पुत्र भौंसिला राजा शिवाजी की बुद्धि भी सवाई बढ़ गई। इस प्रकार उन्नत सुबुद्धि द्वारा उनका दान खूब बढ़ा अर्थात् शिवाजी अधिकाधिक दान देने लगे और उनके दान से सदा पुण्य-समूह की वृद्धि होने लगी। इस पुण्योदय से चिरजीवी शिवाजी की वृद्धि हुई और उनकी उन्नति से समस्त संसार की भलाई बढ़ी।

विवरण—यहाँ, पूर्वकथित शंकर की कृपा शिवाजी की सुबुद्धि का कारण और सुबुद्धि दान का कारण है, दान पुण्य का कारण है, पुण्य शिवाजी की उन्नति का कारण है और शिवाजी की उन्नति संसार भर की भलाई का कारण कही गई है। इस प्रकार पूर्व-कथित वस्तु उत्तरकथित वस्तु का कारण होती गई है। अतः प्रथम प्रकार का गुंफ है।

उदाहरण (द्वितीय कारण माला)—दोहा

सुजस दान अरु दान धन, धन उपजै किरवान ।
सो जग मैं जाहिर करी, सरजा सिवा खुमान ॥२३४॥

अर्थ—श्रेष्ठ यश दान से मिलता है और दान धन से होता है। धन तलवार से प्राप्त होता है (अर्थात् तलवार से देश विजय करने पर धन की प्राप्ति होती है) और उन सर्वश्रेष्ठ (सब बातों की मूल कारण) तलवार को वीरकेसरी चिरजीवी शिवाजी ने ही संसार में प्रसिद्ध किया है।

विवरण—यहाँ यश का कारण दान, दान का धन, धन का तलवार और तलवार का कारण छत्रपति शिवाजी शृंखला विधान से वर्णित है। और जो पहले कारण है वह आगे कार्य होता चला गया है, अतः यह कारण माला का दूसरा भेद है।

एकावली

लक्षण—दोहा

प्रथम बरनि जहँ छोड़िये, जहाँ अरथ की पाँति ।
बरनत एकावलि अहै, कवि भूषन यहि भाँति ॥२३५॥

अर्थ—जहाँ पहले कुछ वर्णन करके उसे छोड़ दिया जाय (और फिर आगे वर्णन किया जाय) परन्तु अर्थ की शृंखला न टूटे (ज्यों को त्यों रहे) वहाँ भूषण कवि एकावली अलंकार कहते हैं।

सूचना—एकावली भी कारण-माला की तरह मालारूप में गुँथी होती है; परन्तु कारणमाला में कारण-कार्य का सम्बन्ध होता है, एकावली में वह नहीं होता।

उदाहरण—हरिगीतिका छंद

तिहुँ भुवन मैं भूपन भनैं नरलोक पुन्य सुसाज मैं।
नरलोक मैं तीरथ लसैं महि तीरथों की समाज मैं॥

महि मैं बड़ी महिमा भली महिमै महारजलाज मैं।
रज-लाज राजत आजु है महराज श्री सिवराज में ॥२३६॥

शब्दार्थ—तिहुँ भुवन=त्रिभुवन। सुसाज=सुसामग्री, वैभव। तीरथों की समाज में=तीर्थसमूह में। महिमै=महिमा ही, कीर्ति ही। रजलाज=लज्जायुक्त राजश्री।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि त्रिभुवन में पुण्य और सुन्दर सामग्री संयुक्त मनुष्यलोक श्रेष्ठ है और इस मनुष्यलोक में तीर्थ शोभित होते हैं और तीर्थों में पृथिवी (महाराष्ट्रभूमि) अधिक शोभायमान है। उस पृथिवी (महाराष्ट्र भूमि) में महिमा बड़ी है और महिमा में लज्जाशील राज-लक्ष्मी श्रेष्ठ है। वही लज्जाशील राज-लक्ष्मी आज महाराज शिवाजी में शोभित है। अथवा महिमा रजपूतों की लाज (वीरता) में शोभित है, और वह वीरता की लाज आज शिवराज में शोभित है।

विवरण—यहाँ उत्तरोत्तर पृथक्-पृथक् वस्तुओं का वर्णन किया गया है, और उत्तरोत्तर में एक एक विशेषता स्थापित की गई है, अर्थ की शृंखला भी नहीं टूटी, अतः एकावली अलंकार है।

मालादीपक एवं सार

लक्षण—दोहा

दीपक एकावलि मिले, मालादीपक होय।
उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत हैं सोय ॥२३७॥

शब्दार्थ—उतकरष=उत्कर्ष, श्रेष्ठता, आधिक्य।

अर्थ—ज़हाँ दीपक और एकावली अलंकार मिलें वहाँ 'मालादीपक' और जहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष (या अपकर्ष) का वर्णन किया जाय वहाँ 'सार' अलंकार होता है।

सूचना—ऊपरलिखित दोहे में दो अलंकारों के एक साथ

लक्षण दिए गए हैं, प्रथम 'मालादीपक' का, दूसरा 'सार' का। मालादीपक में पूर्व कथित वस्तु उत्तरोत्तरकथित वस्तु के उत्कर्ष का कारण होती है और सार में उत्तरोत्तर उत्कर्ष वा अपकर्ष का ही कथन होता है।

मालादीपक

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मन कवि भूषन को सिव की भगति जीत्यो,
सिव की भगति जीती साधुजन सेवा ने।
साधुजन जीते या कठिन कलिकाल,
कलिकाल महाबीर महाराज महिमेवा ने॥
जगत मैं जीते महाबीर महाराजन तें,
महाराज बावनहू पातसाह लेवा ने।
पातसाह बावनौ दिली के पातसाह दिल्ली,
पति पातसाहै जीत्यो हिन्दुपति सेवा ने॥२३८॥

शब्दार्थ—महिमेवा = महिमावान, कीर्तिशाली।

अर्थ—भूषण कवि का मन शिव (शंकर) की भक्ति ने जीत लिया है अर्थात् उनका मन शिवजी की भक्ति में लीन होगया और शिवजी की भक्ति को साधुओं की सेवा ने विजय कर लिया। समस्त साधुओं को घोर कलियुग ने जीत लिया (अर्थात् कलियुग में कोई सच्चा साधु नहीं मिलता) और इस घोर कलियुग को वीर महिमावान् राजाओं ने विजय कर लिया है। इस समस्त महावीर महाराजाओं को बादशाहत लेने का दावा रखने वाले बावन प्रधान राजाओं ने (सम्भव है कि भारतवर्ष में उस समय बावन प्रधान नरपति हों) अपने अधीन कर लिया है। इन बावन बादशाहों को दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब ने अपने अधीन किया और औरंगज़ेब को महाराज शिवाजी ने जीत लिया।

विवरण—यहां 'जीत्यो' क्रियापद की बार बार आवृत्ति होने

से दीपक है तथा श्रृंखलाबद्ध कथन होने से एकावली भी है। दोनों मिलकर मालादीपक बने हैं।

सार

मालती—सवैया

आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामैं रह्यो रचि जीव जड़ो है।
ता रचना महँ जीव बड़ो अति काहे तें ता उर ज्ञान गड़ो है॥
जीवन मैं नर लोग बड़ो कवि भूषन भाषत पैज अड़ो है।
है नर लोग मैं राजा बड़ो सब राजन मैं सिवराज बड़ो है॥२६३॥

अर्थ—सर्व प्रथम ब्रह्मा की सृष्टि बहुत बड़ी है, जिसमें कि जड़-चेतन (चराचर) की रचना की गई है। और इस रचना में सबसे बड़ा जीव है क्योंकि उसमें ज्ञान विद्यमान है। इन समस्त जीवों में पैज (प्रतिज्ञा) में दृढ़ होने के कारण प्रतिज्ञा पूरी करने के कारण—मनुष्य-जीव श्रेष्ठ है। मनुष्यों में राजा बड़ा है और समस्त राजाओं में महाराज शिवाजी श्रेष्ठ हैं।

विवरण—यहाँ सृष्टि, जीव, मनुष्य, राजा और शिवाजी का उत्तरोत्तर उत्कर्ष 'बड़ो है' इस शब्द द्वारा वर्णन किया गया है। अतः यहाँ 'सार' अलंकार है।

सूचना—यह 'सार' अलंकार कहीं-कहीं उत्तरोत्तर अपकर्ष में भी माना गया है किन्तु प्रायः 'सार' उत्कर्ष में ही होता है।

पूर्वोक्त 'कारणमाला' 'एकावली' और 'सार, में श्रृंखला विधान तो समान होता है किन्तु 'कारणमाला' में कारण-कार्य का, एकावली में विशेष्य-विशेषण का और 'सार' में उत्तरोत्तर उत्कर्ष का सम्बन्ध होता है। तीनों में यही भेद है।

यथासंख्य

लक्षण—दोहा

क्रम सों कहि तिनके अरथ, क्रम सों बहुरि मिलाय।
यथासंख्य ताको कहैं, भूषन जे कविराय॥२६४॥

अर्थ—क्रम से पहले जिन पदार्थों का वर्णन हो और फिर उनके सम्बन्ध की बातें उसी क्रम से वर्णन की जायँ वहाँ श्रेष्ठ कवि यथासंख्य अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जेई चहौ तेई गहौ सरजा सिवाजी देस,
संके दल दुवन के जे वै बड़े उर के।
भूषन भनत भौंसिला सों अब सनमुख,
कोऊ ना लरैया है धरैया धीर धुर के।
अफजल खान, रुस्तमै जमान, फत्ते खान,
कूटे, लूटे, जूटे ए उजीर बिजैपुर के।
अमर सुजान, मोहकम, बहलोलखान,
खाँड़े, छाँड़े, डाँडे उमराव दिलीसुर के ॥२४१॥

शब्दार्थ—दुवन=शत्रु। बड़े उर के=विशाल हृदय के, बड़े दिल (साहस) वाले। धरैया धीर-धुर के=धैर्य की धुरी को धारण करने वाले, बड़े धैर्यवान। रुस्तमे जमान=इसका वास्तविक नाम 'रन दौला' था, 'रुस्तमे जमान' इसकी उपाधि थी। यह बीजापुर का सेनापति था और बीजापुर की ओर से दक्षिण पश्चिम भाग का का सूबेदार था, अफजलखाँ की मृत्यु के बाद बीजापुर की ओर से अफजलखाँ के पुत्र फ़ज़लखाँ को साथ लेकर इसने मराठों पर चढ़ाई की। परनाले के निकट इसकी शिवाजी से मुठभेड़ हुई। इसमें इसे बुरी तरह से हार कर कृष्णा नदी की ओर भागना पड़ा। यह घटना सन् १६५९ की है। फत्तेखान=फतेखाँ, यह जंजीरा के सीदियों का सरदार था। सन् १६७२ ई० में जंजीरा के किले में शिवाजी से लड़ा था, परन्तु कई बार परास्त होने पर अन्त में शिवाजी से मिल जाने की बात चीत कर रहा था, इसी बीच

इसके तीन साथियों ने इसे मार डाला। कूटे=कूटा, मारा। जूटे=जुट गये, मेल किया, संधि की। मोहकमसिंह=यह चंदावत का लड़का था। सलहेरि के युद्ध में इसे मराठों ने कैद कर लिया था, पर बाद में छोड़ दिया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सरजा राजा शिवाजी ने जिस देश को लेना चाहा वही ले लिया, इस कारण शत्रुओं की जो बड़ी-बड़ी साहसी सेनाएँ थी वह भी डर गईं। और धैर्य की धुरी को धारण करने वालों अर्थात् बड़े बड़े धैर्यवानों में से भी अब शिवाजी के सम्मुख लड़ने वाला कोई नहीं रहा। अफजलखाँ, रुस्तमेजमाँखाँन और फतेखाँ आदि बीजापुर के वज़ीरों को शिवाजी ने कूटा, लूटा और मिला लिया अर्थात् अफज़लखाँ को शिवाजा ने (कूटा) मारा, रुस्तमेजमाँखाँ को लूट लिया और फतेखाँ को शिवाजी से संधि हो गई। दिल्लीश्वर के उमराव चतुर अमरसिंह, मोहकमसिंह तथा बहलोलखाँ को कतल कर दिया, छोड़ दिया और दंडित किया अर्थात् अमरसिंह (चंदावत) को शिवाजी ने कतल कर दिया मोहकमसिंह को पकड़ कर छोड़ दिया और बहलोल खाँ को दंड दिया।

विवरण—यहाँ पूर्वकथित अफजलखाँ, रुस्तमेजमाँ खाँ, और फतेखाँ का क्रमशः कूटे, लूटे, और जूटे के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है, और अमरसिंह मोहकमसिंह और बहलोलखाँ के लिए क्रमशः खाँडे, छाँडे, और डाँडे कहा गया है। अतः यथासंख्य अलंकार है।

पर्याय

लक्षण—दोहा

एक अनेकन में रहै, एकहि मैं कि अनेक।
ताहि कहत परयाय हैं, भूषण सुकवि विवेक ॥२४०॥

अर्थ—जहाँ एक (वस्तु) का (क्रमशः) अनेक (वस्तुओं) में

अथवा अनेकों का एक में होना वर्णित हो वहाँ ज्ञानी कवि पर्याय अलंकार कहते हैं।

सूचना—इस लक्षण से पर्याय के दो भेद होते हैं—जहाँ एक वस्तु का क्रमशः अनेक वस्तुओं में रहने का वर्णन हो वहाँ प्रथम पर्याय और जहाँ अनेक वस्तुओं का एक में वर्णन हो वहाँ द्वितीय पर्याय।

उदाहरण (प्रथम पर्याय)—दोहा

जीत रही औरंग मैं, सबै छत्रपति छाँड़ि।
तजि ताहू को अब रही, सिव सरजा कर माँड़ि ॥२४३॥

शब्दार्थ—छत्रपति = राजा। माँडि = मंडित, शोभित।

अर्थ—समस्त छत्रपतियों (राजाओं) को छोड़कर विजय (लक्ष्मी) औरंगज़ेब के पास रही थी; परन्तु वह अब उसे त्याग कर महाराज शिवाजी को सुशोभित कर रही है, अथवा महाराज शिवाजी के हाथ को सुशोभित कर रही है।

विवरण—यहाँ एक 'विजय' का राजाओं में, औरंगज़ेब में, और शिवाजी में क्रमशः होना कथन किया गया है। एक 'विजय' का अनेक में वर्णन होने से प्रथम पर्याय है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण (दूसरा पर्याय)

अगरे के धूप धूम उठत जहाँई तहाँ,
उठत वगूरे अब अति ही अमाप हैं।
जहाँई कलावँत अलापैं मधुर-स्वर,
तहाँई भूत प्रेत अब करत विलाप हैं।
भूषन सिवाजी सरजा के बैर बैरिन के,
डेरन मैं परे मनो काहू के सराप हैं।
बाजत हे जिन महलन में मृदंग तहाँ,
गाजत मतंग सिंह बाघ दीह दाप हैं ॥२४४॥

शब्दार्थ—बगूरे=बगूले, बवंडर। अमाप=बेमाप, बेहद। कलावंत=गायक। अलापैं=गाते थे। मतंग=हाथी।

अर्थ—जहाँ पहले शत्रुओं के महलों एवं शिवरों में अगर की धूप जलने के कारण सुगन्धित धूआँ उठा करता था अब वहाँ (शिवाजी से शत्रुता होने के कारण महलों के उजाड़ होने से) धूल के बड़े बड़े बगूले उठते हैं। और जहाँ कलावंत (गायक) लोग सुंदर मधुर स्वर से अलापते थे, अब वहाँ भूत-प्रेत रोते और चिल्लाते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि ऐसा मालूम होता है, मानों शिवाजी की शत्रुता के कारण शत्रुओं के उन डेरों पर किसी का शाप पड़ गया है, अर्थात् किसी के शाप से वे नष्ट हो गए हैं, (क्योंकि) जिन महलों में पहले गंभीर ध्वनि से मृदंग गूँजा करते थे, अब वहाँ बड़े-बड़े भयंकर सिंह, बाघ और हाथी घोर गर्जना करते हैं, अर्थात् शत्रुओं के डेरे अब जंगल बन गये हैं।

विवरण—यहाँ एक महल में अनेक पदार्थों—धूप, धूम और बगूरे आदि—का होना वर्णन किया गया है, अतः दूसरा पर्याय है।

परिवृत्ति

लक्षण—दोहा

एक बात को दै जहाँ, आन बात को लेत।
ताहि कहत परिवृत्ति हैं भूषन सुकवि सचेत ॥२४५॥

अर्थ—जहाँ एक वस्तु को देकर बदले में कोई दूसरी वस्तु ली जाय वहाँ श्रेष्ठ सावधान कवि परिवृत्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—परिवृत्ति का अर्थ है अदला-बदला अर्थात् एक वस्तु लेकर उसके बदले में दूसरी वस्तु देना।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दच्छिन-धरन धीर-धरन खुमान गढ़,
लेत गढ़धरन सों धरम दुवारु दै।

साहि नरनाह को सपूत महाबाहु लेत,
मुलुक महान छीनि साहिन को मारु दै ॥
संगर में सरजा सिवाजी अरि सैनन को,
सारु हरि लेत हिंदुवान सिर सारु दै ।
भूषन भुसिल जय जस को पहारु लेत,
हरजू को हारु हर गन को अहारु दै ॥२४६॥

शब्दार्थ—दच्छिन धरन=दक्षिण को धारण करने वाले, शिवाजी । गढ़धरन=गढ़ों को धारण करने वाले, राजा । धरमदुवारु=धर्मराज का दरवाजा, यमपुरी का दरवाज़ा । मारु दै=मार देकर, मारकर । सारु=बड़ाई । हारु=हार (मुंडमाला) । हरगन=शिवाजी के गन, भूत प्रेत आदि । अहारु=भोजन ।

अर्थ—दक्षिणाधीश, धैर्यशाली, चिरजीवी शिवाजी महाराज किलेदारों को यमपुरी का दरवाज़ा देकर (यमपुरी पहुँचाकर—मारकर) उनसे किले ले लेते हैं । महाराज शाहजी के सुपुत्र महाबाहु (पराक्रमी) शिवाजी बादशाहों को मृत्यु देकर उनसे बड़े-बड़े देश छीन लेते हैं । युद्ध में वीर-केसरी शिवाजी हिंदुओं के सिर बड़ाई देकर (उनको विजयी कहलवा कर) शत्रु-सेना के सार (तेज) को हर लेते हैं । भूषण कहते हैं कि श्री महादेवजी को मुंडमाला तथा उनके गणों (भूत प्रेत आदि) को खूब भोजन देकर भोंसिला राजा शिवाजी विजय के यश के पहाड़ लेते हैं अर्थात् शिवाजी शत्रुओं के सिर काटकर विजय की बड़ाई लेते हैं ।

विवरण—यहाँ शिवाजी द्वारा गढ़पालों को धर्मद्वार देकर किले लेने, शाहों को मृत्यु देकर उनका मुल्क लेने हिंदुओं को बड़ाई देकर शत्रु-सेना का तेज हर लेने और महादेव को मुंडमाला तथा उनके गणों को आहार देकर विजय लेने में वस्तु-विनिमय दिखाया गया है, अतः परिवृत्ति अलंकार है ।

परिसंख्या

लक्षण—दोहा

अनत बरजि कछु वस्तु जहँ, बरनत एकहि ठौर।
तेहि परिसंख्या कहत हैं, भूषन कवि दिलदौर ॥२४७॥

शब्दार्थ—दिलदौर = उदार हृदय, रसिक ।

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु को अन्य स्थान से निषेध कर किसी एक विशेष स्थान पर स्थापित किया जाय वहाँ रसिक कवि परिसंख्या अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारियतु,
तुरगन ही मैं चंचलाई परकीति है ।
भूषन भनत जहाँ पर लगैं बानन मैं,
कोक पच्छिनहि माहिं बिछुरन रीति है ॥
गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त ही के,
लोक बँधैं जहाँ एक सरजा की गुन प्रीति है ।
कंप कदली मैं, बारि-बुंद बदली मैं,
सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है ॥२४८॥

शब्दार्थ—दुरदै = द्विरद, हाथी । परकीति = प्रकृति, स्वभाव । कोक = चक्रवाक । बारिबुंद = पानी की बूँद, आँसू । अदली = आदिल, न्यायी ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि न्यायशील महाराज शिवाजी की राजनीति (शासन-व्यवस्था) ऐसी (श्रेष्ठ) है कि समस्त राज्य भर में केवल हाथी ही बड़े मदमस्त दिखाई पड़ते हैं, कोई मनुष्य मतवाला (शराब आदि नशे की चीजें पीकर मत्त होने वाला) नहीं दिखाई देता; चंचलता केवल घोड़ों की प्रकृति (स्वभाव) में ही पाई जाती है, और किस

में नहीं; वहाँ पर(पंख)केवल बानों में ही लगते हैं,अन्यथा कोई किसी का पर (शत्रु) नहीं लगता, नहीं होता; बिछुड़ने की रीति केवल चक्रवाक पक्षियों में ही पाई जाती है और कोई अपने प्रियजन से नहीं बिछुड़ता। समस्त राज्य में केवल गुणी पुरुष ही अपने गुणों से दूसरों के चित्तों को चुराने वाले हैं और कोई मनुष्य चोर नहीं दिखाई देता; वहाँ केवल शिवाजी की प्रेम-रूप रस्सी का बंधन है जिससे प्रजा बँधी है और किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं है; यदि कंप है तो केवल केले के वृक्षों में ही है, कोई मनुष्य भय से नहीं काँपता; जल की बूँदें केवल बादलों में ही हैं, किसी मनुष्य एवं स्त्री के नेत्रों में वे नहीं हैं अर्थात् कोई मनुष्य दुखी होकर रोता नहीं है—शिवाजी के राज में सब सुखी हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के राज्य में मत्तता; चंचलता, बिछुड़ना, चोरी, बंधन और कंप आदि का अन्य स्थानों से निषेध करके क्रमशः हाथी, घोड़े, कोक पक्षी, गुणी, प्रेमपाश और केले में ही होना कथन किया गया है, अतः परिसंख्या अलंकार है।

विकल्प

लक्षण—दोहा

कै वह कै यह कीजिए; जहँ कहनावति होय।
ताहि विकल्प बखानहीं, भूषन कवि सब कोय॥२४६॥

शब्दार्थ—कै=या। कहनावति=कथन।

अर्थ—जहाँ 'या तो यह करो या वह करो' इस प्रकार का कथन हो वहाँ सब कवि विकल्प अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ सिरीनगरै कि कवित्त बनाए।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेरि कि जोधपुरै कि चितौरहि धाए॥
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै कि दिलीसहु पै किन जाहु बोलाए।
भूषन गाय फिरौ महि मैं बनिहै चित चाह सिवाहि रिझाए॥२५०॥

शब्दार्थ—मोरँग = कूच बिहार के पश्चिम और पूर्निया के उत्तर का एक राज्य, यह हिमालय की तराई में है। कुमाऊँ = गढ़वाल की रियासत। सिरीनगरै = श्रीनगर (काश्मीर)। बाँधव = बाँधव की रियासत (रीवाँ)। अमेरि = आमेर, जयपुर; आमेर नाम का क़िला जयपुर में है। बनिहै चित चाह = मन की इच्छा पूर्ण होगी।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कवित्त बनाकर मोरँग जाओ, या कुमाऊँ जाओ या श्रीनगर जाओ अथवा रीवाँ जाओ, या आमेर जाओ या जोधपुर अथवा चित्तौड़ को दौड़ो और चाहे कुतुबशाह के पास (गोलकुंडा) या बीजापुर के बादशाह आदिलशाह के पास जाओ, अथवा निमंत्रित होकर दिल्लीश्वर के पास ही चले जाओ, या सारी पृथ्वी पर गाते फिरो किन्तु तुम्हारी मन की अभिलाषा शिवाजी को रिझाने पर ही पूरी होगी।

विवरण—यहाँ "मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ" आदि कथन करके विकल्प प्रकट किया गया है। परन्तु अंत में भूषण ने शिवाजी के पास जाने की निश्चयात्मक बात कह दी है अतः यहाँ अलंकार में त्रुटि आगई है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

देसन देसन नारि नरेसन भूषन यों सिख देहिं दया सों।
मंगन ह्वै करि, दंत गहौ तिन, कंत तुम्हैं हैं अनंत महा सों॥
कोट गहौ कि गहौ बन ओट कि फौज की जोट सजौ प्रभुता सों।
और करो किन कोटिक राह सलाह बिना बचिहौ न सिवा सों॥२५१॥

शब्दार्थ—सिख = शिक्षा, उपदेश। दंत गहौ तिन = दाँतों में तिनका पकड़ो अर्थात् दीनता प्रकट करो। अनंत महा = अनेकों बड़ी-बड़ी। कोट गहौ = किले का आश्रय लो, किले में बैठो। जोट = झुंड, समूह। प्रभुता सों = वैभव के साथ, समारोह से।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि देश देश के राजाओं को उनकी स्त्रियाँ

विकल होकर (इस प्रकार) सीख देती हैं कि हे पतिदेव तुम्हें बड़ी-बड़ी सौगंध है कि तुम भिक्षुक बन कर शिवाजी के सम्मुख मुख में तृन धारण कर लो (अर्थात् शिवाजी के सम्मुख दीन भाव प्रकट करो); क्योंकि तुम चाहे क़िलों का आश्रय लो, वा वनों की आड़ में जा छिपो अथवा प्रभुता से—गौरव से—फ़ौज़ों के झुंड इकट्ठे करो और चाहे अन्य करोड़ों ही उपाय क्यों न करो परन्तु बिना शिवाजी से मेल किये (संधि किये) आप का बचाव नहीं है ।

विवरण—यहाँ 'कोट गहौ कि गहौ बन ओट कि फौज की जोट सजौ' इस पद से विकल्प प्रकट होता है। यहाँ भी अंत में निश्चित पथ बता कर भूषण ने अलंकार में त्रुटि दिखाई है।

समाधि

लक्षण—दोहा

> और हेतु मिलि कै जहाँ, होत सुगम अति काज।
> ताहि समाधि बखानहीं, भूषन जे कविराज ॥२५२॥

अर्थ—जहाँ अन्य कारण के मिलने से कार्य में अत्यधिक सुगमता हो जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि समाधि अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

> वैर कियो सिव चाहत हो तब लौं अरि बाह्यो कटार कठैठो।
> यों ही मलिच्छहि छाँड़ै नहीं सरजा मन तापर रोस मैं पैठो॥
> भूषन क्यों अफ़जल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो।
> बीछू के घाव धुक्योई धरक्क ह्वै तौ लगि धाय धरा धरि बैठो ॥२५३॥

शब्दार्थ—बाह्यो=चलाया, वार किया। कठैठो=कठोर। अठपाव=(अष्टपाद) उपद्रव, शरारत। उमैठो=मरोड़। धुक्योई=गिरा ही था। धरक्क=धड़क, धक से।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी तो वैर करना चाहते ही थे

(अर्थात् अफ़ज़लखाँ के पास वे मेल करने गये थे, यह तो बहाना ही था, वास्तव में वे लड़ना ही चाहते थे) कि इतने ही में शत्रु (अफ़ज़लखाँ) ने अपनी कठोर तलवार का वार उन पर कर दिया। वीर-केसरी शिवाजी यों ही म्लेच्छों को नहीं छोड़ते तिस पर (अब तो) उनका मन क्रोध से भर गया था। भूषण कहते हैं कि भला अफ़ज़लखाँ फिर कैसे बचता, उसने तो शरारत कर के सिंह का पाँव मरोड़ दिया (अर्थात् उसने शिवाजी पर तलवार चला कर गुस्ताखी की)। बीछू के घाव से अफ़ज़लखाँ काँप कर गिरा ही था कि इतने में राजा शिवाजी दौड़कर उसे पृथिवी पर पकड़ बैठ गए।

विवरण—शिवाजी अफ़ज़लखाँ से शत्रुता रखना, एवं उसे मारना चाहते ही थे कि अचानक उसका शिवाजी पर तलवार का वार करना रूप कारण और मिल गया, जिससे शिवाजी का क्रोध और बढ़ गया तथा अफ़ज़लखाँ की मृत्यु का कार्य सुगम हो गया। इस प्रकार यहाँ समाधि अलंकार हुआ।

प्रथम समुच्चय

लक्षण—दोहा

एक बार ही जहँ भयो, बहु काजन को बंध।
ताहि समुच्चय कहत हैं, भूषन जे मतिबंध ॥२५४॥

शब्दार्थ—बंध=ग्रन्थि, गुफ, योग। मतिबंध=बुद्धिमान।

अर्थ—जहाँ बहुत से कार्यों का गुंफ (गठन) एक ही समय में वर्णन किया जाय वहाँ बुद्धिमान् लोग प्रथम समुच्चय अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

माँगि पठाय सिवा कछु देस वजीर अजानन बोल गहे ना।
दौरि लियो सरजा परनालो यों भूषन जो दिन दोय लगे ना ॥
धाक सों खाक बिजैपुर भो मुख आय गो खानखवास के फेना।
भै भरकी करकी धरकी दरकी दिल एदिलसाहि की सेना ॥२५५॥

शब्दार्थ—अजानन=अज्ञानियों ने, अथवा (अज + आनन) बकरे के समान मुखवाले (मुसलमानों का दाढ़ीदार मुँह बकरे के मुख के समान दिखाई देता है) । बोल = बात । गहे ना = ग्रहण नहीं किया, माना नहीं । खानखवास=खवासखाँ । फेना=झाग । भै= भय से । भरकी=भड़क गई । करकी=टूट गई, छिन्न-भिन्न हो गई । धरकी = धड़कने लगी, काँपने लगी । दरकी = फट गई, टूट गई । दिल=मन, साहस, हिम्मत ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने कुछ देश आदिलशाह से माँग भेजे परन्तु उसके मूर्ख अथवा (दाढ़ियों के कारण) बकरे के समान मुख वाले वज़ीरों ने इस बात पर ध्यान न दिया । तब शिवाजी ने धावा बोलकर परनाले के किले को ले लिया यहाँ तक कि उसको विजय करने में उनको दो दिन भी न लगे । इस विजय के आतंक से समस्त बीजापुर ख़ाक हो गया और खवासखाँ के मुख में बेहोशी के कारण झाग आ गई । आदिलशाह की समस्त सेना भय के कारण भड़क गई, छिन्न भिन्न हो गई दहल गई और उसका दिल (साहस) टूट गया ।

विवरण—यहाँ अन्तिम चरण में "भै भरकी, करकी, धरकी दरकी दिल एदिलसाहि की सेना" में कई कार्यों का एक समय में ही होना कथन किया गया है अतः प्रथम समुच्चय है ।

सूचना—'समुच्चय' के इस प्रथम भेद में गुण क्रिया आदि कार्यों का एक साथ होना वर्णित होता है, और पूर्वोक्त 'कारक दीपक' में केवल क्रियाओं का पूर्वापर क्रम से वर्णन होता है, इस समुच्चय में क्रम नहीं होता ।

द्वितीय समुच्चय

लक्षण—दोहा

वस्तु अनेकन को जहाँ, वरनत एकहि ठौर ।
दुतिय समुच्चय ताहि को, कहि भूषन कवि मौर ॥२५६॥

अर्थ—जहाँ बहुत सी वस्तुएँ एक ही स्थान पर वर्णित हों वहाँ श्रेष्ठ कवि द्वितीय समुच्चय अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

सुंदरता गुरुता प्रभुता भनि भूषन होत है आदर जामैं।
सज्जनता औ दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा मैं॥
दान कृपानहु को करिबो करिबो अभै दीनन को बर जामैं।
साहन सों रन टेक बिबेक इते गुन एक सिवा सरजा मैं॥२५७॥

शब्दार्थ—दान कृपानहु को करिबो = तलवार का दान देना अर्थात् युद्ध करना। अभै = निर्भय। रन टेक = युद्ध करने की प्रतिज्ञा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी में सुंदरता, बड़प्पन और प्रभुता आदि गुण, जिनसे कि आदर प्राप्त होता है, तथा प्रजा के प्रति सज्जनता, दयालुता, नम्रता, एवं कोमलता आदि झलकती हैं। और तलवार का दान देना अर्थात् युद्ध करना तथा दीनों को अभय या वरदान देना तथा बादशाहों से युद्ध के करने का प्रण और विचार, अकेले शिवाजी में इतने गुण विद्यमान हैं।

विवरण—यहाँ केवल एक शिवाजी में ही सुंदरता, बड़प्पन प्रभुता, सज्जनता, नम्रता आदि गुण तथा दान देना आदि अनेक क्रियाओं का होना कथन किया गया है।

सूचना—पूर्वोक्त पर्याय अलंकार के द्वितीय भेद में अनेक वस्तुओं का क्रम-पूर्वक एक आश्रय होता है और इस द्वितीय समुच्चय में अनेक वस्तुओं का एक आश्रय अवश्य होता है किन्तु वस्तुओं में कोई क्रम नहीं होता।

प्रत्यनीक

लक्षण—दोहा

जहँ जोरावर सत्रु के, पच्छी पै कर जोर।
प्रत्यनीक तासों कहैं, भूषन बुद्धि अमोर॥२८५॥

शब्दार्थ—पक्षी=पक्ष वाला, संबंधी। प्रत्यनीक=प्रति+अनीक (सेना), सेना के प्रति, सम्बन्धी के प्रति।

अर्थ—जहाँ बलवान शत्रु पर बस न चलने पर उसके पक्षवालों पर ज़ोर (ज़ुल्म) किया जाय वहाँ पर श्रेष्ठ बुद्धि मनुष्य प्रत्यनीक अलंकार कहते हैं।

सूचना—जहाँ शत्रु पक्ष वालों से वैर अथवा मित्र पक्ष वालों से प्रेम कथन किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है। प्रत्यनीक का अर्थ ही 'सम्बन्धी के प्रति' है।

उदाहरण—अरसात सवैया *

लाज धरौ सिवजू सों लरौ सब सैयद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्याँ गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसायकै॥
हिंदुन के पति सों न बिसात सतावत हिंदु गरीबन पाय कै।
लीजै कलंक न दिल्लि के बालम आलम आलमगीर कहाय कै॥२५०॥

शब्दार्थ—लाज धरौ=लज्जा धारण करो, अपनी मान मर्यादा का खयाल करो, कुछ शर्म करो। पठाय कै=भेजकर। रिसाय कै=क्रोधित होकर। हिंदुन के पति=शिवाजी। बिसात=बस चलना। आलम=आलिम, इल्म वाला, विद्वान्, पंडित। बालम=प्रिय, पति। आलमगीर=संसार-विजयी, औरंगजेब की पदवी।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे आलमगीर तुम्हें यदि कुछ शर्म हो तो सैयद, शेख और पठानों (प्रमुख सरदारों) को भेजकर शिवाजी से लड़ो। इधर दक्षिण में जब तुम कुछ अपने किले हार गये तो गुस्से होकर (झुँझलाकर) तुमने वहाँ (मथुरा और काशी आदि पवित्र स्थानों में) देवालय क्यों तोड़ दिये? हिंदूपति शिवाजी से तुम्हार

---

* इसमें पहले सात भगण (S।।) और अन्त में एक रगण (S।S) होता है।

कुछ वस नहीं चलता तो वेचारे हिंदुओं को गरीब देखकर क्यों कष्ट देते हो ? (इसमें भला, कोई बहादुरी प्रकट होती है ?) हे दिल्लीपति विद्वान् और आलमगीर कहला कर तुम्हें (ऐसे अनुचित कार्य करके) अपने नाम पर कलंक नहीं लगाना चाहिए।

विवरण—यहाँ गढ़ को हार जाने पर मठों पर जाकर अपना ज़ोर दिखाना तथा हिंदूपति पर वश न चलने पर गरीब हिंदुओं पर अत्याचार करने का वर्णन किया गया है, अत: प्रत्यनीक अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गौर गरवीले, अरवीले राठवर गह्यो
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरष तें।
कोट के कँगूरन मैं गोलंदाज़ तीरंदाज,
राखे हैं लगाय गोली तीरन बरषतें ॥
कै कै सावधान किरवान कसि कम्मरन,
सुभट अमान चहुँ ओरन करषतें।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तैं चढ़ो,
राति के सहारे ते अराति अमरषतें ॥२५६॥

शब्दार्थ— गौर = छन्द १३३ के शब्दार्थ में देखो। गरबीले= गर्व वाले, अभिमानी। अरबीले=अड़नेवाले, हठीले। राठवर= राठौर, क्षत्रियों की एक जाति, जिनका जोधपुर में राज्य रहा है। यहाँ उदयभानु (छन्द ९९ देखो) से तात्पर्य है। लोहगढ़= जुनेर के दक्षिण में इद्रायणी की घाटी के पश्चिम और पहाड़ पर यह किला है। मिर्जा राजा जयसिंह ने जब शिवाजी की संधि औरंगज़ेब से कराई थी, तब यह किला भी शिवाजी ने औरंगज़ेब को देदिया था। पीछे १६७० में सिंहगढ़-विजय के अनन्तर शिवाजी के सेनापति मोरोपंत ने इसे विजय कर मराठा राज्य में मिलाया था।

हरषतें=हर्षित होते हुए, खुशी खुशी। कँगूरन=कँगूरे, किले की दीवार पर छोटी छोटी चोटियाँ सी बनी होती हैं, व ही कंगूरे कहलाते हैं। गोली तीरन बरषतें=गोली और तीरों की बर्षा करते हुए। कम्मरन= कमर में। अमान=अनगिनत। करषतें=उत्तेजित करते हुए। तैं=तू (शिवाजी)। राति के सहारे=रात्रि के अंधकार में। अराति=शत्रु। अमरष=अमर्ष, क्रोध।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि अभिमानी गौड़ क्षत्रियों एवं हठी राठौड़ों ने हिम्मत से ओर खुशी होते हुए जिन लोहगढ़ और सिंहगढ़ के किलों को लिया था और जिन क़िलों के कँगूरों पर उन्होंने गोलंदाज़ और तीरंदाज़ गोली और तीर बरसाते हुए खड़े कर रक्खे थे, हे शिवाजी तुम शत्रु पर क्रोध करके (शत्रु के नाश की इच्छा से) कमर में तलवार कसे हुए अनेक वीरों को चारों ओर से बढ़ावा देते हुए (या बटोरते हुए) और उन्हें सावधान कर के रात का सहारा (रात के अंधकार का सहारा) पाकर उन क़िलों पर चढ़ गये।

विवरण—यहाँ अलंकार स्पष्ट नहीं है। इसमें प्रत्यनीक अलंकार इस प्रकार घटाया जा सकता है कि शिवाजी को चढ़ाई करनी चाहिए थी दिल्ली पर, पर उन्होंने चढ़ाई की औरंगज़ेब के पक्षपाती हिन्दू राजाओं पर, पर भूषण का यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता।

अर्थापत्ति (काव्यार्थापत्ति)

लक्षण—दोहा

वह कीन्ह्यो तो यह कहा, यों कहनावति होय।
अर्थापत्ति बखानहीं, तहाँ सयाने लोय ॥२६१॥

शब्दार्थ—अर्थापत्ति=अर्थ+अपत्ति=अर्थ का आपत्ति, अर्थ का आ पड़ना। लोय=लोग।

रखें तो अच्छी बात है, इसमें आपका कल्याण है। सब सुलतान डरकर जिसे खिराज देते हैं, उसी अखंडनीय(अदमनीय) औरंगज़ेब की दिल्ली की सेना को जब (शिवाजी ने) रौंद डाला तो भला तुम्हारी उसके सामने क्या चलेगी।

विवरण—जिस शिवाजी ने औरंगज़ेब को जीत लिया उनका अन्य (गोलकुंडा, बीजापुर और अहमदनगर आदि रियासतों के) बादशाहों को जीतना क्या कठिन है। यही अर्थापत्ति अंलकार है।

काव्यलिंग

लक्षण—दोहा

है दिढ़ाइबे जोग जो, ताको करत दिढ़ाव।
काव्यलिंग तासों कहैं, भूषन जे कविराव ॥२६३॥

शब्दार्थ—दिढ़ाइबे=दृढ़ करने, समर्थन करने।

अर्थ—जो वस्तु समर्थन करने योग्य हो उसका जहाँ (ज्ञापक हेतु द्वारा) समर्थन किया जाय वहाँ कविराज काव्यलिंग अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मनहरण दंडक

साइति लै लीजिए बिलाइति को सर कीजै,
बलख बिलायति को बंदी अरि डावरे।
भूषन भनत कीजै उत्तरी भुवाल बस,
पूरब के लीजिए रसाल गज छावरे॥
दच्छिन के नाथ के सिपाहिन सों बैर करि,
अवरंग साहिजू कहाइए न बावरे।
कैसे सिवराज मानु देत अवरंगै गढ़,
गाढ़े गढ़पती गढ़ लीन्हे और रावरे ॥२६४॥

शब्दार्थ—साइति=मुहूर्त्त। सर= विजय। बलख= तुर्किस्तान का एक शहर। डावरे=लड़के, बच्चे (मारवाड़ी भाषा)। रसाल=सुन्दर। गज-छावरे--गज-शावक, हाथी के बच्चे। दच्छिन के नाथ=शिवाजी। मानु=सम्मान। गाढ़=गाढ़ा, मज़बूत, दृढ़।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब बादशाह ! चाहे तुम मुहूर्त निकलवा कर विलायत को विजय कर लो और बलख आदि विदेशों के शत्रुओं के बच्चों को बंदी बनालो, चाहे तुम उत्तर के (समस्त) राजाओं को अपने अधीन कर लो, और पूर्व दिशा के सुंदर-सुंदर हाथियों के बच्चों को भी (उनके स्वामी राजाओं से भेंट रूप में) ले लो, अथवा जीत लो, परन्तु हे औरंगज़ेब बादशाह, दक्षिणाधीश राजा शिवाजी के वीर सिपाहियों से शत्रुता करके तुम पागल न कहलाओ। क्योंकि जिस (शिवाजी) ने तुम्हारे बड़े-बड़े गढ़पतियों के दृढ़ किले भी विजय कर लिये वह भला कैसे तुम्हें सम्मान और किले देगा।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब को शिवाजी से न लड़ने की सलाह दी है और इसका समर्थन कवित्त के अन्तिम चरण में 'गढ़ लीन्हे और रावरे' से किया है।

अर्थान्तरन्यास

लक्षण—दोहा

कह्यो अरथ जहँ ही लियो, और अरथ उल्लेख।
सो अर्थान्तरन्यास है, कहि सामान्य बिसेख ॥२६५॥

शब्दार्थ—सामान्य = साधारण । बिसेख = विशेष । अर्थान्तर न्यास = अन्य अर्थ की स्थापना करना।

अर्थ—कथितार्थ के समर्थन के लिए जहाँ अन्य अर्थ का उल्लेख किया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है। इसमें सामान्य बात का समर्थन विशेष बात से होता है और विशेष बात का समर्थन सामान्य बात से होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि,
बारिध को लंक रघुनंदन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी बिराट मैं बड़ाई है॥

भूषन भनत है गुसलखाने मैं खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ॥२६६॥

शब्दार्थ—साहिबी=वैभव, प्रतिष्ठा, इज्ज़त। अवरंग साहिबी= औरंगज़ेब का बड़प्पन, इज्ज़त। हथ्याय=हस्तगत कर, ज़बर्दस्ती हाथ में लेकर। हरि लाई=छीन ली। हिम्मतै=हिम्मत ही।

अर्थ—श्रीरामचन्द्र जी ने बिना किसी चतुरंगिनी-सेना की सहायता के, केवल बंदरों को साथ लेकर समुद्र का पुल बाँध लंका को जला दिया (लंका को हनुमान जी ने जलाया था और वह भी लंका की चढ़ाई से पूर्व, जलाने से यहाँ नष्ट करने का तात्पर्य समझना चाहिए)। अकेले अर्जुन ने भी द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह जैसे महाबली लाखों वीरों को जीत कर विराट नगर में कीर्ति प्राप्त की। भूषण कवि कहते हैं कि हे चिरजीवी शिवाजी महाराज, यदि तुम गुसलखाने में औरंगज़ेब का प्रभुत्व (प्रतिष्ठा) हर कर ले आये—औरंगज़ेब का मान-मर्दन कर साफ़ निकल आये—तो क्या आश्चर्य हो गया, क्योंकि वीरों की तो सदा हिम्मत ही हथियार होती आई है।

विवरण—यहाँ छंद के प्रथम तीन चरणों में कही गई विशेष बातों का चौथे चरण के "बीरन की हिम्मतै हथ्यार होत आई है" इस सामान्य वाक्य से पुष्टि की गई है, अतः अर्थान्तरन्यास है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

साहितनै सरजा समरत्थ करी करनी धरनी पर नीकी।
भूलिगे भोज से विक्रम से औ भई बलि वेनु की कीरति फीकी।
भूषन भिच्छुक भूप भए भलि भीख लै केवल भौंसिला ही की।
नैसुक रीझि धनेस करै लखि ऐसियै रीति सदा सिवजी की ॥२६७॥

शब्दार्थ—बलि = राजा बलि, जिसे वामन ने छला था। बेनु = चक्रवर्त्ती राजा वेणु, जिसकी जंघाओं के मथने से निषाद और पृथु की उत्पत्ति हुई। भलि भीख लै=भली भिक्षा लेकर, खूब भिक्षा लेकर। नैसुक = थोड़ा सा। धनेस कुबेर,देवताओं का खज़ानची।

अर्थ—शाहजी के पुत्र सब प्रकार से समर्थ वीर-केसरी महाराज शिवाजी ने धरनी (पृथ्वी) पर ऐसे-ऐसे उत्तम कार्य किये हैं कि उनके सम्मुख लोग राजा भोज और विक्रमादित्य आदि प्रतापी राजाओं के नाम भूल गये हैं और बलि तथा वेणु जैसे महादानी राजाओं का यश भी फीका पड़ गया है। भिक्षुक लोग केवल भौंसिला राजा शिवाजी की ही अत्यधिक भिक्षा लेकर राजा बन गये हैं। शिवाजी का सदा ऐसा ही ढंग देखा गया है कि किसी पर थोड़ा-सा ही खुश होने पर उसे कुबेर के समान धनपति कर देते हैं।

विवरण—यहाँ पहले शिवाजी की प्रशंसा में विशेष-विशेष बातें कही गई हैं, पुनः अन्तिम चरण में उसका 'लखि ऐसियै रीति सदा सिवजी की' इस साधारण बात द्वारा उसका समर्थन किया गया है। यह उदाहरण ठीक नहीं है। यदि यहाँ शिवाजी की बातों का यह कह कर समर्थन किया जाता कि बड़े लोग थोड़े में ही प्रसन्न होकर बड़ा-बड़ा दान कर देते हैं, तो उदाहरण ठीक बैठता।

प्रौढोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ उतकरष अहेत को, बरनत हैं करि हेत।
प्रौढोकति तासों कहत, भूषन कवि-बिरदेत ॥२६८॥

शब्दार्थ—अहेत = अहेतु,कारण का अभाव। बिरदेत=नामी।

अर्थ—जहाँ उत्कर्ष के अहेतु को हेतु कह कर वर्णन किया जाय,अर्थात्

जो उत्कर्ष का कारण न हो उसे कारण मान कर वर्णन किया जाय, वहाँ प्रसिद्ध कवि प्रोढौक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

मानसर-बासी हंस बंस न समान होत,
चन्दन सो घस्यो घनसारऊ घरीक है ॥
नारद की सारद की हाँसी मैं कहाँ की आभ,
सरद की सुरसरी को न पुंडरीक है ।
भूपन भनत छक्यो छीरधि मैं थाह लेत,
फेन लपटानो ऐरावत को करी कहै ?
कयलास-ईस, ईस-सीस रजनीस वहौ,
अवनीस सिवा के न जस को सरीक है ॥२६६॥

शब्दार्थ—मानसर=मानसरोवर। घनसारऊ=कपूर भी। घरीक = घड़ी एक। सारद = शारदा, सरस्वती। आभ = प्रकाश। सुरसरी = गंगा। पुंडरीक = श्वेत कमल। छक्यो = मस्त, थकित। छीरधि = क्षीर सागर, दूध का समुद्र। कयलास-ईस = कैलास के स्वामी, शिवजी। रजनीस = चन्द्रमा। सरीक = शरीक, हिस्सेदार, बराबर।

अर्थ—मानसरावर में रहने वाला हंस-समूह (उज्ज्वलता में शिवाजी के यश की) समता नहीं कर सकता, चन्दन में घिसा हुआ कपूर भी घड़ी भर ही (शिवाजी के यश के सम्मुख) ठहर सकता है। नारद और सरस्वती की हँसी में भी वह आभा कहाँ और शरद ऋतु की सुरसरी (गंगाजी) में (शरद ऋतु में नदियाँ निर्मल होती हैं) पैदा हुआ श्वेत कमल भी शुभ्रता में उसके बराबर नहीं है। भूपण कवि कहते हैं कि क्षीर समुद्र की थाह लेने में थके हुए (अर्थात् दूध के सागर में बहुत नहाये हुए) और उसकी (सफेद) फेन को लिपटाए हुए ऐरावत (इन्द्र का सफेद हाथी) को भी (शिवाजी के यश के समान) कौन कह

सकता है ? (शुभ्र) कैलास का स्वामी महादेव, और उस महादेव के सिर पर रहने वाला वह निशानाथ चन्द्रमा भी पृथ्वीपति शिवाजी के यश की बराबरी नहीं कर सकता।

विवरण—मानसर-वासी होने से हंस कुछ अधिक सफेद नहीं हो जाते, इसी प्रकार चन्दन के संग से कपूर, नारद और शारदा की होने से हँसी और शरदऋतु की गंगा में पैदा होने से श्वेत कमल, और क्षीर सागर की फेन लिपट जाने से ऐरावत और कैलास-वासी होने से शिव और शिव के सिर पर होने से चन्द्रमा अधिक उज्ज्वल नहीं होते, पर यहाँ उन्हें ही उत्कर्ष का कारण माना गया है, अतः यहाँ प्रोढ़ोक्ति अलंकार है।

संभावना

लक्षण—दोहा

"जु यों होय तो होय इमि," जहँ सम्भावन होय।
ताहि कहत सम्भावना, कवि भूषन सब कोय ॥२७०॥

अर्थ—'यदि ऐसा हो तो ऐसा हो जाता' जहाँ इस प्रकार की संभावना पाई जाय वहाँ सब कवि संभावना अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

लोमस की ऐसी आयु होय कौनहू उपाय,
तापर कवच जो करनवारो धरिए।
ताहू पर हूजिए सहसबाहु ता पर,
सहस गुनो साहस जो भीमहुँ ते करिए॥
भूषन कहैं यों अवरंगजू सो उमराव,
नाहक कहो तौ जाय दच्छिन मैं मरिए।
चलै न कछू इलाज भेजियत वे ही काज,
ऐसो होय साज तौ सिवा सों जाय लरिए॥२७१॥

शब्दार्थ—लोमस = लोमश एक ऋषि, जो बड़ी लंबी आयु वाले माने जाते हैं। अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, लोमश तथा मार्कण्डेय ये सात दीर्घजीवी माने जाते हैं। कवच करनवारो= राजा कर्ण वाला अभेद्य कवच। भीमहु ते=भीम से भी। सहसबाहु= सहस्रबाहु कार्त्तवीर्य, वह एक पराक्रमी राजा था। इसने परशुराम के पिता जमदग्नि का ऋषि का सिर काट लिया था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब से उसके उमराव इस प्रकार निवेदन करते हैं यदि किसी उपाय से लोमश के समान (दीर्घ) आयु हो जाय, और उस के बाद कर्ण वाला (अभेद्य) कवच धारण कर लें और उस पर सहस्रबाहु की तरह सहस्र-भुजाएँ होजायँ, फिर भीमसेन में जितना साहस था उससे भी हज़ारगुणा साहस हममें होजाय—यदि ऐसा साज हो जाय—तब तो हम जाकर शिवाजी से लड़ें, अन्यथा वहाँ जाना व्यर्थ है, कहें तो हम नाहक दक्षिण में जाकर मरें, क्योंकि हमारा तो वहाँ कुछ बस नही चलता, व्यर्थ ही आप हमें वहाँ भेजते हैं।

विवरण—यदि हम लोमश ऋषि के समान दीर्घजीवी हों और कर्ण का कवच धारण करलें, सहस्रभुज के समान हमारी सहस्रभुजाएँ हो जायँ तथा भीमसेन से अधिक पराक्रमी हो तब तो हम शिवाजी से युद्ध कर सकते हैं। इस कथन द्वारा 'यदि ऐसा हो तब ऐसा हो सकता है' इस भाव को सूचित किया गया है, जो कि संभावना अलंकार में अभीष्ट है।

मिथ्याध्यवसित

लक्षण—दोहा

झूठ अरथ की सिद्धि को, झूठो बरनत आन।
मिथ्याध्यवसित कहत हैं, भूषन सुकवि सुजान ॥२७२॥

शब्दार्थ—मिथ्याध्यवसित = मिथ्या (झूठ) का निश्चय।

अर्थ—किसी मिथ्या को सिद्ध करने के लिए जहाँ अन्य मिथ्या (झूठ) बात कही जाय वहाँ चतुर कवि मिथ्याध्यवसित अलंकार कहते हैं।

सूचना—यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी मिथ्या बात की सिद्धि के लिए दूसरी मिथ्या बात इसलिए कही जाती है कि वह दूसरी झूठी बात, सिद्ध की जाने वाली झूठी बात की वास्तविकता को प्रकट कर दे।

उदाहरण—दोहा

पग रन मैं चल यों लसैं, ज्यों अंगद पद ऐन।
ध्रुव सो भुव सो मेरु सो, सिव सरजा को बैन ॥२७२॥

शब्दार्थ –चल = चलायमान, अस्थिर। ऐन = ठीक।

अर्थ—शिवाजी के पैर युद्ध-भूमि में ठीक उसी प्रकार चलायमान हैं जिस प्रकार (रावण की सभा में) अंगद का पैर था और उनका वचन भी ध्रुव तारा, पृथिवी (हिंदू पृथ्वी को स्थिर मानते हैं) और मेरु पर्वत के समान चलायमान है।

विवरण—यहाँ युद्ध में शिवाजी के पैरों की अस्थिरता तथा उनके वचनों की अस्थिरता कवि ने कही है, जो कि मिथ्या है। इस मिथ्या की पुष्टि के लिए उपमा अंगद के पैर, ध्रुव, पृथ्वी और मेरु से दी है जो कि जगत् में अपनी स्थिरता के लिए प्रसिद्ध हैं, इस तरह अपने पूर्व कथन की पुष्टि के लिए एक और मिथ्या बात कही है। अतः तात्पर्य यह निकलता है कि जिस तरह अंगद के पैर स्थिर थे, जिस तरह ध्रुव, पृथ्वी और मेरु स्थिर हैं, उसी तरह शिवाजी रण में स्थिर और वचन के पक्के हैं।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

मेरु सम छोटो पन, सागर सो छोटो मन,
धनद को धन ऐसो छोटो जग जाहि को।

सूरज सो सीरो तेज, चाँदनी सी कारी किति,
अमिय सो कटु लागै दरसन ताहि को।
कुलिस सो कोमल कृपान अरि भंजिबे को;
भूषन भनत भारी भूप भौंसिलाहि को।
भुव सम चल पद सदा महि-मंडल मैं,
ध्रुव सो चपल ध्रुव बल सिव साहि को ॥२७४॥

शब्दार्थ—पन = प्रण। धनद=कुबेर। सीरो=ठंढा। कित्ति= कीर्ति। अमिय=अमृत। कुलिस=कुलिश, वज्र। भंजिबे=मारने को।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि संसार में शिवाजी का प्रण मेरु पर्वत के समान छोटा, मन समुद्र के समान संकुचित और धन कुबेर के धन के समान अल्प है। उनका तेज सूर्य के सामन शीतल, कीर्ति चाँदनी के समान काली और दर्शन अमृत के तुल्य कड़वा लगता है। शत्रुओं का नाश करने के लिए भौंसिला महाराज शिवाजी की जो तलवार है वह वज्र के समान कोमल है, महि-मंडल में उनके पैर पृथ्वी के समान सदा चलायमान हैं (काव्य-परम्परा में पृथ्वी अचल है) और उनका अचल बल ध्रुव तारे के समान चंचल है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के प्रण की लघुता, मन की छुटाई धन का थोड़ापन, तेज की शीतलता, कीर्ति की श्यामता, दर्शन की कटुता, तलवार की कोमलता, पैरों और बल की चंचलता आदि झूठी बातों को सच्चा सिद्ध करने के लिए क्रमशः मेरु, समुद्र, कुबेर का धन, सूर्य, चाँदनी, अमृत, वज्र, पृथ्वी, तथा ध्रुव-नक्षत्र की उपमा दी है, जो क्रमशः अपनी महत्ता, विशालता, अधिकता, ताप, शुभ्रता, मधुरता, कठोरता तथा स्थिरता के लिए प्रसिद्ध हैं। इस तरह एक मिथ्या को दूसरी मिथ्या बात से पुष्ट करने पर उसका अर्थ दूसरा ही हो जाता है।

उल्लास

लक्षण—दोहा

एकहि के गुन दोष ते, औरै को गुन दोस ।
बरनत हैं उल्लास सो, सकल सुकवि मति पोस ॥२७५॥

शब्दार्थ—मतिपोस=मति पुष्ट, विशाल बुद्धि, श्रेष्ठ बुद्धि वाले।

अर्थ—जहाँ एक वस्तु के गुण या दोष से दूसरी वस्तु में भी गुण या दोष होना वर्णन किया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि उल्लास अलंकार कहते हैं।

सूचना—उल्लास शब्द का अर्थ "प्रबल सम्बन्ध" है। इस के चार भेद हैं। एक के गुण से दूसरे में दोष का होना, या दोष से गुण का होना अथवा गुण से गुण का होना, या दोष से दोष का होना।

उदाहरण (गुण से दोष)—मालती सवैया

काज मही सिवराज बली हिंदुवान बढ़ाइबे को उर ऊटै।
भूषन भू निरम्लेच्छ करी चहै, म्लेच्छन मारिबे को रन जूटै॥
हिंदु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै॥
चंद अलोक तै लोक सुखी यहि कोक अभागे को सोक न छूटै॥२७६॥

शब्दार्थ—ऊटै=मनसूबे बाँधता है, उमंग में आता है। जूटै=जुटता है, ठानता है,। टूटै=टूटता है, आ गिरता है। अलोक=आलोक, प्रकाश, (चाँदनी)। लोक=दुनिया।

अर्थ—महाबली शिवाजी पृथ्वी पर हिन्दुओं का काम बढ़ाने के लिए हृदय में मनसूबे बाँधते अथवा पृथ्वी पर हिन्दुओं की उन्नति के लिए शिवाजी हृदय में उत्साहित होते हैं (कई प्रतियों में 'काज' के स्थान पर 'राज' पाठ है, जो अधिक उपयुक्त लगता है, उसका अर्थ इस प्रकार होगा, कि महाबली शिवाजी पृथिवी पर हिन्दुओं का राज्य बढ़ाने के

मनसूबे बाँधते हैं) भूषण कहते हैं कि वे पृथिवी को म्लेच्छों से रहित करना चाहते हैं (अतः) म्लेच्छों को मारने के लिए ही वे युद्ध में जुटते हैं—युद्ध ठानते हैं। युद्ध में हिन्दुओं को बचाते बचाते भी अमरसिंह चंदावत-सा कोई हिंदू बीच में आ ही टूटता है, बीच में आकर मारा ही जाता है। यद्यपि चन्द्रमा के प्रकाश से समस्त संसार के प्राणी सुखी रहते हैं परन्तु अभागे चक्रवाक का शोक नहीं मिटता (अर्थात् शिवाजी रूपी चन्द्र की कीर्तिरूपी प्रकाश से सब हिंदू प्रजा प्रसन्न है परन्तु किसी किसी अमरसिंह चंदावत रूपी चक्रवाक को उससे कष्ट ही होता है। (अमरसिंह चंदावत मुसलमानों का साथी होने से शिवाजी का विरोधी था) ।

विवरण—यहाँ शिवाजी का हिन्दू राज्य स्थापन के हेतु युद्ध करना एवं हिन्दुओं को बचाना रूप गुण कार्य से चंदावत अमरसिंह का मारा जाना रूप दोष होना कथन किया गया है, और इसी प्रकार (शिवाजी के यशरूपी) चन्द्र के प्रकाश से संसार के सुखी होने (रूप) गुण से (अमरसिंहरूपी) चक्रवाक का दुखी होना (रूप) दोष प्रकट किया गया है ।

दूसरा उदाहरण (दोष से गुण)—कवित्त मनहरण

देस दहपट्ट कीने लूटिकै खजाने लीने,
बचै न गढोई काहू गढ़ सिरताज के।
तोरादार सकल तिहारे मनसबदार,
डाँड़े, जिनके सुभाय जंग दै मिजाज के ॥*

पाठान्तर—तोरि डारे सकल तिहारे मनसबदार,
डाँड़े जिनके सुभाय जय्यद मिजाज के।

अर्थात् तुम्हारे सब मनसबदारों को मारकर निर्बल कर दिया और जो जयद मिज़ाज (शाही खयाल वाले या बड़े मिज़ाज़ी स्वभाववाले) थे, उनको दंडित किया ।

भूषन भनत बादसाह को यों लोग सब,
वचन सिखावत सलाह की इलाज के।
डाबरे की बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै वैरु,
रावरे के बैर होत काज सिवराज के ॥२७७॥

शब्दार्थ—दहपट्ट=बरबाद, नष्टभ्रष्ट । गढ़ सिरताज=गढ़ श्रेष्ठ । तोरादार=मनसबदार, वे सरदार जिनके पैरों में सोने के तोड़े (कड़े) पड़े हों, इन्हें ताजीमी भी कहते हैं अथवा बंदूकधारी। जंग दे=युद्ध करके । मिजाज के=अभिमानी । डाबरे=बालक ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सब लोग बादशाह औरंगज़ेब को मेल करने के उपाय का उपदेश करते हुए इस प्रकार कहते हैं कि शिवाजी ने समस्त देशों को उजाड़ कर बरबाद कर दिया और सारे खज़ाने लूट लिये और किसी भी श्रेष्ठ गढ़ (प्रसिद्ध गढ़) का गढ़पति नहीं बचा । बड़े अभिमानी स्वभाव वाले जितने भी आपके तोड़ेदार तथा मनसबदार सरदार हैं, उन सबको उसने युद्ध कर के दंडित कर दिया है । अतः आप बालक-बुद्धि होकर तथा बावले होकर उससे बैर न करो क्योंकि आपके इस भाँति उससे बैर करने पर उसका काम बनता है ।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब के बैर करने रूप दोष से शिवाजी के 'काम बनना' रूप गुण का प्रकट होना कथन किया गया है ।

तीसरा उदाहरण (गुण से गुण)—दोहा

नृप सभान में आपनी, होन बड़ाई काज ।
साहितनै सिवराज के, करत कवित कविराज ॥२७८॥

अर्थ—राजसभाओं में अपनी बड़ाई होने के लिए बड़े-बड़े श्रेष्ठ कवि महाराज शिवाजी (की प्रशंसा एवं गुणों) के कवित्त बनाते हैं ।

विवरण—यहाँ शिवाजी के प्रशंसामय कवित्त बनाने रूप गुण से कवियों का राजसभाओं में मान होना रूप गुण का प्रकट होना कथन किया गया है ।

चौथा उदाहरण (दोष से दोष)—दोहा

सिव सरजा के बैर को, यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै, कूटे गये वजीर ॥२७९॥

अर्थ—हे जगद्विजयी औरंगज़ेब बादशाह ! शिवाजी से शत्रुता करने का यह फल हुआ कि तुम्हारे हाथ से (कब्ज़े से) सारे क़िले छूट गये और तुम्हारे वज़ीर भी पीटे गये।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब के शिवाजी से शत्रुता करने रूप दोष से किलों का हाथ से जाने एवं वज़ीरों के पिटने रूप दोष का प्रकट होना कथन किया गया है।

पाँचवाँ उदाहरण (दोष से दोष)—कवित्त मनहरण

दौलति दिली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।
भूषन भनत लरि लरि सरजा सों जंग,
निपट अभंग गढ़ कोट सब हारे तैं॥
सुधर्‌यो न एकौ काज भेजि भेजि बेही काज,
बड़े बड़े बे इलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहे मेर करु, सिवाजी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं ॥२८०॥

शब्दार्थ—बब्बर=बाबर, भारतवर्ष में मुगल वंश का सब से पहला बादशाह, अकबर का दादा। अकब्बर=अकबर, औरंगज़ेब का परदादा। बिरद=यश, नेकनामी। तैं=तूने, बिसारे=भुलाये। अभंग=अखंड, सुदृढ़। गैर करि=बेजा करके अनुचित करके, पराया बना कर। नैर=नगर, शहर।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब ! दिल्ली के समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करके आलमगीर नाम से तो तू प्रसिद्ध हो गया परन्तु तूने

(अपने पुरखा) बाबर और अकबर की कीर्ति को भुला दिया (अर्थात् हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक-सा समझने के कारण उनकी जो प्रसिद्धि थी, उसे तूने भुला दिया)। शिवाजी से लड़ लड़ कर अपने समस्त सर्वथा अभेद्य (सुदृढ़) क़िले भी तूने खो दिये हैं। तेरा एक भी काम नहीं बना, तूने बेबस (निरुपाय) बड़े बड़े उमरावों को उसी काम के लिए (शिवाजी को विजय करने के लिए) भेज भेज कर मरवा डाला। अथवा बेकाज ही (व्यर्थ ही) बड़े बड़े निरुपाय उमराओं को भेजकर मरवा डाला। मेरी सम्मति से तो तू अब भी शिवाजी से मेल (संधि) कर ले। उससे शत्रुता पैदा कर के और अनुचित कार्रवाई करके या उसे पराया बनाकर तूने अपने शहर व्यर्थ ही उजड़वा दिये।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब के शिवाजी से शत्रुता करने रूप दोष से नगरों के उजड़ना रूप दोष का कथन किया गया है।

अवज्ञा

लक्षण—दोहा

औरे के गुन दोस तें होत न जहँ गुन दोस।
तहाँ अवज्ञा होत है, भनि भूषन मतिपोस ॥२८१॥

अर्थ—जहाँ किसी वस्तु के गुण-दोष (सम्बन्ध) से अन्य वस्तु में गुण-दोष न हो वहाँ उन्नत-बुद्धि भूषण अवज्ञा अलंकार कहते हैं।

सूचना—यह 'उल्लास' का ठीक उलटा है। इसमें एक बात के गुण-दोष से दूसरी वस्तु का गुण वा दोष न प्राप्त करना दिखाया जाता है।

उदाहरण—मालती सवैया

औरन के अनबाढ़ें कहा अरु बाढ़े कहा नहिं होत चहा है।
औरन के अनरीझे कहा अरु रीझे कहा न मिटावत हा है॥
भूषन श्री सिवराजहि माँगिए एक दुनी विच दानि महा है।
मंगन औरन के दरबार गए तौ कहा न गए तौ कहा है॥२८२॥

शब्दार्थ—बाढ़ै=बढ़ने पर, उन्नत होने पर । चहा = इच्छित बात, इच्छा । हा = दुःख-बोधक शब्द, 'हाय हाय' कष्ट ।

अर्थ—अन्य लोगों के न बढ़ने से और बढ़ने से क्या लाभ, जब कि उनसे याचकों की इच्छा पूरी नहीं होती । अन्य लोगों के अप्रसन्न होने से या प्रसन्न होने से ही क्या हुआ जब कि वे उनकी "हा हा" को नहीं मिटा सकते—उनके कष्ट दूर नहीं कर सकते । भूषण कवि कहते हैं कि इसलिए केवल एक शिवाजी से ही माँगना चाहिए क्योंकि दुनियाँ में वे ही एक बड़े दानी हैं । माँगने के लिए अन्य राजाओं के दरबार में गये तो क्या और न गये तो क्या ! (अर्थात् अन्य स्थानों पर जाने से थोड़ा बहुत चाहे मिल भी जाय पर याचकों की इच्छा-पूर्ति नहीं होती) ।

विवरण—यहाँ यह दिखाया गया है कि शिवाजी के अतिरिक्त अन्य राजाओं की उन्नति का और अवनति का, अथवा उनकी प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता के कवियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अतः अवज्ञा अलंकार है ।

अनुज्ञा

लक्षण—दोहा

जहाँ सरस गुन देखि कै, करै दोस की हौस ।
तहाँ अनुज्ञा होत है, भूषन कवि यहि रौस ॥२८३॥

शब्दार्थ—यहि रौस=इसी रविस से, इसी ढग से, इसी क्रम से ।

अर्थ—जहाँ सुन्दर गुण देखकर दोष की इच्छा की जाय अर्थात् जहाँ विशेष गुण की लालसा से दोष वाली वस्तु की भी इच्छा की जाय वहाँ भूषण कवि अनुज्ञा अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,
महादानि साहितनै गरिब-नेवाज के ।

भूषन जवाहिर जलूस जरबाफ-जोति,
देखि देखि सरजा की सुकवि-समाज के ॥
तप करि करि कमलापति सों माँगत यों,
लोग सब करि मनोरथ ऐसे साज के।
बैपारी जहाज के न राजा भारी राज के,
भिखारी हमैं कीजै महाराज सिवराज के ॥२८४॥

शब्दार्थ—जरबाफ=ज़रदोज़, कलाबत्तू से कढ़ा हुआ रेशमी कपड़ा। कमलापति = लक्ष्मीपति, विष्णु।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि आजकल महादानी, दीन-प्रतिपालक, साहजी के पुत्र महाराज शिवाजी के संसार-प्रसिद्ध दान की महिमा का बखान सुनकर सवारी के समय वीर-केसरी शिवाजी की कवि-मंडली के (उनके द्वारा पहने हुए) जवाहरात और कलाबत्तू के काम वाले रेशमी कपड़ों की उज्ज्वल चमक दमक को देखकर लोग तपस्या कर-करके कमला-पति विष्णु-भगवान से ऐसी अभिलाषा कर (वरदान) माँगते हैं कि हमें आप न तो जहाज़ी व्यापारी बनाइए (जो बहुत कमा कर लाते हैं) और न किसी बड़े भारी राज्य के राजा ही बनाइये वरन् हमें तो केवल महाराज शिवाजी के भिक्षुक ही बनाइए (जिससे कि हमें मनचाहा दान मिले)।

विवरण—यहाँ शिवाजी के अत्यधिक दान (गुण) को देख कर भिखारी के नीच पद की अभिलाषा की गई है, अतः अनुज्ञा है।

लेश

लक्षण—दोहा

जहँ बरनत गुन दोष कै, कहै दोष गुन रूप।
भूषन ताको लेस कहि, गावत सुकवि अनूप ॥२८५॥

अर्थ—जहाँ गुण को दोष रूप से और दोष को गुण रूप से वर्णन किया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि लेश अलंकार कहते हैं।

उदाहरण (गुण को दोष)—दोहा

उदैभानु राठौर बर, धरि धीरज, गढ़ ऐंड़।
प्रगटै फल ताकौ लह्यौ, परिगौ सुर-पुर पैंड़ ॥२८६॥

शब्दार्थ—परिगौ = पड़ गया। पैंड़=रास्ता। ऐंड = ऐंठ।

अर्थ—वीर-श्रेष्ठ उदयभानु राठौड़ ने धैर्य, गढ़ और अपनी ऐंठ को धारण करके उनका प्रत्यक्ष ही फल पा लिया कि वह स्वर्ग के मार्ग में पड़ गया, अर्थात् वह मारा गया।

विवरण—यहाँ उदयभानु के धैर्य, गढ़ और ऐंड धारण करना रूप गुणों को उसकी मृत्यु का कारण कहकर उनका दोष रूप से वर्णन किया गया है।

उदाहरण (दोष को गुण)—दोहा

कोऊ बचत न सामुहें, सरजा सों रन साजि।
भली करी पिय ! समर ते, जिय लै आये भाजि ॥२८७॥

अर्थ—(शत्रु-स्त्रियाँ अपने पतियों से कहती हैं कि) हे प्रियतम, आपने अच्छा किया जो युद्ध से अपने प्राण (सही सलामत) लेकर दौड़ आये; क्योंकि शिवाजी के सामने युद्ध करके कोई (शत्रु) उनसे बच नहीं सकता (अवश्य मारा जाता है)।

विवरण—यहाँ युद्ध से भाग आने रूप दोष को गुण रूप में कथन किया गया है।

अलंकार-भेद—पूर्वोक्त 'उल्लास' अलंकार में एक का गुण या दोष दूसरे को प्राप्त होता है पर यहाँ 'लेश' में किसी के दोष को गुण या गुण को दोष रूप से कल्पित किया जाता है।

तद्गुण

लक्षण—दोहा

जहाँ आपने रंग तजि, गहै और को रंग।
ताको तद्गुन कहत हैं, भूषन बुद्धि उतंग ॥२८८॥

शब्दार्थ—बुद्धि उतंग = उत्तंग बुद्धि, प्रौढ़ बुद्धि ।

अर्थ—जहाँ (कोई पदार्थ) अपना रंग त्याग कर दूसरे (पदार्थ) का रंग ग्रहण करे, वहाँ प्रौढ़ बुद्धि मनुष्य तद्गुण अलंकार कहते हैं, अर्थात् जहाँ अपना गुण (विशेषता) छोड़कर दूसरी वस्तु के गुण का ग्रहण किया जाना वर्णन किया जाय वहाँ तद्गुण अलंकार होता है ।

सूचना—तद्गुण अलंकार में हिन्दी कवियों ने प्रायः 'रंग' का ही वर्णन किया है । किन्तु कुछ कवियों ने इस में 'गुण' शब्द का अर्थ रूप, रस और गंध माना है, जैसे—

अहिमुख परयो सु विष भयो, कदली भयो कपूर ।
सीप परयो मोती भयो, संगति के फल सूर ॥

यहाँ स्वाति-जल-बिंदु का सर्प के मुख में गिरने से विष (रस) होना, कदली में गिरने से कपूर (गंध) होना और सीप में गिरने से मोती (रूप) होना वर्णन किया गया है । इस तरह स्वाति-बूँद के रस, गन्ध और रूप तीनों गुणों का ग्रहण किया जाना कहा गया है ।

अलंकार-भेद—पूर्वोक्त 'उल्लास अलंकार' में एक के गुण से दूसरे का गुणी होना कहा जाता है, किन्तु वहाँ 'गुण' शब्द 'दोष' का विरोधी होता है, अर्थात् 'उल्लास' में किसी के गुण (उत्तमता एवं निकृष्टता) के संग से किसी में गुण (उत्तमता वा निकृष्टता) का होना कहा जाता है । तद्गुण अलंकार में कोई पदार्थ अपना गुण (विशेषता— रूप, रस और गंध) आदि त्याग कर दूसरे का गुण (रूप, रस और गंध) ग्रहण करता है । अर्थात् तद्गुण में 'गुण' से रूप, रस और गन्ध का अभिप्राय है और उल्लास में 'गुण' से गुण (उत्तमता और निकृष्टता) का अर्थ ग्रहण किया जाता है ।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

पंपा मानसर आदि अगन तलाव लागे,
जाहि के पारन मैं अकथयुत गथ के ।

भूषन यों साज्यो राजगढ़ सिवराज रहे,
देव चक चाहि कै बनाए राजपथ के ॥
बिन अवलम्ब कलिकानि आसमान मैं ह्वै,
होत बिसराम जहाँ इन्दु औ उदथ के।
महत उतंग मनि जोतिन के संग आनि,
कैयो रंग चक्कहा गहत रबि-रथ के ॥२८६॥

शब्दार्थ—पंपा = किष्किन्धा का एक बड़ा तालाब, इसी के तट पर शबरी ने रामचन्द्र जी का स्वागत किया था और इसी के पूर्व में ऋष्यमूक पर्वत था, जहाँ श्री रामचन्द्र जी की सुग्रीव से भेंट हुई थी। आजकल यह निज़ाम राज्य में दक्षिणी छोर पर अनगुँडी गाँव के निकट है, वहा तुंगभद्रा का किनारा है। अगन = अगणित, अनेक। पारन = पक्षों, बगलों। अकथ = अकथनीय। गथ = गाथा, कहानी, ऐतिहासिक बातें। चक = चकित। चाहि कै = देखकर। राजपथ = सदर सड़क कलिकान = क़लक़, रंज, बेचैनी, घबराहट। उदथ = उदय होने वाला, सूर्य। मनि-ज्योतिन = मणियों का प्रकाश, चमक। चकहा = पहिया, चक्र।

अर्थ—जिस (रायगढ़) के इस ओर और उस ओर, दोनों पाखों में, पंपा, मानसरोवर आदि अगणित इतिहास-प्रसिद्ध अकथनीय गाथा युक्त तालाब लगे हैं (अर्थात् चित्रित हैं) अथवा अकथनीय गाथायुक्त, पंपासर, मानसरोवर आदि जैसे तालाब जिस रायगढ़ में सुशोभित हैं; भूषण कवि कहते हैं कि महाराज शिवाजी ने जिस रायगढ़ को ऐसा सजाया है कि देवता भी उस में बनाए गए राजपथ (मुख्य सड़क) को देखकर चकित होगये और आकाश में कोई आश्रय न पाने के कारण परेशान—बेचैन—होकर जहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा भी विश्राम लेते हैं, उस ही रायगढ़ की अत्यन्त ऊ ची (अत्यधिक ऊँचे महलों में) जड़ी हुई रंग-बिरंगी मणियों की आभा

के मेल से सूर्य के रथ के पहिए कई प्रकार के रंग धारण करते हैं अर्थात् उन ऊँची जड़ी हुई रंग-बिरंगी मणियों की कान्ति सूर्य के रथ पर पड़ती है, और उसके पहिए रंग-बिरंगे हो जाते हैं।

विवरण—यहाँ सूर्य के रथ के चक्र ने अपना रंग त्याग कर रायगढ़ के ऊँचे महलों पर जड़ी हुई मणियों की ज्योतियों का रंग ग्रहण किया है अतः तद्गुण अलंकार है।

पूर्वरूप

लक्षण—दोहा

प्रथम रूप मिटि जात जहँ, फिर वैसोई होय।
भूपन पूरवरूप सों, कहत सयाने लोय॥२६०॥

अर्थ—जहाँ पहले रूप का नाश (लोप) हो जाता है और फिर वैसा ही रूप हो जाता है, अर्थात् जहाँ प्रथम मिट गए हुए रूप की पुनः प्राप्ति हो वहाँ चतुर लोग पूर्वरूप अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम जुधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु ब्यास के अंग सुहानी॥
भूपन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी,
पुन्य-चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥२६१॥

शब्दार्थ—ब्रह्म = ब्रह्मा। आनन = मुख। पुनीत = पवित्र।

अर्थ—जो वाणी (सरस्वती) श्री ब्रह्माजी के मुख से निकलने के कारण तीनों लोकों में अत्यंत पवित्र मानी गई; फिर (मर्यादा पुरुषोत्तम) श्रीरामचन्द्र जी और (धर्मराज) युधिष्ठिर के चरित्र वर्णन करने में जो वाल्मीकि और महर्षि व्यास के अंगों (मुखों) में सुशोभित हुई, भूषण कहते हैं कि उस पवित्र सरस्वती को कलियुग के कवियों ने (विषयी) राजाओं का यश वर्णन करके नष्ट एवं अपवित्र कर दिया था।

वही अब वीर-केसरी शिवाजी के पुण्य-चरित्र-रूपी सरोवर में स्नान करके फिर पवित्र हो गई है।

विवरण—अत्यन्त पवित्र सरस्वती को कलियुग के कवियों ने विषयी राजाओं के गुणगान का साधन बनाकर कलुषित और नष्ट कर दिया था। वही अब शिवाजी के यश-रूपी तालाब में स्नान कर पुनः पवित्र होगई, अतः पूर्वरूप अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—मालती सवैया

यों सिर पै छहरावत छार हैं जाते उठै असमान बगूरे।
भूषन भूधरऊ धरकैं जिनके धुनि धक्कन यों बल रूरे॥
ते सरजा सिवराज दिए कविराजन को गजराज गरूरे।
सुंडन सों पहिले जिन सोखि कै फेरि महामद सों नद पूरे॥२६२॥

शब्दार्थ—छहरावत=छितराते, फैलाते, उड़ाते। छार=खाक, धूला। भूधरऊ=पहाड़ भी। धरकै=काँपते हैं, हिल जाते हैं। रूरे=श्रेष्ठ। बलरूरे=श्रेष्ठ बली, महाबली। गरूरे=गरूर वाले, मतवाले। सोखि कै=चूस कर, पीकर। पूरे=भर दिये।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो मदमस्त हाथी सिर पर इस प्रकार (इतनी अधिक) धूल डालते हैं कि जिससे आसमान में बवंडर उठने लग जाते हैं, (हाथी का यह स्वभाव है कि वह अपनी सूँड में धूल लेकर अपनी पीठ और मस्तक पर डाला करता है) भूषण कहते हैं कि जो हाथी इतने बलशाली हैं कि उनकी गर्जना और टक्करों से पहाड़ तक डोल जाते हैं, हिल जाते हैं, और जिन्होंने सूँडों से पहले बड़े-बड़े नदों को सुखाकर फिर अपनी प्रबल मद की धारा से पूर्ण कर दिया, वे मदमस्त गजराज वीर-केसरी शिवाजी ने कविराजों को दिये।

विवरण—यहाँ पहले हाथियों द्वारा नदों का सुखाया जाना और फिर अपने मद-जल से पूर्ण कर नदों को पूर्व अवस्था में पहुँचा देना वर्णित है, अतः पूर्वरूप अलंकार है।

तीसरा उदाहरण—मालती सवैया

श्री सरजा सलहेरि के युद्ध घने उमरावन के घर घाले।
कुंभ चँदावत सैद पठान कबंधन धावत भूधर हाले।
भूषन यों सिवराज की धाक भए पियरे अरुने रँग वाले॥
लोहै कटे लपटे अति लोहु भए मुँह मीरन के पुनि लाले॥२९३॥

शब्दार्थ—घने=बहुत, अनेक। घर घाले=घर नष्ट कर दिये। कबंध=सिर रहित धड़। युद्ध में वीर गण जब बड़े जोश में आकर लड़ते हैं तब उनके रक्त में इतनी उष्णता आजाती है कि सिर कट जाने पर भी उनके हाथ कुछ देर तक पहले की तरह तलवार चलाते रहते हैं। कई बार इसी उष्णता के कारण पृथ्वी पर गिर कर भी उठकर कुछ दूर तक दौड़ते हैं, और उष्णता के कम होते ही गिर पड़ते हैं। हाले=हिल गये। अरुने=लाल। अरुने रंग वाले=लाल रंग वाले। लोहै=लोहे से, तलवार से।

अर्थ—वीर-केसरी श्री शिवाजी ने सलहेरि के युद्ध में अनेकों (शत्रु) उमराओं के घरों को नष्ट कर दिया (अर्थात् उन्हें मार कर उनके घरों को बरबाद कर दिया)। वहाँ युद्ध-क्षेत्र में कुंभावत, चंदावत आदि क्षत्रिय वीरों और सैयद, पठान आदि मुसलमानों के कबंधों के दौड़ने से पहाड़ भी हिल गये। भूषण कहते हैं कि इस प्रकार शिवाजी की धाक से अमीरों के लाल रंगवाले मुख पीले पड़ गये परन्तु शीघ्र ही तलवारों से कटने से और अत्यधिक लोहू में लथपथ होने से वे फिर लाल हो गये।

विवरण—मुसलमानों के लाल रंग वाले मुख भय से पीले हो गये थे अतः उनकी लालिमा चली गई थी, वही लोहूलुहान होने से फिर आगई, अतः यहाँ पूर्वरूप अलंकार है।

चौथा उदाहरण—मालती सवैया

यों कवि भूषन भाषत है यक तो पहिलै कलिकाल की सैली।
तापर हिंदुन की सब राह सु नौरंगसाह करी अति मैली॥

साहितनै सिव के डर सों तुरकौ गहि बारिधि की गति पैली।
बेद पुरानन की चरचा अरचा द्विज-देवन की फिर फैली ॥२६४॥

विवरण—सैली=शैली, रीति, परिपाटी। बारिधि=समुद्र। पैली=दूसरा तट, परले पार, उस पार।

अर्थ—भूषण कवि इस प्रकार कहते हैं कि प्रथम तो कलियुग की ही ऐसी शैली (परिपाटी) है (कि उसमें कोई धर्म कर्म नहीं रहता), तिस पर औरंगजेब बादशाह ने हिंदुओं के सब धर्म-मार्गों को और भी अपवित्र कर डाला। परन्तु अब शिवाजी के भय से तुर्कों ने समुद्र के उस पार का रास्ता पकड़ लिया (अर्थात् सारे मुसलमान समुद्र पार भाग गये) और अब फिर वेद-पुराणों की चर्चा (स्वाध्याय तथा कथा) और देवताओं तथा ब्राह्मणों की पूजा फिर से चारों ओर फैल गई।

विवरण—यहाँ वेदपुराण की चर्चा तथा देवता और ब्राह्मणों की पूजा आदि हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों का कलिकाल के आने से तथा मुसलमानों के अत्याचारों से लोप हो जाना और शिवाजी द्वारा फिर उनका प्रचलित होना कथन किया गया है।

अतद्गुण

लक्षण—दोहा

जहँ संगति तें और को गुन कछूक नहिं लेत।
ताहि अतदगुन कहत हैं भूषन सुकवि सचेत ॥२६५॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य वस्तु की संगति होने पर भी उसके गुणों का ग्रहण न करना वर्णन किया जाता है अर्थात् जहाँ एक वस्तु का दूसरी के साथ संसर्ग होता है, फिर भी वह वस्तु दूसरी वस्तु के गुण ग्रहण नहीं करती, वहाँ सावधान श्रेष्ठ कवि अतद्गुण अलंकार कहते हैं। यह तद्गुण का ठीक उलटा है, इसमें भी गुण का अभिप्राय रूप, रंग, स्वभाव, गंध आदि से है।

उदाहरण—मालती सवैया

दीनदयाल दुनी प्रतिपालक जे करता निरम्लेच्छ मही के।
भूषन भूधर उद्धरिबो सुने और जिते गुन ते सिवजी के॥
या कलि मैं अवतार लियो तऊ तेई सुभाव सिवाजी बली के।
आय धर्यो हरि तें नररूप पै काज करै सिगरे हरि ही के॥२६६॥

शब्दार्थ—निरम्लेच्छ=म्लेच्छों से रहित, मुसलमानों से रहित। भूधर उद्धरिबो=पहाड़ का उद्धार करना, विष्णुपक्ष में गोवर्द्धन धारण करना, शिवाजी पक्ष में पहाड़ी किलों का उद्धार करना।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि दीनों पर दयालु होना, दुनियाँ का पालक होना, पृथ्वी को म्लेच्छों से रहित करने वाला होना और पहाड़ का उद्धार करना आदि जितने भी विष्णु भगवान के गुण सुने जाते हैं वे सब शिवाजी में मौजूद हैं। यद्यपि बली शिवाजी ने इस घोर कलियुग में अवतार धारण किया है तब भी उनका स्वभाव वैसा ही (विष्णु भगवान् के समान ही है। (अवतार होने के कारण) शिवाजी ने विष्णु भगवान से अब मनुष्य का रूप धारण किया है, परन्तु वे विष्णु भगवान के ही सब काम करते हैं।

विवरण—शिवाजी ने यद्यपि नर-रूप धारण किया है तब भी उन पर नर-गुणों का प्रभाव नहीं पड़ा, अतः अतद्गुण अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

सिवाजी खुमान तेरो खग्ग बढ़े मान बढे,
मानस लौं बदलत कुरुष उछाह तें।
भूषन भनत क्यों न जाहिर जहान होय,
प्यार पाय तो से ही दिपत नरनाह तें॥
परताप फेटो रहो सुजस लपेटो रहो,
बरतन खरो नर पानिप अथाह तें।

रंगरंग रिपुन के रकत सों रंगो रहै,
रातो दिन रातो पैं न रातो होत स्याह तें ॥२९७॥

शब्दार्थ—कुरुष = कुरुख,क्रोध । मानस लौं = मन की भाँति । दिपत = दीप्त, प्रकाशित, तेजस्वी । नरनाह = नरनाथ, राजा । फेटो = चक्कर, प्रभाव । रंग रंग=भाँति भाँति के । रातो=रात, संलग्न, लाल ।

अर्थ—हे चिरजीवी शिवाजी आपकी तलवार बढ़े और उसका मान बढ़े, वह तलवार मन की तरह क्रोध और उत्साह से बदलती रहती है—(क्रोध करके किसी को मार देती है और उत्साह से किसी की रक्षा करती है)। भूषण कहते हैं कि आप जैसे तेजस्वी नरेश का प्रेम पाकर वह तलवार संसार में प्रसिद्ध क्यों न हो (अवश्य होनी ही चाहिये क्योंकि) प्रताप इस तलवार की फेंट में है—चक्कर में है, वश में है, सुयश इस तलवार से लिपटा रहता है, और मनुष्यों के अथाह पानिप (कान्ति, आब और जल) का यह खरा बरतन है, अर्थात् बड़े-बड़े वीरों के पानिप को पीकर (ऐंठ को नष्ट कर) भी यह भरी नहीं। यद्यपि यह तलवार रंग-रंग के शत्रुओं के खून से रँगी रहती है और रात दिन इसी कार्य में (खून बहाने में) लगी रहती है फिर भी स्वयं काली से लाल नहीं होती ।

विवरण—तलवार रात दिन लाल रक्त में डूबे रहने पर भी काली से लाल नहीं होती, अतः अतद्गुण अलंकार है ।

तीसरा उदाहरण – दोहा

सिव सरजा की जगत मैं राजत कीरति नौल ।
अरि-तिय-दृग-अंजन हरै, तऊ धौल की धौल ॥२९८॥

शब्दार्थ— नौल=नई, उज्ज्वल । धौल=धवल, सुफेद ।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी की उज्ज्वल कीर्ति संसार में सदा शोभायमान है । यद्यपि वह उज्ज्वल कीर्ति शत्रु-स्त्रियों के नेत्रों के

कज्जल को हर लेती है (पति की मृत्यु सुनते ही उनकी आँखों में लगा अंजन अश्रु-जल-प्रवाह के कारण धुल जाता है, अथवा विधवा स्त्रियाँ कज्जल नहीं लगातीं) तो भी यह सफेद की सफेद ही है; काली नहीं हुई।

विवरण—यहाँ 'कीर्ति' का शत्रु-स्त्रियों के नेत्रों से कज्जल को हर लेने पर भी उज्ज्वल रहना कथन किया गया है, और उसका काले रंग को ग्रहण न करना दिखाया गया है।

अनुगुण

लक्षण—दोहा

जहाँ और के संग ते, बढ़ै आपनो रंग।
ता कहँ अनुगुन कहत हैं, भूषन बुद्धि उतंग ॥२९९॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य वस्तु के संग से अपना रंग बढ़े वहाँ उन्नत-बुद्धि लोग अनुगुण अलंकार कहते हैं। अर्थात् जहाँ दूसरों की संगति से किसी के स्वाभाविक गुणों का अधिक विकसित होना वर्णन किया जाय वहाँ अनुगुण अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै सरजा सिवा के सनमुख आय,
कोऊ बचि जाय न गनीम भुज-बल-मै ॥
भूषन भनत भौंसिला की दिलदौर सुनि,
धाक ही मरत म्लेच्छ औरँग के दल मैं।
रातौ दिन रोवत रहत जवनी हैं सोक,
परोई रहत दिली आगरे सकल मैं ॥
कज्जल कलित अँसुवान के उमंग संग,
दूनो होत रोज रंग जमुना के जल मैं ॥३००॥

शब्दार्थ—गनीम=शत्रु। भुज-बल-मै=भुजबलमय, प्रबल। दिलदौर=दिल के इरादे, मनसूबे। कज्जल-कलित=कज्जल से युक्त, काजल-मिले। उमंग=उभाड़, प्रवाह।

अर्थ—शाहजी के पुत्र सरजा राजा शिवाजी के सम्मुख आकर कोई भी पराक्रमी शत्रु बच कर नहीं जाता। भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब की सेना के मुसलमान तो शिवाजी के मनसूबों को सुन कर उनके आतंक से ही मर जाते हैं। मुसलमानियाँ रात-दिन रोती रहती हैं समस्त आगरे और दिल्ली में हर समय शोक ही छाया रहता है। मुसलमानियों के नेत्रों के कज्जल-मिले आँसुओं की झड़ी के साथ यमुना जी का जल दिन प्रति दिन रंग में दुगुना होता जाता है, दुगुनी श्यामता धारण करता है।

विवरण—यहाँ कज्जल युक्त अश्रुजल मिलने से यमुना जी का स्वाभाविक श्याम जल का और अधिक काला होना कथन किया गया है।

सूचना—इस अलंकार में भी 'गुण' से केवल 'रंग' का ही ग्रहण नहीं करना चाहिए वरन् सभी प्रकार के गुणों का ग्रहण करना चाहिए। भूषण ने केवल रंग का ही वर्णन किया है।

मीलित

लक्षण—दोहा

सदृस वस्तु मैं मिलि जहाँ, भेद न नेक लखाय।
ताको मीलित कहत हैं, भूषन जे कविराय ॥३०१॥

अर्थ—जहाँ सदृश वस्तु में मिल जाने से कोई वस्तु स्पष्ट लक्षित न हो अर्थात् समान रूप रंग वाली वस्तुएँ ऐसी मिल जायँ कि उनमें थोड़ा भी भेद न मालूम दे, वहाँ श्रेष्ठ कवि मीलित अलंकार कहते हैं।

सूचना—मीलित में भिन्न वस्तु होते हुए भी समान धर्म (रूप, रस, गंध) वाली वस्तु में वह मिल जाती है। तदगुण में ऐसा नहीं होता, उसमें एक वस्तु अपना प्रथम गुण त्याग कर दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण करती है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै दुगध-नदीस को।
भूषन भनत सुर-सरिता को हंस हेरै,
विधि हेरै हंस को चकोर रजनीस को॥
साहितनै सिवराज करनी करी है तैं जु,
होत है अचम्भो देव कोटियो तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने निज,
गिरि को गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस को ३०२॥

शब्दार्थ—हेरत=ढूँढता है। गज-इन्द्र=गजेन्द्र, ऐरावत। इन्द्र को अनुज=इन्द्र का छोटा भाई, वामन विष्णु। दुगध-नदीस=क्षीर-सागर। सुरसरिता=गंगाजी। विधि=ब्रह्मा। रजनीस=चन्द्रमा। करनी=काम। हिराने=खो गये। गिरीस=महादेव।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी, तुमने यह जो (त्रिभुवन को अपने श्वेत यश से छा देने का अद्भुत) काम किया है; उससे तैंतीस करोड़ देवताओं को भी आश्चर्य होता है। तुम्हारी श्वेतकीर्त्ति में (सब श्वेत वस्तुओं के) खो जाने से—मिल जाने से, इन्द्र अपने गजराज ऐरावत को ढूँढता फिरता है और इन्द्र का छोटा भाई विष्णु क्षीर-सागर की तलाश कर रहा है; हँस गंगा को खोज रहे हैं, तथा ब्रह्मा (अपने वाहन) हँस को और चकोर चाँद को ढूँढ रहा है; ऐसे ही महादेव अपने पहाड़ (कैलास) को ढूँढ रहे हैं और पार्वती महादेवजी की खोज कर रही हैं, परन्तु वे खोजते हुए भी उनको नहीं पाते।

विवरण—शिवाजी की श्वेत कीर्ति में मिल जाने से ऐरावत, क्षीरसागर, गंगाजी, हंस, चन्द्रमा, कैलास और महेश आदि पहचाने नहीं जाते, अतः मीलित अलंकार है।

उन्मीलित

लक्षण—दोहा

सदृस वस्तु मैं मिलत पुनि, जानत कौनेहु हेत।
उनमीलित तासों कहत, भूषन सुकवि सचेत ॥३०३॥

अर्थ—जहाँ कोई वस्तु पहले सदृश वस्तु में मिल जाय और फिर किसी कारण द्वारा किसी प्रकार पहचानी जाय, वहाँ सचेत सुकवि उन्मीलित अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—दोहा

√सिव सरजा तब सुजस मैं, मिले धौल छबि तूल।
बोल बास तें जानिए, हंस चमेली फूल ॥३०४॥

शब्दार्थ—छबि = शोभा। तूल = तुल्य, समान।

अर्थ—हे सरजा राजा शिवाजी ! तुम्हारे उज्ज्वल यश में समान श्वेत कान्ति वाले (अर्थात् सफेद ही रंग वाले) हंस और चमेली के पुष्प बिलकुल मिल गये हैं, परन्तु वे केवल बोली से (हंस) और सुगंधि से (चमेली के फूल) जाने जाते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के (श्वेत) यश में छिपे हुए हंस और चमेली का भेद क्रमशः उनकी बोली और गंध के द्वारा जाना गया है; अतः उन्मीलित अलंकार है।

सामान्य

लक्षण—दोहा

भिन्न रूप जहँ सदृस तें, भेद न जान्यो जाय।
ताहि कहत सामान्य हैं, भूषन कवि समुदाय ॥३०५॥

अर्थ—भिन्न वस्तु होने पर भी सादृश्य के कारण जहाँ भेद न जाना जाय वहाँ समस्त कवि सामान्य अलंकार कहते हैं।

सूचना—पूर्वोक्त मीलित अलंकार में एक वस्तु का गुण

(धर्म) दूसरी वस्तु में दूध-पानी की भाँति मिल जाता है, अतः मिलने वाली वस्तु का आकार ही लुप्त हो जाता है, और यहाँ केवल गुण-साहश्य से भेद-मात्र का तिरोधान (लोप) होता है। किन्तु दोनों पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते रहते हैं, दोनों के आधार रहते हैं, यहाँ दोनों अलंकारों में भिन्नता है।

उदाहरण—मालती सवैया

पावस की यक राति भली सु महाबली सिंह सिवा गमके तें।
म्लेच्छ हजारन ही कटिगे दस ही मरहट्टन के झमके तें॥
भूषन हालि उठे गढ़-भूमि पठान कबंधन के धमके तें।
मीरन के अवसान गये मिलि धोपनि सों चपला चमके तें॥३०६

शब्दार्थ—पावस = वर्षाऋतु। गमके तें=गूँज से, उत्साह-पूर्वक हुंकारने पर। कटिगे=कट गये। झमके तें=लड़ाई में, हथियारों के चमकने और खमकने से। धमके तें=धमक से, ज़ोर-ज़ोर से चलने पर जो पैरों का शब्द होता है वह 'धमक' कहलाती है। अवसान= औसान, सुध-बुध, होशहवास। धोपनि = तलवारें।

अर्थ—वर्षाऋतु की एक सुन्दर रात को महाबली वीर शिवाजी के उत्साहपूर्वक हुंकार मारने पर और केवल दस ही मराठों के हथियारों के चमकने और खनकने से हज़ारों म्लेच्छ (मुसलमान) कट गये। भूषण कवि कहते हैं कि (इस भाँति म्लेच्छों के कट जाने पर) पठानों के कबंधों के दौड़ने की धमक से किले की पृथ्वी तक हिलने लगी और तलवारों के साथ मिल कर बिजली के चमकने से सारे अमीर उमरावों के होश-हवास उड़ गये। वे यह न जान सके कि ये तलवारें चमक रही हैं अथवा बिजली, अर्थात् इधर तलवार चमकती थी उधर वर्षाऋतु होने के कारण बिजली चमकती थी। अमीर लोग इन दोनों में भेद न कर पाते थे।

विवरण—यहाँ कहा गया है कि मीरों को तलवारों के चम-

कने और बिजली के दमकने में भेद न जान पड़ता था, इस प्रकार सामान्य अलंकार हुआ।

सूचना—भूषण का यह उदाहरण बहुत स्पष्ट नहीं है। इसका उदाहरण इस प्रकार ठीक होता है—"भरत राम एक अनुहारी। सहसा लखि न सकैं नरनारी", अर्थात् राम और भरत जी का एक रूप होने से वे सहसा पहचाने नहीं जाते।

विशेषक

लक्षण—दोहा

भिन्न रूप सादृश्य मैं, लहिए कछू बिसेख।
ताहि विशेषक कहत हैं, भूषन सुमति उलेख ॥३०७॥

अर्थ—जहाँ दो भिन्न वस्तुओं में रूप सादृश्य होने पर भी किसी विशेषता को पाकर भिन्नता लक्षित हो जाय वहाँ विशेषक अलंकार होता है।

सूचना—पूर्वोक्त उन्मीलित में एक का गुण दूसरे में 'मीलित' की भाँति विलीन हो जाने पर फिर किसी कारण से पृथकता जानी जाती है, और यहाँ दोनों वस्तुओं की स्थिति 'सामान्य' की भाँति भिन्न भिन्न रहती है केवल पहले उनके भेद का तिरोधान होता है और फिर किसी कारण से उनमें पृथकता जानी जाती है। यही दोनों में भेद है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अहमदनगर के थान किरवान लै कै,
नवसेरीखान ते खुमान भिरयो बल तें।
प्यादन सों प्यादे पखरैतन सों पखरैत,
बखतरवारे बखतरवारे हल तें॥
भूषन भनत एते मान घमसान भयो,
जान्यो न परत कौन आयो कौन दल तें।

सम वेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
बीर जाने हाँके देत, मीर जाने चल तें ॥३०८॥

शब्दार्थ—अहमदनगर=निजामशाही बादशाहों की राजधानी था। यह राज्य १४८९ से १६३७ई० तक रहा। इसका विस्तार उत्तर में खानदेश से दक्षिण में नीरा नदी तक और पश्चिम में समुद्र से पूर्व बरार तथा बीदर तक था। अहमदनगर, राजधानी भीमा नदी पर समुद्र से साठ कोस पूर्व हट कर है। सन् १६३७ ई० में शाहजहाँ ने इसे विजय किया। यहीं सन् १६५७ में शिवाजी का नौशेरीखाँ के साथ युद्ध हुआ था। थान=स्थान। नवसेरीखान= नौशेरी खाँ, छंद० १०२ में "खान दौरा" देखिए। भिर्यो बल तें= जोर से भिड़ गये। पखरैत=पाखर वाले, झूले वाले, वे शूरवीर सवार जिनके हाथी-घोड़ों पर झूलें पड़ी हुई थीं। बखतर वारे= कवच वाले। एते मान=इस परिमाण का, ऐसा ज़बरदस्त।

अर्थ—चिरजीवी शिवाजी तलवार लेकर अहमदनगर के स्थान पर नौशेरीखाँ से बड़े ज़ोर के साथ भिड़ गये। पैदल सिपाही पैदल सिपाहियों से पखरैत पखरैतों से, (सवार सवारों से) कवचधारी कवचधारियों से हल्ले के साथ जुट गये। भूषण कवि कहते हैं कि इतना अधिक घमासान युद्ध हुआ कि इसमें यह मालूम नहीं पड़ता था कि किस सेना से कौन योद्धा आया है, क्योंकि उन सबके ही वेष समान थे। वहाँ महाराज शिवाजी के बाँके वीर हुंकार मारते हुए या खदेड़ते हुए और मीर लोग भागते हुए पहचाने जाते थे (अर्थात् ललकार देने वाले शिवाजी के वीर सैनिक थे और भागने वाले मुसलमान थे)।

विवारण—शिवाजी और नौशेरीखाँ की सेनाएँ समवेष होने से परस्पर मिल गई थीं पर हुंकारने से शिवाजी के वीरों का पता चल जाता था और भागने से मीर लोग पहचाने जाते थे।

पिहित

लक्षण—दोहा

परके मन की जान गति, ताकी देत जनाय।
कछू क्रिया करि कहत हैं, पिहित ताहि कविराय ॥३०९॥

अर्थ—दूसरे के मन की बात को जानकर जहाँ किसी क्रिया द्वारा उस पर प्रकट किया जाय वहाँ कवि लोग पिहित अलंकार कहते हैं, अर्थात् आकार अथवा चेष्टा को देखकर जहाँ किसी के मन की बात जान ली जाय और फिर कुछ ऐसी क्रिया की जाय जिससे यह लक्षित हो जाय कि क्रिया करने वाले ने बात जान ली है, वहाँ पिहित अलंकार होता है।

उदाहरण—दोहा

गैर मिसल ठाढ़ौ सिवा, अन्तरजामी नाम।
प्रकट करी रिस, साह को; सरजा करि न सलाम ॥३१०॥

शब्दार्थ—गैर मिसल = अनुचित स्थान पर। रिस = रोष, क्रोध।

अर्थ—अन्तर्यामी नाम वाले शिवाजी अनुचित स्थान पर खड़े किये गये (किन्तु अंतर्यामी होने के कारण शिवाजी ने बादशाह के इस नीच भाव को ताड़ लिया) इस पर बादशाह को सलाम न करके उस वीर केसरी ने अपना क्रोध प्रकट कर दिया।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब को सलाम न करके शिवाजी ने यह बतला दिया कि अनुचित स्थान पर खड़ा कराने का भाव मैं समझ गया हूँ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

आनि मिल्यो अरि यों गह्यो, चखन चकत्ता चाव।
साहितनै सरजा सिवा, दियो मुच्छ पर ताव ॥३११॥

शब्दार्थ—चखन = चक्षु, नेत्र। चाव = आनन्द।

अर्थ—'शत्रु आकर मिला' यह देखकर, औरंगज़ेब के नेत्रों में

प्रसन्नता झलकने लगी। परन्तु शाहजी के पुत्र शिवाजी ने (उसकी इस प्रसन्नता को जान) अपनी मूछों पर ताव दिया (अर्थात् मूछों पर ताव देकर यह सूचित किया कि मैं तेरी चाल में नहीं आने का)।

विवरण—यहाँ शिवाजी ने औरंगज़ेब के मन की प्रसन्नता का ज्ञान मूछों पर ताव देकर उसे जताया है।

प्रश्नोत्तर

लक्षण—दोहा

कोऊ बूझै बात कछु, कोऊ उत्तर देत।
प्रश्नोत्तर ताको कहत, भूषन सुकवि सचेत ॥३१२॥

अर्थ—जब कोई कुछ बात पूछे और कोई उसका उत्तर दे, तब श्रेष्ठ कवि उसे प्रश्नोत्तर अलंकार कहते हैं। अर्थात् एक व्यक्ति प्रश्न करे और दूसरा उसका उत्तर दे, इस प्रकार प्रश्नोत्तर के रूप में किसी बात का जहाँ वर्णन किया जाय वहाँ प्रश्नोत्तर अलंकार होता है।

उदाहरण—मालती सवैया

लोगन सों भनि भूषन यों कहै खान खवास कहा सिख दैहो।
आवत देसन लेत सिवा सरजै मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहौ ॥
एदिल की सभा बोल उठी यों सलाह करोऽब कहाँ भजि जैहौ।
लीन्हो कहा लरिकै अफजल्ल कहा लरिकै तुमहू अब लैहौ ॥३१३॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सभा में खवासखाँ लोगों से कहने लगा कि सरजा राजा शिवाजी देशों के देश लेता हुआ आ रहा है; बोलो, तुम क्या सलाह देते हो? उससे मेल करोगे, लड़ोगे अथवा भाग जाओगे? (खवासखाँ की बातें सुनकर) आदिलशाह की सभा के आदमी इस प्रकार बोल उठे कि अब मेल ही कर लो (यही अच्छा है) भला भाग कर कहाँ जाओगे ? और उससे लड़कर अफ़ज़लखाँ ने क्या पाया ? और तुम भी अब लड़ कर क्या ले लोगे ?

विवरण—यहाँ पहले खवासखाँ ने प्रश्न किया और सभा ने उत्तर दिया। इस प्रश्नोत्तर के रूप में कवि ने एदिलशाह की सभा के निर्णय का वर्णन किया है, अतः प्रश्नोत्तर अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

को दाता, को रन चढ़ो, को जग पालनहार ?।
कवि भूषन उत्तर दियो, सिव नृप हरि अवतार ॥३१४॥

अर्थ—दाता कौन है, कौन लड़ाई पर चढ़ता है, और कौन संसार को पालने वाला है। भूषण कवि उत्तर देते हैं, शिव, राजा और विष्णु का अवतार—अर्थात् दाता शिव है, लड़ाई पर राजा चढ़ते हैं; और संसार की पालना विष्णु का अवतार करता है।

अथवा दाता कौन है, किसने युद्ध के लिए चढ़ाई की है, और संसार की पालना कौन करता है, भूषण इन सब प्रश्नों का (एक) उत्तर देते हैं विष्णु के अवतार महाराज शिवाजी—अर्थात् शिवाजी ही दानी हैं, वही युद्ध के लिए चढ़ाई करते हैं, और वही संसार को पालने वाले हैं।

तीसरा उदाहरण—छप्पय

कौन करै बस वस्तु कौन इहि लोक बड़ो अति ?
को साहस को सिंधु कौन रज-लाज धरे मति ॥
को चकवा को सुखद, बसै को सकल सुमन महि ?
अष्टसिद्धि नव-निद्धि देत, माँगे को सो कहि ॥
जग बूझत उत्तर देत इमि, कवि भूषन कवि-कुल-सचिव।
'दच्छिन नरेस सरजा सुभट साहिनंद मकरंद सिव' ॥३१५॥

शब्दार्थ—दच्छिन = दक्षिण, चतुर। रज-लाज = रजपूती लाज। सचिव = मन्त्री।

अर्थ—दुनियाँ के लोग पूछते हैं कि सब वस्तुओं को कौन वश में करता है, इस संसार में कौन बड़ा है, साहस का समुद्र कौन है, और

रजपूती लाज का किसको विचार है, चक्रवर्ती अथवा चकवे को सुख देने वाला कौन है, सब सुमनों (सहृदयों सज्जनों के मनों) में कौन बसता है, याचकों को माँगने पर अष्टसिद्धि और नवनिधि कौन देता है? कविकुल के मंत्री (प्रतिनिधि) भूषण कवि इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर देते हैं, कि इन सब कामों के करने वाले दक्षिणाधीश, वीर केसरी, शाहजी के पुत्र और माल मकरन्द के पौत्र शिवाजी हैं, अर्थात् शिवाजी ही सब वस्तुओं को वश में करने वाले हैं, वे ही संसार में सबसे बड़े हैं, वे ही साहस के समुद्र हैं, उन्हें ही रजपूती लाज का विचार है, वे ही चक्रवर्ती को सुख देने वाले हैं, अथवा सूर्यकुल के होने से चकवा-चकवी को सुख देने वाले हैं, वे ही सब सज्जनों के मन में बसते हैं और वे ही अष्टसिद्धि और नवनिधि देते हैं।

पद संख्या ३१४ की तरह इस पद के भी अन्तिम पंक्ति के शब्दों को अलग अलग कर इन सब प्रश्नों का दूसरा उत्तर भी दिया जाता है।

१. वस्तुओं को कौन वश में करता है—दक्षिण (चतुर)। २. संसार में कौन बड़े हैं?—नरेश। ३. साहस का समुद्र(अत्यन्त साहसी) कौन है?—सरजा (सिंह)। ४. रजपूती की लाज को कौन मस्तक में धारण करता है?—सुभट। ५. (चकवा) चक्रवर्ती को कौन सुख देता है?—साहिपुत्र (ज्येष्ठ पुत्र)। ६. सब सुमनों (पुष्पों) में कौन बसता है—मकरंद (पुष्परस)। ७. अष्ट सिद्धि और नवनिधि देने वाला कौन है?—शिव।

व्याजोक्ति

लक्षण—दोहा

आन हेतु सों आपनो, जहाँ छिपावै रूप।
व्याज उकति तासों कहत, भूषन सुकवि अनूप ॥३१६॥

अर्थ—जहाँ किसी अन्य हेतु (बहाने) से अपना रूप या हाल प्रकट हो जाने पर छिपाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि व्याजोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं।
भूषन ते बिन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस बिदेस गए हैं॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय सिसौदिया रावरे हाल ठए हैं।
देत रिसाय कै उत्तर यों हमही दुनियाँ ते उदास भए हैं॥३१७॥

शब्दार्थ—जितेक=जितने भी। दच्छिन-जेय-सिसोदिया=दक्षिण जीतने वाला, सिसौदिया-वंशज शिवाजी। हाल ठए हैं=हालत की है।

अर्थ—जितने भी बादशाहों के अमीर उमराव थे उन सबको सरजा राजा शिवाजी ने लूट लिया। भूषण कवि कहते है कि वे सब निर्धन होकर फक़ीर बन कर देश विदेश में भटकने लगे। उनकी ऐसी हालत देखकर लोग उनसे पूछने लगे कि 'क्या दक्षिण को जीतने वाले सिसौदिया-वंशज शिवाजी ने तुम्हारी यह हालत की है?' इस बात को सुन कर क्रोधित होकर वे कहते हैं कि हम स्वयं ही संसार से विरक्त हो गये हैं (शिवाजी के भय से हमारी यह हालत नहीं हुई)।

विवरण—यहाँ अपने फकीर होने का असली भेद खुल जाने पर उसे वैराग्य के बहाने से छिपाया गया है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

सिवा बैर औरँग बदन, लगी रहै नित आहि।
कवि भूषन बूझे सदा, कहै देत दुख साहि॥३१८॥

शब्दार्थ—बदन=मुँह। आहि=आह। साहि=बादशाहत।

अर्थ—शिवाजी से शत्रुता होने के कारण औरंगज़ेब के मुख से सदा 'आह' निकलती रहती है। भूषण कवि कहते हैं कि पूछने पर वह कहता है कि बादशाहत का कार्य-भार दुख देता है, अतः आह निकलती है।

विवरण—यहाँ औरंगज़ेब नें अपनी 'आह' के असली कारण के प्रकट होने पर उसको राज्य-झंझट कह कर छिपाया है।

लोकोक्ति एवं छेकोक्ति

लक्षण—दोहा

कहनावति जो लोक की, लोक उकति सो जान।
जहाँ कहत उपमान ह्वै, छेक उकति तेहि मान ॥३१६॥

शब्दार्थ—लोक में प्रचलित कहावत का नाम लोकोक्ति है।

अर्थ—जहाँ (काव्य में) लोकोक्ति आये वहाँ लोकोक्ति अलंकार होता है और जहाँ इसी लोकोक्ति को उपमान-वाक्य की भाँति (पहले कही हुई बात के लिए) कहा जाय वहाँ छेकोक्ति अलंकार माना जाता है।

लोकोक्ति का उदाहरण—दोहा

सिव सरजा की सुधि करौ, भली न कीन्ही पीव।
सूबा ह्वै दच्छिन चले, धरे जात कित जीव ॥३२०॥

शब्दार्थ—पीव = प्रियतम, पति। सूबा = सूबेदार।

अर्थ—(यहाँ शत्रु-स्त्रियाँ अपने अपने पतियों से कहती हैं कि) हे प्रियतम ! सरजा राजा शिवाजी को तो याद करो (वह कितना प्रबल है) आप जो दक्षिण के सूबेदार बनकर जाते हैं, यह आपने अच्छा नहीं किया। भला अपने प्राण कहाँ रखे जाते हैं—अर्थात् दक्षिण जाने पर आपके प्राण नहीं बचेंगे।

विवरण—यहाँ "धरे जात कित जीव" यह कहावत कथन की गई है; पर यह उदाहरण अच्छा नहीं, क्योंकि यह कोई अच्छी प्रसिद्ध लोकोक्ति नहीं है।

छेकोक्ति

उदाहरण—दोहा

जे सोहात सिवराज को, ते कबित्त रसमूल।
जे परमेश्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल ॥३२१॥

अर्थ—भगवान पर जो पुष्प चढ़ते हैं वे ही श्रेष्ठ माने जाते हैं, ऐसे

ही शिवाजी को जो कवित्त अच्छे लगते हैं वे ही वास्तव में अत्यन्त रसीले हैं, (अन्य नहीं) ।

विवरण – यहाँ भी जो 'परमेश्वर पै चढ़ैं, तोई आछे फूल' यह लोकोक्ति कही गई है और यह पूर्व कथित 'जे सोहात सिवराज को ते कबित्त रसमूल' के उपमान रूप में कही गई है अतः यहाँ छेकोक्ति है ।

दूसरा उदाहरण—किरीट सवैया ॐ

औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवै तो ह्याँते सिधावै सोऊ बिनु कप्पर ।
दीनो मुहीम का भार बहादुर छागो सहै क्यों गयन्द को झप्पर ॥
सासताखाँ संग वे हठि हारे जे साहब सातएँ ठीक भुवप्पर ।
ये अब सूबहु आवैं सिवा पर कालिह के जोगी कलींदे को खप्पर ॥

शब्दार्थ—सिधावे = जावे । बिनु कप्पर = बिना कपड़े, नंगा । भार = बोझा, उत्तरदायित्व, काम । छागो = बकरा । झप्पर = थप्पड़, तमाचा । भुवप्पर = भूमि पर । साहब सातएँ ठीक भुवप्पर = जो लोग ठीक सातवें आसमान पर थे, बहुत अभिमानी थे । कालिह = कल । कलींदे = तरबूज़ा । खप्पर = भिक्षा माँगने का पात्र ।

अर्थ—यदि औरंगज़ेब स्वयं दक्षिण पर चढ़ाई करके आवे तो उसे भी यहाँ से बिना कपड़े के ही अर्थात् अपना सब कुछ गँवा कर लौटना पड़ेगा । तिस पर उसने बहादुरखाँ को युद्ध (चढ़ाई) का भार देकर (दक्षिण में) लड़ने भेज दिया, भला बकरा हाथी की चपेट कैसे सह सकता है ! (अर्थात् शिवाजी के हमले को बहादुरखाँ कैसे सह सकता है !) शाइस्ताखाँ के साथ-साथ वे भी हठ करके हार गए जो कि सातवें आसमान पर थे अर्थात् बड़े अभिमानी थे । अब ये सूबेदार (बहादुरखाँ) शिवाजी पर चढ़ाई करने आ रहे हैं (भला ये शिवाजी का क्या कर

ॐ इस सवैये में आठ भगण (ऽ।।) होते हैं ।

सकेंगे ?) यह तो वही बात हुई कि 'कल का जोगी और कलींदे का खप्पर' अर्थात् कल ही योगी हुए और तरबूज़ों का खप्पर ले लिया ! अर्थात् जिस तरह ऐसे योगी से योग नहीं सधता वैसे ही जिसका शाइस्ताखाँ और महावत-खाँ जैसे पुराने अनुभवी योद्धा कुछ न बिगाड़ सके, उसका ये नये सूबेदार क्या कर सकेंगे।

विवरण—यहाँ भी 'कालिह के जोगी कलींदे को खप्पर' यह कहावत उपमान वाक्यरूप से और साभिप्राय कथन की गई है अतः छेकोक्ति है। लोकोक्ति में और छेकोक्ति में यह भेद है कि लोकोक्ति में केवल 'कहावत' का कथन मात्र होता है और छेकोक्ति में 'कहावत' साभिप्राय एक उपमान वाक्य रूप कथित होती है।

वक्रोक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ श्लेष सों काकु सों, अरथ लगावे और।
वक्र उकति ताको कहत, भूषन कवि सिरमौर ॥३२३॥

शब्दार्थ—काकु=कंठध्वनि विशेष जिससे शब्दों का दूसरा अभिप्राय लिया जाय।

अर्थ—जहाँ श्लिष्ट शब्द होने के कारण या काकु (कण्ठध्वनि) से कथन का अर्थ कुछ और ही लगाया जाय वहाँ श्रेष्ठ कवि वक्रोक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—श्लेष=वक्रोक्ति में श्लिष्ट शब्द होते हैं; जिनके अर्थ के हेर-फेर से वक्रोक्ति होती है। परन्तु काकु वक्रोक्ति में कंठध्वनि के कारण अर्थ में हेर-फेर होता है, और कंठध्वनि कान का विषय होने के कारण यह शुद्ध शब्दालंकार है। कई प्रमुख अलंकार-शास्त्रियों ने 'काकु वक्रोक्ति' को शब्दालंकारों में लिखा है। किन्तु भूषण एवं अन्य कई कवियों ने इसका अर्थालंकारों में ही वर्णन किया है।

श्लेष से वक्रोक्ति का उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितनै तेरे बैरि बैरिन को कौतुक सों,
बूझत फिरत कहौ काहे रहे तचिहौ?
सरजा के डर हम आए इतै भाजि, तब,
सिंह सों डराय याहू ठौर ते उकचिहौ॥
भूषन भनत, वै कहैं कि हम सिव कहैं,
तुम चतुराई सों कहत बात रचि हौ॥
सिव जापै रूठैं तौ निपट कठिनाई तुम,
बैर त्रिपुरारि के त्रिलोक में न बचिहौ ॥३२४॥

शब्दार्थ—तचि=संतप्त, दुखी, व्याकुल। उकचि=उठ भागना, अलग होना। त्रिपुरारि=महादेव, त्रिपुर नामक राक्षस के शत्रु। यह राक्षस राजा बलि का पुत्र था। तीनों लोकों में इसने अपना निवास-स्थान बनाया हुआ था। इसलिए किसी को पता ही न चलता था कि वह किस समय किस लोक में है अतः शिवाजी ने एक साथ तीन बाणों को छोड़कर इसे मारा था।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र शिवाजी! तुम्हारे साथ वैर करने के कारण शत्रुओं को (व्याकुल देखकर लोग) आश्चर्य से (अथवा दिल्लगी के लिए) पूछते हैं कि तुम ऐसे व्याकुल क्यों हो? (वे इसका उत्तर देते हैं कि) हम 'सरजा' के भय से इधर को भाग कर चले आये हैं। (सरजा से उनका अर्थ शिवाजी था, पर श्लेप से सरजा का अर्थ 'सिंह' मान वे कहने लगे कि) सिंह के भय से तो तुम अब इस स्थान से भी उठ भागोगे। भूषण कवि कहते हैं कि इस बात पर शत्रु लोग कहते हैं कि हम तो शिव (शिवाजी) की बात कहते हैं (सिंह नहीं), तुम तो चतुराई से और ही बात बनाकर कहते हो। इस पर उन्होंने फिर कहा कि शिवजी जिस पर नाराज हो जाँय उसे तो बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। त्रिपुरारि (महादेव) से शत्रुता करके तो तुम त्रिलोकी में भी न बच पाओगे।

विवरण—यहाँ 'सरजा' और 'शिव' इन दोनों श्लिष्ट शब्दों से वक्ता के अभिप्रेत अर्थ को न लेकर अपितु क्रमशः 'सिंह' और 'महादेव' अर्थ लेकर शत्रुओं की हँसी उड़ाई गई है, अतः वक्रोक्ति अलंकार है।

काकु से वक्रोक्ति का उदाहरण—कवित्त मनहरण

सासताखाँ दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि,
बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है।
भूषण भनत जौ लौं भेजौ उत औरै तिन,
वे ही काज बरजोर कटक कटायो है।
जोई सूबेदार जात सिवाजी सों हारि तासों,
अवरँगसाहि इमि कहै मन भायो है।
मुलुक लुटायो तौ लुटायो, कहा भयो, तन,
आपनो बचायो महाकाज करि आयो है ॥३४५॥

अर्थ—(औरंगज़ेब ने) पहले पहल शाइस्ताखाँ को दक्षिण में भेजा, परन्तु उसने वहाँ जाकर (कुछ नहीं किया, उलटा) अपने पुत्र (अब्दुल फतेखाँ) के साथ साथ अपना हाथ गँवा दिया (शाइस्तखाँ का अँगूठा शिवाजी ने काट डाला था)। भूषण कवि कहते हैं कि जब तक और (कटक) सेना (शाइस्ताखाँ की मदद को) भेजी गई तब तक उसने इधर दक्षिण में सारी प्रबल सेना व्यर्थ ही कटवा डाली। जो भी सूबेदार शिवाजी से हारकर औरंगज़ेब के पास जाता है, उससे वह इस तरह मनभाई बात कहता है कि यदि समस्त देश लुटा दिया तो उस लुटाने से क्या हुआ ? (अर्थात् कुछ नहीं हुआ) तुमने अपने शरीर को बचा लिया यही बहुत बड़ा काम तुम कर आये हो।

विवरण—यहाँ शिवाजी से परास्त एवं लूटे गये सूबेदारों के प्रति औरंगज़ेब ने यह कहा है 'यदि देश को लुटा दिया वा हार

गये तो क्या हुआ ? तुम अपना शरीर तो सही-सलामत ले आये यही बड़ा काम किया', किन्तु इस का तात्पर्य बिलकुल उलटा है। 'काकु' से यही कथन है कि तुम्हें लज्जा नहीं आई कि प्राण बचाने के लिए हार कर चले आये।

दूसरा उदाहरण—दोहा

करि मुहीम आए कहत, हजरत मनसब दैन।
सिव सरजा सों जंग जुरि, ऐहैं बचिकै हैं न ॥३२६॥

शब्दार्थ – मुहीम=चढ़ाई, युद्ध। हजरत = श्रीमान (औरंगज़ेब) मनसब=उच्चपद।

अर्थ—युद्ध करके आने के बाद श्रीमान मनसब देने को कहते हैं। पर वीर-केसरी शिवाजी से युद्ध करके बचकर आयँगे तब न !

विवरण—यहाँ युद्ध करके आने के बाद 'हजरत मनसब देने कहते हैं' इसका काकु से यही तात्पर्य होता है कि 'हजरत मनसब देना नहीं चाहते' क्योंकि शिवाजी से युद्ध कर के वापिस जीवित लौटना असंभव है, तब मनसब कैसा ?

स्वभावोक्ति

लक्षण—दोहा

साँचो तैसो बरनिए, जैसो जाति स्वभाव।
ताहि सुभावोकति कहत, भूषन जे कविराव ॥३२७॥

अर्थ—जैसा जिसका जातीय स्वभाव हो उसका जहाँ वैसा ही ठीक ठीक वर्णन किया जाय वहाँ कविराज स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दान समै देखि द्विज मेरुहू कुबेरहू की,
संपति लुटाइबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिवसाहि के बदन पर,
सिव की कथान मैं सनेह झलकत है॥

भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को वीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा द्दगन के उछाह छलकत है ॥३२८॥

शब्दार्थ—ललकत है = लालायित होता है, उमंग से भर जाता है। बलकत है = खौल उठता है, जोश में आ जाता है।

अर्थ—दान देने के समय ब्राह्मण को देखकर सुमेरु पर्वत तथा कुबेर की दौलत को भी लुटाने के लिए शिवाजी का हृदय लालायित हो उठता है, उमंगित हो उठता है। शाहजी के पुत्र शिवाजी के बदन पर श्री महादेवजी की कथाओं में (कथाओं के सुनने में) बड़ा प्रेम झलकने लगता है। भूषण कवि कहते हैं कि संसार भर के हिंदुओं के उद्धार के लिए और तुर्कों के नाश के लिए वह वीर खौल उठता है, (जोश में आजाता है)। बादशाहों से युद्ध करने की बात चलने पर ही वीर-केसरी शिवाजी के नेत्रों में उत्साह उमड़ आता है।

विवरण—यहाँ शिवाजी के दान, भक्तिभाव, वीर भाव आदि का स्वाभाविक वर्णन है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहैं ताही,
ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं।
कहे तें कहत बात कहे तें पियत खात,
भूषन भनत ऊँची साँसन लहत हैं॥
पौढ़े हैं तो पौढ़े बैठे-बैठे खरे खरे हम,
को हैं कहा करत यों ज्ञान न गहत हैं।
साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि,
साहि सब रातौ दिन सोचत रहत हैं ॥३२९॥

शब्दार्थ—चहत हैं = देखते हैं। जहत = (जुहोति) छोड़ते हैं। पौढ़े = लेटे हुए। ज्ञान न गहत है—सुध नहीं ग्रहण करते, सुध बुध मारी गई है।

अर्थ—किसी के कहने सुनने पर जिस ओर देखने लगते हैं, उसी ओर एकटक तीन चार घड़ी तक देखते रहते हैं। कहने पर ही बात करते हैं, कहने पर ही खाते पीते हैं, और भूषण कहते हैं कि वे सदा लंबी लंबी साँसे छोड़ते रहते हैं,। लेटे हैं तो लेटे ही हैं, बैठे हैं तो बैठे ही हैं, और खड़े हैं तो खड़े ही हैं, हम कौन हैं क्या करते हैं इस प्रकार का उन्हें ज्ञान नहीं है। हे शाहजी के सुपुत्र शिवाजी, तेरी शत्रुता के कारण इसी प्रकार सब बादशाह रात दिन सोचते रहते हैं।

विवरण—शिवाजी की शत्रुता के कारण चिंतित बादशाहों की अवस्था का स्वाभाविक चित्र कवि ने यहाँ खींच दिखाया है।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

उमड़ि कुडाल मैं खवासखान आए भनि,
भूषन त्यों धाए सिवराज पूरे मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर,
मूछैं तरराने मुख बीर धीर जन के॥
एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरे मार बीच बेसम्हार तन के।
कुंडन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के॥३३०॥

शब्दार्थ—कुडाल=सावंतवाड़ी से १३ मील उत्तर काली नदी पर स्थित है। जिस समय शिवाजी ने कुडाल पर चढ़ाई की, उस समय खवासखाँ एक बड़ी सेना लेकर शिवाजी को परास्त करने आया। नवंबर १६६३ ई० में शिवाजी ने खवासखाँ को हरा कर भगा

दिया। इसके बाद बीजापुर के मददगार तथा कुडाल के जागीरदार लक्ष्मण सावंत देसाई से लड़ाई हुई। सावंत जान लेकर भाग गया। कुडाल पर शिवाजी का अधिकार होगया। पूरे मन के=बड़े उत्साह से। हय = घोड़े। घोर = ज़ोर से। तरराने = खड़ी हो गई। सम्हरि = सँभलो। मार = लड़ाई, युद्ध। बेसम्हार=बेसुध। कुंडन=लोहे का टोप। जीरन=जिरह बख्तर, कवच। खड़ाका=तलवार बजने की आवाज।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि ज्योंही (बीजापुर का सेनापति) खवासखाँ (सेना सहित) कुडाल स्थान पर चढ़कर आया, त्योंही शिवाजी ने उस पर पूर्ण उत्साह से धावा बोल दिया। तब मरदाने (युद्ध के मारू) बाजे सुन सुन कर घोड़े ज़ोर से हिनहिनाने लगे और धैर्यशील वीर पुरुषों के मुखों पर मूछें तन गई—खड़ी हो गई। कोई 'मारो मारो' कहते थे, कोई 'सँभलो सँभलो' कहने लगे और शरीर की सुध-बुध भूलकर लड़ाई के बीच में म्लेच्छ गिरने लगे। जगह-जगह पर सिर के टोपों पर चोट पड़ने से कटाक-कटाक शब्द होता था और जिरह-बख्तर पर तलवारों के पड़ने से खड़ाक-खड़ाक की आवाज़ आती थी।

विवरण—यहाँ युद्ध का स्वाभाविक वर्णन किया गया है।

चौथा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आगे आगे तरुन तरायले चलत चले,
तिनके अमोद मंद मंद मोद सकसै।
अड़दार बड़े गड़दारन के हाँके सुनि,
अड़े गैर-गैर माहिं रोस रस अकसै।
तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत भौंर,
भूषन भनत तेऊ महामद छकसै।
कीरति के काज महाराज सिवराज सब,
ऐसे गजराज कविराजन को बकसै ॥३३१॥

शब्दार्थ—तरायले = तरल, चंचल, चपल । अमोद = आमोद, सुगंधि । मोद = आह्लाद । सकसै = फैलता है । अड़दार = आड़ियल । गड़दार = वे नौकर जो मस्त हाथी को कभी रिझाकर और कभी डंडे से मार कर ठीक करते हैं । हाँक = टिचकार पशुओं को चलाने की एक आवाज़ । गैर=गैल, राह, रास्ता । रोस रस=क्रोध । अकसे=बिगड़े । तुंडनाद=नरसिंहा, एक प्रकार का बाजा, तुरही अथवा (तुंडनाद) सूँड से निकला हुआ शब्द । मद छकसै = मद छके, मतवाले । बकसै = देते हैं ।

अर्थ—चलते समय जो नौजवान और चंचल हाथी (सबसे) आगे आगे चलते हैं, और जिनके मद की मंद मंद सुगंध से आल्हाद फैलता है, (मदमस्त होने के कारण) जो बड़े अड़ियल हैं, और गड़दारों (साँटे दारों) की हाँकों को सुनकर क्रोध से बिगड़े हुए मार्ग में (स्थान स्थान पर) अड़ जाते हैं, जो नरसिंहे की आवाज़ सुनकर गर्ज उठते हैं तथा जिनके मद के ऊपर भौंरे गूँज रहे हैं, अथवा जिनके (सूँड से निकली) गरजने की आवाज़ सुनकर भौंरे गूँजने लगते हैं, और जो बड़े मद से छके हुए हैं, अर्थात् बड़े मदमस्त हैं, भूषण कहते हैं कि यश पाने के लिए महाराज शिवाजी ऐसे अनेक गजराज कविराजों को देते हैं ।

विवरण—यहाँ मदमस्त हाथियों का स्वाभाविक वर्णन है ।

भाविक

लक्षण—दोहा

भयो, होनहारो अरथ, बरनत जहँ परतच्छ ।
ताको भाविक कहत हैं, भूषन कवि मति स्वच्छ ।।२३२।।

शब्दार्थ—भयो=हुआ, गत, भूत । होनहारो=होने वाला, भविष्यत् । मतिस्वच्छ = निर्मल बुद्धि ।

अर्थ—जहाँ भूत और भविष्यत् की घटनाएँ वर्तमान की तरह वर्णन की जायँ वहाँ निर्मल-बुद्धि कवि भूषण भाविक अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अजौं भूतनाथ मुण्डमाल लेत हरषत,
भूतन अहार लेत अजहूँ उछाह है।
भूषन भनत अजौं काटे करवालन के,
कारे कुंजरन परी कठिन कराह है।
सिंह सिवराज सलहेरि के समीप ऐसो,
कीन्हों कतलाम दिली-दल को सिपाह है।
नदी रन मंडल रुहेलन रुधिर अजौं,
अजौं रबिमंडल रुहेलन की राह है ॥३३३॥

शब्दार्थ—अजौं=आज भी, अब भी। कुंजरन=हाथियों। कराह=पीड़ा प्रकट करने वाली आवाज़, चिंग्घाड़। रनमंडल=रणभूमि। रुहेलनि=रुहेलखंड के रहने वाले लोग, पठान।

अर्थ—वीरकेसरी शिवाजी ने सलहेरि के पास दिल्ली की सेना के सिपाहियों का ऐसा कत्ले-आम किया कि आज भी (वहाँ से) भूतनाथ (श्री महादेवजी) मुंडमाला लेते हुए बड़े आनन्दित होते हैं और भूत-प्रेत गणों को अब भी आहार लेने में बड़ा उत्साह है। भूषण कवि कहते हैं कि तलवारों से कटे हुए काले काले हाथी अब भी बड़े ज़ोर ज़ोर से कराह रहे हैं और युद्ध भूमि में आज भी रुहेलों के खून से निकली हुई नदी बह रही है और अब भी सूर्य-मंडल में रुहेलों का रास्ता है (जो वीर युद्ध में मरते हैं वे सूर्य-मंडल को भेद कर स्वर्ग को जाते हैं)।

विवरण—यहाँ सलेहरि के युद्ध में हुई भूतकालीन घटना का 'अजौं' इस पद से कवि ने वर्तमानवत् वर्णन किया है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

गज-घटा उमड़ी महा घन-घटा सी घोर,
भूतल सकल मदजल सों पटत है।

बेला छाँड़ि उछलत सातौ सिंधु-बारि,
मन मुदित महेस मग नाचत कढ़त है ॥
भूषन बढ़त भौंसिला भुवाल को यों तेज,
जेतो सब बारहौ तरनि मैं बढ़त है।
सिवाजी खुमान दल दौरत जहान पर,
आनि तुरकान पर प्रलै प्रगटत है ॥२२४॥

शब्दार्थ—गजघटा=हाथियों का समूह। पटत है=पट जाता है, भर जाता है। बेला=समुद्र का किनारा। कढ़त है=निकलते हैं। बढ़त=बढ़ता है, फैलता है। बारहौ तरनि=बारहों सूर्य, प्रलयकाल में बारहों सूर्य एक साथ उदित होते हैं।

अर्थ—हाथियों का झुंड बादलों की बड़ी घनघोर घटा के समान उमड़कर समस्त पृथ्वी को अपने मदजल से पाट देता है, छा देता है। सातों समुद्रों का जल अपने अपने किनारों को—अपनी मर्यादा को—त्याग कर उछल रहा है और मन में अति प्रसन्न होकर श्री महादेव जी मार्ग में नाचते हुए तांडव नृत्य करते हुए निकलते हैं (महादेव सृष्टि के संहारक हैं, अतः प्रलय के चिह्न देख कर प्रसन्न होते हैं)। भूषण कवि कहते हैं कि भौंसिला राजा शिवाजी का तेज ऐसा बढ़ रहा है जैसा कि बारहों सूर्यों का तेज प्रकट होता है। इस भाँति जब उनकी सेना संसार पर चढ़ाई करती है तो तुर्कों के लिए प्रलय सी होती हुई दिखाई पड़ती है। (प्रलय के समय में मेघों का घोर वर्षा करना, समुद्र का मर्यादा त्यागना, और बारहों सूर्यों का एक समय ही प्रकट होना आदि बातें होती हैं; वे ही बातें शिवाजी की सेना चलने पर वहाँ प्रकट हुई हैं)।

विवरण—यहाँ भविष्य में होने वाली प्रलय का 'शिवाजी खुमान दल दौरत जहान पर आनि तुरकान पर प्रलै प्रगटत है' इस पद से वर्तमान में प्रकट होना कथन किया गया है।

भाविक छवि

लक्षण—दोहा

जहँ दूरस्थित वस्तु को, देखत बरनत कोय।
भूषन भूषन-राज भनि, भाविकछवि सो होय ॥३३५॥

शब्दार्थ—दूरस्थित=दूर स्थान पर स्थित, दूर रक्खी हुई।

अर्थ—जहाँ दूरस्थित (परोक्ष) वस्तु को भी प्रत्यक्ष देखने के समान वर्णन किया जाय वहाँ भूषण कवि भाविक छवि अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—मालती सवैया

सूबन साजि पठावत है नित फौज लखे मरहट्टन केरी।
औरँग आपनि दुग्ग जमाति बिलोकत तेरियै फौज दरेरी ॥
साहितनै सिवसाहि भई भनि भूषन यों तुव धाक घनेरी।
रातहु द्योस दिलीस तकै तुव सैनिक सूरति सूरति घेरी ॥३३६॥

शब्दार्थ—सूबा=सूबेदार। केरी=की। तेरियै=तेरी ही। दरेरी=मर्दित, नष्ट भ्रष्ट की गई। द्योस=दिवस, दिन। तकै=देखता है। सू·ति=शक्ल, सूरत शहर।

अर्थ—प्रतिदिन मराठों की फौज को देखकर औरंगज़ेब अपने सूबेदारों को भली-भाँति सुसज्जित करके भेजता है, हे शिवाजी (फिर भी) वह तेरी सेना द्वारा अपने दुर्ग-समूहों को नष्टभ्रष्ट किया हुआ ही देखता है। भूषण कहते हैं कि हे शाहजी के पुत्र शिवाजी तुम्हारी इतनी अधिक धाक होगई है, तुम्हारा इतना आतंक छा गया है कि दिल्लीश्वर औरंगज़ेब रात-दिन ही सूरत शहर को घेरे हुए तुम्हारे सैनिकों की शक्लें देखा करता है।

विवरण—यहाँ आगरे में बैठे हुए औरंगज़ेब का दूरस्थ सूरत नगर को रात-दिन शत्रुओं से घिरा हुआ देखना कथन किया गया है। अतः भाविक छवि अलंकार है।

सूचना—अन्य कवियों ने इस अलंकार को भाविक अलंकार के ही अन्तर्गत माना है; परन्तु भूषण ने इसे भिन्न माना है। भाविक अलंकार में 'काल' विषयक वर्णन किया जाता है और इस में 'स्थान' विषयक वर्णन होता है ।

उदात्त

उदाहरण—दोहा

अति सम्पति बरनन जहाँ, तासों कहत उदात।
कै आनै सु लखाइए, बड़ी आन की बात ॥२३७॥

शब्दार्थ—आन = अन्य की, किसी व्यक्ति की । बड़ी आन = बड़ी शान, महत्व ।

अर्थ—जहाँ अति संपत्ति (लोकोत्तर समृद्धि) का वर्णन हो अथवा किसी महान पुरुष के संसर्ग से किसी अन्य वस्तु का महत्व दिखाया जाय वहाँ उदात्त अलंकार होता है ।

विवरण—उदात्त के उपर्युक्त लक्षण के अनुसार दो भेद हुए (१) जहाँ अत्यन्त संपत्ति का वर्णन हो (२) जहाँ महापुरुष के सम्बन्ध से किसी वस्तु को महान कहा जाय ।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

द्वारन मतंग दीसैं आँगन तुरंग हीसैं,
बन्दीजन बारन असीस जसरत हैं।
भूषन बखानै जरबाफ के सम्याने ताने,
झालरन मोतिन के झुंड झलरत हैं ॥
महाराज सिवा के नेवाजे कविराज ऐसे,
साजि कै समाज तेहि ठौर बिहरत हैं।
लाल करैं प्रात तहाँ नीलमनि करैं रात,
याही भाँति सरजा की चरचा करत हैं ॥२३८॥

शब्दार्थ—मतंग=हाथी। दीसैं=दृष्टिगत होते हैं, दिखाई देते हैं। हीसैं=हिनहिनाते हैं। बारन=द्वारों पर। जसरत=यश में रत, गुण-गान में मग्न। झलरत=झूलते हैं, लटकते हैं। बिहरत हैं=विहार करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, आनंद-मौज उड़ाते हैं।

अर्थ—द्वारों पर हाथी खड़े दिखाई देते हैं, आँगनों में घोड़े हिन-हिना रहे हैं, और वंदीजन दरवाज़ों पर खड़े आशीर्वाद दे रहे हैं, तथा यशोगान में मग्न हैं। भूषण कहते हैं कि वहाँ कलावत्तू के काम किये हुए शामियाने तने हैं और उनकी झालरों में मोतियों के झुंड लटक रहे हैं। इस प्रकार के साज सजाकर शिवाजी के कृपापात्र (शिवाजी से जिन्होंने दान पाया है वे) कविराज उस स्थान पर विचरते हैं जहाँ लालमणि (के प्रकाश से)प्रातःकाल होता है, और नीलमणि(की चमक) से रात्रि होती है,अर्थात लालमणि की ललाई से उपाकाल होजाता है और नीलम की नीलिमा से रात की तरह अंधकार छा जाता है। इस प्रकार (ऐश्वर्य पाकर) वे कवि वीर-केसरी शिवाजी की चर्चा किया करते हैं।

विवरण—यहाँ शिवाजी के कृपापात्र कवियों की लोकोत्तर समृद्धि का वर्णन है, अतः प्रथम प्रकार का उदात्त अलंकार है।

दूसरे भेद का उदाहरण—कवित्त मनहरण

जाहु जनि आगे खता खाहु मति यारो,
गढ़-नाह के डरन कहैं खान यों बखान कै।
भूषन खुमान यह सो है जेहि पूना माहिं,
लाखन में सासताखाँ डारथो बिन मान कै॥
हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैबे काज,
झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।
वहै है सिवाजी जेहि भीम ह्वै अकेले मारथो,
अफजल-कीचक को कीच घमसान कै॥३२९॥

शब्दार्थ—खता=भूल, गलती। गढ़नाह=गढ़पति, शिवाजी। खान=पठान, प्रायः काबुली लोगों को खान कहते हैं, अथवा बहादुर खाँ जिसे औरंगज़ेब ने सन् १६७२ ई० में दक्षिण का गवर्नर नियत किया था। बिन मान=बेइज्ज़त। प्रमान कै=प्रतिज्ञा करके। कीचक=राजा विराट का साला, जिसने द्रौपदी का सतीत्व नष्ट करना चाहा था, उसे भीम ने मार डाला था। कीच घमसान कै=घोर युद्ध करके।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी के डर से डरे हुए खान (पठान आदि वा बहादुर खाँ) इस प्रकार कहते हैं कि मित्रो! आगे (दक्षिण में) न जाओ, धोखा न खाओ या भूल मत करो। यह वही गढ़पति चिरजीवी (शिवाजी) हैं जिसने पूना में लाखों सिपाहियों के बीच में शाइस्ताखाँ को बेइज्ज़त कर डाला था और यह वही शिवाजी हैं, जिसने भीम होकर अकेले ही हिन्दू-रूपी द्रौपदी की इज्ज़त को बचाने के लिए प्रतिज्ञा करके विराट नगर (की भाँति दुर्ग) से बाहर निकल कर (भीमसेन ने कीचक को नगर के बाहर मारा था, इसी तरह शिवाजी ने भी अपने किले से बाहर निकल कर अफज़लखाँ को मारा था) अफ-ज़लखाँ रूपी कीचक को घोर युद्ध करके मार डाला।

विवरण—यहाँ भीम की कीचक-वध विषयक वार्त्ता का शिवाजी द्वारा अफ़ज़लखाँ के मारे जाने रूप कार्य से सम्बन्ध जोड़कर शिवाजी का महत्त्व प्रकट किया गया है, अतः द्वितीय उदात्त अलंकार है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

या पूना मैं मति टिकौ, खानबहादुर आय।
ह्याँई साइस्तखान को, दीन्हीं सिवा सजाय ॥३४०॥

अर्थ—हे बहादुर खाँ! इस पूना नगर में आकर तुम न ठहरो क्योंकि यहाँ ही शिवाजी ने शाइस्ताखाँ को सजा दी थी।

विवरण—यहाँ शिवाजी के द्वारा शाइस्ताखाँ को दंडित करने रूप महान कार्य के सम्बन्ध से पूना नगर को महत्त्व दिया गया है।

अत्युक्ति

लक्षण—दोहा

जहाँ सूरतादिकन की, अति अधिकाई होय।
ताहि कहत अतिउक्ति है, भूषन जे कवि लोय ॥३४१॥

शब्दार्थ—सूरतादिकन=सूरता (शूरता) आदि बातों की।

अर्थ—जहाँ वीरता आदि बातों का अत्यधिक वर्णन हो वहाँ कविजन अत्युक्ति अलंकार कहते हैं।

सूचना—इस अलंकार में शूरता, दान-वीरता, सत्यवीरता, उदारता, आदि भावों का वर्णन होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

साहितन सिवराज ऐसे देत गजराज,
जिन्हैं पाय होत कविराज बेफिकिरि हैं।
भूलत भलमलात भूलैं जरबाफन की,
जकरे जँजीर जोर करत किरिरि है॥
भूषन भँवर भननात घननात घंट,
पग भननात मानो घन रहे घिरि हैं।
जिन की गरज सुन दिग्गज बे-आब होत,
मद ही के आब गरकाव होत गिरि हैं॥३४२॥

शब्दार्थ—बेफिकिरि=बेफिक्र, निश्चिन्त। झूलैं=घोड़ों और हाथियों की पीठ पर ओढ़ाया जानेवाला कीमती कपड़ा। जरबाफ=सोने का काम किया हुआ रेशमी कपड़ा। जकरे=जकड़े हुए, बँधे हुए। किरिरि=कट कटा कर। बे-आब=निस्तेज, फीका। आब=पानी। गरकाब=गर्क+आब, पानी में डूबना।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी कवियों को ऐसे हाथी देते हैं कि जिन्हें पाकर वे निश्चिंत हो जाते हैं, उन्हें किसी तरह का फिक्र नहीं रहता और जिन हाथियों पर कलाबत्तू के काम की चमचमाती झूलें झूलती रहती हैं, जो जंजीरों से बाँधे जाने पर कटकटा कर (छुड़ाने के लिए) बल लगाते हैं, जिन पर (मद-रस-लोभी भौंरे सदा गुंजारते रहते हैं, जिनके घंटे बजते रहते हैं और पैरों में पड़ी जंजीरें और घंटियाँ ऐसी खनखनाती हैं, मानो बादल घिरे हुए (गरज रहे) हों और जिनके गर्जन को सुनकर दिग्गज निस्तेज हो जाते हैं और जिनके मद-जल में पहाड़ भी डूब जाते हैं।

विवरण—यहाँ महाराज शिवाजी के दान की अत्युक्ति है।

दूसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही,
जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो।
भूषन भनत तेरे दान-जल-जलधि मैं,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो॥
चंदकर किंजलक चांदनी पराग, उड़,
बृंद मकरंद बुंद पुंज के सरीक सो।
कंद सम कयलास नाक-गंग नाल तेरे
जस पुंडरीक को अकास चंचरीक सो॥३४३॥

शब्दार्थ—जगदेव=पँवार-वंशीय राजपूतों में एक प्रसिद्ध तेजस्वी राजा। इसका नाम राजपूताना, गुजरात, मालवा आदि देशों में वीरता तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध है। जजाति=ययाति एक प्रतापी राजा, जिसके पुत्र यदु के नाम से यादव वंश चला। अम्बरीक=अम्बरीष एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा था। पुराणों में यह परम वैष्णव प्रसिद्ध है। खरीक=तिनका। किंजलक=किंजल्क,

कमल फूल के बीच की बहुत बारीक पीली पीली सींके। पराग=पुष्प-धूलि। उड़बृन्द=तारागण। पुंज=समूह। सरीक सो=शरीक हुआ हुआ सा, सदृश। कंद=जड़। नाक गंग=आकाश गंगा। पुंडरीक=श्वेत कमल। चंचरीक=भौंरा। नाल=कमल के फूल की डंडी।

अर्थ—आजकल के इस समय में (जगत् में) हे शिवाजी ! जगदेव, जनक, ययाति और अंबरीप के समान(यशस्वी)तू ही है। भूषण कहते हैं कि तेरे दान के संकल्प-जल के समुद्र में तिनके के समान गुणियों का दारिद्रय बह गया। चन्द्रमा की किरणें तेरे यशरूपी श्वेत कमल का केसर हैं, चाँदनी उसका पराग है, और तारागण मकरंद की बूँदों के समूह के समान हैं। कैलास पर्वत उसकी जड़ है, आकाशगंगा उसकी नाल है और आकाश (उस पर मंडराने वाले) भौंरे के समान है—अर्थात् तेरा *यश इतना विस्तीर्ण है कि आकाश भी उसी के विस्तार में आ जाता है।*

विवरण—यहाँ दान और यश की अत्युक्ति है।

तीसरा उदाहरण—दोहा

महाराज सिवराज के, जेते सहज सुभाय।
औरन को अति-उक्ति से, भूषन कहत बनाय ॥३४४॥

अर्थ—महाराज शिवाजी की जो बातें स्वाभाविक हैं उन्हीं को भूषण कवि अन्य राजाओं के लिए अत्युक्ति के समान वर्णन करते हैं। अर्थात् *जो गुण शिवाजी में स्वाभाविक हैं, यदि उन गुणों का किसी दूसरे में* होना वर्णन किया जाय तो उसे अत्युक्ति ही समझनी चाहिये।

विवरण—यहाँ शिवाजी के अलौकिक गुणों की अत्युक्ति है।

निरुक्ति

लक्षण—दोहा

नामन को निज बुद्धि सों, कहिए अरथ बनाय।
ताको कहत निरुक्ति हैं, भूषन जे कविराय ॥३४५॥

अर्थ—जहाँ अपनी बुद्धि से नामों (संज्ञा शब्दों) का कोई दूसरा ही अर्थ बनाकर कहा जाय वहाँ कवि लोग निरुक्ति अलंकार कहते हैं ।

उदाहरण—दोहा

कवि गन को दारिद-द्विरद, याही दल्यो अमान ।
यातें श्री सिवराज को, सरजा कहत जहान ॥३४६॥

शब्दार्थ—दारिद-द्विरद=दारिद्रय-रूपी हाथी । दल्यो=दलन किया, नष्ट किया । अमान=बहुत ।

अर्थ—कवि लोगों के दारिद्रय-रूपी महान हाथी को इन्होंने नष्ट कर दिया, इसीलिए महाराज शिवाजी को संसार सरजा (सिंह) कहता है ।

विवरण—वस्तुत: सरजा शिवाजी की उपाधि है । परन्तु कवियों के दारिद्रय-रूपी हाथी को मारने से उन्हें संसार सरजा (सिंह) कहता है, यह 'सरजा' शब्द की मनमानी किन्तु युक्ति-युक्त व्युत्पत्ति है, इसलिए यहाँ निरुक्ति अलंकार है ।

दूसरा उदाहरण—दोहा

हर्यो रूप इन मदन को, याते भो सिव नाम ।
लियो विरद सरजा सबल, अरि-गज दलि संग्राम ॥३४७॥

शब्दार्थ—मदन = कामदेव ।

अर्थ—इन्होंने कामदेव का रूप हर लिया है अर्थात् कामदेव की सुंदरता को इन्होंने छीन लिया है अतः इनका नाम शिव (शिवाजी) पड़ा (क्योंकि शिवजी ने भी मदन का रूप उसे भस्म करके हर लिया था) और शत्रु-रूपी हाथियों को दलन कर के इन्होंने सरजा (सिंह) की सबल उपाधि पाई ।

विवरण—यहाँ शिवाजी का 'शिव' नाम प्रकृत है । परन्तु मदन के रूप को नष्ट करने से उनका नाम 'शिव' हुआ यह अर्थ कल्पित किया गया है । इसी प्रकार शत्रुरूपी हाथी मारने से 'सरजा' पदवी मिली, यह भी कल्पित अर्थ है, वास्तव में 'सरजा' शिवाजी की उपाधि है ।

तीसरा उदाहरण—कवित्त मनहरण

आजु सिवराज महाराज एक तुही सर-
नागत जनन को दिवैया अभै-दान को
फली महिमंडल बड़ाई चहुँ ओर तातें,
कहिए कहाँ लौं ऐसे बड़े परिमान को ॥
निपट गँभीर कोऊ लाँघि न सकत बीर,
जोधन को रन देत जैसे भाऊखान को।
'दिल दरियाव' क्यों न कहैं कविराव तोहि,
तो मैं ठहरात आनि पानिप जहान को ॥३६१॥

शब्दार्थ—सरनागत = शरण में आये हुए। गँभीर = गहरा। भाऊ खान = भाऊसिंह, छन्द सं० ३५ देखो। दरियाव = समुद्र। दिलदरियाव = दरियादिल, उदार।

अर्थ—हे महाराज शिवाजी! आजकल एक आप ही शरणागत लोगों को अभयदान देने वाले हैं। इसलिए आपकी कीर्ति समस्त संसार में चारों ओर ऐसी फैल गई है कि उसके परिमाण को (विस्तार को) कोई कहाँ तक वर्णन कर सकता है। भाऊसिंह जैसे वीर योद्धाओं को आप सदा रण देते हो—युद्ध में लड़कर उन्हें मार डालते हो और आप बड़े गंभीर हो इसलिए कोई भी वीर आपका उल्लंघन नहीं कर सकता (अर्थात् आपकी बात कोई नहीं टाल सकता)। फिर समस्त कवि आपको दारियादिल (उदारचेता) क्यों न कहें जब कि उसमें समस्त संसार का पानिप भी (जल तथा इज़्ज़त) आकर जमा होता है। (अर्थात् शिवाजी समुद्र की तरह अपरिमेय और गंभीर हैं और सबका पानी रखने वाले हैं इसलिए कवि लोग उन्हें दिलदरियाव क्यों न कहें)।

विवरण—यहाँ कवि की उक्ति शिवाजी के प्रति है कि आप में संसार का पानी आकर ठहरने से ही आप को दिलदरियाव

क्यों न कहा जाय। यह उदाहरण ठीक नहीं है; 'दिलदरियाव' विशेषण है, नाम नहीं है।

हेतु

लक्षण—दोहा

"या निमित्त यहई भयो", यों जहँ बरनन होय।
भूषन हेतु बखानहीं, कवि कोविद सब कोय ॥३४९॥

अर्थ—इसी कारण से यह कार्य हुआ अर्थात् इसके ऐसा होने का निमित्त यही है, जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो वहाँ सब विद्वान कवि लोग हेतु अलंकार कहते हैं।

सूचना—जहाँ कारण का कार्य के साथ वर्णन हो वहाँ हेतु अलंकार समझना चाहिए। किसी-किसी ने इस हेतु अलंकार को काव्यलिंग में ही सम्मिलित किया है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

दारुन दइत हरनाकुस बिदारिबे को,
भयो नरसिंह रूप तेज विकरार है।
भूषन भनत त्योंही रावन के मारिबे को,
रामचंद भयो रघुकुल सरदार है।
कंस के कुटिल बल-बंसन बिधुंसिबे को,
भयो जदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे को तेरो अवतार है ॥३५०॥'

शब्दार्थ—दारुन = दारुण, भयानक। दइत = दैत्य। बिदारिबे को = फाड़ने को। विधुंसिबे को = विध्वंस करने को, नाश करने के लिए। पुरहूत = इन्द्र। हरिनाकुस = हिरण्यकशिपु, यह दैत्यराज प्रसिद्ध विष्णु-भक्त प्रह्लाद का पिता था। जब इसने अपने पुत्र को-

विष्णु-भक्त होने के कारण बहुत तंग किया तब भगवान ने नृसिंहावतार धारण कर इसका अंत किया।

अर्थ—महादारुण (भयंकर) हिरण्यकशिपु दैत्य को विदीर्ण करने के लिए (भगवान का) विकराल तेजवाला नृसिंह अवतार हुआ। भूषण कवि कहते हैं कि उसी प्रकार रावण को मारने के लिए रघुकुल के सरदार श्री रामचन्द्रजी (अवतीर्ण) हुए और कंस के कुटिल एवं बलवान वंश को नष्ट करने के लिए यदुपति वसुदेव के बेटे श्री कृष्णचन्द्र का अवतार हुआ। इसी भाँति हे पृथ्वी पर इन्द्र-रूप, साहजी के सुपुत्र, महाराज शिवाजी! म्लेच्छों का नाश करने के लिए आपका अवतार हुआ है।

विवरण—"म्लेच्छों को मारने के लिए ही आपका अवतार हुआ है" इसमें कार्य के साथ कारण के कथन होने से हेतु अलंकार है।

अनुमान

लक्षण—दोहा

जहाँ काज तें हेतु कै, जहाँ हेतु ते काज।
जानि परत अनुमान तहँ, कहि भूषन कविराज ॥३५१॥

अर्थ—जहाँ कार्य से कारण और कारण से कार्य का बोध हो वहाँ कवि अनुमान अलंकार कहते हैं।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि,
बीवी कहैं बैन मियाँ कहियत काहि नै।
भूषन भनत बूझे आए दरबार तें,
कँपत बार-बार क्यों सम्हार तन नाहिनै॥
सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब,
हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै।
सिवाजी की संक मानि गए हौ सुखाय तुम्हें,
जानियत दक्खिन को सूबा करो साहि नै ॥३५२॥

शब्दार्थ—अनचेन=बेचैन, व्याकुल। कहियत काहिनै=क्यों नहीं कहते। हीनो=क्षीण, फीका। चितौत=चितवन, देखते।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि अपने अपने स्वामियों के चित्त में बेचैनी एवं उनके नेत्रों में जल उमड़ा हुआ देखकर मुसलमानियाँ कहती हैं कि आप पूछने पर भी बतलाते क्यों नहीं ? (आपको क्या दुख है ?) जब से आप दरबार से आये हैं तब से बार-बार क्यों काँप रहे हैं, आपको शरीर की सुध-बुध भी नहीं है (क्या होगया ?) आप का दिल धड़क रहा है, सारे शरीर में पसीना आ रहा है, रूप-रंग फीका पड़ गया है और न आप दाईं बाईं ओर को देखते ही हैं (सीधे सामने को ही आपकी नज़र बँधो है)। जान पड़ता है, कि बादशाह (औरंगज़ेब) ने आपको दक्षिण देश का सूबेदार बनाया है इसी कारण आप शिवाजी के भय से सूख गये हैं (आपके शरीर की ऐसी दशा हो गई है)।

विवरण—सुध-बुध भूलना, पसीना आना, रंग फीका पड़ जाना आदि कार्यों द्वारा दाक्षिण की सूबेदारी मिलने का अनुमान किया गया है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अंभा-सी दिन की भई संभा-सी सकल दिसि,
गगन लगन रही गरद छवाय है।
चील्ह गीध बायस समूह घोर रोर करैं,
ठौर ठौर चारों ओर तम मँडराय है॥
भूषन अँदेस देस-देस के नरेस गन,
आपुस में कहत यों गरब गँवाय है।
बड़ो बड़वा को जितवार चहुँघा को दल,
सरजा सिवा को जानियत इत आय है॥३५३॥

शब्दार्थ—अंझा=अनध्याय, नागा। संझा=संध्या। लगन=लगी। बायस=कावा। रोर=शब्द, चिल्लाहट। अदेश=अंदेशा, संदेह। बड़वा=बड़वानल, समुद्र की आग।

अर्थ—दिन का अनध्याय सा हो गया है, अर्थात् दिन छिप सा गया है, सब दिशाओं में संध्या सी होगई है। आकाश में लगकर चारों ओर धूल छा रही है। चील, गिद्ध और कौवों का समूह भयंकर शब्द कर रहा है, स्थान स्थान पर चारों ओर अन्धकार छा रहा है। (यह सब देखकर) भूषण कहते हैं कि देश देश के शंकित (डरे हुए) राजा लोग अपना अभिमान गँवा कर आपस में कहते हैं कि बड़वानल से भी (तेज में) अधिक और चारों दिशाओं को जीतने वाली (जगद्विजायी) शिवजी की सेना इधर आती मालूम पड़ती है।

विवरण—यहाँ आकाश में छाई हुई धूल को देखकर शिवाजी की सेना के आगमन का बोध होता है, अतः अनुमान अलंकार है।

शब्दालंकार

दोहा

जे अरथालंकार ते, भूषन कहे उदार।
अब शब्दालंकार ये, कहत सुमति अनुसार ॥३५४॥

अर्थ—जितने भी अर्थालंकार हैं उन सब का वर्णन उदार भूषण ने कर दिया है। अब इन शब्दालंकारों का भी वे अपनी बुद्धि के अनुसार यहाँ वर्णन करते हैं।

छेक एवं लाटानुप्रास

लक्षण—दोहा

स्वर समेत अच्छर पदनि, आवत सदृस प्रकास।
भिन्न अभिन्नन पदन सों, छेक लाट अनुप्रास ॥३५५॥

शब्दार्थ—सदृस प्रकास=समानता प्रकट हो।

अर्थ—जहाँ भिन्न-भिन्न पदों में स्वर युक्त अक्षरों के सादृश्य का प्रकाश हो वहाँ छेकानुप्रास और जहाँ अभिन्न पदों का सादृश्य प्रकाश

हो वहाँ लाटानुप्रास होता है—अर्थात् छेकानुप्रास में वर्णों का सादृश्य होता है और लाटानुप्रास में शब्दों का।

सूचना—अन्य आचार्यों ने अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद माने हैं—छेक, वृत्ति श्रुति, अन्त्य और लाट। इनमें से छेक, वृत्ति और लाट प्रमुख हैं। छेक में एक वर्ण की या अनेक वर्णों की एक बार ही आवृत्ति होती है, परन्तु वृत्यनुप्रास में एक या अनेक वर्णों की अनेक वार आवृत्ति होती है। महाकवि भूषण ने छेक और वृत्ति में भेद नहीं किया, अतः उन्होंने अनुप्रास के दो ही भेद दिये हैं। उनके दिये हुए प्रायः सब उदाहरणों में वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास दोनों ही मिलते हैं। इस तरह उन्होंने वृत्यनुप्रास को 'छेक' के ही अन्तर्गत माना है

छेकानुप्रास का उदाहरण—अमृतध्वनि *

दिल्लिय दलन दबाय करि सिव सरजा निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर बंककरि अति डंक॥
बंककरि अति डंकक्करि अस संकक्कुलि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलिय विमोच्चखख जल॥
तट्ठट्ठइमन कट्ठट्ठिक सोइ रट्ठट्ठिल्लिय।
संद्ददिसि दिसि भद्ददबि भइ रद्ददिल्लिय॥२५६॥

---

* इसमें छः पंक्ति होती हैं। प्रत्येक पंक्ति में २४ मात्राएँ होती हैं। प्रथम दो पंक्तियाँ मिलकर एक दोहा होता है, और अंतिम चार पदों में काव्य छन्द होता है। अंत के चारों पदों में आठ-आठ मात्राओं पर यति होती है और अन्त में कम से कम दो वर्ण लघु अवश्य होते हैं। पद के आदि तथा अन्त में जो पद होते हैं, वे एक अवश्य होते हैं। प्रथम चरण के शुरु के अक्षर छठे चरण के अन्त में रक्खे जाते ह और द्वितीय चरण के अन्तिम अक्षर तीसरे चरण के आदि में रखे जाते हैं।

शब्दार्थ—निरसंक=निश्शंक, निर्भय। बंकक्करि अति डंक= अत्यंत टेढ़ा डंका करके, जोरों से डंका बजाकर अथवा अपने डंक को टेढ़ा करके—बिच्छू आदि डंक मारने वाले जीव जब कुपित होते हैं, तब मारने के लिए अपना डंक टेढ़ा कर लेते हैं; भाव यह है कि उनकी तरह कुपित होकर। संकक्कुलि=शंका-कुलित करके, डरा कर। सोचच्चकित=चकित हो सोचते हैं। भरोचच्चलिय=भड़ौंच शहर की ओर चले। भडौंच शहर सूरत से ४० मील दूर नर्मदा नदी के उ र तट पर स्थित है। विमोचच्चख जल=(विमोचत+चख जल)आँखों से आँसू गिराते हुए। तट्ठइमन-(तत्+ठई+मन) तत् अर्थात् परमात्मा (शिव) को मन में ठान कर। कट्ठट्ठिक=कट=हाथियों के गंड-स्थल, उनको ठिकाने लगाकर। सोई=उसी को, अर्थात् शिवाजी के नाम को। रट्ठट्ठिल्लिय=(रट्+ठट्+ठिल्लिय), रट (बार बार कह) कर ठट (समूह) को ठेल दिया, भगा दिया। सद्दिसिदिसि= (सद्यःदिशि दिशि) तुरंत सब दिशाओं में। भद्दब्बि=भद्द होकर और दबकर। भई रद्ददिल्लिय=दिल्ली रद्द होगई।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी ने निर्भय हो कर दिल्ली की सेना को दबाकर और बड़े ज़ोर से डंका बजाकर (अथवा अत्यधिक कुपित होकर) सूरत नगर को लूट लिया। उन्होंने ज़ोर से डंका बजा कर (अथवा अत्य-धिक कुपित होकर) दुष्टों को ऐसा शंकित कर दिया कि वे सोच से चकित हो (सोचते-सोचते हैरान होकर) नेत्रों से जल गिराते हुए भड़ौंच शहर की ओर भाग गये। शिवाजी ने शिवजी को मन में ठान कर हाथियों के गंड-स्थलों को ठिकाने लगाकर अर्थात् विदीर्ण करके उसी अर्थात् शिवजी के नाम को रटते हुए (हर हर महादेव के नारे लगाते हुए) शत्रु-समूह को ढकेल दिया। इस भाँति उनके परास्त हो जाने पर समस्त दिशाओं

में तुरंत उनकी भद्द हो गई और साथ ही दिल्ली भी दब कर रद्द होगई (अर्थात् दिल्ली की बादशाहत की कीर्त्ति मिट्टी में मिल गई, दिल्ली दबकर चौपट होगई)

विवरण—कई शब्दों की एक बार और कइयों की अनेक बार आवृति होने से यह छेक और वृत्यनुप्रास का उदाहरण है, जिनमें महाकवि भूषण ने कोई भेद नहीं किया ।

सूचना—भूषण ने छेकानुप्रास का जो लक्षण दिया है। उसमें 'स्वर समेत' पद विचारणीय है, क्योंकि स्वर बिना मिले भी छेकानुप्रास होता है । जैसे—'दिल्लिय दलन' में 'द' का छेकानुप्रास है, किंतु 'दिल्लिय' का 'द्', 'इ' स्वर वाला है और दलन का 'द्', 'अ' स्वर वाला है । अतः यही कहना पड़ता है कि यदि स्वर की समानता हो तो और अच्छा है ।

दूसरा उदाहरण—अमृतध्वनि

गतबल खानदलेल हुव, खान बहादुर मुद्ध ।
सिव सरजा सलहेरि ढिग क्रुद्धद्धरि किय जुद्ध ।।
क्रुद्धद्धरि किय जुद्धद्धुव अरिअद्धद्धरि करि ।
मुंडड्डुरि तहँ रुंडड्डुकरत डुंडड्डुग भरि ।
खेदिद्दर बर छेदिद्दय करि मेदद्दधि दल ।
जंगग्गति सुनि रंगग्गलि अवरंगग्गत बल ।।२५७।।

शब्दार्थ—गतबल=बलहीन । खान दलेल=दिलेरखाँ, यह औरंग-ज़ेब की ओर से दक्षिण का सूबेदार था । शिवाजी से हारने के बाद यह दक्षिण और मालवा का सूबेदार रहा। सन् १६७२ में इसने चाकन और सलहेरि को साथ साथ घेरा । सलहेरि में शिवाजी ने इसे बहुत बुरी तरह हराया। इसकी सारी सेना तहस-नहस हो गई। सन १६७६ ई० में इसने गोलकुंडा पर धावा

किया, तब मधुनापन्त से इसे हारना पड़ा। खान बहादुर = बहादुर खाँ। मुद्ध = मुधा, व्यर्थ, अथवा मुग्ध, मूढ़। सलहेरि = छन्द १०६ के शब्दार्थ देखो। क्रुद्धद्धरि = क्रोध धारण करके। किय जुद्धद्धुव = ध्रुव युद्ध किया, घोर लड़ाई की। अद्धद्धरि करि = शत्रुओं को पकड़ कर आधा काट कर—आधा आधा करके। मुंडडुरि = मुंड डालकर। रुंडडुकरत = रुंड डकार रहे हैं, बोल रहे हैं। डुंडडुग भरि = डुंड (टुंडे) डग भरते हैं, हाथकटे वीर दौड़ते हैं। खेदिद्दर = (खेदिद् + दर) दर (दल) को खेदकर-भगाकर। छेदिद्दय = छेदकर। मेदद्दधि दल = फौज की मेदा (चर्बी) को दही की तरह बिलो डाला। जंगग्गति = जंग का हाल। रंगग्गलि = रंग गल गया। अवरंगग्गत बल = औरंगज़ेब का बल जाता रहा, हिम्मत टूट गई।

अर्थ—सलहेरि के पास सरजा राजा शिवाजी ने क्रोध धारण करके ऐसा युद्ध किया कि दिलेरखाँ बलहीन होगया और बहादुरखाँ व्यर्थ सिद्ध हुआ (कुछ न कर सका) अथवा मुग्ध (मूढ़) होगया। क्रोध धारण करके शिवाजी ने घोर लड़ाई की और शत्रुओं को पकड़ पकड़ कर काट डाला। वहाँ मुंड लुढ़कने लगे, रुंड डकारने (धाड़ मारने) लगे और हाथकटे वीर (इधर उधर) दौड़ने लगे। मुसलमानों की सेना को खदेड़ कर उसके बल को छेद डाला और सारी सेना की चर्बी को ऐसा मथ डाला जैसे कि दही को मथ डालते हैं। युद्ध की ऐसी दशा सुन कर बादशाह औरंगज़ेब का रंग उड़ गया। (अर्थात् उसका मुँह फीका पड़ गया) और उसकी समस्त हिम्मत जाती रही।

विवरण—अलंकार स्पष्ट है।

तीसरा उदाहरण—अमृतध्वनि

लिय धरि मोहकम सिंह कहँ अरु किसोर नृपकुम्भ।
श्री सरजा संग्राम किय भुम्मिम्मधि करि धुम्म॥

भुम्मिम्मधि किय धुम्मम्मढ़ि रिपु जुम्मम्मलि करि।
जंगग्गरजि उतंगग्गरब मतंगग्गन हरि॥
लक्खक्खन रन दक्खक्खलनि अलक्खक्खिति भरि।
मोलल्लहि जस नोलल्लरि बहलोलल्लिय धरि॥३५८॥

शब्दार्थ—मोहकमासिंह=छन्द २४१ का शब्दार्थ देखिए। किसोर नृप कुम्म=नृप-कुमार किशोरसिंह, यह कोटा-नरेश महाराज माधवसिंह का पुत्र था। दक्षिण में यह मुगलों की ओर से लड़ने गया था। वहीं शिवाजी से भी लड़ा होगा। किसी-किसी का कहना है कि यह भी मोहकमासिंह के साथ सलहेरि के धावे में मराठों द्वारा पकड़ा गया था, और पीछे मोहकमासिंह की तरह इसे भी छोड़ दिया गया था। भुम्मिम्मधि=भूमि में। धुम्मम्मढ़ि=धूम से मढ़कर, धूमधाम से सजकर। जुम्मम्मलि करि=जोम (समूह) को मलकर। जंगग्गरजि=जंग में गर्ज कर। उतंगग्गरब=बड़े गर्व वाले। मतंगग्गन=हाथियों के समूह। लक्खक्खन=लाखों को क्षण भर में। दक्खक्खलनि=दक्ष दुष्टों से। अलक्खक्खिति भर=क्षिति (पृथ्वी) को ऐसा भर दिया कि वह अलक्षित हो गई। मोलल्लहि जस नोलल्लरि=लड़ कर नवल (नया) यश मोल लिया (प्राप्त किया)। बहलोलल्लिय धरि=बहलोलखाँ को पकड़ लिया।

अर्थ—वीर-केसरी शिवाजी ने पृथ्वी पर धूम मचाकर युद्ध किया और मोहकमसिंह तथा नृप-कुमार किशोरसिंह को पकड़ लिया और धूम-धाम के साथ शत्रुओं के समूहों को मल कर (नष्ट कर) युद्ध में गर्जना करके, बड़े घमंड वाले हाथियों के समूह को हर करके, क्षणभर में लाखों दक्ष दुष्टों (मुसलमानों) से युद्धभूमि का ऐसा भर दिया कि वह अलक्षित होगई। इस भाँति युद्ध करके और बहलोल खाँ को पकड़ कर शिवाजी ने नूतन यश मोल लिया (अर्थात् बहलोल खाँ को परास्त करने से शिवाजी की कीर्ति और भी बढ़ गई)।

चौथा उदाहरण—अमृतध्वनि

लिय जिति दिल्ली मुलुक सब, सिव सरजा जुरि जंग।
भनि भूषन भूपति भजे, भंगग्गरब तिलंग॥
भंगग्गरब तिलंगग्गयउ कलिंगग्गलि अति।
दुंदद्दबि दुहु दंदद्दलनि बिलंदद्दहसति॥
लच्छच्छिन करि म्लेच्छच्छय, किय रच्छच्छबि छिति।
हल्लल्लगि नरपल्लल्लरि परनल्लल्लिय जिति॥३५६॥

शब्दार्थ—भंगग्गरब=(भंग+गर्व) जिसका गर्व भंग (चूरचूर) हो गया हो। तिलंग = आधुनिक आंध्र देश, इस देश का नाम तिलंगाना या संस्कृत में तैलंग हैं। यह दक्षिण भारत का प्राचीन देश है। इस देश की भाषा तेलगू कहलाती है। गयउ कलिंगगालि अति= कलिंग देश (आधुनिक उड़ीसा प्रदेश के आसपास का प्राचीन समुद्र तटस्थ देश) अत्यन्त गल गया (अस्त व्यस्त हो गया)। दुंदद्दबि दुहु दंदद्दलनि=(युद्ध में) दबकर दोनों दलों (तिलंग और कलिंग) को दंद (दुःख) हुआ। बिलंदद्दहसति=बिलंद (बुलंद, बड़ा) दहशत (डर) बड़ा डर। लच्छच्छिन=क्षण भर में लाखों। म्लेच्छच्छय=म्लेच्छों का नाश। किय रच्छच्छवि छिति=छिति (पृथ्वी, भारत भूमि) की शोभा की रक्षा की। हल्लल्लगि=हल्ला (धावा) करके। नरपल्लल्लरि = (नरपाल+लरि) राजाओं से लड़ कर। परनल्लल्लियजिति=परनाले को जीत लिया। परनाला, छन्द १०६ के शब्दार्थ में देखिये।

अर्थ—सरजा राजा शिवाजी ने युद्ध करके दिल्ली के सब (दक्षिण) मुल्क(परगने) जीत लिये। भूषण कवि कहते हैं कि उन देशों के राजा लोग भाग उठे और तैलंग देश के राजा का घमंड नष्ट होगया तथा कलिंग देश भी अत्यन्त गल गया—अस्त-व्यस्त हो गया। युद्ध में दब जाने से उन दोनों (तैलंग और कलिंग देश के राजाओं) को बड़ा दुःख और भारी डर

होगया। क्षणभर में लाखों म्लेच्छों का नाश करके महाराज शिवाजी ने भारत भूमि की शोभा की रक्षा की और हल्ला करके (धावा बोलकर) तथा राजाओं से लड़कर परनाले के किले को विजय कर लिया।

पाँचवाँ उदाहरण—छप्पय

मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति भूषन तेज कियो अटल।
सिवराज साहि सुव खग्गबल दलि अडोल बहलोल दल॥२६०॥

शब्दार्थ—मुंड = मूँड, सिर। पटत = पाट रही है, भर रही है। घन=बहुत। सिद्ध=वे तांत्रिक लोग जो मुर्दों पर बैठकर अपना योग तंत्र सिद्ध करते हैं। रसत मन=मन में आनन्दित होते हैं। बूत=बूता, शक्ति। मंडि=इकट्ठे होकर। गन=भूत प्रेतादि गण। डंडि=द्वंद्व (झगड़ा)। दलि=दलन करके, नष्ट करके। अडोल=अचल।

अर्थ—कहीं मूँड (सिर) कटते हैं, कहीं कबंध नाचते हैं, कहीं हाथियों की बहुत सी सूँडें कटकर पृथ्वी को पाट दे रही हैं (भर रही हैं)। कहीं मुर्दों पर बैठे गिद्धपक्षी शोभा पाते हैं। कहीं सिद्ध (तांत्रिक) लोग हँसते हैं और उनके मन में आनन्द बढ़ रहा है (क्योंकि मुर्दे बहुत से हैं)। कहीं भूत फिरते हुए आपस में बल-पूर्वक लड़ते हैं, कहीं देवदूत (मृतक वीर पुरुषों की आत्माओं को स्वर्ग ले जाने के लिए) इकट्ठे होरहे हैं। कहीं कालिका नृत्य करती है तो कहीं भूत-गण मंडल बनाकर इकट्ठे होकर शोर मचा रहे हैं, और झगड़ा कर रहे हैं। भूषण कवि कहते हैं कि इस भाँति शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी ने घोर युद्ध कर और बहलोल खाँ की अचल सेना को नष्ट करके तलवार के बल से अपना तेज अटल कर दिया।

छठा उदाहरण—छप्पय

क्रुद्ध फिरत अति जुद्ध जुरत नहिं रुद्ध मुरत भट।
खग्ग बजत अरि बग्ग तजत सिर पग्ग सजत चट॥
दुक्क फिरत मद झुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि।
रंग रकत हर संग छकत चतुरंग थकत भनि॥
इमि करि संगर अतिही विषम भूषन सुजस कियो अचल।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल दलि अडोल बहलोलदल॥२६१॥

शब्दार्थ—रुद्ध=रुके हुए। बग्ग=घोड़े की बाग, लगाम। चट=तुरंत। दुक्कि=घात में छिपकर। मद झुक्कि=मद में झूमकर। कुक्कि=कूक, चीख। हर=महादेव। संग=साथ, साथी। संगर=युद्ध।

अर्थ—वीरगण क्रोधित हो घूम घूम कर युद्ध में जुड़ते हैं और शत्रु-द्वारा आगे से रुकने पर भी वापिस नहीं लौटते (अर्थात् युद्ध किये ही जाते हैं)। तलवारें ज़ोर से चल रही हैं; शत्रुओं के हाथों से घोड़ों की लगामें छूट रही हैं (तलवार का घाव लगने पर योद्धा) झटपट उस पर सिर की पगड़ी बाँध देते हैं। कई योद्धा शत्रु की घात में छिपे फिरते हैं; कोई मदोन्मत्त होकर लड़ रहे हैं और कोई चीख़ मार कर गिर पड़ते हैं। महादेव के साथी भूत-प्रेतादि रक्तपान करके अघा जाते हैं और चतुरंगिनी सेना थक जाती है। भूषण कवि कहते हैं कि इस प्रकार बड़ा भयंकर युद्ध करके और अपनी तलवार के ज़ोर से बहलोल खाँ की अचल सेना को नष्ट कर महाराज शिवाजी ने अपना सुयश अटल कर दिया।

सातवाँ उदाहरण—कवित्त मनहरण

बानर बरार बाघ बैहर बिलार बिग,
बगरे बराह जानवरन के जोम हैं।
भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं,
भीतर भवन भरे लीलगऊ लोम हैं॥

ऐंडायल गजगन गैंड़ा गररात गनि,
गेहन मैं गोहन गरूर गहे गोम हैं।
शिवाजी की धाक मिले खलकुल खाक बसे,
खलन के खेलन खबीसन के खोम हैं ॥३६२॥

शब्दार्थ—बरार = बरिआर, प्रबल। बैहर=भयंकर। बिग= भेड़िया। बगरे = फैले। बराह = सूअर। जोम=समूह, झुंड। भालुक = भालू, रीछ। लीलगऊ = नीलगाय। लोम = लोमड़ी। ऐंडायल = अड़ियल, मतवाले। गररात = गर्जना करते हैं। गेहन = घरों। गोहन=गोह, छिपकली की जाति का जंतु। गोम=स्थान, अड्डा। खैरन = खेड़ों में, गाँवों में। खबीस = दुष्ट आत्मा, भूत प्रेत, बोलचाल में बूढ़े और कंजूस आदमी को भी खबीस कहते हैं। खोम = कौम, समूह।

अर्थ—बली एवं भयंकर बंदर, व्याघ्र, बिलाव, भेड़िये और सूअर आदि जानवरों के झुंड के झुंड (चारों ओर) फैल गये। भूषण कवि कहते हैं कि बड़े भयंकर भालू (रीछ) नीलगाय, और लोमड़ियाँ शत्रुओं के घरों के भीतर भर गये (अर्थात् उन्होंने वहाँ उजाड़ समझ अपना निवासस्थान बना लिया)। मतवाले हाथी और गैंडों के झुंड ज़ोर ज़ोर से गर्जना करते हैं और अभिमानी गोहों ने घरों में अपना अड्डा जमा लिया है*। इस तरह शिवाजी महाराज की धाक से दुष्टों (मुसलमानों) के वंश के वंश धूल में मिल गये हैं और अब उनके ग्रामों में (डेरों में) भूत प्रेतों के झुंड बस गये हैं।

---

* कई टीकाकारों ने गोम का अर्थ गोमायु। (गीदड़) किया है। उस पक्ष में अर्थ इस प्रकार होगा—गोह और गरूर गहे (अभिमानी) गीदड़ घरों में हैं।

लाटानुप्रास का उदाहरण—कवित्त मनहरण

तुरमती तहखाने तीतर गुसलखाने,
सूकर सिलहखाने कूकत करीस हैं ।
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,
पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं ॥
भूषन सिवाजी गाजी खग्गसों खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भये खीस हैं ।
खड़गी खजाने खरगोस खिलवतखाने,
खीसैं खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं ॥२६३॥

शब्दार्थ—तुरमति = बाज की किस्म का एक शिकारी पक्षी। सिलहखाने = हथियार रखने का स्थान, शस्त्रालय। करीस = गजराज। हरमखाने = अन्तःपुर, जनानखाना। स्याही = सही, एक जन्तु जिसके शरीर पर लंबे लंबे काँटे होते हैं। सुतुरखाने = ऊँटों का बाड़ा। पाढ़ा = एक प्रकार का हिरण। पीलखाना = हाथियों का स्थान। करंजखाना = मुरगों के रहने का स्थान। कीस = बंदर। खपाए = नष्ट किये। खाने खाने = स्थान स्थान। खीस = नष्ट, बरबाद। खीसैं = दाँत। खड़गी = गैंडा। खिलवतखाने = सलाह का एकान्त कमरा। खसखाने = खस की टट्टी लगा हुआ कमरा।

अर्थ—तहखाने में बाज़, स्नानागार में तीतर तथा शस्त्रालय में सूअर और हाथी जोर-जोर से शब्द कर रहे हैं। अन्तःपुर में हिरन, शुतरखाने में सेही, फीलखाने में पाढ़े और मुर्गों के स्थान पर कीस (बन्दर) रहते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि विजयी महाराज शिवाजी ने अपनी तलवार से दुष्टों (मुसलमानों) को नष्ट कर दिया और उनके घर और गाँव बरबाद होगये हैं। उनके खज़ानों में गैंडे रहने लग गये हैं

एकान्त कमरों में ख़रगोश और खसखाने में भूत-प्रेत दाँत निकाल निकाल कर खाँसते हैं (अर्थात् सब स्थान उजाड़ हो गए हैं, शिवाजी के शत्रुओं के घरों में कहीं मनुष्य नहीं रहते)।

विवरण—'खाने' शब्द की एक ही अर्थ में भिन्न भिन्न पदों के साथ आवृति होने से लाटानुप्रास है।

दूसरा उदाहरण—दोहा

औरन के जाँचे कहा नहिं जाँच्यो सिवराज ?।
औरन के जाँचे कहा जो जाँच्यो सिवराज ? ॥२६४॥

शब्दार्थ—जाँच्यो=याचना की; माँगा।

अर्थ—यदि शिवाजी से याचना नहीं की—यदि शिवाजी से नहीं माँगा—तो औरों से याचना करना किस काम का ? पर्याप्त धन कभी न मिलेगा। और यदि शिवाजी से याचना कर ली तो औरों से माँगना ही क्या ? शिवाजी याचकों को इतना धन दे देते हैं कि याचक को फिर किसी से माँगने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

सूचना—छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास अक्षरों के अनुप्रास हैं। इसी प्रकार लाटानुप्रास शब्दों का अनुप्रास है। इसमें 'शब्द' और उसका अर्थ एक सा हो रहता है, केवल अन्वय-भेद से तात्पर्य में भेद हो जाता है। लाटानुप्रास के दो भेद होते हैं—१. शब्दावृत्ति २. वाक्यावृत्ति। 'शब्दावृत्ति' में एक ही शब्द की एक अर्थ में आवृत्ति होती है, जैसे, तहखाने सिलहखाने, गुसलखाने, हरमखाने, आदि में 'खाने' शब्द की एक ही अर्थ में भिन्न भिन्न शब्दों के साथ आवृत्ति है। 'वाक्यावृत्ति' में वाक्य (अनेक शब्द-समूह) की आवृत्ति होती है, जैसे—दूसरे उदाहरण में। यहाँ शब्द एवं अर्थ में भेद नहीं है, केवल पूर्वार्ध के 'नहीं' का उत्तरार्द्ध के 'जो' के साथ अन्वय होने से तात्पर्य में भिन्नता हुई है।

यमक

लक्षण— दोहा

भिन्न अरथ फिरि फिर जहाँ, वेई अच्छर वृन्द ।
आवत हैं, सो जमक करि, बरनत बुद्धि बिलंद ॥३६५॥

अर्थ—जहाँ वही अक्षर-समूह वार बार आवे परन्तु अर्थ भिन्न हो, वहाँ विशाल-बुद्धि मनुष्य यमक अलंकार कहते हैं।

उदाहरण —कवित्त मनहरण

पूनावारी सुनि कै अमीरन की गति लई,
भागिवे को मीरन समीरन की गति है।
मारयो जुरि जंग जसवंत जसवंत जाके,
संग केते रजपूत रजपूत-पति है ॥
भूषन भनै यों कुलभूषन भुसिल सिव-
राज तोहि दीन्ही सिवराज बरकति है ।
नौहू खंड दीप भूप भूतल के दीप आजु,
समै के दिलीप दिलीपति को सिदति है ॥३६६॥

शब्दार्थ —समीरन=वायु। जसवंत=(१)मारवाड़ के महाराज यशवन्तसिंह (२) यशवाले, यशस्वी । रजपूत=राजपूत । रजपूत-पति=(रज=राजपूती, पूत=पवित्र, पति=स्वामी) पवित्र राजपूती आन के स्वामी। राज-बरकति=राज्य की वृद्धि । दिलीप= अयोध्या के प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंशी राजा जिनकी स्त्री सुदक्षिणा के गर्भ से राजा रघु उत्पन्न हुए थे । वे बड़े गोभक्त थे। महर्षि वसिष्ठ की कामधेनु गौ के लिए अपनी जान देने को तैयार हो गए थे, इसी कारण भूषण ने ब्राह्मण और गौ के भक्त शिवाजी को दिलीप कहा है। सिदिति=सीदति, कष्ट देते हैं।

अर्थ—पूना में अमीरों (शाइस्ताखाँ आदि) की जो दुर्दशा हुई थी

उसे सुनकर मीर लोगों ने भागने के लिए हवा की गति ली है, अर्थात् (वे वहाँ से हवा हो गये) अत्यन्त तेजी से भाग गये। वीरकेसरी शिवाजी ने उस यशस्वी जसवंतसिंह को युद्ध में भिड़कर मार भगाया जिसके साथ कितने ही पवित्र रजपूती आन को निबाहने वाले राजपूत थे। भूषण कहते हैं कि हे नौखंड और सप्तद्वीपों के राजा, पृथ्वी के दीपक (पृथ्वी में श्रेष्ठ) और आजकल के दिलीप तथा कुल-भूषण भौंसिला राजा शिवाजी, तुझे शिवजी ने राज्य में इतनी बरकत दी हैं, तेरी इतनी राज्य-वृद्धि की है कि वह दिल्लीपति औरंगज़ेब को कष्ट देती है, चुभती है।

विवरण—यहाँ मीरन, जसवन्त, रजपूत, भूषन, सिवराज, दीप और दिलीप आदि अक्षर-समूह की आवृत्ति भिन्न-भिन्न अर्थ में होने से यमक है।

सूचना—यमकालंकार और लाटानुप्रास में यह भेद है कि यमकालंकार में जिन शब्दों वा शब्द-खंडों की आवृत्ति होती है उनके अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं परन्तु लाटानुप्रास में एक ही अर्थ वाले शब्दों एवं वाक्यों की आवृत्ति होती है, केवल अन्वय से ही तात्पर्य में भेद होता है।

पुनरुक्तवदाभास

लक्षण—दोहा

भासति है पुनरुक्ति सी, नहिं निदान पुनरुक्ति।
वदाभासपुनरुक्त सो, भूषन बरनत जुक्ति ॥३६७॥

अर्थ—जहाँ पुनरुक्ति का आभास मात्र हो, अर्थात् जहाँ पुनरुक्ति-सी जान पड़े, परन्तु वास्तव में पुनरुक्ति न हो वहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

अरिन के दल सैन संग रमैं समुहाने,
टूक टूक सकल कै डारै घमसान मैं।

बार बार रूरो महानद परवाह पूरो,
बहत है हाथिन के मद जल दान मैं ॥
भूषन भनत महाबाहु भौंसिला भुवाल,
सूर, रवि कैसो तेज तीखन कृपान मैं।
माल-मकरंद जू के नंद कलानिधि तेरो,
सरजा सिवाजी जस जगत जहान मैं ॥२६८॥

शब्दार्थ—सैन संग रमैं = शयन (में) संग रमैं अर्थात् साथ ही साथ मरे पड़े हैं। समुहाने = सामने आने पर, मुकाबला करने पर। कै डारे = कर डाले। रूरो = सुंदर। सूर = शूर। जगत = जगता है, प्रसिद्ध है। जहान = दुनिया।

अर्थ—हे शिवाजी, घोर घमासान में शत्रुओं की सेना के सामने आने पर आपने उन सबके टुकड़े टुकड़े कर दिये, और वे अब सब शयन में साथ ही रमते हैं—साथ साथ मरे पड़े हैं। और आप ने अपने दान के उस संकल्प-जल से जिसमें हाथियों का मद बह रहा है, बार बार सुंदर नदियों के प्रवाह को भर दिया है। भूषण कवि कहते हैं कि हे विशाल-बाहु वीर भौंसिला राजा! आपकी तीक्ष्ण तलवार में सूर्य के समान तेज है। हे माल मकरंद जी के कुलचन्द्र महाराज वीरकेसरी शिवाजी! आपका यश सारे संसार में जग रहा है, फैल रहा है।

विवरण—यहाँ दल और सैन, संगर और घमसान, सूर और रवि, जगत और जहान तथा मद और दान आदि शब्दों का एक ही अर्थ प्रतीत होता है, किन्तु वस्तुतः पृथक् पृथक् अर्थ है। अतः यहाँ पुनरुक्तवदाभास है।

चित्र

लक्षण—दोहा

लिखे सुने अचरज बढ़े, रचना होय विचित्र।
कामधेनु आदिक घने, भूषन बरनत चित्र ॥२६९॥

अर्थ—जिस विचित्र वाक्य-रचना के देखने और पढ़ने में आश्चर्य उत्पन्न हो उसे चित्र कहते हैं। ऐसे अलंकार कामधेनु आदिक अनेक प्रकार के होते हैं।

सूचना—ऐसी रचना में चित्र भी बनते हैं, जैसे कमल, चँवर, कृपाण, धनुष आदि।

उदाहरण (कामधेनु चित्र)—दुर्मिल सवैया

ध्रुव जो	गुरता	तिनको	गुरु भूषन	दानि बड़ो	गिरजा	पिव है
हुव जो	हरता	रिन को	तरु भूषन	दानि बड़ो	सिरजा	छिव है
भुव जो	भरता	दिन को	नर भूषन	दानि बड़ो	सरजा	सिव है
तुव जो	करता	इन को	अरु भूषन	दानि बड़ो	बरजा	निव है

शब्दार्थ—ध्रुव = ध्रुव, अचल। भूषन = अलंकार, श्रेष्ठ। गिरजा-पिव=गिरिजापति,महादेव। हुव=हुआ। हरता=हरने वाला। रिन = ऋण। तरु-भूषण = वृक्षों में श्रेष्ठ, कल्पवृक्ष। सिरजा=बनाया गया है। भरता = भरण-पोषण करने वाला, स्वामी। दिन को = प्रतिदिन, आज कल। करता = कर्ता, रचयिता। वर + जानि + वहै = उसे श्रेष्ठ जान।

अर्थ—(इस छन्द के रूप-भेद से कई अर्थ हो सकते हैं, उन में से एक इस प्रकार होगा) जिनकी गुरुता (उत्कृष्टता) अचल है उन (देवताओं) में परमदानी महादेव जी सर्व-श्रेष्ठ (उपस्थित) हैं और धन संकट को दूर करने वाला महादान की सीमा कल्प-वृक्ष भी उपस्थित है। परन्तु आजकल पृथ्वी का भरण-पोषण करने वाला मनुष्यों में श्रेष्ठ सरजा राजा शिवाजी ही बड़ा दानी प्रसिद्ध है। हे भूषण, तू जो

इन कामधेनु आदि अन्य अलंकारों को बनाने वाला है तू उन्हीं शिवाजी को सभी बड़े दानियों में श्रेष्ठ समझ।

सूचना — इस विचित्र शब्द-योजना वाले छंद से ७×४=२८ सवैये बन सकते हैं । भिन्न भिन्न सवैया का अर्थ भी भिन्न भिन्न होगा। पर उनमें बड़ी खींचतानी करनी पड़ती है अतः उनका उल्लेख नहीं किया गया।

संकर

लक्षण—दोहा

भूषन एक कवित्त में भूषन होत अनेक ।
संकर ताको कहत हैं जिन्हैं कवित की टेक ॥३७१॥

अर्थ—जहाँ एक कवित्त में अनेक अलंकार हों वहाँ कविता-प्रेमी सज्जन 'संकर' नामक उभयालंकार कहते हैं।

सूचना—उभयालंकार के दो भेद होते हैं—'संसृष्टि' और 'संकर'। जहाँ पर अलंकार तिल-तंडुल (तिल और चावल) की भाँति मिले रहते हैं वहाँ 'संसृष्टि' और जहाँ नीर-क्षीर की तरह मिले रहते हैं वहाँ संकर होता है। भूषण का दिया हुआ लक्षण संकर का न होकर उभयालंकार का लक्षण है।

उदाहरण—कवित्त मनहरण

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज,
भूषन जे बाज की समाजैं निदरत हैं।
पौन पायहीन, दृग घूँघट में लीन, मीन,
जल में विलीन, क्यों बराबरी करत हैं ?
सबते चलाक चित तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर अन्तर में धीर न धरत हैं।
जिन चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर,
एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत हैं ॥३७२॥

शब्दार्थ—वाजिराज = श्रेष्ठ घोड़ा। पायहीन = बिना पाँव के। लीन = छिपे। मीन = मछली। बिलीन = लुप्त। कुलि आलम = कुल आलम, समस्त संसार। उर अन्तर = हृदय के भीतर। तीर-एक भरि = जितनी दूर पर जाकर एक तीर गिरे उतनी दूर को एक तीर कहते हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी महाराज ऐसे श्रेष्ठ घोड़े देते हैं कि जो (अपनी तेजी के सम्मुख) बाज पक्षियों की समाज को भी मात करते हैं। पवन चरण-हीन है अर्थात् हवा के पैर नहीं हैं; (युवतियों के चंचल) नेत्र घूँघट में छिपे हुए हैं, और मछली पानी में छिपी रहती है इसलिए ये सब उन (चंचल घोड़ों) की समता कैसे कर सकते हैं? सबसे अधिक चंचल मन है परन्तु वह भी समस्त संसार के प्राणियों के हृदयों में रहता है और (घोड़ों की चंचलता की समता न कर सकने के कारण) धैर्य नहीं धारण करता। (वे ऐसे चंचल एवं तेज़ हैं कि) जिन पर चढ़कर आगे को तीर चलाने पर तीर एक तीर के फासले पर पीछे ही को पड़ते हैं (अर्थात् उन पर चढ़कर जो आगे को तीर चलाते हैं तो तीर घोड़ों से एक तीर के फ़ासले पर पीछे रह जाते हैं, घोड़े तेज़ गति होने के कारण छूटे हुए तीर के लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने से पहले ही उससे कहीं आगे बढ़ जाते हैं)।

विवरण—यहाँ प्रथम चरण में अनुप्रास एवं ललितोपमा, द्वितीय और तृतीय चरण में अनुप्रास एवं चतुर्थ प्रतीप तथा अन्तिम चरण में यमक एवं अत्युक्ति अलंकार होने से संकर अंलकार है।

ग्रंथालंकार नामावली—गीता छन्द*

उपमा अनन्वै कहि बहुरि उपमा-प्रतीप प्रतीप।
उपमेय उपमा है बहुरि मालोपमा कवि-दीप॥

---

*गीता छन्द में २६ मात्राएँ होती हैं, १४, १२ पर यति होती है, अन्त में गुरु लघु होते हैं।

ललितोपमा रूपक बहुरि परिनाम पुनि उल्लेख ।
सुमिरन भ्रमौ संदेह सुद्धापन्हुत्यौ सुभ-वेख ॥३७३॥

हेतु-अपन्हुत्यौ बहुरि परजस्तपन्हुति जान ।
सुभ्रांतपूर्णअपन्हुत्यौ छेकाअपन्हुति मान ॥
वर कैतवापन्हुति गनौ उतप्रेच्छ बहुरि बखानि ।
पुनि रूपकातिसयोक्ति भेदक अतिसयोक्ति सु जानि ॥३७४॥

अरु अक्रमातिसयोक्ति चंचल अतिसयोक्तिहि लेखि ।
अत्यन्तअतिसै उक्ति पुनि सामान्य चारु बिसेखि ॥
तुलियोगिता दीपक अवृत्ति प्रतिवस्तुपम दृष्टान्त ।
सु निदर्सना व्यतिरेक और सहोक्ति वरनत शान्त ॥६७५॥

सु विनोक्ति भूषन समासोक्तिहु परिकरौ अरु बंस ।
परिकर सुअंकुर स्लेष त्यों अप्रस्तुतौपरसंस ॥
परयायउक्ति गनाइए व्याजस्तुतिहु आक्षेप ।
बहुरो विरोध विरोधभास विभावना सुख-खेप ॥३७६॥

सु बिसेपउक्ति असंभवौ बहुरे असंगति लेखि ।
पुनि विपम सम सुविचित्र प्रहषन अरु विषादन पेखि ॥
कहि अधिक अन्योन्यहु विसेष व्याघात भूषन चारु ।
अरु गुम्फ एकावली मालादीपकहु पुनि सारु ॥३७७॥

पुनि यथासंख्य बखानिए परयाय अरु परिवृत्ति ।
परिसंख्य कहत विकल्प हैं जिनके सुमति-सम्पत्ति ॥
बहुरयो समाधि समुच्चयो पुनि प्रत्यनीक बखानि ।
पुनि कहत अर्थापत्ति कबिजन काव्यलिंगहि जानि ॥३७८॥

अरु अर्थअंतरन्यास भूषन प्रौढ़ उक्ति गनाय ।
संभावना मिथ्याध्यवसितऽरु यों उलासहि गाय ॥

अवज्ञा अनुज्ञा लेस तदगुन पूर्वरूप उलेखि।
अनुगुन अतदगुन मिलित उन्मीलितहि पुनि अवरेखि ॥३७६॥
सामान्य और विशेष पिहितौ प्रश्नउत्तर जानि।
पुनि व्याजउक्तिरु लोकउक्तिसु छेकउक्ति बखानि ॥
बक्रोक्ति जान सुभावउक्तिहु भाविकौ निरधारि।
भाविकछबिहु सु उदात्त कहि अत्युक्ति बहुरि बिचारि ॥३८०॥
बरने निरुक्तिहु हेतु पुनि अनुमान कहि अनुप्रास।
भूषन भनत पुनि जमक गनि पुनरुक्तवदआभास ॥
युत चित्र संकर एकसत भूषन कहे अरु पाँच ।
लखि चारु ग्रंथन निज मतो युत सुकवि मानहु साँच ॥३८१॥

सूचना—पिछले वर्णन किये गये अलंकारों की सूची भूषण ने यहाँ दी है, जो कुल १०५ हैं।

दोहा

सुभ सत्रहसै तीस पर, बुध सुदि तेरस मान।
भूषण सिव-भूषण कियो, पढ़ियो सुनो सुजान ॥३८२॥*

अर्थ—भूषण कवि ने शुभ संवत् १७३० (श्रावण) सुदी तेरस बुधवार को यह 'शिवराज भूषण' समाप्त किया। पंडित लोग इसे पढ़ें और सुनें।

---

* यहाँ मास नहीं लिखा है। महामहोपाध्याय श्री पंडित सुधाकर ने मिश्रबंधुओं की प्रार्थना से एक पंचांग संवत् १७३० का बनाया था जिसमें शुक्ला त्रयोदशी बुधवार, कार्तिक में १४ दंड ५५ पल थी और श्रावण में ३६ दंड ४० पल थी। जान पड़ता है कि श्रावण मास में ही यह ग्रन्थ समाप्त हुआ था।

कई प्रतियों में इस दोहे की प्रथम पंक्ति का पाठ इस प्रकार है—

आशीर्वाद—मनहरण कवित्त

एक प्रभुता को धाम, दूजे तीनौ वेद काम,
रहैं पंचआनन षडानन सरवदा।
सातौ वार आठौ याम जाचक नेवाजै नव,
अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा॥
सिवराज भूषण अटल रहै तौलौं जौलौं,
त्रिदस भुवन सब, गंग औ नरमदा।
साहितनै साहसिक भौंसिला सुरज-बंस,
दासरथि राज तौलौं सरजा थिर सदा॥३८३॥

शब्दार्थ—तीनों वेद=ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद। पंच आनन=पाँच मुख वाले, महादेव। षडानन=षट् आनन, कार्तिकेय, देवताओं के सेनापति। कृपन=कृपाण, तलवार। त्रिदस=देवता। साहसिक=साहसी। दासरथि=रामचन्द्र।

अर्थ—भूषण कहते हैं कि शिवाजी एक तो प्रभुता के धाम रहें, संसार में सदा शासन करें दूसरे तीनों वेदों के अनुसार कार्य करें और सदा पंचानन महादेव के समान दानी रहें तथा षडानन (कर्तिकेय) की भाँति सेनापति रहें, असुरों का संहार करते रहें। सातों दिन, आठों पहर (चौबीसों घंटे) नये नये याचकों को दान दें। गदाधारी विष्णु की भाँति इन कृपाणधारी शिवाजी का अवतार सदा स्थिर रहे। और शिवाजी का राज्य तब तक अटल रहे जब तक देवता, सब (चौदह) भुवन, गंगा और

संवत सतरह तीस पर, सुचि बदि तेरसि भान।

अर्थात् संवत् १७३० के आषाढ़ (या ज्येष्ठ क्योंकि शुचि ज्येष्ठ और आषाढ़ दोनों मासों को कहते हैं) की बदी त्रयोदश आदित्यवार के दिन शिवराज-भूषण समाप्त हुआ।

नर्मदा हैं, और सूर्यवंशी, साहसी, भौंसिला शाहजी के पुत्र शिवाजी तब तक स्थिर रहें, जब तक पृथ्वी में राम-राज्य प्रख्यात है।

अलंकार—भूषण ने इस पद में क्रम से एक से लेकर चौदह तक गिनती कही है, एक, दूजे, तीनों, वेद (चार) पंच (पाँच) षड (छः) सातों, आठों, नव, अवतार (दस) ग्यारह (सिव) भूषण (बारह) त्रिदस (तेरह) भुवन (चौदह)। अतः यहाँ रत्नावली अलंकार है, अर्थात् यहाँ प्रस्तुतार्थ के वर्णन में अन्य क्रमिक पदार्थों के नाम भी यथाक्रम रखे गए हैं।

दोहा

पुहुमि पानि रबि ससि पवन, जब लौं रहै अकास।
सिव सरजा तब लौं जियौ, भूषन सुजस प्रकास ॥३८४॥

शब्दार्थ—पुहुमि=पृथ्वी। पानि=पानी।

अर्थ—भूषण कवि आशीर्वाद देते हैं कि जब तक पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और आकाश हैं, तब तक हे वीर-केसरी शिवाजी आप जीवित रहें और आपके सुयश का प्रकाश होवे।

शिवा-बावनी

कवित्त-मनहरण *

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि[1]
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषण' भनत नाद विहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥१॥

शब्दार्थ—चतुरंग=रथ, हाथी, घोड़े और पदलों की चतुरंगिणी सेना। सरजा=(सरजाह) सर्वशिरोमणि, यह उपाधि अहमदनगर के बादशाह ने शिवाजी के पुरखा मालोजी को दी थी। भूषण शिवाजी को इसी नाम से पुकारते हैं। नाद=शब्द, आवाज़। विहद=बेहद।

---

* मनहरण कवित्त में प्रत्येक पद में ३१ वर्ण होते हैं। १६ और १५ (या ८,८,८ और ७) पर यति होती है।

पाठान्तर—

१ साजि चतुरंग सैन अंग में उमंग धरि—अर्थात् चतुरंगिणी सेना सजाकर और शरीर में उत्साह धारण कर ......।

गैबरन=गय+बरन, श्रेष्ठ हाथियों अर्थात् मतवाले हाथियों। रलत=मिलता है, मिलकर बहता है। ऐल=समूह (यहाँ सेना)! फैल=फैलने से। खैल-भैल=खलबली। खलक=संसार। गैल=मार्ग। ठेल-पेल=धक्कमधक्का। सैल=पहाड़। उसलत=उखड़ते हैं। तरनि=सूर्य। धूरिधारा=धूल का समूह। थारा=थाली। पारावार=समुद्र।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जब सरजा शिवाजी महाराज बड़े वीर-रंग (उत्साह) से अपनी चतुरंगिणी सेना तैयार कर घोड़े पर सवार हो कर युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए चलते हैं तब बेहद नगाड़ों का शब्द होता है और श्रेष्ठ हाथियों का मद नदी और नदों के रूप में मिल कर बहता है। फौज के फैलने से संसार में गली-गली में खलबली मच जाती है और हाथियों के धक्कमधक्के से पहाड़ तक उखड़ जाते हैं। (सेना के चलने से) उड़ी हुई धूल के समूह में सूर्य तारे के समान (मंद और बहुत छोटा) दीखता है और (सेना की हलचल के कारण पृथ्वी के काँप उठने से) समुद्र थाली में रक्खे हुए पारे की भाँति हिलता है।

अलङ्कार—उपमा, अनुप्रास और अत्युक्ति।

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के।
नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने, सुनि,
बाजत निसाने सिवराजजू नरेस के॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि, छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात विहराने फन सेस के॥२॥

शब्दार्थ—बान=भाले की तरह का एक हथियार जिस के सिरे

पर कभी-कभी झंडा बाँध देते हैं। फहराने=उड़ने लगे। घहराने=बजने लगे। गजन=हाथियों। नग=पहाड़। महराने=भरभरा कर गिर गये। पराने=(पलायन कर गए)भाग गये। निसाने=डंके। उकसाने=अपने स्थान से खिसक गये, हट गये। कुंभ-कुंजर के=हाथियों के मस्तक के। भौन=भवन, घर। दरारन=दरेरे, दबाव, रगड़। कमठ=कच्छप, कछुवा। करारे=कठोर। केरा=केला। पात=पत्ता। बिहराने=बिदराने, विदारित हो गये, फट गये।

अर्थ—(शिवाजी की सेना के) झंडों के फहराने और हाथियों के घंटे बजने पर देश-देश के छोटे-बड़े राजा-महाराजा (शिवाजी की सेना के सम्मुख) नहीं ठहर सके। महाराज शिवाजी के डंके की आवाज़ से नग (पहाड़) भरभरा कर गिर पड़े। गाँवों और शहरों के लोग उसे (घंटों की आवाज़ को) सुनकर भाग गये। हाथियों के हौदे हिल गये और उनके मस्तकों के भौंरे (मद के कारण हाथियों के मस्तकों पर भौंरे मँडराते हैं) अपने अपने घरों को भाग गये। (शत्रु-स्त्रियों के) बालों की लटें छूट गईं। सेना के दबाव के कारण कठोर कच्छप की पीठ भी फूट गई और शेषनाग के सहस्र फन केले के पत्तों की तरह फट गये। (पुराणों में लिखा है कि कछुए की पीठ पर शेषनाग रहते हैं और शेषनाग के फन पर पृथ्वी ठहरी हुई है।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास और अत्युक्ति।

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है।

सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—निसाचर=रात में घूमने वाले, राक्षस । बधाई=आनन्द-सूचक गीत । भैंरों=भैरव । भूरि=बहुत, अनेकों । भूधर=पर्वत । जुत्थ=यूथ, झुण्ड, समूह । जोगिनी=योगिनी । जुरि आई है=इकट्ठी हो गई है । किलकि=ज़ोर से चिल्लाकर । कुतूहल=कौतुक, खेल, क्रीड़ा । डमरू=शिवजी के बजाने का बाजा, डमडमा । दिगबर=दिशाएँ ही हैं अंबर (कपड़े) जिसके, अर्थात् शिवजी । भृकुटि चढ़ाई है = क्रोधित हुए हैं ।

अर्थ—(युद्ध में मरे हुए वीरों का रुधिर और मांस मिलने की आशा से) प्रेतिनी, पिशाच, राक्षस और राक्षसियाँ आपस में मिलजुल कर आनन्द-गीत गा रही हैं । पहाड़ों के समान डरावने अनेकों भैरव, भूत, प्रेत और योगिनियों के झुंड के झुंड मंडली बाँध बाँध कर इकट्ठे हो रहे हैं । कालिका प्रसन्नता के कारण किलकारी मारती हुई क्रीड़ा करती है (अर्थात् नृत्यादि करती है), शिवजी डिम-डिम डमरू बजा रहे हैं । (शिवजी के समाज का यह सब आनन्दोत्सव देखकर) शिवा (पार्वती जी) शिवजी से पूछती हैं कि आज आपकी यह मंडली कहाँ चली है ? वे उत्तर देते हैं कि महाराज शिवाजी किसी पर क्रोधित हुए हैं ।

अलंकार—अनुप्रास और अप्रस्तुत-प्रशंसा । रणभूमि में हमारे गण भूत-प्रेत मांस भक्षण करेंगे, इस मुख्य बात को न कह कर 'काहू पै सिवा नरेश भृकुटि चढ़ाई है' इतना ही संकेत किया है ।

बद्दल न होहिं दल दच्छिन उमंडि आए,
घटा ये न होय इभ सिवाजी हँकारी के ।
दामिनी-दमंक नाहिं खुले खग्ग वीरन के,
इन्द्रधनु नाहिं ये निसान हैं सवारी के ॥

देखि देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि उझकि उठैं बहत बयारी के।
दिल्लीपति भूल मति गाजत न घोर घन,
बाजत नगारे ये सितारे-गढ़धारी के ❀ ॥

शब्दार्थ—इभ=हाथी। हँकारी=अहंकारी। दामिनी=बिजली। दमंक=चमक। खग्ग=खड्ग, तलवार। इन्द्रधनु=इन्द्रधनुष।

❀कुछ प्रतियों में इस पद्य का पाठ इस प्रकार है—

बद्दल न होंहिं दल दच्छिन घमंड माँहि,
घटा जु न होंहिं दल सिवाजी हँकारी के।
दामिनी-दमंक नाहिं खुले खग्ग बीरन के,
बीर सिर छाप लखु तीजा असवारी के॥
देखि देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि उझकि उठैं बहत बयारी के।
दिल्ली मति-भूली कहै बात घन घोर-घोर,
बाजत नगारे ये सितारे गढ़धारी के॥

अर्थात् ये बादल नहीं पर घमंड में भरी दक्षिण की सेना है। यह घटा नहीं पर अहंकारी शिवाजी की सेना है। यह बिजली की चमक नहीं, पर वीरों की नंगी तलवारें और तीज की सवारी में निकले हुए वीरों के सिरपेंच हैं। इस प्रकार बादलों को शिवाजी की फौज समझ कर मुगलों की बेगमें अपने-अपने घरों को छोड़कर भाग जाती हैं और हवा के शब्द से बार बार चौंक उठती हैं। बादलों की गरज को सुनकर बुद्धि-भ्रष्ट दिल्ली-निवासी यह बात कहते हैं कि यह सितारा किले के स्वामी शिवाजी के नगाड़े बज रहे हैं।

निसान=झंडा। हरमैं=बेगमें, रानियाँ । भवन=महल । उझकि उठैं=चौंक उठती हैं। बयारी=हवा। गाजत = गर्जते हैं। घोरघन= बड़े बड़े बादल। सितारे गढ़धारी=सितारागढ़ के स्वामी, शिवाजी।

अर्थ—(शिवाजी के आतंक से भयभीत हुए दिल्ली-निवासियों और मुगल-स्त्रियों को वर्षा ऋतु के बादलों और बिजलियों में शिवाजी के दल का ही आभास होता है) बादलों को देख कर वे कहते हैं कि यह बादल नहीं हैं, दक्षिण की सेना उमड़ आई है। ये (बादलों की) घटाएँ नहीं हैं, ये अहंकारी शिवाजी के दल के हाथी हैं। यह बिजलियों की दमक नहीं है, ये तो वीरों की नंगी तलवारें हैं और यह इन्द्रधनुष भी नहीं है, ये सवारों के रंग बिरंगे झंडे हैं। (इस भाँति बादलों को शिवाजी की सेना समझ कर) मुगलों की बेगमें अपने अपने महलों को छोड़कर भाग जाती हैं तथा बहती हुई हवा के शब्द से बार-बार चौंक उठती हैं और कहती हैं कि हे दिल्लीपति भूल मत कर, ये घोर बादल नहीं गरज रहे हैं; ये सितारागढ़ के मालिक शिवाजी के नगाड़े बज रहे हैं।

अलंकार—शुद्धापह्नुति । सत्य बात, बादल और बिजली आदि को छिपा कर इनके स्थान पर सेना हाथी और खड्ग आदि को स्थापित किया गया है।

बाजि गजराज सिवराज सैन साजत ही,
दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की।[1]
तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न,
घामै घुमरातीं छोड़ि सेजियाँ सुखन की॥

पाठान्तर—

१ दिल्ली दल गही दसा दीरघ दुखन की—अर्थात् दिल्ली की सेना दीर्घ दुखों की दशा प्राप्त कर लेती है (दिल्ली दल की दशा बड़ी दुखपूर्ण हो जाती है)

'भूषन' भनत पति-बाँह-बहियान तेऊ,
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की।
बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर,
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की ॥५॥

शब्दार्थ—बाजि=घोड़ा। सैन=सेना। दिलगीर=(फारसी) दुखी, दीन। तनिया=चोली, कंचुकी। तिलक=मुसलमानी ढीला और पिंडली तक लंबा कुर्ता। सुथनियाँ=पायजामा। पगनियाँ=जूतियाँ। घामै=धूप में। घुमराती=घूमतीं। पति-बाँह-बहियान=जो अपने पतियों की बाहों पर वहन की जाती थीं, अर्थात् जिन्हें उनके पति बड़े प्यार से रखते थे। छहियाँ=छाँह। छबीली=छविवाली, सुन्दरी। ताकि रहियाँ=ढूँढ रही हैं। रुखन=रूखों, (पेड़ों) की। बालियाँ=बालों की लटें। बिथुर=बिखरी हुई। आलियाँ=अलियाँ, भ्रमरियाँ। नलिन=कमल। लालियाँ=लालिमा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि युद्धार्थ शिवाजी की सेना के घोड़े और हाथी सजते ही दीन दिल्ली-निवासियों की दशा अति दुःखमय हो जाती है। घबड़ाहट के कारण मुगलों की स्त्रियाँ बिना चोली, कुर्ते, पायजामे और जूतियाँ पहिने सुख-शय्या त्याग कर कड़ी घाम (धूप) में भागती फिरती हैं। वे सुन्दर युवतियाँ जो पति की बाहों पर वहन की जाती थीं अर्थात् जिन्हें पति बड़े प्यार से रखते थे अब पेड़ों की छाया ढूँढ रही हैं। उनके मुखों पर बालों की लटें ऐसी बिथुरी (तितर-बितर) पड़ी हुई हैं जैसे कि कमलों पर भौंरियाँ मँडरा रहीं हों, और भय के कारण उनके मुखों की लाली मलिन हो गई है (अर्थात् भय से और जंगल में इधर-उधर फिरने से उनके मुखों का रंग फीका पड़ गया है)।

अलंकार—चंचलातिशयोक्ति (प्रथम चरण में), उपमा (चतुर्थ चरण में) और अनुप्रास।

कत्ता की कराकनी चकत्ता को कटक काटि,
कीन्ही सिवराज बीर अकह कहानियाँ।
'भूषन' भनत तिहुँ लोक[1] मैं तिहारी धाक,
दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ ॥
आगरे अगारन की नाँघतीं पगारन[2],
सँभारती[3] न बारन बदन[4] कुम्हलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जाहिं,
बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रनियाँ ।६॥

शब्दार्थ—कत्ता=बाँका, एक प्रकार का तलवार जैसा शस्त्र। कराकनि=कड़ाकों से, चोटों से। चकत्ता=चंगेज़खाँ के वंशज मुगल, औरंगज़ेब। कटक=सेना। अकह=अकथनीय। धाक= आतंक। बिलाइत=विदेशी राज्य। बिललानियाँ=घबरा गईं, व्याकुल हो गईं। अगारन=मकानों में, महलों में। पगारन= चारदिवारियों को। कहा कीबी=क्या करेंगी। नीबी—धोती का वह भाग जिसे चुनकर स्त्रियाँ नाभि के नीचे खोसती हैं।

अथ—भूषण कवि कहते हैं कि हे वीर शिवाजी ! आपने कत्ता शस्त्र की चोट से औरंगजेब की सेना को काट काट कर वीरता की अकथनीय कहानियाँ बना दीं। तीनों लोकों में आपका आतंक ऐसा छा गया है कि उस से दिल्ली एवं अन्यान्य विदेशी रियासतें सब व्याकुल हो गई हैं। भय

पाठान्तर—

१ और मुलक।

२ आगरे अगारन है फाँदती कगारन छ्वै—अर्थात् आगरे के महलों की मुँडेरों को पकड़-पकड़ कर कूदकर भाग रही हैं।

३ बाँधती। ४ मुखन।

नी
के कारण (बेगमें और रानियाँ) आगरे के महलों की चहारदीवारी कू.
फाँद कर भाग रही हैं। उनके मुख-मंडल कुम्हला गये हैं और जल्दी के कारण वे अपने बालों को भी नहीं सम्हालतीं (अर्थात् उनके बाल बिखर रहे हैं)। दीन दशा-ग्रस्त बेगमें पायजामा और रानियाँ नीवी पकड़े भागती हुई कहती जाती हैं कि अब हम क्या करेंगी ?

अलंकार—वृत्यनुप्रास।

> ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
> ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
> कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं,
> तीन बेर खाती ते वै तीन (बीन) बेर खाती हैं॥
> भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
> बिजन डुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं।
> 'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
> नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥७॥

शब्दार्थ—घोर=बड़ा। मंदर=मंदिर, महल। मंदर=पर्वत। कन्द मूल=ऐसे पदार्थ जिन में कन्द (मीठा) पड़ा हो, अर्थात् बढ़िया मिठाई। कन्दमूल=कन्द और जड़; गाजर, मूली आदि। तीन बेर=तीन बार। तीन बेर=बेरी के तीन बेर। भूषन=ज़ेवरों से। भषन=भूख से। बिजन=व्यजन, पंखा। विजन=जन रहित अर्थात् जंगल। तेऽब=ते (वे) अब। नगन जड़ातीं=गहनों में नग जड़वाती थीं। नगन जड़ाती=नग्न होने के कारण जाड़े में मरती हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे वीरवर शिवाजी! आपके भय के कारण जो मुगल घराने की स्त्रियाँ बड़े बड़े ऊँचे महलों के भीतर रहती थीं, वे अब ऊँचे ऊँचे भयानक पर्वतों में छिपी रहती हैं। जो पहले मिठाई

खाती थीं वे अब कंद और मूल (अर्थात् शकरकंद और गाजर मूली आदि जड़ें) खाती हैं। तीन बार भोजन करने वाली अब केवल बेरी के तीन बेर खाकर ही गुज़ारा करती हैं। (यदि 'बीन बेर' पाठ हो तो अर्थ होगा बेर चुन चुन कर खाती हैं)। (नाजुक होने के कारण) गहनों के भार के कारण जिनके अंग शिथिल थे अब वे भूख के मारे दुर्बल हो रही हैं। जो सदा पंखा झलवाती थीं वे अब निर्जन जंगल में मारी मारी फिरती हैं और जो रत्नजड़ित गहने पहनती थीं वे अब बिना वस्त्र के नग्न जाड़े में मरती हैं।

अलंकार—यमक।

उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती हैं।
अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सुहातीं बोले अति अनखाती हैं॥
'भूषन' भनत सिंह साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुनै अरिनारीं बिललाती हैं।
कोऊ करें घाती कोऊ रोतीं पीट छाती घरैं[1]
तीन बेर खातीं तेऽब तीन (बीन) बेर खाती हैं॥८॥

शब्दार्थ—सगबग=भयभीत या शीघ्रतापूर्वक। सुहाती=अच्छी लगतीं। अनखातीं=नाराज़ होती हैं, झुँझलाती हैं। घाती=आत्मघात।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे सिंह के समान पराक्रमी शाहजी के

पाठान्तर—

१ जोन्ह मैं न जाती ते वै धूपै चली जातीं पुनि— अर्थात् जो जोन्ह (ज्योत्स्ना, चाँदनी) में भी नहीं निकलती थी, वे अब धूप में चली जा रही हैं।

सुपुत्र महाराज शिवाजी ! आपके प्रताप को सुनकर शत्रु-स्त्रियाँ व्याकुल हो रुदन करती हैं। जिन सुकुमार स्त्रियों ने कभी पलँग से उतर कर पृथ्वी पर पैर नहीं रक्खा था, अब वे भयभीत हुई हुई रात दिन भागी चली जा रही हैं। वे अत्यन्त व्याकुल हुई हुई हैं और मुरझा रही हैं तथा उन्हें गात (शरीर) ढकने तक का ध्यान नहीं है। किसी की बात उन्हें अच्छी नहीं लगती उलटा कुछ बोलने पर झुँझला उठती हैं। कोई आत्म-घात करती हैं, कोई छाती पीट पीट कर रोती हैं। जो घर में पहले तीन तीन वार भोजन करती थीं वे अब केवल बेरी के तीन बेर खाकर गुज़ारा करती हैं या बेर चुन चुन कर गुज़ारा करती हैं।

अलंकार—अनुप्रास और यमक।

अन्दर ते निकसीं न मन्दिर को देख्यो द्वार,
बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं।
हवाहू न लागती ते हवा ते बिहाल भईं,
लाखन की भीर में सम्हारती न छाती हैं॥
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
हयादारी चीर फारि[1] मन झुँझलाती हैं।
ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपातीं खातीं ते बनासपाती खाती हैं॥

शब्दार्थ—निकसीं=निकलीं। मन्दिर = महल। पथ=रास्ता। उघारे = नंगे। बिहाल = बेहाल, व्याकुल। हयादारी = लज्जा। चीर = वस्त्र (बुर्का)। फारि = फाड़ कर। झुँझलाती = क्रुद्ध होती। नरम = नम्र, दीन। बनासपाती = वनस्पति, शाक-पात।

पाठान्तर—

१ हार डारि चीर फारि—(हारों को फेंक और वस्त्रों को फाड़ कर)।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी महाराज! आपकी धाक (आतंक) सुनकर बादशाह की वे बेगमें जिन्होंने कभी भीतर से निकल कर महलों का दरवाज़ा भी नहीं देखा था, अब बिना रथ (सवारी) के नंगे पैर रास्ते में जाती हैं। जिनको कभी हवा भी नहीं लगती थी (अर्थात् जो महल के अन्दर ही रहती थीं) अब वे ही हवा से व्याकुल हो रही हैं और ऐसी घबरा रही हैं कि लाखों मनुष्यों की भीड़ में भी वे अपनी छाती को नहीं सँभालतीं (कि उन पर वस्त्र पड़ा है या नहीं)। (घबराहट के कारण) उन्होंने लज्जा रखने के वस्त्र (बुर्के) को भी फाड़ दिया है, अथवा लज्जा रूपी वस्त्र को भी फाड़ दिया है—दूर कर दिया है और मन में झुँझला रही हैं। इस भाँति बादशाह की बेगमों पर ऐसी दीन-अवस्था उपस्थित हुई है कि जो पहले नासपाती आदि फल खाती थीं अब वे सागपात खाकर ही गुज़ारा करती हैं।

अलंकार—अनुप्रास और यमक।

अतर गुलाब रसचोवा घनसार सब,
सहज सुबास की सुरति बिसराती हैं[1]।
पल भरि पलंग ते भूमि न धरति पाँव,
भूलीं[2] खान-पान फिरैं[3] बन बिललाती हैं॥
'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि,
दारा हार बार न सम्हारैं अकुलाती हैं[4]।

पाठान्तर—

१ अतर गुलाब चोवा चन्दन सुगन्ध सब, सहज सरीर की सुबास बिकसाती हैं—(जो बेगमें शरीर की स्वाभाविक सुगंध से गुलाब के इत्र, चोवा, चंदन आदि की सुगंध उत्पन्न करती थीं अर्थात् जिनके शरीर से ऐसी सुगन्ध निकलती थी)।

२ तेई (वे ही)। ३ छोड़ि (छोड़ कर)।

४ भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास, हार-भार तोरि

ऐसी परीं नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं ॥१०॥

शब्दार्थ—अतर गुलाब=गुलाब का इत्र। चोवारस=सुगन्धित द्रव्य, जो केसर कस्तूरी आदि से बनाया जाता है। घनसार =कपूर। सहज=स्वाभाविक, साधारण। सुरति=ध्यान। बिललाती=रोती। दारा=स्त्रियाँ। हार=माला। बार=बाल।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी! आप की धाक (आतंक) को सुन कर बादशाहों की बेगमें भय के कारण गुलाब का इत्र, चोवारस और कपूर आदि साधारण सुगंध की सामग्रियाँ भी भूल गई हैं। जिन्होंने सुकुमारता के कारण पलँग से उतर कर पृथ्वी पर पल भर भी पैर न रक्खे थे; वे खाना पीना भूल कर वन-वन मारी-मारी फिर रही हैं। व्याकुलता के कारण वे स्त्रियाँ न अपने हारों को सँभाल पाती हैं और न केशों को। बादशाहों की बेगमों की ऐसी दीन दशा हो गई कि जो पहले नासपाती आदि फल खाती थीं अब उन्हें सागपात पर ही गुज़ारा करना पड़ता है।

अलंकार—यमक।

सोंधे को अधार किसमिस जिन को अहार,
चार को सो अंक लंक चन्द सरमाती हैं[1]।
ऐसी अरिनारी सिवराज वीर तेरे त्रास,
पायन में छाले परे, कन्दमूल खाती हैं[2]॥

निज सुधि बिसराती हैं—(हे वीर, शिवराज, तुम्हारे डर से वे हारों का भार छोड़ कर—हारों को फेंक कर—अपनी सुध भूल रही हैं)

१. चार-अंक-लंक मुख चंद के समानी है—(जिनकी कमर ४ के अंक समान है और मुख चन्द्रमा के समान है)।

२. काय कुम्हलानी है (जिनका शरीर कुम्हला गया)

ग्रीषम तपनि ऐसी तपती न सुनी कान,
कंज कैसी कली बिन पानी मुरझाती हैं[3]।
तोरि तोरि आछे से पिछौरा सो निचोरि मुख
कहैं सब कहाँ पानी मुकतों मैं पाती हैं[4] ॥११॥

शब्दार्थ—सोंधे=सुगध। अहार=भोजन। चार को सों अंक लंक=चार के अंक (४) के मध्य भाग के समान (पतली) कमर। तपनि=गर्मी। कंज=कमल। आछे से=अच्छे से। पिछौरा=चादर। कहाँ पानी मुकतों मैं=मोतियों में पानी कहाँ है? (मोतियों का पानी उनकी चमक होती है, परन्तु प्यासी स्त्रियों ने उसे सचमुच का पानी माना है)।

अर्थ—जिनका जीवन सुगंधि पर निर्भर था, जिनका भोजन किशमिश आदि मेवे थे, चार के अंक (के मध्य भाग) के समान जिनकी बहुत पतली कमर थी, और जो (अपने सौन्दर्य से) चन्द्रमा को भी लज्जित करती थीं, ऐसी शत्रुस्त्रियों के हे वीर शिवाजी! आपके भय के कारण भागते-भागते पैरों में छाले पड़ गये हैं, और वे अब कंदमूल खाकर अपना गुज़ारा करती हैं। ग्रीष्म ऋतु की ऐसी तेज़ गर्मी में जैसी

---

३ ग्रीषम की तपती की विपती न कान सुनी कंज की कली सी बिनु पानी मुरझानी है (जिन्हों ने ग्रीष्म ऋतु की गर्मी की विपत्ति कानों से भी नहीं सुनी थी वे कमल की कली की तरह बिना पानी के मुरझा गई हैं)।

४ तोरि के छरासों अच्छरा-सी यों निचोरि कहैं, 'तुम नै कहे ते कंत मुकता मैं पानी हैं'—(अच्छरा सी [अप्सरा जैसी स्त्रियाँ] छरा [इज़ारबन्द, नाला] से मोती तोड़ तोड़ कर उन्हें निचोड़ कर, [पानी न निकलता देखकर] कहती हैं—"हे नाथ तुमने तो कहा था कि इन मोतियों में 'पानी' है")

कभी सुनी भी नहीं गई थी, वे स्त्रियाँ प्यास के कारण कंज (कमल) की कलियों की भाँति कुम्हला रही हैं। वे सब बढ़िया चादरों से मोती तोड़ तोड़ कर मुँह में निचोड़ती हुई कहती हैं कि इन में पानी कहाँ? ('आब का अर्थ पानी भी है और चमक भी, मोती में आब अर्थात् चमक होती है, परन्तु वेगमें घबराहट के कारण मोतियों को निचोड़ती हैं और कहती हैं कि इनमें पानी नहीं है)।

अलंकार—उपमा, प्रतीप और भ्रम। उपमा—'चार को सो अंक लंक'। प्रतीप—'चन्द सरमाती हैं'। भ्रम—'तोरि तोरि आछे ...कहाँ पानी मुकतों मैं पाती हैं।'

किबले को ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है[1]।
बड़ो भाई दारा वाको पकरिकै मारि डार्यो,
मेहर हू नाहिं माँ को जायो सगो भाई है।
बन्धु तौ मुरादबकस बादि चूक करिबे को,
बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है[2]।
'भूषन' सुकवि कहै सुनौ नवरंगजेब,
एते काम कीन्हें तब[3] पातसाही पाई है॥१२॥

शब्दार्थ—किब्ले=फा० किबला, मुसलमानों का तीर्थस्थान, पूज्य व्यक्ति या देवता। आगि लाई है=आग लगा दी। मेहर=कृपा, दया। बादि=व्यर्थ। चूक=दोष, गलती, बुराई।

पाठान्तर—

१. कैद कियो।

२. खाइ कै कसम, त्यों मुराद को मनाई लियो, फेरि ताहू साथ अति कीन्हीं तैं ठगाई है—(अर्थ स्पष्ट है)

३. ऐसे ही अनीति करि।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब ! तुमने अपने पिता शाहजहाँ को जो पूज्य देवता के (समान) थे कैद कर ऐसा घोर अनर्थ किया मानो अपने तीर्थ-स्थान मक्का को जला दिया हो। दारा को पकड़ कर तुमने मार दिया, उस पर तुम्हें कुछ भी दया न आई यद्यपि वह तुम्हारा माँ का जाया सगा भाई था। और अपने भाई मुरादबक्श के साथ किसी प्रकार की चूक (बुराई, धोखा) न करने की तुमने कुरान बीच में रख कर व्यर्थ ही कसम खाई थी (अर्थात् मुरादबक्श को बादशाह बनाने के लिए धर्म-ग्रन्थ की सौगन्ध खाने पर भी धोके से उसे मार डाला)। इतने अनर्थ करने के पश्चात् तुम्हें बादशाहत मिली है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, 'मानो मक्के आगि लाई है', में।

हाथ तसबीह लिये प्रात उठै[1] बन्दगी को[2],
आपही कपटरूप कपट सुजपके[3]।
आगरे मैं जाय दारा चौक मैं चुनाय लीन्हों,
छत्र हू छिनायो मानों मरे बूढ़े बप के[4]।
कीन्हों है सगोत घात सो मैं नाहिं कहौं फेरि,[5]
पील पै तुरायो चार चुगल के गपके[3]।
'भूषन' भनत छरछंदी मतिमन्द महा,[6]
सौ सौ चूहे खाइ कै बिलारी बैठी तपके ॥१३॥

---

१ करै। २ सी। ३ मन क कपट सब सँभारत जपके—(जप कर के मन के कपट को सँभालता है)। ४ छत्र हू छिनाय लीन्हो मारि बूढ़ बप के। ५ सूजा बिचलाई कैद करि कै मुराद मारे, ऐसे ही अनेक हने गोत्र निज बप के—(शुजा को धोखा देकर विचलित कर दिया और मुराद को कैदकर के मार डाला, ऐसे ही अपने वंश के और कई लोगों को चुपचाप मार दिया)। ६ भूषण भनत अब साह भय साँचे जैसे,

शब्दार्थ—तसबीह=(फा०) माला। बंदगी=ईश्वर का भजन कपट सुजप के=कपट का जप कर के। मानो मरे=मानो मर गया हो। बप=बाप। सगोत=अपने वंश वाले। घात=नाश। पील=(फा०) फील, हाथी। चार=चर, दूत। गप के=गप्प उड़ाने से, झूट कहने से। छरछन्दी=छली। तप के=तप करने के लिये।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगज़ेब! तुम स्वयं कपट रूप हो, प्रातःकाल उठकर ईश्वर-भजन के लिए माला हाथ में लेकर कोरा कपट का ही जप करते हो। तुमने अपने सगे भाई दारा को आगरे के किले के चौक में गड़वा दिया। बूढ़े जीवित बाप को मरा मानकर उसका राज-छत्र छीन लिया। मैं और अधिक कहाँ तक कहूँ तुमने बिना विचार किये ही चुगलखोर दूतों की झूठी बातों पर अपने वंश वालों को हाथी से दबवा कर मरवा डाला। तुम बड़े ही चालबाज़ और खोटी बुद्धि वाले हो, (और अब लोगों की दृष्टि में महात्मा बन रहे हो, लेकिन यह ऐसी ही बात है जैसे) सैकड़ों चूहे खाकर बिल्ली तपस्या करने बैठी हो।

अलंकार—छेकोक्ति, क्योंकि अन्तिम पंक्ति में लोकोक्ति का प्रयोग है।

कैयक हज़ार किए[1] गुर्ज-बरदार ठाढ़े,
करिकै हुस्यार नीति पकरि[2] समाज की।
राजा ज़सवंत को बुलायकै निकट राख्यो,
तेऊ लखैं नीरे जिन्हें[3] लाज स्वामि-काज की॥
'भूषन' तबहुँ ठठकत ही गुसलखाने[4],
सिंह लौं झपट गुनि[5] साहि[6] महाराज की।

---

१. जहाँ। २. सिखई। ३. जिनको सदाई रही—(यह जसवन्तसिंह का विशेषण है, अर्थात् जिस जसवन्तसिंह को सदा स्वामि-काज की लाज रही) ४. भूषण भनत ठाढ़ो पीठ है गुसुलखान—(भूषण कहते हैं कि पीठ की तरफ—पीछे—गोसलखान खड़ा है)। ५ मन। ६. मानी।

हटकि हथ्यार फड़ बाँधि उमरावन की[1],
कीन्हीं[2] तब नौरँग ने भेट सिवराज की ।।१४।।

शब्दार्थ—कैयक=कई एक । गुर्जबरदार=गदाधारी । नीति पकरि समाज की=शाही दरबार के नियमानुसार । नीरे=समीप । जिन्हें लाज स्वामि काज की=जिनको स्वामी के काज की लाज है अर्थात् स्वामिभक्त । ठठकत=डरते-डरते । गुनि=गुन कर, समझ कर । फड़=कतार ।

अर्थ—(शिवाजी से मिलने के समय औरंगज़ेब ने) शाही दरबार के नियमानुसार कई हज़ार गदाधारी वीर पुरुष बड़ी सावधानी के साथ खड़े कर दिये । जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह जी को अपने निकट ही बुला लिया और अन्य बहुत से स्वामिभक्त सरदार भी समीप ही दिखाई देते थे । भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब ने यह समझ कर कि शिवाजी सिंह की भाँति (अचानक) न झपट पड़ें, हथियारों की मनाही करके और अपने सरदारों की कतार बाँध कर डरते-डरते गुसलखाने (स्नानागार) के पास शिवाजी से भेंट की ।

अलंकार—'सिंह लौं झपट' मे, उपमा । हेतु ।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हज़ारिन[3] के नियरे ।
जानि गैरमिसिल गुसैल[4] गुसा धारि उर[5];
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे ।।

---

१. हठते हथ्यार फेंट बाँधि उमराव राखे—(हठ पूर्वक उमरावों को फेंट में हथियार बँधवा कर उन्हें अपने निकट खड़ा किया) । २. लीन्ही ।

३. जाय जारिन (जारिन, नीच, छोटा, यहाँ पंचहज़ारी से तात्पर्य है ।) ४. गुसील । ५. मन ।

'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे ॥१५॥

शब्दार्थ—ठाढ़ो = खड़ा। रहिबे = रहने। नियरे = समीप। गैर मिसिल = अनुचित। गुसैल = क्रोधी। उर = हृदय। सियरे = शीतल, नम्र। बलकन लाग्यो = क्रोधित होने लगे, बिगड़ उठे। उड़ाय गये जियरे = जी उड़ गये, प्राण सूख गये, बहुत घबरा गये। तमक = क्रोध। निरखि = देख कर। पियरे = पीले।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जो शिवाजी सबसे उच्च स्थान पाने के योग्य थे उन्हें औरंगजेब ने अपने छः हजारी जैसे छोटे छोटे सरदारों के निकट खड़ा कर दिया। इस अनुचित व्यवहार को देख कर गुस्सावर शिवाजी ने मन में अत्यन्त क्रोधित हो औरङ्गजेब को न सलाम किया, न शीतल वचन ही कहे, उलटे बिगड़ उठे। जिससे समस्त पातसाही (शाही दरबार) के प्राण सूख गये (अर्थात् वे अत्यन्त भयभीत हो गये) शिवाजी का तमक [क्रोध] से लाल मुख देख कर औरंगजेब का चेहरा स्याह तथा सिपाहियों का पीला पड़ गया।

अलंकार—विषम। 'लाल मुख सिवा' रूप कारण से 'स्याह मुख नवरंग' आदि विरुद्ध कार्य हैं। तीसरा विषम है।

राना भो चमेली[1] और बेला सब राजा भये,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।

---

१. केतकी भो राना (उदयपुर का राणा केतकी अर्थात् केवड़े का फूल है)।

सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर¹,
भ्रमत भ्रमर जैसे² फूल की समाज है ॥
'भूषन' भनत सिवराज वीर तैहीं देस-
देसन में राखी सब दच्छिन की लाज है³ ।
त्यागे सदा षटपद-पद अनुमान यह,
अलि नवरंगज़ेब चंपा सिवराज है ॥१६॥

शब्दार्थ - भो=हुआ । भये=हुए । ठौर-ठौर = स्थान-स्थान पर । सिगरे = सब । आनि=अन्य । कुन्द=एक फूल । भ्रमत = घूमता है । भ्रमर = भौंरा । तैहीं=तू ने ही । षटपद = भौंरा । षटपद-पद = भौंरे का पद (अधिकार), भौंरे का काम, अर्थात् पुष्प-रस लेना । चंपा = पुष्प विशेष, इस पर भौंरा नहीं बैठता ।

अर्थ—उदयपुर के राणा चमेली के समान तथा अन्य सब राजा बेला के समान हैं। औरंगजेब रूप भौंरा स्थान-स्थान पर (मँडराता हुआ) इन फूलों से रस लेता है (कर वसूल करता है अथवा सेवा करवाता है)। और सब अमीर कुंद फूल के समान हैं। वह (औरंगज़ेब) घर-घर [राज्य राज्य में] इस भाँति घूमता है जैसे फूलों पर भ्रमर मँडराता हो। किंतु हे वीरवर शिवाजी! तुमने ही समस्त देशों में दक्षिण देश की लज्जा रखी है (अर्थात् तुमने दक्षिण देश को परास्त होने से बचाकर औरंगजेब रूपी भ्रमर को यहाँ का पुष्प रस नहीं दिया)। ऐसा अनुमान

पाठान्तर—

१. सिगरे अमीर भये कुन्द मकरंद भरे (सब अमीर रस-युक्त कुन्द का फूल हैं)। २. भृंग सो भ्रमत लखि (भौंरे के समान घूमता है)। २. भूषन भनत सिवराज देस देसन की राखी है बटोरि एक दच्छिन में लाज है (अर्थ स्पष्ट है) ४. तजत मिलिंद जैसे तैसे तजि दूर भाग्यो।

होता है कि औरंगज़ेब भ्रमर है तो शिवाजी चंपा के फूल हैं, [क्योंकि चंपा को पाकर ही भ्रमर अपना रसास्वादन कार्य त्यागता है]।

अलंकार—उपमामिश्रित रूपक।

कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाव राना केतकी* विराज है।
पाँडर पँवार जूही सोहत है चंदावत,
सरस बुन्देला सो चमेली साज बाज है[1]॥
'भूषन' भनत मुचुकंद बड़गूजर है,
बघेले बसंत सब कुसुम-समाज है।
लेइ रस एतेन को[2] बैठ न सकत अहै,
अलि नवरंगजेव चंपा सिवराज है॥१७॥

शब्दार्थ—कूरम = कूर्म, कछुआ अर्थात् कछवाहे क्षत्रिय (जयपुर के महाराजा)। कमधुज = कबंधज, जोधपुर के महाराजा, युद्ध में इनके पूर्वज कन्नौज-नरेश जयचन्द का कबन्ध उठा था, (रुंड उठकर लड़ा था) इसी से ये कबंधज कहलाते हैं। कदम = कदंब, एक फूल। गौर = गौड़ क्षत्रिय। पाँडर = एक फूल, कुन्द।

---

* छन्द नं० १६ में महाराणा उदयपुर को चमेली पुष्प की उपमा दी है परन्तु वह इतनी फबती नहीं जितनी इस छन्द में केतकी की उपमा। वास्तव में केतकी के रसास्वादन में भौंरे को उसके काँटों के कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, वैसे ही औरंगजेब ने भी बड़ी-बड़ी आपत्तियों का सामना करके महाराणा [राजसिंह] को वश में किया था।

१. बकुल बुँदेला अरु हाड़ा हंसराज है (बुँदेले मौलसिरी और हाड़ा हंसराज पुष्प हैं)। २. सब ही को रस लैके।

पँवार = परमार(राजपूतों की एक जाति)। चंदावत = राजपूतों की एक जाति । सरस = श्रेष्ठ । मुचुकुन्द = एक फूल । बड़गूजर = राजपूतों का एक कुल । बघेले = बघेलखंड के राजपूत । कुसुम = फूल ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कछवाह वंशी जयपुर-नरेश कमल हैं, कबंधज जोधपुर के महाराज कदंब के पुष्प हैं, गौर क्षत्रिय लोग गुलाब हैं, उदयपुर के महाराणा कँटीली केतकी (केवड़े का फूल) हैं, पँवार वंशी क्षत्रिय पाँडर [कुन्द] हैं, चंदावत राजपूत जूही हैं, श्रेष्ठ बुँदेले लोग खिली हुई चमेली हैं, बड़गूजर-वंशी क्षत्रिय मुचुकुन्द-पुष्प हैं, और बघेले लोग बसंत ऋतु में खिलने वाले अन्य फूलों के समूह हैं । औरंगज़ेब रूपी भ्रमर इन समस्त पुष्पों का रस लेता है किंतु वह शिवाजी रूपी चंपा पुष्प पर नहीं बैठ सकता [अर्थात् औरंगज़ेब ने इन समस्त क्षत्रिय वंश के राजा महाराजाओं को परास्त कर दिया, किंतु तीक्ष्ण गन्ध वाले चंपा पुष्प के समान प्रचण्ड प्रतापी महाराज शिवाजी के पास नहीं फटक सका]।

अलंकार—उपमामिश्रित रूपक ।

देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे समै[1] राव राने सबै गए लबकी ।
गौरा गनपति आप औरंग को देखि ताप,
आपने मुकाम सब मारि गये दबकी[2] ॥
पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की ।

पाठान्तर—

१. डूबे । २. गौरा गनपति आप औरन को देत ताप अपनी ही बारि सब मारि गये दबकी (पार्वती और गणेश जी

कासी हू की कला गई[1] मथुरा मसीत भई[2],
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी ।।१८।।

शब्दार्थ—देवल = देवालय । गिरावते = गिराते । अली = मुहम्मद का दामाद, मुसलमानों का चौथा खलीफ़ा । गये लबकी = लबक गये, भाग गये । गौरा = पार्वती । गनपति = गणेश । ताप = प्रताप, तेज । मुकाम = स्थान । मारि गये दबकी-दबक गये, छिप गये । पीरा = पीर, मुसलमान सिद्ध । पयगम्बरा = पैगम्बर, ईश्वर के दूत । दिगम्बरा=औलिया (मुसलमानों में प्रायः नंगे रहने वाले साधु) । रब = खुदा (यहाँ पर तात्पर्य है मुसलमानी मजहब) । कला = शक्ति, देवताओं का प्रत्यक्ष प्रभाव । सुनति = सुन्नत, खतना, मुसलमानों का संस्कार, जिसमें पुरुष की मूत्रेन्द्रिय के अग्र-भाग के ऊपर के ढीले चमड़े को काट डाला जाता है ।

अर्थ—मुसलमान देवालयों को तोड़-तोड़ कर गिराते हैं और अली के झंडे फहरा रहे हैं । ऐसे समय राव राणा सब डर कर भाग गये । स्वयं पार्वती और गणेशजी औरंगजेब का प्रताप देख कर अपने अपने स्थान में दबक गये [छिप गये] । पीर, पैगंबर और औलिया दिखाई देते हैं (अर्थात् कोई हिन्दू साधू सन्त नज़र नहीं आता, सब मुसलमान फ़कीर ही फ़कीर दिखाई पड़ते हैं) सिद्ध लोगों की सिद्धता चली गई, सब तरफ मुसलमानी मत की दुहाई फिर रही है । काशी का प्रभाव नष्ट हो गया । मथुरा में मस्जिदें बन गई । यदि शिवाजी न होते तो सब हिन्दुओं को खतना कराना पड़ता (मुसलमानी मत स्वीकार करना पड़ता) ।

अलंकार—संभावना और अनुप्रास ।

आदि जो दूसरों को दण्ड देते हैं, वे सब अपनी रक्षा करने के समय दबक गये) ।

१. जाती । २. होती ।

आदि की न जानो देवी-देवता न मानो साँच,
कहूँ जो पिछानो बात कहत हौं अब की।
बब्बर अकब्बर हिमायूँ हद्द बाँधि गए,
हिन्दू औ तुरुक की कुरान वेद ढब की॥
इन पातसाहन मैं हिन्दुन की चाह हुती,
जहाँगीर साहजहाँ साख पूरैं तब की।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सब को॥१९॥ *

---

* कई प्रतियों में इस कवित्त का पाठ निम्नलिखित हैः—
साँच को न मानै देवी देवता न जानै अरु,
ऐसी उर आनै मैं कहत बात जबकी।
और पातसाहन के हुती चाह हिन्दुन की,
अकब्बर साहजहाँ कहैं साखि तब की॥
बब्बर के तब्बर हुमायूँ हद्द बाँधि गये,
दोनों एक करी ना कुरान वेद ढब की॥
कासीहू की कला जाती मथुरा मसीत होती,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सब की॥

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि मैं उस समय की बात कहता हूँ जब कि अन्य बादशाह थे, जिन्हें हिन्दुओं की बड़ी चाह थी, जिसके साक्षी अकबर और शाहजहाँ हैं। बाबर के पुत्र हुमायूँ ने हिन्दुओं की मर्यादा ज्यों की त्यों रक्खी। उन्होंने कुरान और वेद की रीति को एक नहीं किया अर्थात् वेद की रीतियों को उठाने का प्रयत्न नहीं किया, किन्तु औरङ्गज़ेब सत्य और देवी देवताओं का निरादर कर रहा है। यह सोचकर मैं कहता हूँ कि यदि शिवाजी न होते तो काशी का प्रत्यक्ष प्रभाव चला जाता, मथुरा में मसजिदें बन जातीं और समस्त हिन्दुओं को खतना करवाना पड़ता।

शब्दार्थ—आदि = पुरुष, परमात्मा । पिछानो = पहचानो । ढब = ढंग, रीति नीति । चाह = प्रेम, इच्छा । हुती = थी । साख = साक्षी, गवाह । पूरैं = पूर्ण करते हैं ।

अर्थ—चाहे आप ईश्वर को न जानें, देवी और देवताओं को भी न मानें पर मैं इस समय जो सच्ची बात कहता हूँ उसे पहचानिये । बाबर हुमायूँ और अकबर हिन्दू और मुसलमानों की तथा वेद और कुरान की सीमा बाँध गये हैं । इन पुराने बादशाहों में हिन्दुओं के प्रति प्रेम था । जहाँगीर और शाहजहाँ उस समय के गवाह हैं (पर ये पिछली बातें हैं) अब तो काशी का प्रभाव नष्ट हो गया और मथुरा में मस्जिदें बन गईं और यदि शिवाजी न होते तो सब हिन्दुओं को ख़तना करवाना पड़ता ।

अलंकार—संभावना और अनुप्रास ।

सूचना—इस पद्य के अंन्तिम चरण का प्रथम तीन चरणों से ठीक मेल नहीं मिलता । अंतिम चरण केवल समस्या पूर्ति के रूप में जोड़ दिया गया प्रतीत होता है । कुछ प्रतियों में इस पद्य का कुछ दूसरा पाठ है जो पृष्ठ २४ पर फुटनोट में दिया गया है । पर वह पाठ होने पर भी यह पद्य सुसंबद्ध नहीं प्रतीत होता ।

कुम्भकन्न असुर औतारी अवरंगजेब,[1]
कीन्हीं कत्ल मथुरा[2] दोहाई फेरी रब की ।
खोदि डारे देवी देव सहर महल्ला बाँके,[3]
लाखन तुरुक कीन्हें छूट गई तबको[4] ॥

---

१. कुभकन्न औरंग को औनि अवतार लैके—(कुम्भकर्ण ने पृथिवी पर औरंगजेब का अवतार लेकर) २. मथुरा जराइ कै—(मथुरा को जला कर) ३. ४. खोदि डारे देवी-देव-देवल अनेक सोई, पेखि निज पानिन ते कुटी माल सब की—(देवी देवताओं के अनेक देवालय—मन्दिर—खोद डाले, इसे देखकर

'भूषन' भनत भाग्यो[४] कासीपति बिस्वनाथ,
और कौन गिनती मैं भूली गति भव की[६]।
चारों वर्ण धर्म छोड़ि कलमा निवाज पढ़ि[७],
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सब की ॥२०॥

शब्दार्थ— कुम्भकन्न = कुंभकर्ण। कीन्हीं कत्ल मथुरा = मथुरा में कत्लआम करवाया। सन् १६६९ ई० में औरङ्ग़ज़ेब ने मथुरा में केशवरॉय का प्रसिद्ध मंदिर तुड़वाया था, यह मंदिर महाराज वीरसिंहदेव बुन्देला ने ३३ लाख रुपया लगाकर बनवाया था। तबकी=(अर्बी), तबकाबन्दी, सांप्रदायिक धर्म। कासीपति बिस्वनाथ = औरङ्ग़ज़ेब ने विश्वनाथ जी का मंदिर सन् १६६९ ई० में तोड़ा था, उसी समय कहा जाता है कि श्री विश्वनाथजी की मूर्ति मंदिर से भाग कर ज्ञानवापी नामक कूप में (जो मंदिर के पिछवाड़े है) कूद पड़ी। भव=महादेव। कलमा=मुसलमानी मत का मुख्य मंत्र—'ला इलाह इल्लिल्लाह मोहम्मद रसूलिल्लाह'।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कुंभकर्ण राक्षस के अवतार औरंगज़ेब ने मथुरा में कत्लेआम कराकर रब (दीन इसलाम) की दुहाई फिरवा दी। देवी देवताओं की मूर्तियाँ खुदवा डालीं, सुन्दर नगर और मुहल्ले बरबाद कर दिये. लाखों हिन्दुओं का साम्प्रदायिक मत छुड़वा उन्हें मुसलमान बना लिया। भूषण कहते हैं कि जब काशीश्वर विश्वनाथ भाग गये, और स्वयं महादेव अपनी गति को भूल गए तो और लोग किस गिनती में हैं। यदि ऐसे समय शिवाजी न होते तो चारों वर्ण

सब के हाथ से मालायें छूट गईं) ५. भाजे। ६. और का गनाऊँ नाम गिनती मैं अब की—(मैं औरों का नाम गिनती में क्या गिनाऊँ) ७. दिल में डरन लागे चारों वर्न ताहि समै—(उस समय चारों वर्ण मन में डरने लगे).

अपना अपना धर्म त्याग कर कलमा और नमाज़ पढ़ने लगते और सबको खतना करवाना पड़ता।

अलंकार—संभावना, काव्यार्थापत्ति और अनुप्रास।

दावा पातसाहन सों कीन्हों सिवराज बीर,
जेर कीन्हों देस हद्द बाँध्यो दरबारे से।
हठी मरहठी तामैं राख्यो न मवास कोऊ,
छीने हथियार डोलैं वन बनजारे से॥
आमिष आहारी मांसहारी दै दै तारी नाचैं,
खाँड़े तोड़े किरचैं उड़ाय सब तारे से।
पील सम डील जहाँ[1] गिरि से गिरन लागे,
मुण्ड मतवारे गिरैं झुण्ड मतवारे से॥२१॥

शब्दार्थ—दावा=बराबरी का हौसला। जेर=पराजित। मवास=किला। बनजारे=व्यापारियों की एक जाति जो पहले बैलों पर सामान लादकर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में ले जाया करते थे। आमिष=मांस। आहारी=खाकर। मांसहारी=मांस खाने वाले, भूत पिशाच आदि। खांडे=चौड़ी तलवारें। तोड़े=तोड़ेदार बन्दूकें। किरचैं=पतली तलवारें। पील=हाथी। डील=कद। गिरि=पहाड़। मुंड मतवारे=मुसलमानी मत के गर्व में गर्वित तुर्कों के सिर।

अर्थ—वीरवर शिवाजी ने बादशाहों की बराबरी करने का हौसला किया। समस्त देशों को पराजित कर अपने राज्य की सीमा दिल्ली के दरबार से अलग ही बाँध ली। हठी मरहठों ने उसमें (अपनी हद्द में) अन्य किसी का क़िला नहीं रहने दिया (अर्थात् अपनी हद्द के

पाठान्तर—

१. डीलवारे।

सब किले अपने अधिकार में कर लिये) और सबके हथियार छीन लिये जिसके कारण वे (मुसलमान शत्रु) जंगल में बनजारों की भाँति फिरने लगे। मांसाहारी भूत पिशाच गण मांस खाकर ताली बजा बजाकर नाचने लगे। मरहठों ने शत्रुओं के खाँडे, तोड़ेदार बन्दूकें और किरचें तारों के समान उड़ा दीं (अर्थात् उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर सब तरफ इस प्रकार फेंक दिये कि वे तारों के समान दिखाई देने लगे) हाथी के समान भारी-भारी डील (शरीर) वाले शत्रु पहाड़ की तरह भरभरा कर गिर पड़े, और (मुसलमानी धर्म से) उन्मत्त हुए पुरुषों के सिर कट-कट नशे में चूर पुरुषों के समूह की भाँति गिरने लगे।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास।

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,[1]
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै[2] हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट मैं॥[3]
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मैं॥२२॥

शब्दार्थ—कमान = तोप। मुरचा = वह स्थान जिस की आड़ मे वैठकर योद्धा गोली एवं तीर चलाते हैं। दावा बाँधि =

पाठान्तर—

१. छूटत कमान बान बंदूकरु कोकबान—तोप, बाण, बन्दूक और कोकबानों के छूटने से)।

२. दै। ३. दावा बाँधि द्वेषिन पै वीरन लै जोट में—(हिम्मत बाँध कर और वीरों के जोट लेकर शत्रुओं पर हमला कर दिया)

हिम्मत बाँध कर । जोट=समूह । किम्मति=प्रतिष्ठा । भट=योद्धा । झोट=समूह । कोट = किला ।

अर्थ—जब मुसलमनों की तोप, गोलियाँ और बाणों के चलने पर मोरचों का आड़ में भी बचना कठिन हो रहा था उसी समय महाराज शिवाजो ने अपने साथियों को आज्ञा देकर हिम्मत बाँध कर ऐसा प्रबल आक्रमण किया कि उससे शत्रु-वीरों के मध्य बड़ा हुल्लड़ मच गया। भूषण कवि कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी! मैं आपके साहस का कहाँ तक वर्णन करूँ? आपके वीरगणों में आपकी इतनी प्रतिष्ठा है कि वे उमंग से मूँछों पर ताव देते हुए कंगूरों पर चढ़ कर शत्रुओं को ज़ख्मी करते हुए किले में कूद पड़े।

अलंकार तीसरी विभावना और अनुप्रास।

उतै पातसाहजू के गजन के ठट्ट छूटे,
उमड़ि घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं।
इतै सिवराजजू के छूटे सिंहराज औ,
बिदारे कुम्भ करिन के चिक्करत भारे हैं॥
फौजैं सेख सैयद मुगल औ पठानन की,
मिलि इखलास खाँ हू मीर न सँभारे हैं।[1]
हद्द हिन्दुवान की विहद्द तरवारि राखि,
कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं॥२३॥

शब्दार्थ—उतै = उधर। ठट्ट=समूह। घन=बादल। कारे=काले। इतै = इधर। सिंहराज = सिंह के समान वीर योद्धा। बिदारे=फाड़ दिये। कुम्भ=हाथी का मस्तक। करिन के=हाथियों के।

पाठान्तर—

१. मिलि अफसर काहू भीर न सहारे हैं—(सैयद मुगल पठान की भीड़ को कोई भी अफसर नहीं सम्हाल सका)।

चिक्करत=चिंघाड़ते हैं। इखलासखाँ=सन् १६७२ ई० में सलहेरि के युद्ध में इखलासखाँ मुगलों की ओर से सेनापति बनाया गया था। राखि=रख कर (रक्षा करके)। झारि डारे हैं=दूर कर दिया है।

अर्थ—उधर बादशाह औरंगज़ेब के मतवाले हाथियों के झुंड-के-झुंड ऐसे चले, मानों काले-काले बादल इकट्ठे होकर उमड़ रहे हों, तो इधर से महाराज शिवाजी के सिंह के समान वीर योद्धाओं ने छूट कर हाथियों के मस्तकों को विदीर्ण कर डाला जिससे वे बड़े ज़ोर-ज़ोर से चिंघाड़ने लगे। शेख, सैयद, मुग़ल और पठानों की सम्मिलित फौजों को स्वयं मीर (सरदार) इखलासखाँ भी न सँभाल सका। महाराज शिवाजी ने अपनी महान तलवार के बल से हिन्दुओं की मर्यादा की रक्षा करते हुए कई बार दिल्ली का घमंड चूर कर दिया।

अलंकार—प्रथम चरण में गम्योत्प्रेक्षा। 'सिंहराज' में रूपकातिशयोक्ति। अनुप्रास।

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि,
सुनि असुरन के सुसीने धरकतु हैं[1]।
देवलोक नागलोक नरलोक गावैं जस[2],
आजहूँ लौं परे खगदंत खरकतु हैं[3]॥

पाठान्तर—

१. नर काह सुरन के मीन धरकन हैं—(मनुष्य तो क्या देवताओं के भी हृदय धड़कते हैं)।

२. ३. देवलोकहू मैं अजौं मुगल पठानन के, सरजा के सूरन के खग्ग खरकत हैं—(देवलोक में आज भी मुगल पठान और शिवाजी के वीरों की तलवारें खड़खड़ा रही हैं)।

कंटक कटक काटि कीट से उड़ाये केते[1],
भूषन भनत मुख मोरे सरकत हैं[2]।
रन भूमि लेटे अधकेटे अरसेटे परे[3],
रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत हैं ॥२४॥

शब्दार्थ—सलहेरि=सन् १६७१ में इस किले को शिवाजी के प्रधान मंत्री मोरोपत ने जीता था। पीछे इस किले को लेने के लिए औरंगज़ेब ने एक-एक करके अपने चुने हुए अनेक सिपाहसालार भेजे। इसके लिए बहुत भयंकर युद्ध हुआ, पर विजय शिवाजी की हुई। असुरन के=मुसलमानों के। खगदन्त=तीरों के फल (गाँसियाँ)। खरकत हैं=खटकती हैं, दुख देती हैं। कंटक=काँटा, कंटक रूप शत्रु। अरसेटे=शिथिल, अशक्त। पठनेटे=युवक पठान।

अर्थ—यह सुनकर कि 'शिवाजी ने सलहेरि की लड़ाई में विजय पाई है' मुसलमानों के कलेजे धड़कने लगते हैं। स्वर्ग, पाताल, और मर्त्य-लोक में शिवाजी का यशोगान हो रहा है और (शत्रुओं को) तीरों की गासियाँ अब भी दुख दे रही हैं। भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने शत्रुओं की सेना को काट-काटकर कीड़े-मकौड़ों की तरह उड़ा दिया और कितने ही मुख मोड़कर (पीठ दिखाकर) चुप-चाप लंबे हो रहे हैं। रणभूमि में आधे-आधे कटे हुए, अशक्त, पठान-युवक रुधिर में लथपथ हुए पड़े फड़फड़ा रहे हैं।

अलंकार अनुप्रास और उपमा।

---

१. २. भूषन भनत भारी भूतन के भौनन मैं टाँगी चंदावतन की लोथैं लरकत हैं—(बड़े बड़े भूतों के घरों में टँगी हुई चंदावत राजपूतों की लोथें हिल रही हैं।

३. कोऊ ना लपेटे अधफारे रनलेटे अजौं—(रणभूमि में कोई मृत वीर (कफन से) लपेटा नहीं है वे सब अर्धखंडित अवस्था में अब भी पड़े हुए हैं)।

मालती सवैया *

केतिक देस दल्यो[1] दल के बल, दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो।
रूप गुमान हर्‍यो गुजरात को, सूरत को रस चूसि कै नाख्यो[2] ॥
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब, सोई बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रंग है सिवराज बली, जिन नौरँग में रँग एक न राख्यो ॥२५॥

शब्दार्थ—केतिक=कितने ही। दल्यो=ध्वस्त किये, नष्ट किये दल=सेना। चँगुल चापि कै=पंजे मे दबाकर। चाख्यो=चखा, रस लिया, सुख भोगा। नाख्यो=नष्ट किया, फेंक दिया। सूरत=गुजरात में एक प्रसिद्ध नगर, इसे शिवाजी ने ५ जनवरी सन् १६६४ ई० और १३ अक्टूबर सन् १६७० ई० को लूटा था। पेलि=पीस कर। मले=मसल डाले। दीन ह्वै भाख्यौ=दीन होकर विनय की। नौरँग=भूषण कवि 'औरंगज़ेब' को नौरँग कहते थे।

अर्थ—शिवाजी ने कितने ही देश अपनी सेना के बल से पीस डाले। दक्षिण को अपने चंगुल में करके उसका सुख भोगा। गुजरात की शोभा और घमंड (अथवा सुन्दरता के अभिमान) को नष्ट कर दिया और सूरत के रस अर्थात् वैभव को चूस उसे खोखला कर त्याग दिया। समस्त मुसलमानों को पंजों से पीस कर मसल डाला, केवल वही बचने पाया जिसने दीनता स्वीकार की। महाबली शिवाजी का वह रंग (गुण) है कि उसने औरंगजेब में एक भी रंग न रहने दिया (अर्थात् औरंगजेब की एक न चलने दी)।

अलंकार—अनुप्रास।

---

* इस छन्द में ७ भगण (ऽ।।) और अन्त में दो गुरु ऽऽ वर्ण होते हैं। इसका दूसरा नाम 'मत्तगयन्द' भी है।

१. दले। २. राख्यो—(रक्खा, छोड़ा)।

सूबा निरानँद बादरखान गे लोगन बूझत ब्योंत बखानो।
दुग्ग सबै सिवराज लिये, धरि चारु विचारु हिये यह आनो॥
'भूषण' बोलि उठे सिगरे हुतो पूना में साइतखान को थानो।
जाहिर है जग मैं जसवंत, लियो गढ़सिंह मैं गीदर बानो॥२६॥

शब्दार्थ—सूबा=सूबेदार। निरानन्द बादरखान गे=बहादुर खाँ निरानँद गे, बहादुर खाँ निरानन्द हो गये (दुखी हो गये)। ब्योंत=उपाय, यत्न। चारु=सुन्दर। विचारु=विचार। हिये=हृदय में। हुतो=था। थानो=थाना, अड्डा। जसवंत=जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंहजी, इन्होंने सिंहगढ़ को सन् १६६३ ई० में घेरा परन्तु कुछ कर न सके। गीदर बानो=गीदड़ का भेस, डरपोकपना।

अर्थ—सूबेदार बहादुरखाँ ने आनन्द-रहित हो लोगों से पूछा कि अब कोई उपाय बताओ, शिवाजी ने सब अच्छे अच्छे किले छीन लिये हैं, इस बात को मन में विचार लो। भूषण कवि कहते हैं कि इस पर सब लोग बोल उठे कि यह संसार में प्रसिद्ध है कि जब शाइस्ताखाँ ने अपना अड्डा पूना में जमाया था और जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंह ने सिंहगढ़ को घेरा तो उन्हें शिवाजी के सम्मुख गीदड़ों की भाँति भागना पड़ा (फिर आपकी क्या गिनती?)।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

कवित्त—मनहरण

जोर करि जैहैं जुमिला हू के नरेस पर[1],
तोरि अरि खंड-खंड सुभट समाज पै[2]।

---

१. जोर करि जैहैं अब अपर नरेस पर—(हम लोग हिम्मत कर के अब दूसरे राजाओं पर चढ़ाई करेंगे। २. लरिहैं लराई ताके सुभट समाज पै—(उनके वीरों से लड़ाई लड़ेंगे)

'भूषण' असाम[2] रूम बलख बुखारे जैहैं,
चीन सिलहट[3] तरि जलधि जहाज पै ॥
सब उमरावन की हठ कूरताई देखौ[4],
कहैं नवरंगजेब साहि सिरताज पै[4] ।
भीख माँगि खैहैं बिन मनसब रैहैं,
पै न जैहैं हजरत महाबली सिवराज पै ॥२७॥

शब्दार्थ—जोर करि=जोर लगाकर, हिम्मत करके । जुमला (फा०) सब जगह के । सिलहट=आसाम का एक नगर, यहाँ की नारंगी प्रसिद्ध हैं । कूरताई=कायरता । तरि=तैर कर । जलधि=समुद्र । खैहैं=खायँगे । रैहैं=रहेंगे ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सरदारों की ज़िद और कायरता तो देखो, वे शाहों के सिरताज औरंगजेब से कहते हैं कि हम लोग हिम्मत करके समस्त राजाओं पर चढ़ाई कर लेंगे (कर सकते हैं) और समस्त वीर शत्रु समाज के भी टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे, हम सब आसाम, सिलहट, बलख बुखारा तथा जहाज़ पर चढ़ समुद्र पार कर चीन और रूम (आदि देशों को विजय करने) चले जायेंगे; हम सब बिना पदवी के रहेंगे और भीख माँग कर गुज़ारा कर लेंगे, परन्तु उस प्रतापी शिवाजी पर चढ़ाई करने नहीं जायँगे ।

अलंकार—अप्रस्तुत प्रशंसा (कार्य निबन्धना) ।

चन्द्रावल[5] चूर करि जावली जपत कीन्हीं[6],
मारे सब भूप औ सँहारे पुर धाय कै[7] ।

---

१. भनत । २. जैहैं साम चीन । ३. ४. सब उमराव मिलि एक मत ठानि कहै, आइकै समीप अवरंग सिरताज पै—(सब उमराव मिलकर और एक मत होकर औरंगजेब बादशाह के पास जाकर कहते हैं) ।

५. चंदराव । ६. करि । ७. घरयो है सिंगारपुर भूपन

'भूषन' भनत तुरकान दल-थंभ-काटि',
अफजल मारि डारे तवल बजाय कै[२] ॥
एदिल सों बेदिल हरम कहैं बार बार,
अब कहा सोवो[३] सुख[४] सिंहहि जगाय कै।
भेजना है भेजौ सो रिसालैं सिवराजजू की[५],
बाजी करनालैं परनालै पर[६] आय कै ॥२८॥

शब्दार्थ—चंद्रावल=चन्द्रराव मोरे, यह जावली के दुर्ग का अधिकारी था, इसे शिवाजी के सेनापति शंभूजी कावजी ने सन् १६५६ में मार डाला था। भूप = राजा। संहारे = नष्ट किये। पुर = नगर। दलथंभ = दल को थाँभने वाला, सेनापति। तबल = डंका। बेदिल = अनमनी, उदास। हरम=बेगमें। रिसालैं=खिराज, राज्यकर। करनालैं=तोपें। परनालै=परनाला दुर्ग।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि बीजापुर के बादशाह आदिलशाह की बेगमें उदास मन हो उसे बार बार कहती हैं कि जिस शिवाजी ने चन्द्रावमोरे को नष्ट कर जावली को अपने अधिकार में कर लिया, और सब राजाओं को मार कर नगरों पर धावा कर उन्हें नष्ट कर डाला,

---

कौं जाय कै—(और जाकर सिंगारपुर के राजाओं को घेर लिया है) १. २. भूषन भनत सुलतान दल खेदि डारे, मारि डारे अफ़ज़ल दल कौं गिराय कै—(सुलतान की सेना को भगा दिया और अफ़ज़ल की सेना को नष्ट कर अफ़ज़ल को मार डाला)। ३. सोए। ४. सूते—(सोए हुए) ५. भेजिए सुभट सिवराज कौं रिसालैं कंत—(हे स्वामी शिवाजी को कर और भेंट भेजिए) ६. गढ़।

और जिसने तुर्कों के सेनापतियों को कत्ल कर, डंके की चोट दे (अर्थात् खुल्लमखुल्ला) अफ़ज़लखाँ का वध किया; उसी शिवाजी-रूपी सिंह को जगा कर (छेड़कर) अब आप कैसे सुख-पूर्वक सो रहे हैं ? जो आपको खिराज (कर) भेजना है तो शीघ्र भेजिए क्योंकि उसकी तोपें (आपके राज्यान्तर्गत) परनाले के दुर्ग पर गरजने लगी हैं।

अलंकार—अनुप्रास और लोकोक्ति।

मालती सवैया

साजि चमू जनि जाहु सिवा पर सोवत सिंह न जाय जगाओ।
तासों न जंग[1] जुरौ न भुजंग महाविष के मुख मैं कर नाओ॥
'भूपन' भाषति वैरि-बधू जनि एदिल औरँग लौं दुख पाओ।
तासु सलाह की राह तजौ मति नाह दिवाल की राह न धाओ॥२६॥

शब्दार्थ—चमू=सेना। जनि=मत। जंग=युद्ध। जुरौ=जुड़ो, भिड़ो। भुजंग=साँप। कर=हाथ। नावो=नवाओ, झुकाओ, डालो। भाषति=कहती हैं। बैरि-वधू=शत्रु स्त्रियाँ। नाह=नाथ, पति।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शत्रु-स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों से कहती हैं कि सेना सजाकर शिवाजी पर चढ़ाई मत करो, व्यर्थ सोते हुए सिंह को न जगाओ; उससे युद्ध न करो, व्यर्थ ही विषैले सर्प के मुख में हाथ न डालो (अर्थात् शिवाजी से लड़ना सोते सिंह को जगाना अथवा साँप के मुख में हाथ डालना है, अतः ऐसा न करो) बीजापुर के बादशाह आदिलशाह और औरंगज़ेब की भाँति कष्ट में न पड़ो। हे नाथ ! उससे सलाह मेल) करने का विचार न त्यागो, क्योंकि दीवार की राह पर जाना ठीक नहीं है (अर्थात् जान-बूझ कर कुमार्ग में जाने पर दुख पाओगे)।

---

१. जाय।

अलंकार—अनुप्रास, लोकोक्ति और निदर्शना।

छप्पय *

विज्ञपुर विदनूर सूर सर धनुष न संधहिं।
मंगल बिनु मल्लारि नारि धम्मिल नहि बंधहिं॥
गिरत गब्भ कोटैं गरब्भ चिंजी चिंजा डर।[1]
चालकुंड दलकुंड गोलकुंडा संका उर॥
'भूषन' प्रताप सिवराज तव इमि दच्छिन दिसि संचरै।
मधुराधरेस धकधकत सो द्रविड़ निविड़ डर दबि डरै[2]॥३०॥

शब्दार्थ—विज्ञपुर=बीजापुर। बिदनूर=गुजरात का एक नगर। मल्लारि=मलाबार देश। सूर=वीर। सर=बाण। संधहिं=साधते, निशाना बनाते। धम्मिल=जूड़ा, बालों की चोटी। गब्भ=गर्भ। कोटै गरब्भ=किले के गर्भ में, किले के भीतर। चिंजी चिंजा=लड़की, लड़का। चालकुंड=दक्षिण का एक बंदरगाह। दलकुंड=दक्षिण का एक देश। शंका=भय। मधुरा=मदुरा (मदरास प्रान्त में)। धरेस=राजा। निबिड़=घना, बहुत।

---

*इस छंद के आदि में रोला छंद के चार पद चौबीस-चौबीस मात्राओं के होते हैं और अन्त में उल्लाला छंद के दो पद अट्ठाईस अट्ठाईस मात्राओं के होते हैं। इस प्रकार छः दों का होने के कारण यह छप्पय कहाता है।

पाठान्तर—

१. गिरत गर्भ कोटीन, गहत चिंजी चिंता उर—(चिंजी (*जिंजी, दक्षिण का एक शहर*) निवासियों को सदा चिन्ता और डर लगा रहता है, करोड़ों के गर्भ गिर जाते हैं)।

२. मधुराधरेस धक धक धकत द्रविड़ निविड़ अविरल डरहि—(मदुरा के राजा का हृदय धकधकाया करता है और द्रविड़ निरंतर अत्यधिक भयभीत रहते हैं)।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी ! आपका प्रताप दक्षिण दिशा में ऐसा फैल गया है कि बीजापुर और विदनूर के शूरवीर धनुष पर वाण नहीं चढ़ाते अर्थात् आपका मुकाबला करने के लिए हथियार नहीं उठाते। मलाबार की शत्रु स्त्रियाँ मंगल (सौभाग्य) चिह्न से हीन (विधवा) हो जाने के कारण जूड़ा भी नहीं बाँधती (अर्थात् उनके बाल बिखरे ही रहते हैं)। किले के भीतर सुरक्षित रहने पर भी भय के कारण शत्रु-स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं और उनके लड़के-लड़कियाँ तुम्हारे नाम से डरते रहते हैं। चालकुंड, दलकुंड (सम्भव है कि इस नाम का पहले कोई स्थान दक्षिण में हो) और गोलकुंडा के लोगों के हृदय भयभीत रहते हैं। मदुरा का राजा काँपता रहता है और द्रविड़ लोग अत्यन्त भय के मारे छिपे ही रहते हैं।

अलंकार—अनुप्रास, तुल्ययोगिता और अतिशयोक्ति।

कवित्त मनहरण

अफ़ज़ल खान गहि जाने मयदान मारा,[1]
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है।[2]
'भूषन' भनत फरासीसी त्यौं फिरंगी मारि,[3]
हबसी तुरुक डारे पलटि जहाज है॥[4]

पाठान्तर—

१. अफ़ज़लखानजू को मारो मयदान जाने—(अर्थ वही है जो ऊपर वाले का) २. बीजापुर गोलकुंडा डरायो दराज है—(दराज=अधिक, अर्थात् बीजापुर और गोलकुंडा को जिसने अत्यधिक भयभीत कर दिया है)। ३. भूषण भनत फराँसीस अँग्रेज मारि—(स्पष्ट है) ४. हबसी फिरंगी मारे उलटि जहाज है (स्पष्ट है)।

देखत मैं खानरुसतम जिन खाक किया[1],
सालति सुरति आजु सुनी जो अवाज है[2]।
चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँधा ते यारो,
लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥३१॥

शब्दार्थ—सालति=खटकती है, दुःख देती है। सुरति=स्मरण, याद। चकता=चकताई वंशज, औरँगजेब। चहुँधा=चारों तरफ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि औरंगजेब चौंक-चौंक कर अपने सरदारों से कहता है कि जिसने अफ़ज़लखाँ को पकड़ कर सरे मैदान कत्ल कर डाला, और हाल ही में जिसने बीजापुर और गोलकुंडा को पराजित किया है, जिसने फ्रांसीसियों की भाँति ही फिरंगियों (अंग्रेजों) को परास्त करके हबशियों और तुर्कों के जहाज़ डुबो दिये, जिसने देखते देखते (अर्थात् बात की बात में) रुस्तमेजमाखाँ को मिट्टी में मिला दिया और जिसकी सुनी हुई आवाज़ अर्थात् समाचारों की याद मुझे आज भी बड़ा कष्ट दे रही है, हे मित्रो! तुम उस शिवाजी का पता चारों ओर से लगाते रहो कि वह कहाँ तक आगया है।

अलंकार—अनुप्रास।

फिरंगाने फिकिरि औ हदसनि हबसाने,
'भूषन' भनत कोऊ सोवत न घरी है।
बीजापुर-बिपति बिडरि सुनि भाजे सब,
दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है॥

१. देखत मैं रुस्तम को छिन में खराब कियो—(अर्थ वही है जो ऊपर वाले का)। २. सलहेरि संगर की आवति अवाज है—(जिसके सलहेरि के युद्ध की आज तक भी प्रतिध्वनि हो रही है)।

राजन के राज सब साहन के सिरताज,
आज सिवराज पातसाही चित धरी है।
बलख बुखारे कसमीर लौं परी पुकार,
धाम धाम धूम-धाम रूम साम परी है ॥२२॥

शब्दार्थ—फिरंगान=फिरंगियों का देश, फ्रांस, इंगलैंड, पुर्तगाल आदि। मिश्रबन्धुओं के मतानुसार बाबर के पिता का राज्य। फिकिरि=फिकर, चिन्ता। हदसनि=भय, (फा० हदसाने से)। हबसाने=हबशी लोगों का देश, यहाँ तात्पर्य जंजीरा के टापू से है, इसी के साथ-साथ सारा पश्चिमी घाट का समुद्री किनारा इन हबशी मुसलमान सरदारों के अधिकार में था)। घरी=घड़ी भर। बिडरि=विशेष डरकर। दिल्ली दरगाह=दिल्ली दरबार। खरभरी=खलबली। पात साही चित धरी=सम्राट होने की इच्छा की।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि फिरंगी चिंता के मारे और जंजीरा-वासी हबशी भय के कारण रात में घड़ी भर भी नहीं सोते। बीजापुर की विपत्ति का हाल सुनकर सब लोग डर कर भाग गये हैं और दिल्ली के दरबार में भी हलचल मची हुई है। क्योंकि राजाधिराज बादशाहों के शिरोमणि महाराज शिवाजी ने आज सम्राट होने की इच्छा की है। इसी से बलख, बुखारा और काश्मीर आदि देशों में चिल्लाहट मची है तथा रूम और श्याम में घर-घर धूम-धड़ाका मच रहा है (कि हाय! अब हम क्या करें? शिवाजी हमें भी परास्त कर लूटेंगे)।

अलंकार—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

गरुड़ को दावा सदा[1] नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥[2]
भूषन अखंड नवखंड महिमंडल मैं,
तम पर दावा रवि-किरन समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥३३॥

शब्दार्थ— को = का। दावा=आतंक, आधिपत्य, अधिकार। नाग = सर्प। नाग-जूह = हाथियों का झुंड। पुरहूत = इन्द्र। पहारन = पहाड़ों। गोल = समूह। अखण्ड=सम्पूर्ण। नवखण्ड-महिमण्डल = पृथ्वी के नवों खण्ड [भरत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र केतुमाल, हरि, हिरण्य, राम और कुश]। किरण समाज = किरण-समूह।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जैसे गरुड़ का आतंक सदा नाग (सर्पों) के समूह पर महाबली सिंह का हाथियों के झुंड पर, इन्द्र का पर्वतों ‡ पर, बाज का पक्षियों के झुंड पर, और सूर्य की किरणों का अधिकार नवद्वीप और सारी पृथिवी के अंधकार के समूह पर होता है; उसी

पाठान्तर—

१. जैसे। २. दावा सबै पच्छिन के लोग पर बाज को।

‡ पुराणों में लिखा है कि पहले पहाड़ों के पंख होते थे और वे उड़ा करते थे और जहाँ बैठ जाते थे वहाँ के लोग दब कर मर जाते थे। तब लोगों ने इन्द्र से प्रार्थना की। इन्द्र ने अपने वज्र से उनके पंख काट डाले। इसीलिए यहाँ पर्वतों पर इन्द्र का आतंक कहा गया है।

प्रकार पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक जहाँ-जहाँ बादशाही है वहाँ-वहाँ महाराज शिवाजी का अधिकार है ।

अलंकार — निदर्शना ।

दारा की न दौर यह रारि नाहिं खजुवे की,
बाँधिबो नहीं है किधौं मीर सहबाल को ।[1]
मठ विश्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को,
देव को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ॥
गाढ़े गढ़ लीन्हें और वैरी कतलान कीन्हें,
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को ।[3]
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारे क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को ॥३४॥

शब्दार्थ — दौर = दौड़, धावा । रारि = लड़ाई । खजुवा = ज़िला फ़तेहपुर में बिन्दी के निकट खजुवा एक गाँव है । यहाँ औरंगज़ेब ने शाहशुजा को हराया था । मीर सहबाल = शाहबाज़खाँ नामक सरदार, लाल कवि ने इसका नाम अपने छत्रप्रकाश में लिखा है, परन्तु इसका इतिहास में नाम नहीं मिलता । देहरा = देवालय, मन्दिर । देव को देहरा = ओरछा के राजा वीरसिंहदेव ने मथुरा में केशवराय का देहरा (मन्दिर) बनवाया था, इसे औरंगज़ेब ने तुड़वा दिया था । गाढ़े = दृढ़, दुर्गम । हासिल = खिराज । उगाहत = वसूल करता है । साल को = वर्ष का, सालाना ।

---

१. बाँधिबो न होय ए मुरादसाह-बाल को—(बालक मुरादशाह को कैद कर लेना नहीं है) । २. केते । ३. जानत न भयो यहि साहकुल-साल को (इस बादशाही वंश के नाशक शिवाजी को आप नहीं जानते थे) ।

अर्थ—(औरंगजेब से कोई सरदार कहता है) कि यह दारा के ऊपर धावा नहीं है और न यह खजुआ की लड़ाई है। यह सरदार शाहवाज खाँ को कैद कर लेना भी नहीं है और न यह विश्वनाथ जी का मन्दिर है, न गोकुल में अड्डा जमाना है, न वीरसिंहदेव का बनवाया केशवराय का मन्दिर है और न श्री गोपाल जी का मन्दिर है (जिन्हें आप गिरा देंगे) यह तो महाराज शिवाजी बड़े बड़े दृढ़ किलों को जीतता, शत्रुओं को कत्ल करता और स्थान स्थान से सालाना खिराज उगाहता हुआ आ रहा है। हे दिल्लीश्वर! अब यह तुम्हारी दिल्ली डूब रही है; इसे सम्हालते क्यों नहीं? इसे महाकाल रूप शिवाजी का धक्का आ लगा है (अर्थात् शिवाजी ने अब दिल्ली पर धावा किया है इसे सम्हालना कठिन है, अगर तुम्हें इसे बचाना है तो बचाओ)।

अलंकार—प्रतिषेध।

गढ़न गँजाय गढधरन सजाय करि,
छाँड़े केते धरम दुवार दै भिखारी से।
साहि के सपूत पूत वीर सिवराज सिंह,
केते गढ़धारी किये बन बनचारी से॥
'भूषन' बखानै केते दीन्हें बन्दीखाने,
सेख, सैयद हजारी गहे रैयत बजारी से।
महतों से मुगुल महाजन से महाराज,
डाँडि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से॥३५॥

शब्दार्थ—गँजाय = गंजन कर, नष्ट कर, तोड़ फोड़ कर। सजाय करि=सजा देकर; दंड देकर। धरम दुवार दे=धर्म द्वार दे कर, अर्थात् धर्म के नाम पर। हजारी = हजारी पद पाने वाले, पंच हजारी, छः हजारी आदि बजारी = तेली, तमोली आदि। महतों = गाँव के मुखिया, नाजिम के समान पदाधिकारी, उदयपुर में अब

भी 'महता' पद एक उच्च पद माना जाता है। डाँडि लीन्हें = दंड लिया, जुर्माना लिया।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि साहजी के वीर पुत्र और सिंह के समान साहसी सुपुत्र महाराज शिवाजी ने शत्रुओं के किलों को तोड़कर उनके किलेदारों को दंड दिया और कितनों ही को धर्म के नाम पर भिक्षुओं की भाँति चला जाने दिया। कितने ही गढ़ स्वामियों को वन में फिरने वाले कोल और भीलों के समान (दीन) बना डाला और कितनों को जेलखाने में डाल दिया। कितने शेख, सैयद और हजारी पद धारण करने वालों को बाज़ारू (मामूली) प्रजा की तरह पकड़ लिया। मुग़ल (शाही ख़ानदान के मुसलमान) महतों (गाँव के मुखियों) की तरह, बड़े बड़े महाराज बनियों की भाँति और पठान पटवारियों के समान पकड़ लिये और उनसे जुर्माना ले लिया।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास।

सक्र जिमि सैल पर अर्क तम फैल पर,
विघन की रैल पर लंबोदर लेखिये।
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर,
'भूषन' ज्यों सिंधु पर कुंभज विसेखिये॥
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग[1] पर पारथ ज्यों पेखिये।
बाज ज्यों विहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
म्लेच्छ[2] चतुरंग पर सिवराज[3] देखिये॥३६॥

पाठान्तर—

१. वंस। २. तैसे। ३. चिन्तामणि—(शिवाजी के एक सेनापति चिमणाजी बापू जी थे। कुछ लोगों के विचार में यह पद्य उनकी प्रशंसा में लिखा प्रतीत होता है। कुछ लोग इसे बाजीराव पेशवा के

शब्दार्थ—सक्र = इन्द्र । सैल = पहाड़ । अर्क = सूर्य । तम फैल = अंधकार का फैलाव (राशि)। विघन = विघ्न, रुकावट । रैल = समूह । लंबोरद = गणेशजी । दसकन्ध = रावण । सिन्धु = समुद्र । कुंभज = अगस्त्य मुनि, जिन्होंने समद्र पी लिया था; ये घड़े से पैदा हुए थे । विसेखिये = विशेष कर जानिये । हर = महादेव । अनंग = कामदेव । भुजंग = साँप । अंग = पक्ष, मंडली । पारथ = अर्जुन । विहंग = पक्षी । मतंग = हाथी ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जिस भाँति इन्द्र पर्वतों को* सूर्य अन्धकार की राशि को और गणेशजी विघ्नों के समूह को नाश करने वाले हैं, जैसे भगवान् राम ने रावण पर, भीम ने जरासंध पर, शिवजी ने कामदेव पर†, अगस्त्य मुनि ने समुद्र पर‡, गरुड़ ने सर्पों पर और अर्जुन ने कौरव पक्ष पर अपना प्रभाव प्रकट किया (अर्थात् उन्हें नष्ट कर दिया), और जैसे बाज पक्षियों के गोल को और सिंह हाथियों के झुंड को नष्ट करता है उसी भाँति शिवाजी महाराज मुसलमानों की चतुरंगिणी सेना को तहस-नहस करने वाले हैं ।

अलंकार—मालोपमा और अनुप्रास ।

भाई 'चिमणा जी आप्पा' की प्रशंसा में लिखा हुआ समझते हैं, पर हमें चिन्तामणि की जगह सिवराज पाठ ही उपयुक्त प्रतीत होता है)।

* इस की कथा छन्द ३३ के फुटनोट में देखिये ।

† एक बार महादेव जी समाधि लगाये बैठे थे कि कामदेव ने उन पर आक्रमण किया । महादेव जी ने क्रोध से ज्यों ही अपना तीसरा नेत्र खोला, कामदेव जल कर भस्म हो गया ।

‡ एक बार अगस्त्य मुनि समुद्र तट पर पूजन कर रहे थे । समुद्र अपनी लहरों से उनकी पूजा की सामग्री बहा ले गया । इस पर अगस्त्य मुनि ने क्रोधित हो समुद्र को पी लिया ।

वारिधि के कुंभभव घनवन[1] दावानल,
तरुन तिमिरहू के किरन समाज हौ।[2]
कंस के कन्हैया, कामधेनुहू के कंटकाल[3],
कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हौ ॥
'भूषन' भनत जग (जम) जालिम के सचीपति[4],
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कार्तवीज के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सेर[5] सिवराज हौ ॥३७॥

शब्दार्थ वारिधि = समुद्र। कुभभव = कुंभ से उत्पन्न हुए. अगस्त्य मुनि। घन बन = घना जंगल। दावानल=दावाग्नि, वह आग जो जंगलों को जला देती है। तरुन तिमिर = घोर अंधकार। किरन समाज=(सूर्य की) किरनों का समूह। कंटकाल = कंटकालय, काटों का घर। कैटभ = एक राक्षस जिसे कालिका देवी ने मारा था। विहंगम = पक्षी। जग जालिम = ससार में अत्याचार करने वाला, वृत्रासुर नाम का राक्षस। जम जालिम का अर्थ होगा यम के समान अत्याचारी वृत्रासुर नाम का राक्षस। सचीपति = इन्द्र। पन्नग = सर्प। पच्छिराज = पक्षियों का राजा गरुड़। कार्तबीज = सहस्र-बाहु अर्जुन, इसने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार

---

१. बाँस-वन—(बाँसों का जंगल)। २. तिमिर पै तरनि की किरन-समाज हो—(औरंगजेब रूप अंधकार है तो आप उसको नष्ट करने के लिए सूर्य की किरणों का समूह हो) ३. कंस के कन्हैया, कामदेव हू के कंठ-नील—(औरंगजेब यदि कंस है तो आप कृष्ण हैं और यदि वह कामदेव है तो आप नीलकंठ [शिव] हैं) ४. भूषण भनत सब असुर के इन्द्र पुनि—(राक्षसों को मारने के लिए इन्द्र हो) ५. सिंह।

डाला था, इसी का बदला चुकाने को परशुराम जी ने इसको मार कर इसके वंश वालों का इक्कीस बार संहार किया था।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि यदि औरंगज़ेब समुद्र है, तो आप उसके लिये अगस्त्य मुनि हो; यदि वह बड़ा गहन वन है, तो आप उसको भस्म करने वाले दावानल हो; यदि वह घोर अन्धकार है, तो आप उसे नष्ट करने के लिए किरणों का समूह हो; यदि वह कंस है, तो आप उसके संहारकर्ता श्रीकृष्ण हो; यदि वह कामधेनु है, तो आप उसके लिए काँटों का वर हो; यदि वह कैटभ है, तो आप उसके लिए कालिका हो; यदि वह पक्षी है, तो आप उसके घातक बाज हो; यदि वह संसार में अत्याचार करने वाला (या यम के समान अत्याचारी) वृत्रासुर दैत्य है, तो आप उसके नाशकर्ता इन्द्र हो; यदि वह सर्प है, तो आप उसके भक्षक (गरुड़) हो; यदि वह रावण है, तो आप उसके संहारकर्ता राम हो; यदि वह सहस्रबाहु अर्जुन है, तो आप उसके लिये परशुराम के अवतार हो। हे महाराज शिवाजी! दिल्लीपति औरंगज़ेब रूपी हाथी के लिये आप सिंह के समान हो।

अलंकार—अनुप्रास, परंपरित रूपक और उल्लेख।

दरबर दौरि करि नगर उजारि डारे,
कटक़ कटायो कोटि दुजन दरब की।
जाहिर जहान जंग जालिम है जोरावर,
चलै न कछूक अब एक राजा रब की॥
सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप,
थर थर काँपति बिलायत अरब की।

पाठान्तर—

१. चलै न कछूक जोर जब्बर जरब की—(जब्बर=ज़बरदस्त। जरब=चोट। आपके सामने बलवानों के भारी आघातों की भी कुछ नहीं चलती।

हालत दहलि जात काबुल कंधार वीर,
रोस करि काढ़ै समसेर ज्यों गरब की ॥३६॥

शब्दार्थ — दरबर=(दल बल) सेना के ज़ोर से। दौरि करि=धावा करके। कटक=सेना। कटायो=काट डाली। दुजन दरब की=दुर्जनों के द्रव्य से इकट्ठी की हुई। रब=राव या खुदा अथवा खुदा परस्त मुसलमान। त्राम=भय। विलायत=विदेशी राज्य। दहलि जात=दहल जाते हैं,काँप जाते हैं। समसेर=(फा० शमशेर) तलवार। गरब=गर्व, अभिमान।

अर्थ—हे वीर शिवाजी ! आपने अपनी सेना के बल से नगरों को उजाड़ कर करोड़ों दुष्टों (मुसलमानों) की द्रव्य से इकट्ठी की हुई सेना को काट डाला। आप संसार भर में महाबली एवं युद्ध में ज़ालिम (जुलम करने वाले, भयानक) प्रसिद्ध हैं। अब आपके सामने किसी भी राजा एवं मुसलमान रईस की कुछ भी पेश नहीं चल सकती। आपके भय के कारण दिल्ली में भूचाल आ गया और अरब तथा विदेशी राज्य थर थर काँपते रहते हैं। जब आप क्रोधित हो अपनी गर्वीली तलवार म्यान से खींचते हैं तब काबुल, कंधार आदि के वीर काँप उठते हैं।

अलंकार—तृतीय चरण में अत्युक्ति तथा चतुर्थ में चपला-तिशयोक्ति, अनुप्रास।

सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों,
कहत बार बार कहि पातसाह गरजा।[1]

पाठान्तर

१. कहत गरो परिबे को पातसाह गरजा—(शिवाजी की बड़ाई और हमारी छुटाई बार बार कह कर क्यों गला बैठाते हो—बादशाह ने गरज कर कहा)।

'सुनिये खुमान हरि तुरुक गुमान महि-[1]
देवन जेंवायो' कवि 'भूषन' यों अरजा[2] ॥
'तुम वाको पायकै जरूर रन छोरो वह,
रावरे वजीर छोरि देत करि परजा।
मालुम तिहारो होत याहि मैं निवेरो रन,
कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा' ॥३९॥

शब्दार्थ—खुमान = आयुष्मान, चिरंजीव। महिदेवन = ब्राह्मणों को। अरजा = अर्ज़ की, कहा।

अर्थ—भूषण कवि से औरंगज़ेब ने गर्ज कर पूछा कि तुम बार बार शिवाजी की प्रशंसा और हमारी बुराई क्यों किया करते हो? इस पर भूषण कवि ने इस भाँति निवेदन किया कि सुनिये—खुमान (चिरंजीव शिवाजी) ने तुर्कों का घमंड चूर कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर बड़ा यश लिया है। तुम उसके सामने भय से ज़रूर रणस्थल त्याग देते हो परन्तु वह तुम्हारे वज़ीरों को पकड़ कर उन्हें प्रजा की भाँति छोड़ देता है। बस इसी से निर्णय हो जाता है कि जो युद्ध में कायर है वह कायर ही है और जो सिंह है वह सिंह (वीर) ही है (अर्थात् तुम कायर हो और शिवाजी वीर हैं)।

अलंकार—अनुप्रास और प्रश्नोत्तर।

कोट गढ़ ढाहियतु एकै पातसाहन के,
एकै पातसाहन के देस दाहियतु है।
'भूषन' भनत महाराज सिवराज एकै,
साहन की फौज[3] पर खग्ग वाहियतु है ॥

---

१. २. सुनिए खुमान हरि तिनको गुमान तिन्हैं देबे को जवाब कवि भूषन यों अरजा—(हे आयुष्मान् शिवाजी सुनिए; जब उसके (औरंगज़ेब के) घमंड को चूर करते हुए, उसे जवाब देने के लिए मैंने इस प्रकार अर्ज की)। ३ सैन।

क्यों न होहिं बैरिन को बौरी सुनि बैर बधू,[1]
दौरनि तिहारे कहौ क्यों निबाहियतु है।
रावरे नगारे सुनि बैरवारे नगरनि,
नैनवारे नदन निवारे चाहियतु है ॥४०॥

शब्दार्थ—ढाहियतु = गिराया जाता है। दाहियतु = जलाया जाता है। खग्ग = तलवार। बाहियतु है = चलाया जाता है। बौरी= पागल। सुनि बैर बधू = स्त्रियाँ (शिवाजी से) वैर सुन कर। दौरनि = आक्रमण। नदन = बड़ी बड़ी नदियाँ। निवारे = बड़ी-बड़ी नावें।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे महाराज शिवाजी ! आपके द्वारा किसी बादशाह के किले गिराये जाते हैं, किसी के देश जला दिये जाते हैं और किसी बादशाह की सेना पर तलवार चलाई जाती है। शत्रुओं की स्त्रियाँ आपसे वैर सुनकर क्यों न पागल हों ? (अर्थात् वे अवश्य पागल होती हैं)। भला वे बेचारी आपके आक्रमण को कैसे सहन कर सकती हैं, जब कि आपके नगाड़ों की ध्वनि को ही सुनकर शत्रु नगर वासियों के नेत्रों के जल से ऐसी बड़ी बड़ी नदियाँ निकलती हैं, जिन्हें पार करने को बड़ी-बड़ी नौकाओं की आवश्यकता होती है।

अलंकार—अनुप्रास और अप्रस्तुत प्रशंसा (कार्य निबन्धना)।

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार-बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति[2] है।

---

१ बौरी सुनी बैर बधू के स्थान पर निम्नलिखित भिन्न भिन्न पाठ मिलते हैं—

(क) बाल बौरी कान सुनि, (ख) बैरी-बधू बौरी सुनि (ग) बौरी सुनि बैर बधू—(सब का अर्थ लगभग एक ही है)

२. खरकति—(खटकती)।

विलखि वदन[1] विलखात बिजैपुरपति[2],
फिरति फिरंगिनि की नारी फरकति है ॥
थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुंडा,
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि[3],
केते पातसाहन की छाती दरकति[4] है ॥४१॥

शब्दार्थ—चकत्ता = औरंगज़ेब । दहसति = दहशत, भय । चाह = खबर, समाचार । करषति है=आकर्षण करती है । बिलखि वदन = उदासीन मुख । बिलखात = रोते हैं, शोक प्रकट करते हैं । नारी=नाड़ी । हहरि=भयभीत होकर । भीर=भीड़, सेना । भरकत= भड़कती है, डर कर भागती है ।

अर्थ—महाराज शिवाजी के नगाड़ों की ध्वनि के आतंक से औरंगज़ेब चकित होकर बार बार चौंक उठता है । भयभीत दिल्ली निवासियों के मन सदा शिवाजी के समाचारों की ओर आकर्षित (खिंचे) रहते हैं । बीजापुर का बादशाह उदास मुख किये शोक करता रहता है । इधर उधर फिरने वाले अंग्रेजों की नाड़ियाँ भय से फड़कती रहती हैं । गोलकुंडा का बादशाह कुतुबशाह थर-थर काँपता रहता है और जंज़ीरा के हब्शी राजा की सेना डर कर भड़कती रहती है । महाराज शिवाजी के नगाड़ों की धाक से कितने ही बादशाहों की छातियाँ फटने लगती हैं ।

अलंकार—अनुप्रास और अत्युक्ति ।

---

१. वलख बिलात—(वलख नष्ट हो गया) । २. बीज़ापुर पति । ३. सिंह सिवराज तेरे धौंसा की धुकार सुनि—(धौंसा=नगाड़ा ; धुकार=गड़गड़ाहट, आवाज़) ४. धरकति (धड़कती) ।

मौरँग कुमाऊँ औ पलाऊ बाँधे एक पल',
कहाँ लौं गिनाऊँ जेव भूषन के गोत हैं।
'भूषन' भनत गिरि विकट निवासी लोग,
बावनी ववंजा नवकोटि धुंधजोत हैं ॥
काबुल कँधार खुरासान जेर कीन्हों जिन,
मुगल पठान सेख सैयदहु रोत हैं।
अब लग जानत हे बड़े होत पातसाह,
सिवराज प्रगटे ते राजा बड़े होत हैं ॥४२॥

शब्दार्थ—मौरंग=नैपाल की तराई के पूर्व का देश। कुमाऊँ=गढ़वाल की रियासत को कहते हैं, यहाँ एक बार भूषणजी गये भी थे। पलाऊँ=संभवतः पालमऊ से तात्पर्य है जो बिहार प्रान्त की दक्षिणी सीमा पर छोटा नागपुर के निकट है। भूपन=राजाओं के। गोत=समूह। बावनी ववंजा=यह उस समय की दो रियासतों के नाम हैं। नवकोटि=नवकोट, यह मारवाड़ प्रान्त में है। धुंधजोत=हततेज। जेर=परास्त। हे=थे।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जिन्होंने मौरंग, कुमाऊँ और पलाऊ राज्यों के राजाओं को पलभर में बाँध लिया, जिन्होंने कितने ही राजाओं के समूह को परास्त कर दिया, जिनका कि अब गिनाना कठिन है; विकट पर्वतों के रहने वाले, बावनी बवंजा और नवकोटि (मारवाड़) के वासी भी जिनके सम्मुख हततेज हो गये, जिन्होंने काबुल, कंधार और खुरासान को पराजित कर दिया; और जिनके मारे मुगल, पठान, शेख

पाठान्तर—

१. २. मोरँग कुमाऊँ आदि बाँधव पलाऊँ सबै, कहाँ लौं गनाऊँ जेते भूपति के गोत हैं—(मोरँग, कुमाऊँ, बाँधव और पलाऊँ आदि जितने राजकुल हैं, इनकी गणना मैं कहाँ तक करूँ)।

और सैयद भी रोते रहते हैं, ऐसे पराक्रमी वीर शिवाजी के प्रकट होने से ही आज समझ में आ गया है कि राजा ही बड़े होते हैं, वरना अब तक सब बादशाहों को ही बड़ा मानते थे।

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग नाचे डग्ग[1] पर रुंड मुंड फरके।
'भूषन' भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके॥
मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्भट,
तारे लागे फिरन सितारेगढ़धरके।
बीजापुर-बीरन के, गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके॥४३॥

शब्दार्थ—दुग्ग=दुर्ग, किला। उग्ग=(उग्र) शिवजी डग्ग=डगर, मार्ग। करनाटी=करनाटक के; करनाटक पर शिवाजी ने सन् १६७६-७८ ई० में आक्रमण किया था। सुभट=वीर। पनारेवारे=परनाले के। उद्भट=प्रचंड। तारे लागे फिरन=आँखों के तारे (पुतलियाँ) फिरने लगे, होश हवास गुम होने लगे। सितारे गढ़ धर के=सितारा दुर्ग के स्वामी के। उर=हृदय। दाड़िम=अनार।

---

१. इसके स्थान पर भिन्न भिन्न पाठ हैं। कुछ प्रतियों में 'उग्ग नाचे उग्ग पर' पाठ है वे दूसरे उग्ग का अर्थ आकाश मंडल करते हैं; अर्थात् शिवजी आकाश मंडल में नाचने लगे; पर 'उग्ग' का अर्थ 'आकाश' किसी कोष में नहीं है। मिश्रबन्धुओं ने 'डग्ग नाचे डग्ग पर' पाठ दिया है। यह पाठ मानने पर अन्वय इस प्रकार होगा—रुण्ड डग्ग डग्ग पर नाचे, मुंड फरकें—अर्थात् कबन्ध पग-पग पर नाचते (दौड़ते) थे और मुंड फड़कते थे।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि धर्मवीर शिवाजी ने किले पर क़िले विजय कर लिये। ऐसा घोर युद्ध किया कि शिवजी (प्रसन्न हो) मार्ग में नाचने लगे और अनेकों रुंड मुंड फड़कने लगे। जब विजय के बड़े बड़े नगाड़े बजाये गये तब करनाटक देश के सारे राजा भय के कारण सिंहलद्वीप (लंका) की ओर चुपचाप भागने लगे। परनाले वाले बड़े उद्भट (प्रचंड) वीर योद्धाओं का मारा जाना सुनकर और सितारा-दुर्ग के मालिक की आँखों की पुतलियाँ फिरने लगी—अर्थात् उसके होश-हवास गुम हो गये, तथा बीजापुर और गोलकुंडा के वीरों एवं दिल्ली के अमीरों के हृदय अनार की भाँति फटने लगे।

अलंकार—पूर्णोपमा (चतुर्थ चरण में) और अनुप्रास।

> मालवा उजैन भनि 'भूषन' भेलास ऐन,
> सहर सिरोज लौं परावने परत हैं।
> गोंड़वानो तिलंगानो फिरंगानो करनाट,
> रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं॥
> साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि,
> गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत हैं।
> बीजापुर गोलकुंडा आगरा दिल्ली के कोट,
> बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं॥४४॥

शब्दार्थ—भेलास=ग्वालियर राज्यान्तर्गत एक नगर, जिसे आज-कल भेलसा या भिलसा कहते हैं। ऐन (अ०) ठीक। सिरोज=सिरोज नाम का प्रसिद्ध नगर नर्मदा के उत्तर में भूपाल के पास था। यहीं पर सन् १७३८ में बाजीराव पेशवा और निज़ामुल मुल्क की संधि

हुई थी जो इतिहास में सिरोंज की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। परावने = भगदड़। गोंड़वानो जहाँ गोंड़ रहते हैं, मध्यप्रदेश। तिलंगानो=तैलंगियों का देश। फिरंगानो=फिरंगियों का देश अर्थात् यूरोप वालों की बस्तियाँ। रुहिलानो=रुहेलखंड। रुहिलन=रुहेले पठान। हिये=हृदय में। हहरत=भयभीत होते हैं। उघरत हैं=खुलते हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी! आपके आतंक से मालवा, उज्जैन, भेलसा और सिरोंज नगर तक लोगों में भगदड़ पड़ रही है। गोंड़वाना, तैलंग देश, फिरंगियों की बस्तियों तथा करनाटक में रहनेवालों के एवं रुहेलखंड के रुहेलों के हृदय भयभीत हो रहे हैं। बड़े बड़े वीर दुर्गाधीशों का धैर्य भी छूट गया है। डर के कारण बीजापुर, गोलकुंडा, आगरा और दिल्ली के किलों के दरवाजे किसी किसी दिन ही खोले जाते हैं।

अलंकार—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्ही जिन,
जेर कीन्हो जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब,
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग सारे की॥
बाजत दमामे लाखौं धौंसा आगे घहरात,
गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामेवारे,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की॥४५॥

शब्दार्थ—खाकसाही = (फा०)खाक सियाह, भस्मीभूत, मटिया-मेट। हद्द सब मारे की=सब हद्द मारे की, जो हद्द (राज सीमाएँ)

मार में थीं, अर्थात् राज के जिन भागों को शत्रुओं ने दबा रखा था। खिस गईं=खिसक गईं, गिर गईं, नष्ट हो गईं। फिसि गईं=फ़िस्स हो गईं, नष्ट हो गईं। सूरताई = शूरता। हिसि गईं =(फा० (हिश्तन=छूटना) छूट गईं, नष्ट हो गईं। दमामे=नगाड़े। धौंसा = बड़ा नगाड़ा। घहरात=गम्भीर शब्द करते हैं।

अर्थ—जिन्होंने बादशाहत का नाश कर उसे खाक में मिला दिया, और समस्त देश को परास्त कर अपनी मारी हुई सीमाओं को बलपूर्वक वापिस ले लिया; जिनके सम्मुख हजारों लोगों की शेखी, वीरता और हिम्मत सब हवा हो गई (नष्ट हो गई), उन्हीं (शिवाजी) के लाखों दमामे और नगाड़े गर्जते हुए मेघ की तरह (सेना के) आगे इस तरह घहरा रहे हैं जैसे किसी बड़े आदमी की बरात हो। शिवाजी उसके दूल्हे हैं, दक्षिणी (मराठे) लोग दमामे बजाने वाले हैं और दिल्ली सितारा शहर की दुलहिन है।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा और रूपक।

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहत छाती,
बाढ़ी मरजाद जैसी हद्द हिंदुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब,
मिटि गई ठसक तमाम तुरकाने की॥
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधका,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की।
मोटी भई चंडी बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की॥५६॥

शब्दार्थ—डाढ़ी के रखैयन = डाढ़ी रखने वाले, मुसलमान। डाढ़ी सी=जलती सी। मरजाद=(मर्यादा) सम्मान। हिन्दुवाना = हिन्दुओं का राज्य। रैयत=प्रजा। कसक=पीड़ा।

ठसक=शान, घमंड। त्रिन चोटी के=बिना चोटी वाले, अर्थात् मुसलमानों के। खोटी = भ्रष्ट, खराब।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि ज्यों ज्यों हिन्दूराज्य की प्रतिष्ठा और हद बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उसे देखकर मुसलमानों की छातियाँ जलती रहती हैं। हिन्दू-प्रजा के मन की समस्त पीड़ा दूर होगई और मुसलमानों की शेखी मारी गई। वीरवर शिवाजी की धाक को सुन कर दिल्लीश्वर औरङ्ग़ज़ेब का दिल धड़कता रहता है। चण्डी (कालिका) बिना चोटी वाले (अर्थात् मुसलमानों के) सिर खा खा कर मोटी होगई और चगताईखाँ के वंशजों की संपत्ति (लक्ष्मी) दिन पर दिन घटने लगी।

अलंकार—अनुप्रास, यमक और पुनरुक्तिप्रकाश।

जिन फन फुतकार उड़त पहार, भार[1]
कूरम कठिन जनु कमल बिदलिगो।
विषजाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो।
कीन्हों जिन[2] पान पयपान सो जहान सब[3],
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराजजू को,
अखिल भुजंग दल-मुगल निगलिगो ॥४७॥

शब्दार्थ—बिदलिगो = विदलित हो गया, कुचला गया। झारन = भभक, लपटें। चिकारि = चिंघाड़ कर। पयपान = दुग्ध पान। कोल = पाताल का वराह (सूअर)। खलभलिगो = खलबली मच गई। खग्ग = खड्ग, तलवार। खगराज = गरुड़। भुजंग = साँप।

अर्थ—जिसके फन की फुफकार से बड़े बड़े पहाड़ उड़ जाते थे, जिसके भार से (पृथ्वी को धारण करने वाला) कठोर कच्छप मानो कमल

१. भारे। २. जेहि। ३. कुल।

की भाँति विदलित हो गया था (टुकड़े टुकड़े हो गया था), जिसके विष-समूह में ज्वालामुखी पहाड़ लुप्त हो जाते थे, जिसके विष की लपटों से दिग्गज चिंघाड़ चिंघाड़ कर मद उगलते थे, जिसने समस्त संसार को दुग्ध-पान की भाँति पी लिया था, और जिसके प्रताप के मारे (पाताल लोक वासी) वराह के उछलने पर समुद्र का पानी खलबला गया था उसी समस्त मुगल-सेना रूप महाभयंकर सर्प को महाराज शिवाजी का खड्ग रूपी खगराज (गरुड़) सहज ही में निगल गया। (अर्थात् जिन मुसलमानों के आतंक से सारा संसार काँपता था, उन्हें शिवाजी ने सहज ही तलवार के जोर से हरा दिया।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा और परंपरित रूपक।

साहि के सपूत रनसिंह[1] सिवराज वीर,
बाही समसेर सिर शत्रुन पै कढ़ि कै।
काटे वे कटक कटकिन के विकट भूपै,
हम सो न जात कह्यो सेस सम पढ़ि कै॥
पारावार ताहि को न पावत है पार कोऊ,
सोनित समुद्र यहि भाँति रह्यो बढ़ि कै।
नाँदिया की पूँछ गहि पैरि कै कपाली बचे,
काली बची मांस के पहार पर चढ़ि कै॥४८॥

शब्दार्थ—रनसिंह = रण में शेर अर्थात् वीरकेसरी। बाही = चलाई। समसेर = शमशेर, तलवार। कढ़ि कै = काढ़ि कै, निकाल कर। कटक = सेना। कटकिन = सेनावाले, अर्थात् राजा या बादशाह। भूपै = पृथ्वी पर। सेस = शेषनाग। पढ़ि कै = पढ़कर। पारावार = समुद्र। ताहि को = उसका। पावत = पाता। सोनित = रुधिर। यहि भाँति = इस भाँति। नाँदिया = शिवजी के बैल का

१. नरसिंह।

नाम । गहि=पकड़कर । पैरि कै=पैर कर, तैरकर । कपाली=शंकर । पहार=पहाड़ । चढ़ि कै=चढ़कर ।

अर्थ—शाहजी के सुपुत्र वीर-केसरी शिवाजी ने (युद्ध में) शत्रुओं के सिर पर ऐसी तलवार चलाई और उस विकट भूमि में राजाओं की इतनी फौज़ों को मार डाला कि हमसे शेषनाग के समान पढ़ कर भी कहा नहीं जा सकता (उसका वर्णन नहीं किया जा सकता)। खून का समुद्र ऐसा बढ़ रहा है कि कोई उस समुद्र का पार नहीं पा सकता । स्वयं शंकरजी अपने नांदी बैल की दुम पकड़कर तैरकर डूबने से बचे हैं और काली मांस के पहाड़ पर चढ़ कर (खून के समुद्र में डूबने से) बची है ।

अलंकार—अनुप्रास और असंबंधातिशयोक्ति ।

सारस से सूबा करबानक से साहजादे,
मोर से मुगल मीर धीर मैं धचैं नहीं ।
बगुला से बंगस बलूचियौ बतक ऐसे,
काबुली कुलंग याते रन मैं रचैं नहीं ॥
'भूषन' जू खेलत सितारे मैं सिकार सिवा,[1]
साहि[2] को सुवन जाते दुवन सँचै नहीं ।
बाजी सब बाज से चपेटैं चंगु चहूँ ओर[3],
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचैं नहीं ॥४३॥

शब्दार्थ—सारस=एक पक्षी । सूबा=सूबेदार । करबानक=गोरैया पक्षी । धीर मैं धचैं नहीं=धैर्य में शोभा नहीं पाते (धैर्य

---

१. साहू (शिवाजी का पौत्र, शंभाजी का पुत्र) ।

२. संभा—(शंभाजी) । यह पाठ मानने पर यह पद्य साहूजी की प्रशंसा में हो जाता है, शिवाजी की प्रशंसा में नहीं रहता ।

३. बाजी सब बाज की चपेट चहुँ ओर फिरैं (उनके घोड़े रूपी बाज की झपट चारों ओर पड़ती है) ।

नहीं धर सकते) बंगस = पठानों की एक उपजाति । कुलंग = एक पक्षी । सुवन = पुत्र । दुवन = दुर्जन, शत्रु । बाजी = घोड़ा । रचैं = रचते, अनुरक्त होते । सँचै = संचार करते । चंपटैं = दबा रहे हैं । चंगु = चंगुल, पंजा ।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि शाह जी के पुत्र शिवाजी सितारे में शिकार खेल रहे हैं। मुसलमान सूबेदार सारस के समान हैं, शाहज़ादे गोरैया पक्षी हैं, मुगल अमीर मोर हैं, ये भय से घबड़ाए रहते हैं, धैर्य नहीं धरते। बंगस बगुले हैं, बलूची बतक हैं, काबुली कुलंग पक्षी है; ये भी डरपोक होने के कारण युद्ध में अनुरक्त नहीं होते (नहीं ठहरते)। किसी ओर भी कोई दुष्ट पक्षी (शत्रु) घूमता दिखाई नहीं देता। शिवाजी के घोड़े बाज के समान चारों ओर से अपने चंगुल में (मुसलमान रूपी) पक्षियों को दबा रहे हैं। उनके सामने मुसलमान रूपी तीतर दिल्ली के भीतर भी नहीं बचने पाते।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा और रूपक ।

राखी हिंदुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद-विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं ॥
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दावि कै दिवाल राखी दुनी मैं ॥५०॥

शब्दार्थ—राखी = रक्खी, रक्षा की । हिन्दुवानी = हिन्दुत्व । वेदविधि = वेदों की रीति, वैदिक विधान । रजपूती = क्षत्रियत्व । धरा = पृथ्वी । समसेर = तलवार । दिवाल = दीवार, यहाँ पर मर्यादा से अभिप्राय है । दुनी = दुनियाँ, संसार ।

अर्थ—श्रेष्ठ कवि भूषण कहते हैं कि हे शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी, मैंने सुना है कि आपकी तलवार ने हिन्दुत्व को बचाया और हिन्दुओं के तिलक, पुराण, स्मृति और वैदिक रीतियों की रक्षा की। क्षत्रियत्व तथा राजाओं की राजधानियों को बचाया, पृथ्वी पर धर्म की तथा गुणियों में गुण की रक्षा की। मराठों के देश की सीमाओं को विजय करने के कारण आपकी कीर्ति का देश में जो यशोगान हो रहा है, उसे मैंने सुना है। आपको तलवार ने ही दिल्ली की सेना को पराजित करके संसार में मर्यादा स्थापित की है।

अलंकार—अनुप्रास और पदार्थावृत्तिदीपक।

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत[1]
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मैं॥
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं॥५१॥

शब्दार्थ—विदित=प्रकट, प्रसिद्ध। रसना=जिह्वा। रोटी=जीविका। गर=गला। मींड़ना=मसलना।

अर्थ—महाराज शिवाजी ने अपनी तलवार के बल से वेदों और पुराणों को प्रकट रखा (लुप्त नहीं होने दिया), सारयुक्त राम नाम को सुन्दर जिह्वा रूपी घर में रखा। हिन्दुओं की चोटी और सिपाहियों की जीविका रक्खी। कंधों पर जनेऊ और गले में माला की रक्षा की। मुगलों का मर्दन कर, बादशाहों को मरोड़ कर, और शत्रुओं को पीस कर अपने

---

१. वेद राखे विदित पुरान प्रसिद्ध राखे।

हाथों में मनोवाञ्छित वरदान देने का अधिकार रक्खा। उन्होंने अपनी तलवार के ज़ोर से राजाओं की सीमा (मर्यादा) बचाई, मन्दिरों में देवताओं की रक्षा की और घर में अपना धर्म सुरक्षित रखा।

अलंकार—अनुप्रास और पदार्थावृत्तिदीपक।

सपत नगेस आठौं[1] ककुभ-गजेस कोल,
कच्छप दिनेस धरैं धरनी अखंड को।
पापी घालै धरम सुपथ चालै मारतंड,
करतार प्रन पालै प्रानिन के झुंड[1] को॥
'भूषन' भनत सदा सरजा सिवाजी गाजी,
म्लेच्छन को मारै करि कीरति घमंड को।
जग काजवारे निहिचिंत करि डारे सब,
भोर देत आसिष तिहारे भुजदंड को॥५२॥

शब्दार्थ—सपत = सप्त, सात। नगेस=पहाड़। ककुभ=दिशा। ककुभ गजेश = दिग्गज। कोल = वराह, सूअर। कच्छप = कछुआ दिनेश = सूर्य। धरनी = पृथ्वी। अखंड = संपूर्ण। घालै = नष्ट करता है। धरम = धर्मराज, यमराज। मारतंड = सूर्य। प्रन=प्रतिज्ञा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे धर्मवीर महाराज शिवाजी ! आप अपनी कीर्ति का अभिमान कर सदा म्लेच्छों को मारते हैं, इसलिए आपने सातों पर्वतों, आठों दिग्गजों, वराह (सूअर) और सूर्य—जो समस्त पृथ्वी को धारण किये हुए हैं; तथा धर्मराज—जो पापियों का नाश करते हैं, एवं भगवान—जो सूर्यादि ग्रहों को ठीक रास्ते पर (नियम) पूर्वक चलाते हैं, तथा जिनका प्रण प्राणियों के समूह को पालना है—इन सब संसार का कार्य चलाने वालों को—निश्चिंत कर दिया है, इसलिए ये नित्य प्रातःकाल आपकी भुजाओं को आशीर्वाद देते हैं।

---

१. चारों। चंड।

छत्रसाल-दशक

इक हाड़ा बूँदी धनी, मरद महेवावाल।
सालत नौरँगज़ेब-उर[1], ये दोनों छतसाल॥
वै देखौ छत्तापता, यै देखो छतसाल।
वै दिल्ली की ढाल यै, दिल्ली ढाहनवाल॥

शब्दार्थ—धनी=अधिपति। मरद=वीर पुरुष। सालत=चुभते हैं, दुख देते हैं। छत्तापता=पत्रों का बना हुआ छाता, (रक्षक)। छतसाल=छत्र को ध्वंस करने वाले।

(इन दोहों में दो छत्रसालों का वर्णन है) एक बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा और दूसरा महेवावासी वीर छत्रसाल। ये दोनों छत्रसाल औरंगज़ेब के हृदय में चुभते हैं। वे (बूँदी के छत्रसाल) दिल्ली के रक्षक हैं और ये (महेवा के छत्रसाल) दिल्ली के छत्र को ध्वंस करने वाले हैं। वे (बूँदीवाले छत्रसाल) दिल्ली की ढाल हैं और ये (महेवा के छत्रसाल) दिल्ली को विध्वंस करने वाले हैं। (शाहजहाँ के बीमार होने पर दिल्ली के तख्त पर कुछ दिन दारा का अधिकार था। जब औरंगज़ेब ने दिल्ली का तख्त पाने के लिए दारा पर चढ़ाई की तब छत्रसाल हाड़ा दारा की तरफ़ से औरंगज़ेब से लड़ा था, इसलिए उसे दिल्ली को ढाल कहा है। दूसरे छत्रसाल बुँदेला दिल्ली को ढाने वाले हैं। जब औरंगज़ेब ने दिल्ली का सिंहासन पा लिया तब इन्होंने उससे मोर्चा लिया था और उससे लगातार लड़ते रहे। इस प्रकार दोनों छत्रसाल ही औरंगज़ेब को दुःख देनेवाले हैं।

पाठान्तर—१. औरंगज़ेब को।

मनहरण कवित्त

रयाराव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत गजराज[1] जोम जमकैं[2] ।
भादौं की घटा-सी उड़ि[3] गरद[4] गगन घिरे[5],
सेलैं समसेरैं फिरैं[6] दामिनी-सी दमकैं[7] ॥
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी[8] घमकैं[9] ।
बैयर[10] बगारन की, अरि के अगारन की,
लाँघती पगारन नगारन की धमकैं[11] ॥१॥

शब्दार्थ—रैयाराव = राजा चंपतराय का खिताब। चढ़ो = चढ़ाई की। जोम = घमंड। जमकैं = (जमुकैं) एकत्र होते हैं, सटते हैं। सेलैं = भाले। समसेरैं = तलवारें। घन = हथौड़ा। घमकैं = चोट। बैयर = स्त्रियाँ। बगारन = दुर्गम घाटियाँ। अगारन = घरों। पगारन = चहारदीवारी। नगारन की धमकैं = नगाड़ों की गड़गड़ाहट।

अर्थ—रैयाराव चंपतराय के पुत्र वीर छत्रसाल जब चढ़ाई करते हैं, तो बड़े-बड़े हाथी सट कर खड़े हो जाते हैं। धूल उड़कर भादों की घटा के समान आकाश में घिर जाती है और (वीरों के) भाले और तलवारें जो फिरती हैं वे बिजली के समान चमकती हैं। छत्रसाल के नगाड़ों की गड़गड़ाहट सुन कर खान, उमराव और राव-राजाओं के हृदय में हथौड़ों की सी चोट लगती है। दुर्गम घाटियों और महलों में रहने वाली शत्रु-स्त्रियाँ नगाड़ों का शब्द सुन कर मकानों की चहारदीवारी फाँदने लगती हैं (अर्थात् डर कर भागने लगती हैं)।

पाठान्तर—१. समसेर (तलवार)। २. जमके। ३. उठीं। ४. गरद। ५. घेरैं। ६. फेरैं। ७. दमके। ८. कैसे। ९. घमके। १०. बैहर। ११. धमके।

अलंकार—उपमा और अनुप्रास

चाकचक-चमू कै अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरति धाक चंपति के लाल की।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की॥
सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की,
थप्पन-उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग-जीतिलेवा तेऊ ह्वै कै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा-महिपाल की॥२॥

शब्दार्थ—चाकचक = चारों ओर से सुरक्षित, दृढ़, मज़बूत। चमू = सेना। अचाकचक = अचांचक, अचानक। चाक = चक्र, कुम्हार का चाक। करेरी = सख्त, तेज, सीधी। करेरी करवाल की = तलवार सीधी की, सामना किया। बिरुदैत = जिसका बिरद (यश) बखाना जाय, यशस्वी। थप्पन = स्थापना, बसाना। उथप्पन = उखाड़ना, उजाड़ना। बानि = आदत।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि चंपतराय के पुत्र महाराज छत्रसाल की धाक, सब तरह से सुरक्षित शत्रु सेना के चारों ओर कुम्हार के चक्र के समान अचानक फिरती रहती है। उन्होंने शाही अमलदारी को मार कर परास्त कर दिया, किसी उमराव (सरदार) ने उनके सम्मुख तलवार सीधी न की अर्थात् मुकाबला करने का साहस न किया। यशस्वी महाराज छत्रसाल की थप्पन (आश्रितों को बसाने) और उथप्पन (शत्रुओं को उजाड़ने) की आदत एवं कीर्ति सुन-सुन कर युद्ध में विजय पाने वाले शत्रु राजा भी खिराज दे-दे कर इस महेवा-नरेश की सेवा करने लगे।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा और विशेषोक्ति।

साँगन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेलि खेलि,
समद-सा जीता जो समद लौं बखाना है।

भूषन बुंदेला-मनि चंपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियाँ ना है ॥
जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा,
महमद अमीखाँ का कटक खजाना है।
वीर-रस-मत्ता जाते काँपत चकत्ता यारो,
कत्ता ऐसा बाँधिए जो छत्ता बाँधि जाना है ॥३॥

शब्दार्थ—साँग = शक्ति, भाला। पेलि = ढकेल कर। खग्ग = खड्ग, तलवार। समद = अब्दुस्समद, इसे औरंगज़ेब ने सन् १६९० में छत्रसाल पर चढ़ाई करने के लिए भेजा था। कई लड़ाइयों के बाद छत्रसाल ने इस पर विजय पाई थी। समद = समुद्र। मियाँ = मुसलमान। उदंगल = उद्दंड। महमद अमीखाँ = मुहम्मद हाशिम खाँ, यह सिरौंज का थानेदार था, छत्रसाल ने सिरौंज के अन्तर्गत 'तिवारी ठिकाने' को लूटा था। कटक = सेना। मत्ता = मतवाला। कत्ता=तलवार। छत्ता = छत्रसाल।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि चंपतराय के सुपुत्र और बुंदेलों के शिरोमणि वे महाराज छत्रसाल धन्य हैं, जिन्होंने भालों की मार से धकेल धकेल कर और तलवार चला चला कर समुद्र के समान विशाल अब्दुस्समद (की सेना) को जीत लिया, और जिनकी धाक से एक भी वीर मुसलमान व्यक्ति नहीं बचा। जिन्होंने जंगल के बल से (अर्थात् जंगल में छिपकर और अचानक हमला करके) उद्दंड और प्रबल महम्मद हाशिम खाँ की फौज और ख़ज़ाना लूट लिया, जो सदा वीर-रस में मस्त रहते हैं और जिनसे सदा औरंगज़ेब भी डरता रहता है, उन्हीं छत्रसाल की ऐसी तलवार बाँधनी चाहिए।

अलंकार—उपमा, यमक अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

देस दहपट्टि[1] आयो आगरे दिली के मेंड़े,
बरगी बहुरि[2] मानों दल जिमि देवा को ।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल-मनि,
ताके तें कियो बिहाल जंग-जीति लेवा को ॥
खंड खंड सोर यों अखंड महि-मंडल में,
मंडित[3] बुँदेलखंड मंडल महेवा को ।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को ॥४॥

शब्दार्थ—दहपट्टि=उजाड़ कर । मेंड़े=सीमा । बरगी=वे सिपाही जो सरकारी घोड़े पर राज-कार्य करते हैं । बहुरि=इकट्ठे होकर । देवा = देओ, राक्षस । ताके तें=देखने से । बिहाल=विह्वल । सोर=शोहरत, प्रसिद्धि । मंडित=छाया, फैला । दच्छिन के नाह = दक्षिण के स्वामी, दक्षिण के बीजापुर के एक पठान ने संवत् १७५० वि० में पन्ना पर चढ़ाई की थी, पर वह वहाँ पहुँचते ही मारा गया और उसकी सेना आगे न बढ़ सकी । सहसबाहु = सहस्रबाहु अर्जुन, एक राजा जिसके सहस्र भुजाएँ थीं । एक बार लंकापति रावण रेवा (नर्मदा) नदी में स्नान कर रहा था । सहस्रबाहु अर्जुन ने उसे दसमुख वाला कोई जन्तु समझ कर पकड़ना चाहा । किन्तु रावण ने जब देखा कि उसे पकड़ने को सहस्रबाहु आ रहा है तब वह पानी में डुबकी लगा गया । तब सहस्रबाहु ने नदी में ऊपर की ओर लेटकर पानी रोक दिया, जिससे नदी का पानी कम होजाने से रावण दिखाई देने लगा और उसे सहस्रबाहु ने सहज में पकड़ लिया ।

पाठान्तर—१. दहबट्टि । २. बहरि । ३. मंडोंत ।

अर्थ—दक्षिण का पठान सरदार घुड़सवार सेना इकट्ठी करके सब देशों को जीतता एवं बरबाद करता हुआ आगरे और दिल्ली की सीमा तक आ गया। उसकी सेना ऐसी थी मानों राक्षसों का समूह हो। भूषण कवि कहते हैं कि राजाओं के शिरोमणि छत्रसाल ने ऐसे युद्ध-विजयी शत्रु को भी केवल अपने दृष्टिपात से ही व्याकुल कर दिया। समस्त भू-मंडल के खंड-खंड में बुँदेलखंड के महेवा प्रांत की कीर्ति छागई। दक्षिण के (बीजापुर के) स्वामी की सेना महाबाहु (छत्रसाल) ने इस प्रकार रोक ली जैसे सहस्रबाहु ने रेवा नदी की धारा रोकी थी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, उपमा, विभावना अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

अत्र[1] गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के,
उत ते पठानन हू कीन्हीं झुकि झपटैं।
हिम्मति वड़ि कै[2] कवडी[3] के खिलवारन लौं,
देत से हजारन हजार बार चपटैं॥
भूपन भनत काली हुलसी असीसन कौं;
सीसन कौं ईस की जमाति जोर जपटैं।
समद लौं समद की सेना त्यों बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भईं वाड़व की लपटैं॥५॥

शब्दार्थ—अत्र=अस्त्र। खिझ्यो=क्रुद्ध हुआ। बेतवा=बुंदेलखंड की प्रसिद्ध नदी जो त्रिविक्रमपुर के पास यमुना में मिलती है। इसी के किनारे छत्रसाल का अब्दुस्समद से युद्ध हुआ था। झुकि=क्रुद्ध हो कर। झपटैं=आक्रमण। चपटैं=चोटें। हुलसी=प्रसन्न हुई। जपटैं=झपटते हैं, लपकते हैं।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि छत्रसाल जब हाथ में हथियार लेकर

---

१. अस्त्र। २. कै। ३. गवड़ी।

बेतवा के मैदान में क्रुद्ध हुए तब उधर से पठानों ने भी बड़े वेग से आक्रमण किया। छत्रसाल बड़े साहस के साथ कबड्डी के खिलाड़ियों की भाँति सैकड़ों हज़ारों को हज़ारों चपत मारते फिरते थे। ऐसे समय कालिका प्रसन्न हो आशीर्वाद देने लगीं और श्री महादेव जी के गण (मृतकों के) मस्तक लेने के लिए बड़े वेग से झपटने लगे। उस समय युद्धस्थल में अब्दुस्समद की सेना समुद्र के समान और बुँदेलों के भाले और तलवारें बड़वाग्नि की ज्वाला के समान जान पड़ते थे।

अलंकार—अनुप्रास, यमक और उपमा।

बड़ी औंड़ी उमड़ी-नदी-सी फौज छेकी जहाँ,
मेंड़ बेड़ी छत्रसाल मेरु से खरे रहे।
चंपति के चक्कवै मचायौ घमसान बैरी,
मलियै[1] मसानि आनि सौंहैं जे अरे रहे।
भूषन भनत भक रुंड रहे रुंड-मुंड,
भवके भुसुंड तुंड लोहू सों भरे रहे।
कीन्हों जस-पाठ हर, पठनेटे ठाट-पर,
काठ लौं निहारे कोस साठ लौं डरे रहे॥ ६॥

शब्दार्थ—औंड़ी = गहरी। छेकी = रोकी। मेंड़ = सीमा। मेंड़ बेड़ी = सीमा बाँध ली। चक्कवै = चक्रवर्ती, सम्राट। घमासान = घोर युद्ध। मलियै मसान = श्मशान में मसले हुए। भक = सहसा, अचानक। भवके = भक भक करके रक्त उगलने लगे अथवा भड़कने लगे, उछलने लगे। भुसुंड = भुशुंड, हाथी अथवा भुशुंडी = एक प्रकार का अस्त्र। तुंड = मुख, सूँड अथवा तलवार का अगला हिस्सा। पठनेटे = पठान युवक। ठाटपर = ठाट-परायण, सजावट-प्रिय अथवा अस्थिपंजर पर।

पाठान्तर—१. मरियै।

अर्थ—बड़ी गहरी और उमड़ कर बहने वाली नदी के समान सेना को महाराज छत्रसाल ने रोका और सीमा बाँधकर मेरु पर्वत के समान अचल खड़े रहे। चंपतराय के सुपुत्र इस चक्रवर्ती महाराज छत्रसाल ने वह घमासान मचाया कि शत्रुगण जो सामने आकर उनसे भिड़े थे अब मसले (कुचले) हुए श्मशान में पड़े हैं। भूषण कवि कहते हैं कि रुंड-(कवंध) और कवंधों के कटे हुए सिर उछलने लगे अथवा खून उगलने लगे और हाथियों की सूँड़ें खून से भर गई अथवा भुसुंडी (एक प्रकार का अस्त्र) और तलवारों के अग्रभाग खून से भर गये हैं। महादेव जी ने भी (प्रसन्न हो) यश गान किया और पठान युवक जो बनाव श्रृंगार के प्रेमी थे, डर के कारण साठ कोस की दूरी पर भी काठ की तरह पड़े हुए देखे गये (डर के कारण आगे न बढ़ सके)। चतुर्थ पद का अर्थ यह भी हो सकता है—साठ कोस तक शत्रु डर के कारण काठ हो गये, (सन्न हो गये) और स्वयं भगवान शंकर पठान युवकों के ठाट (ठठरी—अस्थिपंजर) पर बैठकर छत्रसाल का यश-पाठ करने लगे।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास।

भुज भुजगेस की वैसंगिनी[1] भुजंगिनी सी,
 खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति मीन,
 पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के॥
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज,
 भूपन सकै करि बखान को बलन के।[2]
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर-छीने वीर,
 तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥७॥

शब्दार्थ—भुजगेस=शेषनाग। वैसंगिनी—(वयस्-संगिनी)

---

१. वै संगिनी। २. भूपन सकत को बखानि यों बलन के।

आयु भर साथ देने वाली। भुजंगिनी=नागिन। खेदि खेदि=खदेड़ खदेड़ कर। पाखरन=हाथी घोड़ों पर डालने की लोहे की झूलें। परछं ने=पक्ष छिन्न, परकटे। पर=शत्रु। छीने=क्षीण, कमज़ोर। बर= ।

अर्थ—हे रैयाराव चंपतिराय के सुपुत्र महाराज छत्रसाल ! आप की बरछी आपके बाहुरूपी शेषनाग की सदा साथ रहने वाली नागिन है। यह (बरछी) विशाल भयंकर शत्रुदल को खदेड़ खदेड़ कर डसती है (नष्ट करती है)। यह (बरछी) कवच और लोहे की झूलों में ऐसे घुस जाती है जैसे मछली पानी की धारा को तैर कर पार कर जाती है (इतनी तेज़ है कि लोहे को भी सरलता से काट देती है)। भूषण कवि कहते हैं कि आपके बल का वर्णन कौन कर सकता है, (बरछी द्वारा कटने से) शत्रु की सेना के वीर परकटे पक्षी की तरह निर्बल होकर पड़े हैं। हे वीर ! आपकी बरछी ने दुष्टों के बल छीन लिये हैं।

अलंकार—रूपक, उपमा, उदाहरण, यमक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास ।

हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सबै[1],
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।
भूषन भनत राय चंपति को छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुवाने की ॥
कैयक हजार[2] एक बार बैरि मारि डारे,
रंजक दगनि मानों अगिनि रिसाने की।
सैद अफगान-सेन-सगर-सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥८॥

पाठान्तर—१. सम। २. करोर।

शब्दार्थ—हैबर = हयवर, श्रेष्ठ घोड़े। हरट्ट = हृष्ट, मोटे ताजे। गैबर गजवर, श्रेष्ठ हाथी। गरट्ट—गरिष्ठ, डील डौल वाले, मोटे। ठट्ट = समूह, झुंड। रोप्यो रन ख्याल = लड़ाई का विचार किया। रंजक = वह बारूद जो तोप या बंदूक के छिद्र पर आग लगाने के लिए रक्खा जाता है। दगनि = दगना, जलना। अगनि रिसाने की = क्रोधाग्नि। सैद अफगन = सैयद अफगन, यह दिल्ली का एक सरदार था जो छत्रसाल से लड़ने को भेजा गया था। छत्रसाल ने इस पराजित किया था। सगर सुतन = राजा सगर रघुवंशी थे। इनके साठ हज़ार पुत्र थे। एक बार राजा सगर ने अश्वमेध-यज्ञ किया। यज्ञ के समय घोड़ा छोड़ा गया। उस घोड़े की रक्षा के लिए सागर के ६०००० पुत्र साथ चले। इन्द्र ने अपना इन्द्रासन जाने के डर से घोड़ा कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। सगर के पुत्र जब वहाँ पहुँचे तो घोड़े को बँधा देखकर उन्होंने मुनि को गालियाँ दीं और उन्हें सताया। तंग होकर ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया, कि तुम सब नष्ट हो जाओ! तराप = तोप की गर्जना।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि उत्तम मोटे ताज़े घोड़ों तथा अच्छे डील डौल वाले हाथियों से सुसज्जित होकर मुसलमानों की पैदल सेना के यूथ के यूथ इकट्ठे हो गये। चंपतराय के पुत्र महाराज छत्रसाल ने हिंदुओं का रक्षक बन कर रण-क्रीड़ा आरम्भ की। उनकी क्रोधाग्नि मानों तोप के बारूद का जलना है जिसने कई हज़ार शत्रुओं को एक ही बार में मार डाला। सैयद अफगन की सेना रूप सगर के पुत्रों के लिए छत्रसाल की तोपों की गर्जना कपिल मुनि का शाप हो गई (अर्थात् जिस तरह कपिल मुनि के शाप से सगर के पुत्र भस्म हो गये थे उसी तरह छत्रसाल की तोपों से सैयद अफगन की फौज भस्म हो गई)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा और अनुप्रास।

छप्पय

तहवरखान हराय, ऐंड़ अनवर की जंग हरि।
सुतरुदीन वहलोल, गए अवदुल्ल समद मुरि॥
महमुद को मद मेटि, सैद अफगनहि जेर किय।
अति प्रचंड भुजदंड, बलन केहीं न दंड दिय॥
भूषन बुँदेल छत्रसाल डर, रंग तज्यो अवरंग लजि।
झुक्के निसान सक्के समर, मक्के तक्क तुरक्क भजि॥६॥

शब्दार्थ—तहवरखाँ—सन् १६८० में औरंगज़ेब ने तहव्वर खाँ को एक बड़ी सेना-सहित छत्रसाल पर चढ़ाई करने को भेजा था। कई लड़ाइयों के पश्चात् अन्त में वह छत्रसाल से हार कर वापिस लौट आया। ऐंड=घमंड। अनवर—जब तहव्वर खाँ हार कर लौट आया तब औरंगज़ेब ने शेख अनवर खाँ को एक सेना देकर छत्रसाल से लड़ने भेजा। किन्तु अनवर खाँ वहाँ पकड़ा गया और छत्रसाल को सवा लाख रुपया देकर छूट सका। हरि—हरण करके। सुतरुदीन—सदरुद्दीन; यह धमौनी का सूबेदार था। जब अनवरखाँ हार गया तब औरंगज़ेब ने इसे सेनापति बनाकर भेजा। इसने भी छत्रसाल से लड़ाई की थी किन्तु यह भी पकड़ा गया और सवा लाख जुर्माना एवं चौथ का वचन देने पर छत्रसाल ने इसे छोड़ा। बहलोल=जब छत्रसाल अब्दुस्समद से लड़ रहे थे तब 'भेलसा' मुगलों ने ले लिया। छत्रसाल 'भेलसा' फिर लेने को चले। तब मार्ग में बहलोलखाँ से भेंट होगई। लड़ाई होने पर बहलोल खाँ परास्त होकर भाग गया। मुरि गए=मुड़ गए, वापिस चले गये, भाग गये। महमूद= मुहम्मद खाँ बंगश, यह फर्रुखाबाद का नवाब था। इसे छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा की सहायता से हराया था। रंग तज्यो=फीका पड़

गया, मलिन पड़ गया। निसान=झंडे। सक्के=शंकित हो गये, डर गये।

अर्थ—महाराज छत्रसाल ने तहव्वरखाँ को हराया, अनवरखाँ का युद्ध में घमंड दूर कर दिया, सदरुद्दीन, बहलोल और अब्दुस्समद भाग गये। मुहम्मद का मद हरण करके सैयद अफ़गन को परास्त कर दिया। इस प्रकार उन्होंने अपने प्रचंड भुजदंडों के ज़ोर से किसे दंड नहीं दिया अर्थात् सब को दंडित किया। भूषण कवि कहते हैं कि औरंगज़ेब लज्जित होकर फीका पड़ गया। छत्रसाल के आतंक से मुसलमानों के झंडे झुक गये और युद्ध में शंकित होकर तुर्क (मुसलमान) मक्के तक भाग गये (भारत में भय के कारण नहीं रहे)।

अलंकार—काकुवक्रोक्ति और अनुप्रास।

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन[1] करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदर[2] कतार दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को ?
और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊँ अब,
साहू[3] को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥१०॥

शब्दार्थ—राजत = शोभा पाता है। छाजत = शोभा पाता है। दिग्गजन हिय साल को = दिग्गजों के हृदय में पीड़ा करने के लिए। आफ़ताब = सूर्य। दुजन = द्विजन, ब्राह्मण। तुरी = घोड़ा। कतार= पंक्ति। साहू = महाराज साहू जी, ये छत्रपति शिवाजी के पौत्र थे। सराहौं = प्रशंसा करूँ।

पाठान्तर—१. दुज्जन, दुर्जन। २. कोतल। ३. सिवा।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि आपका अखंडित तेज शोभित हो रहा है, आपका महान यश छा रहा है, आपके हाथी दिग्गजों के हृदय में पीड़ा पहुँचाने के लिए गरज रहे हैं (अर्थात् आपके हाथियों के गर्जन से दिग्गज भी भय खाते हैं), आपके प्रताप के सम्मुख सूर्य भी मलिन हो जाता है, आप ताप (अभिमान) छोड़ कर ब्राह्मणों का बड़ा आदर करते हैं, आपने साज तथा सामान युक्त घोड़े, हाथियों और पैदलों की पंक्ति की पंक्तियाँ दान में दी हैं, आजकल ऐसा और कौन गरीबों का भरण पोषण करने वाला है ? (अर्थात् कोई नहीं है) इसी कारण मेरी इच्छा अन्य राजाओं के यश वर्णन करने की नहीं होती । या तो अब मैं साहू महाराज का यश-वर्णन करूँगा या महाराज छत्रसाल का यश गाऊँगा ।

अलंकार—अतिशयोक्ति, काकुवक्रोक्ति और अनुप्रास ।

आई चतुरंग-सैन सिंह सिवराज जू की,
देखि पातसाहन की सेना धरकत हैं।
जुरत सजोर जंग जोम भरे सूरन के,
स्याह-स्याह नागिन लौं खग्ग खरकत हैं॥
भूपन भनत भूत-प्रेतन के कंधन पै,
टाँगी मृत बीरन की लोथें लरकत हैं।
कालमुख भेंटे भूमि रुधिर लपेटे पर-
कटे पठनेटे मुगलेटे फरकत हैं॥४॥

शब्दार्थ—सजोर=ज़ोर सहित। जोम भरे=उत्साहपूर्ण। पर-कटे=पंख कटे, यहाँ हाथ-पैर कटे हुए से तात्पर्य है। काल-मुख भेंटे=मृत्यु के मुख में भेंटे हुए, मौत के मुख में गये हुए।

अर्थ—वीर-केसरी, शिवाजी की चतुरंगिणी सेना को आई हुई देख कर बादशाहों की सेना दहल उठती है। उत्साह में भरे हुए बड़े बड़े योद्धा एक दूसरे से बड़े पराक्रम के साथ भिड़ जाते हैं और काली-काली नागिनों के समान तलवारें खटाखट बजने लगती हैं। भूषण कवि कहते हैं कि भूत-प्रेतों के कंधों पर रक्खी हुई मृत वीरों की लाशें लटक रही हैं। काल के मुख में गये हुए, हाथ-पैर कटे (क्षत-विक्षत) नौजवान पठान और मुगल पृथिवी पर रुधिर में लथपथ हुए छटपटा रहे हैं।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

कोप करि चल्यो महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धुकार तें पहार दरकत हैं।
गिरे कुंभि मतवारे स्रोनित फुवारे छूटे,
कड़ाकड़ छितिनाल लाखों करकत हैं॥

मारे रन जोम कै जवान खुरासान केते,
काटि काटि दाटि दावें छाती थरकत हैं।
रन-भूमि लेटे वै चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर लपेटे मुगटे फरकत हैं॥ ५॥

शब्दार्थ—धासा=नगाड़ा। धुकार=गड़गड़ाहट। दरकत=विदारत होते हैं, फटते हैं। कुंभि=हाथी। छितिनाल=एक प्रकार की बन्दूक। करकत हैं=कड़कती हैं। जोम=पराक्रम, उत्साह। दाटि=डाँट कर। थरकत=थरथराती है, धमकती है, काँपती है।

अर्थ—महाराज शिवाजी जब क्रुद्ध होकर चढ़ाई करते हैं तो उनके धौंसे की गड़गड़ाहट की ध्वनि से पहाड़ तक फट जाते हैं। कितने ही मदोन्मत्त हाथी गिर जाते हैं और उनसे रुधिर के फव्वारे छूटने लगते हैं। लाखों बन्दूकें कड़ कड़ शब्द करती हुई कड़क रही हैं (छूट रही है)। उन्होंने युद्ध में पराक्रम-पूर्वक कितने ही खुरासानियों को काट काट कर मार डाला और कितनों ही को डाँट कर दबा रक्खा है, जिससे उनकी छाती अब तक धड़कती है। युद्धस्थल में चोट खाये हुए पठान युवा पड़े हुए हैं और ख़ून में लिपटे पड़े तड़फड़ा रहे हैं।

अलंकार—अत्युक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

दिल्ली-दल दले सलहेरि के समर सिवा,
भूषन तमासे आय देव दमकत हैं।
किलकति कालिका कलेजे को कलल्ल-करि,
करिकै अलल भूत भैरों तमकत हैं॥
कहूँ रुंड मुंड कहूँ कुंड भरे स्रोनित के,
कहूँ बखतर करी-झुंड झमकत हैं।
खुले खग्ग कंध धरि ताल गति बंध पर,
धाय धाय धरनि कबंध धमकत हैं॥ ६।

शब्दार्थ—दले=दलित किये, नष्ट किये। दमकते हैं=चमकते हैं। कलल=कलेवा। अलल=शोर। तमकत हैं=तैश में आते हैं, उत्साहित होते हैं। बखतर=कवच लोहे की झूलें। झमकत हैं=झमझम शब्द करते हैं। गति-चाल (गत)। बंध=नियम। ताल गति बंध पर=पैंतरे के साथ। धमकत हैं=धम-धम शब्द करते हैं।

अर्थ—सलहेरि के युद्ध में शिवाजी ने दिल्ली की सेना काट डाली। भूषण कवि कहते हैं कि इसका तमाशा देखने के लिए देवता आ विराजे हैं और (उनके दिव्य शरीर) चमक रहे हैं। कालिका कलेजे का कलेवा करके किलकारी मारती है। भूत-प्रेत शोर करते हुए तैश में आ रहे हैं। युद्ध में कहीं रुंड मुंड पड़े हैं कहीं खून के कुंड भरे हैं, कहीं हाथियों के झुण्डों की झूलें झम-झमा रहीं हैं। (सिर कट जाने पर) धड़ कंधे पर तलवार धारण किये हुए पैंतरों के साथ पृथ्वी पर दौड़ कर धम धम शब्द करते हैं।

अलंकार—अत्युक्ति, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

भूप सिवराज कोप करि रन-मंडल मैं,
खग्ग गहि कूद्यो चकता के दरबारे मैं।
काटे भट विकटरु गजन के सुंड काटे,
पाटे उर भूमि, काटे दुवन सितारे मैं॥
भूषन भनत चैन उपजे सिवा के चित्त,
चौसठ नचाईं जबै रेवा के किनारे मैं।
आँतन की ताँत वाजी खाल की मृदंग बाजी,
खोपरी की ताल पशुपाल के अखारे मैं॥ ७॥

शब्दार्थ—दरबार में=दरबार मे, यहाँ सेना से तात्पर्य है। पाटे=पाट दिया, भर दिया।

चौंसठ=चौंसठ योगिनियाँ। आँत=आँतड़ियाँ। ताँत=आँतड़ियों से बनाई जाने वाली डोर जो धनुष पर चढ़ाई जाती है और सारंगी में भी काम आती है। यहाँ ताँत से अभिप्राय सारंगी का है। मृदंग=ढोलक। ताल=मँजीरा। पसुपाल=पशुपाल, महादेव। अखारा=अखाड़ा, समाज, मंडली, दल।

अर्थ—महाराज शिवाजी क्रुद्ध होकर युद्धक्षेत्र के बीच औरंगज़ेब की सेना में तलवार लेकर कूद पड़े। वहाँ उन्होंने बड़े बड़े वीर योद्धाओं को काट गिराया और हाथियों की सूँडें काट डालीं तथा पृथ्वी में डर भर दिया। सितारे (के रणक्षेत्र) में शत्रुओं को काट डाला। भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी के चित्त में तभी शान्ति पड़ी जब रेवा नदी के किनारे पर (उन्होंने इतनी मारकाट कर डाली कि वहाँ) महादेव जी का अखाड़ा जम गया, जिसमें चौसठों योगिनियाँ मनुष्यों की आँतों की ताँतों की सारंगी, उनकी खाल मढ़कर मृदंग और खोपड़ियों के मँजीरे बनाकर नाचने लगीं।

अलंकार—अनुप्रास, अत्युक्ति और पदार्थावृत्तिदीपक।

जानि पति बागवान मुगल पठान सेख,
बैल सम फिरत रहत दिन-रात हैं।
ताते ह्वै अनेक कोऊ सामने चलत कोऊ,
पीठ दै चलत मुख नाइ सरमात हैं।
भूषन भनत जुरे जहाँ जहाँ जुद्ध-भूमि,
सरजा सिवा के जस बाग न समात हैं।
रहँट की घरी जैसे औरंग के उमराव,
पानिप दिली तें ल्याइ ढारि ढारि जात हैं॥८॥

अर्थ—अपने स्वामी (औरंगज़ेब) को (रणभूमि रूपी बाग का) माली समझ कर मुगल, पठान और शेख रात दिन बैल के समान घूमते फिरते हैं। कोई क्रोध कर (तेज़ी से) सामने चलते हैं और कोई

शरमा कर नीचे को मुख किये पीठ देकर चले जाते हैं। भूषण कवि कहते हैं कि वे जहाँ-जहाँ रणभूमि में लड़ते हैं वहाँ वहाँ शिवाजी का यश (रणभूमि रूपी) बाग में नहीं समाता। औरंगज़ेब के बड़े-बड़े सरदार रहँट के घड़े के समान हैं जो देहली से पानी (कान्ति, चमक) लाकर उसे (रणभूमि में) उँडेल जाते हैं (अर्थात् औरंगज़ेब के बड़े-बड़े सरदार देहली से दक्षिण में आकर पराजित हो अपना सब गौरव खोकर वापिस लौट जाते हैं इस से शिवाजी का यश और अधिक बढ़ जाता है)।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास, पुनरुक्ति-प्रकाश, रूपक और समासोक्ति।

बाप तें बिसाल भूमि जीत्यो दस-दिसिन तें,
महि में प्रताप कीन्हों भारी भूप भान सों।
ऐसो भयो साहि को सपूत सिवराज वीर,
जैसो भयो, होत है, न ह्वै है कोऊ आन सों॥
एदिल कुतुबसाह औरँग के मारिबे को,
भूषन भनत को है सरजा खुमान सों।
तीन पुर त्रिपुर के मारे सिव तीन बान,
तीन पातसाही हनी एक किरवान सों॥९॥

शब्दार्थ—तीन पुर = तीन लोक। त्रिपुर—दे० पृ० २३२ हनी=मारी।

अर्थ—शाहजी के सुपुत्र वीर महाराज शिवाजी के ऐसा न कोई हुआ है, न है, और न होगा, जिन्होंने दशों दिशाओं में अपने पिता से भी अधिक भूमि जीती है और सूर्य के समान पृथ्वी पर अपने प्रचंड प्रताप को फैलाया है। भूषण कवि कहते हैं कि आदिलशाह, कुतुबशाह और औरंगज़ेब को मारने के लिए चिरंजीव शिवाजी के समान और कौन है? शिवजी ने एक त्रिपुरासुर को (मारने के लिए) तीनों लोकों में तीन बाण मारे थे

किन्तु शिवाजी ने तीन बादशाहों (बीजापुर, गोलकुंडा और औरंगज़ेब) को अपनी एक ही तलवार से नष्ट कर दिया।

अलंकार—व्यतिरेक, अनुप्रास और पुनरुक्तवदाभास।

तेग-बरदार स्याह पंखा-बरदार स्याह,
निखिल नकीब स्याह बोलत बिराह को।
पान पीक-दानी स्याह सेनापति मुख स्याह,
जहाँ तहाँ ठाढ़े गिनै भूषन सिपाह को॥
स्याह भये सारी पातसाही के अमीर खान,
काहू के न रह्यो जोम समर उमाह को।
सिंह सिवराज दल मुगल विनास करि,
घास ज्यों पजारयो आम-खास पातसाह को॥१८॥

शब्दार्थ—तेग=तलवार। बरदार=धारण करने वाला। निखिल=समस्त। नकीब=बन्दीजन, भाट। बिराह=बेराह, बेकायदे अंड बंड। पीक-दानी=बरतन विशेष, जिस में पान खाकर थूकते हैं। उमाह=उत्साह। पजारयो=जला दिया। आम-खास=महल के भीतर का वह स्थान जहाँ बादशाह बैठते हैं।

अर्थ—शेर शिवाजी ने मुगल-सेना का नाश करके आम-खास को घास की तरह जला दिया जिस से तलवार धारण करने वाले (तलवार लेकर आगे आगे चलने वाले सेवक) पंखा करने वाले और समस्त नकीबों के मुख काले पड़ गये और वे (डर के कारण) अंड-बंड बकने लगे। पानदान तथा पीकदान उठाने वालों से लेकर सेनापतियों तक के मुख काले पड़ गये। भूषण कवि कहते हैं (जब बड़ों-बड़ों की यह हालत हुई तब) जहाँ-तहाँ खड़े हुए सिपाहियों की कौन गिनती करे। समस्त बादशाहत के अमीरों एवं खानों के मुख भी काले पड़ गये। सब का जोम (उत्साह) नष्ट हो गया और किसी को भी रणोत्साह न रहा।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास और काव्यार्थापत्ति ।

सैयद मुगल पठान, सेख चंदावत दुच्छन[1] ।
सोम-सूर द्वै बंस राव राना रन-रच्छन ॥
इमि भूषन अवरंग, और एदिल-दल-जंगी ।
कुल करनाटक कोट, भोट-कुल हवस फिरंगी ॥
चहुँ ओर बैर महि मेरु लगि, साहितनै साहस झलक ।
फिर एक ओर सिवराज नृप, एक ओर सारी खलक ॥११॥

शब्दार्थ—दुच्छन=दक्ष, चतुर। सोम=चन्द्रमा। सोम-सूर वंश=चंद्र एवं सूर्य वंश। भोट=भूटानवाले।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि सैयद, मुगल, पठान, शेख, चतुर चंद्रावत, तथा चंद्रवंशी और सूर्यवंशी दोनों राव और राणा युद्ध में जिसकी रक्षा करते हैं ऐसे औरंगज़ेब और आदिलशाह के बड़े बड़े दल हैं, जिन में सब करनाटकी, कोटे वाले, भूटानी, हवशी और फिरंगी सम्मिलित हैं। चारों ओर पृथिवी पर वैरियों का एक पहाड़ सा खड़ा हो गया है। अब शाहजी के पुत्र शिवाजी का साहस देखिये कि एक ओर वे अकेले हैं और दूसरी ओर सारी दुनियाँ इकट्ठी हो गई है।

जोर रूसियान को है, तेग खुरासानहू की,
नीति इंगलैंड, चीन हुन्नर महादरी ।
हिम्मत अमान मरदान हिंदुवान हू की,
रूम अभिमान, हवसान हद कादरी ॥
नेकी अरबान, सान-अदब ईराम त्यों ही,
क्रोध है तुरान, ज्यों फराँस फंद आदरी ।

पाठान्तर—१. भच्छन ।

भूषन भनत इमि देखिए महीतल पै,
वीर-सिरताज सिवराज की बहादरी ॥१२॥

शब्दार्थ—हुन्नर = हुनर, कला। महादरी = महा + आदरी, बड़ा सम्मान। तुरान = फारस के उत्तर-पूर्व पड़ने वाला मध्य-एशिया का सारा भू-भाग जो तुर्क, तातारी आदि जातियों का निवासस्थान है, उसके निवासी। कादरी = कायरता। सान = शान, छटा। अदब = आदर, सम्मान। फंद=छल धोखा।

अर्थ—जैसे रूसियों की शक्ति, खुरासानियों की तलवार, इंग्लैंड की राजनीति और चीन का कला के लिए आदर प्रसिद्ध है, जैसे हिंदुओं का साहस और अपरिमित वीरता, रूम-निवासियों का अभिमान और हबसियों की हद दरजे की कायरता प्रसिद्ध है, जैसे अरब-निवासियों की भलमनसाहत ईरानियों की शान और शिष्टाचार, तूरानियों का क्रोध और फ्रांसीसियों का छल (अर्थात् चालाकी) के लिए आदर प्रसिद्ध है, भूषण कवि कहते हैं कि वैसे ही वीर-शिरोमणि-शिवाजी की बहादुरी प्रसिद्ध है।

अलंकार—मालोपमा और अनुप्रास।

सारी पातसाही के अमीर जुरि ठाढ़े तहाँ,
लायकै बिठायो कोऊ सूबन के नियरे।
देखिकै रसीले नैन गरब गसीले भए,
करी न सलाम न बचन बोले सियरे॥
भूषन भनत जबै धर्यो कर मूठ पर,
तबै[1] तुरकन के निकसि गये जियरे।
देखि तेग़ चमक, सिवा को मुख लाल भयो,
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे॥१३॥

शब्दार्थ—सूबन = सूबेदार। सरस = प्यारे। गसीले = गँसे, फँसे

पाठान्तर—१. देखि।

हुए। गरब गसीले = गर्व में फँसे, गर्वयुक्त, अभिमान भरे। सियरे = शीतल। जियरे = प्राण। पियरे = पीले।

अर्थ—सारी बादशाहत के अमीर उमरा लोग जहाँ एकत्र हो कर खड़े हुए थे वहाँ किसी ने शिवाजी को सूबेदारों के पास लाकर बिठा दिया। यह देख कर शिवाजी के रसीले नेत्र अभिमान-पूर्ण (क्रोध पूर्ण) हो गये। उन्होंने इस कारण न बादशाह को सलाम किया और न शान्त (विनीत) वचन ही कहे। भूषण कवि कहते हैं कि शिवाजी ने जब तलवार की मूठ पर हाथ रखा तो तुर्कों के प्राण निकल गये। तलवार की चमक और शिवाजी के क्रोध से लाल मुख-मंडल को देख औरंगज़ेब का मुख काला पड़ गया और सेना के तमाम सिपाहियों के मुख पीले पड़ गये।

अलंकार—अनुप्रास, अक्रमातिशयोक्ति और विरोध।

तेरी असवारी महाराज सिवराज बली,
केते गढ़पतिन के पंजर मचकिगे।
केते वीर मारि कै बिडारे किरवानन तें,
केते गिद्ध खाए केते अंबिका अचकिगे॥
भूषण भनत रुंड मुंडन की माल करि,
चार पाँव नाँदिया के भार तें भचकिगे॥
टूटिगे पहार विकरार भुव-मंडल के,
सेस के सहस फन कच्छप कचकिगे॥१४॥

शब्दार्थ—पंजर = पसली। मचकिगे = धचक गये, दब गये, टूट गये। बिडारे = विदीर्ण किये, नष्ट किये। किरवानन = कृपाणों। अंबिका = अम्बा, काली। अचकिगे = खा गईं। नाँदिया = महादेव का बैल। भचकिगे = लँगड़े हो गये, मोच आ गई। कचकिगे = कुचले गये।

अर्थ—हे शक्तिशाली महाराज शिवाजी! (विजयोत्सव के समय)

आपकी सवारी के नीचे आकर कितने गढ़पतियों के पंजर टूट गये। कितनों ही को तुम्हारे वीरों ने तलवार से मार-मार कर नष्ट कर दिया, कितनों ही को गिद्ध खा गये और कितनों को काली खा गई। भूषण कवि कहते हैं कि शिवजी ने इतने रुंड-मुंडों की माला पहनी कि उनके बोझ से नाँदिया के चारों पैरों में मोच आ गई। भूमंडल के भयंकर पहाड़ भी (उस सवारी के नीचे आकर) टूट गये तथा शेषनाग के हजारों फन एवं कच्छप तक कुचले गये।

अलंकार—अनुप्रास और अत्युक्ति।

सुमन मैं मकरंद रहत है साहिनंद,
मकरंद सुमन रहत ज्ञान बोध है।
मानस मैं हंस-वंस रहत हैं तेरे जस,
हंस मैं रहत करि मानस विरोध है॥
भूषन भनत भौंसिला भुवाल भूमि,
तेरी करतूति रही अद्भुत रस ओध है।
पानी मैं जहाज रहे लाज के जहाज महा-
राज सिवराज तेरे पानिप पयोध है ॥१५॥

शब्दार्थ—सुमन=अच्छे मन वाले (शिवाजी)। मानस=मानसरोवर। जस-हंस=यश रूपी हंस। मानस=मन। करि विरोध=विरोध करके। करतूति=कर्तव्य, कार्य। अदभुत रस ओध=अद्भुत रस से परिपूर्ण। पानिप=आब, चमक। पयोध=समुद्र।

अर्थ—हे शाहजी के पुत्र भौंसिला महाराज शिवाजी, इस पृथ्वी पर आप की करनी अद्भुत रस से परिपूर्ण है। क्योंकि (साधारण तौर पर) सुमन (फूल) में मकरंद (पुष्प रस) रहता है, पर आपके विषय में यह भली प्रकार जानी हुई बात है कि मकरंद (माल मकरंद शाह के वंश) में सुमन (अच्छे विचार वाले शिवाजी) रहते हैं। (संसार में

देखा तो यह जाता है कि) मानस (मानसरोवर) में हंसों का समूह रहता है परन्तु इसका विरोध करके आपके यश-रूपी हंस में (लोगों के) मन (अनुरक्त) रहते हैं। (साधारणतया) पानी में जहाज़ रहता है परन्तु हे महाराज शिवाजी आपके लाज-रूपी जहाज में पानिप (चेहरे की कान्ति) रूपी समुद्र रहता है।

अलंकार—अनुप्रास, यमक, रूपक और विरोधाभास।

मारे दल मुगल सम्हार करि बार आज,[1]
उछलि बिछलि म्यान बामी तें निकासती।
तेरे कर वार[2] लागे दूसरी न माँगै कोऊ,
काटि कै करेजा स्रोन पीवत बिनासती॥
साहि के सपूत महाराज सिवराज वीर,
तेरी तलवार स्याह नागिन तें जासती।
ऊँट हय पैदल सवारन के झुंड काटि,
हाथिन के मुंड तरबूज-लौं तरासती॥१६॥

शब्दार्थ—बामी=साँप का बिल। कर वार=हाथ का वार। बिनासती=विनष्ट करती। तरासती=तराशती काटती।

अर्थ—हे शिवाजी, आपकी तलवार-रूपी सर्पिणी म्यान-रूपी बाँबी से निकलते ही उछल कर, रपट कर, सम्हल कर, चोट करके (डस कर) मुगलों की सेना को मार डालती है। हे शिवाजी! तुम्हारे हाथ का एक वार पड़ जाने पर दूसरा वार तो कोई माँगता ही नहीं (तलवार के एक ही वार में शत्रु मर जाता है)। तुम्हारी तलवार शत्रुओं का कलेजा काट काट कर उनका खून पीती है एवं नाश करती है। हे शिवाजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी! तुम्हारी यह तलवार स्याह (काली) नागिन से भी

पाठान्तर—१. मारे दल मुगल तिहारी तलवार आज। २. तेरी तलवार।

अधिक है। यह तलवार ऊँट, घोड़े, पैदल तथा सवारों के समूह के समूह काट काट कर हाथियों के मस्तकों को तरबूज की तरह तराशती है।

अलंकार—रूपक, उपमा, व्यतिरेक और अनुप्रास।

सिंहल के सिंह सम रन सरजा की हाक,
सुनि चौंकि चलैं सब धाइ पाटसादा के।[1]
भूपन भनत भुवपाल दुरे द्राविड़ के,
ऐल-फैल गैल गैल भूले उनमादा के॥
उछलि उछलि ऊँचे सिंह गिरे लंक माहिं,
बूड़ि गए महल विभीपन के दादा के।
महि हालै, मेरु हालै, अलका कुबेर हालै,
जा दिन नगारे बाजे सिव-साहजादा के॥१७॥

शब्दार्थ—सिंहल = लंका। हाक = हाँक, दहाड़, गर्जना। पाटसादा = (पाट = राजसिंहासन + शाद = भरे-पूरे) भरे पूरे राज्य के लोग। ऐल = खलबली, कोलाहल। गैल गैल = मार्गों में, गली गली में। उनमादा = पागल। अलका = कुबेर की नगरी।

अर्थ—युद्ध में सिंहल द्वीप के वीर भी, सिंह-समान शिवाजी की दहाड़ को सुनकर, भरे-पूरे राज के होने पर भी भाग गये। भूषण कवि कहते हैं कि द्राविड़ देश के राजा छिप गये, और वहाँ की गली-गली में खलबली फैल गई, लोग पागल होकर शरीर की भी सुध-बुध भूल गये। (शिवाजी की हाँक सुनकर) कितने ही सिंह-समान वीर लंका में जा गिरे। विभीपण के दादा (ज्येष्ठ भ्राता रावण) के महल भी डूब गये। जिस समय राजकुमार (महाराज) शिवाजी के नगाड़े बजते हैं तो (एक प्रकार का भूकंप सा आ जाता है जिससे) पृथ्वी, सुमेरु पर्वत और कुबेर की अलकापुरी तक हिलने लगती है।

पाठान्तर—१. सुनि चौंकि चलत बधाइ पाटसादा की।

अलंकार—उपमा, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, पदार्थावृत्तिदीपक, अतिशयोक्ति और अत्युक्ति।

कत्ता के कसैया महाबीर सिवराज तेरी,
रूम के चकत्ता लौं हू संका सरसात है।
कासमीर काबुल कलिंग कलकत्ता अरु,
कुल करनाटक की हिम्मत हेरात है॥
विकट विराट बंग व्याकुल बलख वीर,
बारहों* विलाइत सकल बिललात है।
तेरी धाक धुंधरि धरा में अरु धाम-धाम,
अंधाधुंध आँधी सी हमेस हहरात है॥१८॥

शब्दार्थ—कत्ता=छोटी टेढ़ी तलवार। कसैया=बाँधने वाला। चकत्ता=बादशाह। सरसात है=छाया है। कलिंग=उड़ीसा। हेरात है=खो जाती है। बंग=बंगाल। धुँधरि=धूल, गर्द, गुबार। हहरात है=चलती है।

अर्थ—कत्ता शस्त्र के बाँधने वाले महावीर शिवाजी! आपका भय तुर्की देश के बादशाह तक छाया हुआ है। (आपके आतंक से) काश्मीर काबुल, कलिंग (उड़ीसा), कलकत्ता और संपूर्ण करनाटक-निवासियों की हिम्मत टूट जाती है। भयानक एवं विशाल बंगाल देश और बलख के वीर भी व्याकुल रहते हैं तथा समस्त बारहों विदेशी राज्य दुखी रहते हैं। पृथिवी में स्थान-स्थान पर आपकी धाक रूपी गर्द गुबार अंधा-धुंध आँधी के समान सदा चलती रहती है।

अलंकार—उपमा, रूपक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

---

* 'बारहों विलायत' कहने से प्रतीत होता है कि भूषण विदेशी राज्य मात्र को विलायत कहते हैं।

साहि के सपूत सिवराज वीर तेरे डर,
अडग अपार महा दिग्गज सो डोलिया।
बेदर[1] बिलायत सो उर अकुलाने अरु,
संकित सदाई रहै बेस बहलोलिया ॥
भूषन भनत कौल करत कुतुबसाह,
चाहै[2] चहूँ ओर रच्छा[3] एदिल सा भोलिया।
दाहि दाहि दिल कीने दुखदाई दाग तातें,
आहि आहि करत औरंगसाह औलिया ॥१६॥

शब्दार्थ—अडग = अटल। डोलिया = डोल गया, हिल गया, चलायमान हो गया। बेदर = दक्षिण में एक मुसलमानी रियासत। बेस = वेष, रूप। बहलोलिया = बहलालखाँ। कौल = करार, प्रतिज्ञा। भोलिया = भोला-भाला, नाबालिग (minor) प्रसिद्ध आदिलशाह का लड़का सिकंदर नाबालिग था। पहले उसका संरक्षक खवासखाँ था, पीछे बीजापुर में घरेलू झगड़ा होने के कारण खवासखाँ मारा गया और बहलोलखाँ उसका संरक्षक नियत हुआ। दाहि = जलाकर। दिल दाहि = दिल जलाकर, दिल दुखा कर। दाग = चिह्न। आहि = हाय। औलिया = फकीर।

अर्थ—हे शिवाजी के सुपुत्र वीर शिवाजी! दिशाओं के रक्षक दिग्गजों के समान अटल रहने वाला, महाबलिष्ठ (बादशाह औरंगज़ेब) भी आप के भय से हिल गया। आपके डर से बेदर और विलायत (विदेशी राज्य) हृदय में व्याकुल रहते हैं और बीजापुर के बादशाह का संरक्षक बहलोल खाँ सदा शंकित (भयभीत) के वेश में रहता है! भूषण कवि कहते हैं कि गोलकुंडा का सुलतान कुतुबशाह (डर कर आपको वार्षिक कर देने की) प्रतिज्ञा करता है और आदिलशाह भी आपसे चारों ओर से रक्षा करने की

पाठान्तर—१. बंदर। २. चारे। ३. इच्छा।

प्रार्थना करता है। (हे शिवाजी) आपने औरंगज़ेब के हृदय को जला कर दुखी एवं दागी (घायल) कर दिया है। इसी से वह फकीर बादशाह हाय-हाय करता रहता है।

अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा और रूपकातिशयोक्ति।

तखत तखत पर तपत प्रताप पुनि,
नृपति नृपति पर सुनी हैं अवाज की।
दंड सातों दीप नव खंडन अदंड पर,
नगर नगर पर छावनी समाज की॥
उदधि उदधि पर दवनी खुमान जू की,
थल थल ऊपर सुवानी कविराज की।
नग नग ऊपर निसान झरि जगमगे,
पग पग ऊपर दुहाई सिवराज की॥२०॥

शब्दार्थ—तखत = राजसिंहासन। तपत प्रताप = प्रताप छाया हुआ है, आतंक छाया हुआ है। अदंड = अदंड्य, जिनको कभी दंड नहीं मिला। दावनी=दबावट, दमन। नग=पर्वत। झरि= झर, समूह। जगमगे = चमकते हैं, यहाँ फहराने से तात्पर्य है।

अर्थ—प्रत्येक राजसिंहासन पर शिवाजी के प्रताप का आतंक छाया हुआ है और प्रत्येक राजा पर शिवाजी की आवाज सुनाई देती है अर्थात् धाक जमी हुई है। प्राचीन काल से अदंडित सातों द्वीप और नौ खंडों को शिवाजी ने दंडित कर दिया। शिवाजी की फौज के डेरे प्रत्येक नगर में पड़े हुए हैं। आयुष्मान शिवाजी का अधिकार एवं दमन सब समुद्रों पर है। इसलिए कवि भूषण की श्रेष्ठ कविता का आदर स्थान-स्थान पर हो रहा है (क्योंकि उसमें शिवाजी का यशोगान है)। प्रत्येक पर्वत पर शिवाजी के ही झंडों के समूह फहरा रहे हैं और पग पग पर शिवाजी ही की दुहाई दी जा रही है अर्थात् जयजयकार हो रहा है।

अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश और अत्युक्ति।

यों पहिले उमराव लरे रन जेर किये[१] जसवन्त अजूबा।
साइतखाँ अरु[२] दाउदखाँ पुनि हारि[३] दिलेर[४] महम्मद[५] डूबा॥
भूषन देखें[६] बहादुरखाँ पुनि[७] होय[८] महावतखाँ अति ऊबा।
सूखत जानि सिवा जू के तेज तें[९] पान से फेरत औरंग सूबा॥२१॥

शब्दार्थ—जेर किये = अधीन किए, पराजित किये। अजूबा = अजीब। दिलेर = दिलेरखाँ। महम्मद = महामद, बड़ा अभिमानी। ऊबा = ऊब गया। सूखत=शुष्क होते हुए, भय से सूखते हुए। फेरत = नीचे ऊपर करता है, बदलता है। सूबा=सूबेदार।

अर्थ—महाराज शिवाजी के साथ पहले तो बड़े-बड़े सरदार लड़े फिर राजा यशवन्त सिंह को शिवाजी ने बड़ी विचित्र रीति से पराजित किया, फ़िर शाइस्ताखाँ, दाऊदखाँ आदि वीर भी हार गये और अभिमानी दिलेरखाँ भी डूब गया (चौपट हो गया)। भूषण कवि कहते हैं महावतखाँ के अत्यधिक ऊब जाने पर—असफल होने अथवा सलहेरि के घेरे में पड़े पड़े ऊब जाने पर फिर बहादुरखाँ दिखाई दिया अथवा महावतखाँ के ऊब जाने पर फिर बहादुरखाँ सूबेदार बनाया गया। यह देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि बादशाह औरंगज़ेब शिवाजी के प्रभाव से अपने सूबेदारों को सूखना (डरा) हुआ जान कर उन्हें पान की तरह से बदलता रहता है—अर्थात् जैसे गर्मी में सूखते हुए पान को ऊपर से नीचे कर देते हैं ऐसे ही औरंगज़ेब अपने सूबेदारों को जो शिवाजी से हार आते हैं, पद घटा कर नीचे कर देता है और दूसरों को ऊपर करता है। जब वे भी हार आते हैं तो इन्हें फिर नीचे करके दूसरों को ऊपर करता है।

पाठान्तर—१. कै पहिले उमराव अमीरुल फेरि कियो। २. फेरि कुतुब्बखाँ। ३. कीन्हों। ४. दलेल। ५ महामद। ६. कीन्हें। ७. फिर। ८. मेरु। ९. सों।

अलंकार—उपमा और गम्योत्प्रेक्षा ।

औरँग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमानाको ।
देवल डिगाने[1] राव-राने[2] मुरझाने[3] अरु,
धरम ढहाना, पन मेट्यो है पुराना को ।।
कीनो घमसाना मुगलाना को मसाना भरे,
जपत जहाना जस बिरद बखाना को ।
साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यो है खुमाना बर बाना हिंदुवाना को ।।२२।।

शब्दार्थ—अठाना=सताने लगा । आनि= आन, मर्यादा इज्जत । जोराना=ज़ोरदार हो गया, बलवान हो गया । डिगाने= तोड़ दिए । ढहाना=गिर गया । पन=प्रण । पुराना=पुराणों । मसाना=श्मशान । बर बाना=सुंदर वेष ।

अर्थ—औरंगज़ेब सब को सताने लगा, किसी भी सरदार अथवा वीर की उसने इज्ज़त न रहने दी । वह ज़बर्दस्त शक्तिशाली होकर उस समय संसार में अत्याचार करने लगा । कितने ही मंदिर उसने गिरवा दिये । छोटे बड़े सभी राव-राने बलहीन हो गये । हिंदू धर्म को गिरा दिया (पतित कर दिया) । पुराणों का धर्म-व्रत (रीति-रिवाज़) भी मिटा दिया । ऐसे समय में शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी ने ऐसा घनघोर युद्ध किया कि मुसलमानों से सारी श्मशान-भूमि भर गई । खुमान शिवाजी हाथ में तलवार लेकर ने हिंदुओं के बाने की रक्षा कर ली, इसी से समस्त संसार में शिवाजी की प्रशंसा एवं यशोगान हो रहा है ।

अलंकार—अनुप्रास ।

पाठान्तर—१. डिगाना । २. राना । ३. मुरझाना ।

कूरम कवंध हाड़ा तूँवर वघेला वीर,
प्रवल बुँदेला हुते जेते दल-मनी सों।
देवल गिरन लागे मूरति लै विप्र भागे,
नेकहू न जागे सोइ रहे रजधनी सों॥
सब नै पुकार करी सुरन मनाइवे को,
सुर नै पुकार भारी कीन्हीं विस्वधनी सों।
धरम रसातल को डूबत उवारयौ सिवा,
मारि तुरकान घोर वल्लम की अनी सों॥२३॥

शब्दार्थ—कूरम = कछवाह (जयपुर के)। कवंधज=राठौर (जोधपुर के)। हाड़ा—(बूँदी वाले) तूँवर = तोमरवंशज क्षत्रिय। वघेला=एक क्षत्रियकुल। दल-मनी = दल-मणि, सेना में श्रेष्ट। रजधनी सों=राजधानी में। विश्वधनी=संसार के स्वामी, विष्णु भगवान। वल्लम=भाला। अनी = नोक।

अर्थ—जब यवनों द्वारा मंदिर गिराये जाने लगे और ब्राह्मण मूर्तियाँ लेकर भागने लगे, तब कछवाहे, राठौर, हाड़ा, तोमर, बघेला आदि वीर एवं बलवान बुँदेला आदि जितने सेना में श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर समझे जाते थे, वे सब अपनी अपनी राजधानियों में जाकर सो गए, कोई भी (रक्षा करने को) न उठा। तब सबने मिलकर (अत्याचार से बचाने के लिए) देवताओं से प्रार्थना की और देवताओं ने संसार के स्वामी विष्णु भगवान् से प्रार्थना की। ऐसे समय में शिवाजी ने मुसलमानों को भालों की नोक से मार कर रसातल में डूबते हुए धर्म को बचाया।

अलंकार—मालादीपक और अनुप्रास।

बंध कीन्हे बलख सो बैर कीन्हौ खुरासान,
कीन्ही हवसान पर पातसाही पल ही।
बेदर कल्यान घमसान कै छिनाय लीन्हे,
जाहिर जहान उपखान यही चल ही॥

जंग करि जोर सों निजामसाही जेर कीन्ही,
रन मैं नमाए हैं बुँदेल छल-बल ही।
ताके सब देस लूटि साहिजी के सिवराज,
कूटी फौज अजौं मुगलन हाथ मल ही ॥२४॥

शब्दार्थ—बंध कीन्हे = बाँध लिया, कैद कर लिया। उपखान = उपाख्यान, कथा, बात। नमाए = झुकाए, परास्त किए। कूटी = मारी, पीटी।

अर्थ—संसार में यह कहानी प्रसिद्ध है कि जिसने बलख को कैद कर लिया, खुरासान देश से शत्रुता ठान ली, हबशियों पर क्षण भर में अधिकार कर लिया, बेदर और कल्यान को घोर युद्ध करके छीन लिया, निज़ाम को ज़बर्दस्त लड़ाई करके परास्त कर दिया और बुँदेलों को कपट चालों से दबा दिया, ऐसे (उपर्युक्त सारे कामों के करने वाले औरंगजेब) के देशों को शाहजी के पुत्र शिवाजी महाराज ने लूट लिया और उसकी फौज को खूब पीटा जिससे मुगल अभी तक हाथ मलते हैं।

अलंकार—भाविक और अनुप्रास।

प्रबल पठान फौज काटिकै कराल महा,
आपनी सनाइ आनि जाहिर जहान को।
दौरि करनाटक मैं तोरि गढ-कोट लीन्हे,
मोदी सों पकरि लोदी सेर खाँ अचानको॥
भूषन भनत सब मारिकै बिहाल करि,
साहि के सुवन राचे अकथ कहान को।
बारगीर बाज सिवराज तो सिकार खेले,
साह-सैन-सकुन मैं ग्राही किरवान को॥२५॥

शब्दार्थ—मोदी = बनिया, जो आटा दाल बेचता है। शेरखाँ लोदी = यह त्रिमली महाल में बीजापुरी अफसर था। राचे अकथ

कहान को=अकथनीय कहानियों को रच डाला, अर्थात् अनहोनी बात कर डालीं। बारगीर=घुड़सवार सैनिक। सकुन=पक्षी।

अर्थ—यह बात संसार भर में प्रसिद्ध है कि (शिवाजी ने) बलवान एवं महाभयंकर पठानों की फौज को काट कर उससे अपना दबाव मनवा लिया अर्थात पठानों की सेना यह मान गई कि हम आप से दबते हैं। करनाटक पर चढ़ाई करके वहाँ के किलों को ढा दिया और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया। बीजापुर के सरदार शेरखाँ लोदी को तो इतनी आसानी से अचानक पकड़ लिया जैसे किसी बनिये को (हाकिम ने) पकड़ लिया हो। भूषण कवि कहते हैं कि शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी ने सब (सिपाहियों) को पीटकर बेहालकर दिया और इस प्रकार अपनी अकथनीय कहानियाँ रच डालीं। हे शिवाजी ! तलवार धारण करने वाले आप के घुड़सवार-रूपी बाज बादशाहों की सेना-रूप पक्षियों का शिकार सा खेलते हैं।

अलंकार—अनुप्रास, विभावना, उपमा और रूपक।

औरंग-सा इक ओर सजै इक ओर सिवा नृप खेलनवारे।
भूषन दच्छिन दिल्लिय देस किए दुहुँ ठीक ठिकान मिनारे।
साह सिपाह खुमानहि के खग लोग घटान समान निहारे।
आलमगीर के मीरवजीर फिरैं चउगान बटान से मारे ॥२६॥

शब्दार्थ—ठिकाना=स्थान। मिनारे=मीनार, दीवार (यहाँ गोल (Goal) से तात्पर्य है। चउगान=चौगान, यह खेल आजकल के पोलो(polo)और हाकी (Hockey) से मिलता है। बटान=गेंद।

अर्थ—एक ओर शाह औरंगज़ेब सजे हुए हैं और दूसरी ओर से खेलने वाले शिवाजी महाराज हैं। भूषण कवि कहते हैं कि इधर दिल्ली और उधर दक्षिण देश इन दोनों को मीनार (Goal) का स्थान निश्चित किया है। लोगों ने शाहंशाह के सिपाहियों और शिवाजी की तलवार को घटाओं

की तरह देखा अर्थात् सिपाही बादल और तलवार बिजली के समान थी। आलमगीर औरंगज़ेब के उमराव और वजीर लोग इस प्रकार मारे मारे फिरते हैं जैसे चौगान के खेल में गेंद इधर से उधर मारी-मारी फिरती है।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा।

श्री सिवराज धरापति के यहि भाँति पराक्रम होत है भारी।
दंड लिये भुव मंडल के नहिं कोऊ अदंड बच्यो छतधारी॥
बैठि कै दच्छिन भूषन दच्छ खुमान सबै हिंदुवान उजारी।
दिल्ली तें गाजत आवत ताजिये पीटत आपको पंजहजारी॥२७॥

शब्दार्थ—छतधारी=छत्रधारी, राजा। दच्छ=दक्ष, चतुर। उजारी=प्रकाशित किया। ताजिये पीटत=मातम मनाते हुए, उदास मुख।

अर्थ—श्री महाराज शिवाजी नरेश का ऐसा महान पराक्रम है कि उन्होंने समस्त पृथ्वी के राजाओं से दंड (कर) ले लिया। कोई भी ऐसा छत्रधारी (राजा) नहीं रहा जिसने उन्हें दंड (कर) न दिया हो। भूषण कवि कहते हैं चतुर महाराज शिवाजी ने दक्षिण में बैठे-बैठे ही सभी हिंदुओं को (अपने वीर कार्यों से) प्रकाशित कर दिया। दिल्ली से पंच-हज़ारी सरदार गर्जना करते हुए आते हैं, किन्तु दक्षिण से ताजिया पीटते से (उदास हुए, मातम मनाते हुए) जाते हैं अर्थात् शिवाजी से हार जाने पर उदास होकर जाते हैं।

अलंकार—ललित और विषादन।

बैठतीं दुकान लैकै रानी रजवारन की,[1]
तहाँ आइ बादशाह राह देखै सब की।
बेटिन को यार और यार है लुगाइन को,
राहन के मार दावादार गए दबकी॥

पाठान्तर—१. रानी रजवारन की दुकानाँ लगाई बैठी।

ऐसी कीन्हीं वात तोऊ कोऊवै[2] न कीन्ही घात,
भई है नदानी बंस छत्तिस मैं कत्र की।
दच्छिन के नाथ ऐसो देखि धरे मूछों हाथ,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी ॥२८॥

शब्दार्थ—लैके = लेकर, लगाकर। रजवारन = रजवाड़े, राजपूतों की रियासतें। यार = मित्र,प्रेमी, जार। लुगाई = स्त्री। राहन = रास्ते। राहन के मार = रास्ते में मार पीट करने वाले वटपार, डाकू। दावादार = अधिकार जमाने वाला, वरावरी करने वाला। दबकी = दुबक गये, छिप गये। कोऊवै = कोई भी, किसी ने भी। घात = चोट। नदानी = मूर्खता।

अर्थ—(मीना बाजार* में) रजवाड़ों की रानियाँ दुकानें लगाकर बैठती थीं और बादशाह वहाँ आकर राह देखता था, प्रतीक्षा करता था। वह राज-पुत्रियों का प्रेमी तथा रानियों को चाहने वाला था, उस समय वटपार भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते थे, वे भी उसे देख छिप गये थे अर्थात् (बादशाह का) यह कार्य बटपारों से भी अधिक भयंकर था। बादशाहों ने ऐसी ऐसी (असह्य) बातें की परन्तु किसी ने उन पर चोट न की। कितने ही समय से राजपूतों के छत्तीसों वंशों में यह मूर्खता होती रही है। ऐसे समय में दक्षिण के स्वामी

---

*अकबर के समय में महलों में स्त्रियों का एक बाजार लगता था जिसमें दिल्ली-स्थित आश्रित राजाओं की स्त्रियाँ, लड़कियाँ तथा अन्य प्रतिष्ठित प्रजाजनों की स्त्रियाँ सौदा बेचती थीं। कहते हैं कि अकबर इस बाजार की सैर गुप्त रीति से वेष बदल कर करता था और वह जिस स्त्री को पसंद कर लेता था उसे महलों में रख लिया जाता था।

पाठान्तर—१ कोऊ यै।

महाराज शिवाजी ने यह सब कुछ देखकर मूछों पर हाथ रखा अर्थात् यह प्रकट किया कि हम बादशाहों से बदला लेंगे; सच है यदि शिवाजी न होते तो सब की सुन्नत हो जाती अर्थात् सबको मुसलमान होना पड़ता।

अलंकार—संभावना और तुल्ययोगिता।

सतयुग द्वापर औ त्रेता कलियुग मधि,
आदि भयो नाहिं भूप तिन हुते ए[1] घरी।
बब्बर अकब्बर हिमायूँसाह सासन सों,
नेह तें सुधारी हेम-हीरन तें सगरी॥
भूषन भनत सबै मुगलान चौथ दीन्हीं,
दौरि दौरि पौरि पौरि लूट ली चहूँ फरी।
धूरि तन लाइ बैठी सूरत है रैन-दिन,
सूरत कौं मारि[2] बदसूरत सिवा करि॥२६॥

शब्दार्थ—तिन हुते ए घरी = उन से लेकर इस समय तक। हेम = स्वर्ण, सोना। सगरी = समस्त, सब। चौथा = चतुर्थांश, आय का चतुर्थांश मराठे कर रूप में पराजित नरेशों से लेते थे। दौरि दौरि = दौड़ दौड़ कर, धावे मार कर, आक्रमण करके। पौरि = ड्योढ़ी, यहाँ स्थान-स्थान में तात्पर्य है। चहूँ फरी = चारों ओर फिर कर, चारों ओर घूम कर।

अर्थ—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में आदि से लेकर अब तक कोई भी राजा ऐसा नहीं हुआ। बाबर, हुमायूँ तथा अकबर बादशाहों के शासन-काल में बड़े प्रेम से सारी (सूरत नगरी) सोने और जवाहरत से सजाई गई थी। भूषण कवि कहते हैं शिवाजी ने चारों तरफ़ घूम घूम कर कर आक्रमण करके इसे खूब लूटा, वहाँ के सब मुसलमान सरदारों ने इन्हें चौथ दी। अब सूरत नगरी रात दिन धूल-धूसरित सी रहती

पाठान्तर—१. आ। २. मोरि।

है अर्थात् सूरत में अब कुछ बाकी नहीं रहा, धूल ही धूल रह गई है। इस प्रकार शिवाजी ने सूरत को मार कर (लूट कर) बदसूरत (म्लान मुखी) कर दिया, अर्थात् सूरत नगरी की शोभा नष्ट कर दी।

अलंकार—यमक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

पक्खर प्रबल दल भक्खर सों दौर करि,
आय साहिजू को नंद बाँधी तेग बाँकरी।
सहर भिलायो मारि गरद मिलायो गढ़,
अजहूँ न आगे पाछे भूप किन-नाँ करी॥
हीरा-मनि-मानिक की लाख पोटि लादि गयो,
मंदिर ढहायो जो पै काढ़ि मूल काँकरी।
आलम पुकार करै आलमपनाहजू पै,
होरी सी जलाय सिवा सूरत फनाँ करी॥३०॥

शब्दार्थ—पक्खर = लोहे की झूलें जो युद्ध के समय हाथी, घोड़ों पर डाल दी जाती हैं। भक्खर=सिन्ध का एक नगर। बाँकरी= बाँकी, टेढ़ी, प्रबल। भिलायो = सूरत के निकट एक नगर। गरद= धूल। पोटी=पोटरी; गठरी। मन्दिर = महल। मूल = जड़, नींव। काँकरी = कंकड़ी। काढ़ी मूल काँकरी = नींव के कंकड़ तक निकाल दिये, जड़ से खुदवा डाले। आलम = संसार, लोग, दुनियाँ। आलम-पनाह = संसार-रक्षक, औरंगज़ेब। फनाँ = नष्ट।

अर्थ—शाहजी के सुपुत्र महाराज शिवाजी ने लोहे की झूलों से सुसज्जित एवं प्रबल सेना द्वारा (सिंध के) भक्खर नगर तक धावा मारा और वापिस आकर विजयोत्साह में अपनी बाँकी तलवार बाँधी। (फिर) भिलायो नगर को नष्टकर उस के किले को धूल में मिला दिया। तब से अब तक किसी भी राजा ने आगे या पीछे 'ना' नहीं की अर्थात्

पाठान्तर—१ मोरि।

शिवाजी के आधिपत्य को अस्वीकार नहीं किया। (सूरत से) शिवाजी हीरे, मणि एवं माणिक्य की लाखों गठरियाँ लदवा लाये और वहाँ के महलों को गिरा कर उनकी नींव तक खुदवा डाली। तब सब लोग जा कर संसार-रक्षक (औरंगज़ेब) से पुकार करने लगे कि शिवाजी ने सूरत को होली की तरह जला कर नष्ट कर दिया है (आप क्यों नहीं रक्षा करते ?)।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा और परिकरांकुर।

दौरि चढ़ि ऊँट फरियाद चहूँ खूँट कियो,
सूरत को कूटि सिवा लूटि धन लै गयो।
कहि ऐसे आय[1] आम-खास मधि साहन को,
कौन ठौर जायें दाग छाती बीच दै गयो॥
सुनि सोई साह कहे यारो उमरावो जाओ,
सो गुनाह राव एती बेर बीच कै गयो।
भूषन भनत मुगलान सबै चौथ दीन्ही,
हिंद में हुकुम साहि नंदजू को ह्वै गयो॥३१॥

शब्दार्थ—फरियाद=प्रार्थना, पुकार। खूँट=कोना, ओर। कूटि=पीट कर। दाग=चिह्न, घाव। राव=राजा, यहाँ शिवाजी से तात्पर्य है। गुनाह=अपराध। एती बेर=इतने से समय में। हुकुम= आज्ञा, यहाँ शासन से तात्पर्य है।

अर्थ—ऊँट पर चढ़कर, दौड़कर चारों तरफ यह पुकार की गई कि शिवाजी कूट पीट कर सूरत का सारा धन लूट ले गया। इसी प्रकार उन्हीं साँढनी-सवारों ने बादशाह के महलों में आम-खास में आकर कहा कि अब हम कहाँ जायँ, शिवाजी हमारी छाती में घाव कर गया है। यह सुनकर बादशाह उमरावों से कहने लगा कि मित्रो! उमरावो! जाओ, (देखो) वह राव (शिवाजी) इतने से (थोड़े)समय में इतना भारी अपराध

पाठान्तर—१ आप।

कैसे कर गया ? भूषण कवि कहते हैं कि शाहजी के पुत्र महाराज शिवाजी को (सूरत के) सभी मुसलमानों ने चौथ दी और हिंदुस्तान भर में उनका अधिकार हो गया।

अलंकार—अनुप्रास और विभावना।

बारह[1] हज़ार असवार जोरि दलदार,
ऐसे अफ़ज़लखान आयो सुर-साल है[2]
सरजा खुमान मरदान सिवराज वीर,
गंजन गनीम आयो गाढ़े गढ़पाल है॥
भूषन भनत दोऊ दल[3] मिलि गये बीर,
भारत से भारी भयो जुद्ध बिकराल है।
पार जावली के बीच गढ़ परताप तले,
स्रोन भए स्रोनित सौं अजौं धरा लाल है॥३२॥

शब्दार्थ—जोरि=जोड़ि, जोड़कर इकट्ठा करके। दलदार=दलवाला, दलपति, सेनापति। सुर-साल=सुर+साल, देवताओं को सालने वाला, राक्षस। मरदान=मर्द, वीर, पराक्रमी। गंजन=नाश करने वाला। गनीम=शत्रु। गाढ़े गढ़पाल=बलवान गढ़पति, बड़े बड़े दुर्गों के रक्षक। भारत=महाभारत। पार=एक नगर। स्रोन भए स्रोनित सों=रक्त बहने के कारण ललाई छा जाने से।

अर्थ—बारह हज़ार घुड़सवारों की सेना को इकट्ठा करके राक्षस रूप सेनापति अफ़ज़लखाँ आया। आयुष्मान, मरदाने वीर सिंह शिवाजी जो शत्रुओं के नाशक हैं और बड़े भारी दुर्ग-रक्षक हैं, वे भी (अफ़ज़लखाँ के आगमन को सुन कर) आये। भूषण कवि कहते हैं कि दोनो सेनाओं के वीर परस्पर भिड़ गए और महाभारत जैसा भयंकर युद्ध

पाठान्तर—१. बारही। २. ऐसे अफजलखांन जोर जुमिलात है। ३. भीर दोउ दल मही थल।

ठन गया। पार और जावली के बीच में प्रतापगढ़ के तले रक्त बहने के कारण ललाई छा जाने से पृथिवी आज भी लाल है।

अलंकार—उपमा, भाविक और अनुप्रास।

दिल्ली को हरौल भारी सुभट अडोल गोल,
चालीस हजार लै पठान धायो तुरकी।
भूषन भनत जाकी दौरि ही को सोर मच्यो,
एदिल की सीमा पर फौज आनि ढुरकी॥
भयो है उचाट करनाट नरनाहन को,
डोलि[1] उठी छाती गोलकुंडा ही के धुर[2] की।
साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तव,
बाहु-बल राखी पातसाही बीजापुर की॥२३॥

शब्दार्थ:—हरौल=सेना का अग्रभाग (Vanguard)। अडोल=अटल, स्थिर। गोल=समूह। आन ढुर की=आ ढुलकी। आ झुकी, आ पहुँची। भयो है उचाट=अस्थिर हो गये, व्याकुल हो गये। डोल उठी=चंचल हो गई, कंपायमान हो गई। धुर=मुख्य या ऊँचा स्थान, किला।

अर्थ—बड़े भारी दृढ़ योद्धाओं का समूह जिसके अग्रभाग में था दिल्ली की ऐसी चालीस हजार सेना को लेकर तुर्की पठान बीजापुर पर चढ़ आया। भूषण कवि कहते हैं कि जिसके आने से चारों ओर शोर मच गया, इस प्रकार की वह दिल्ली की सेना अली आदिलशाह की सीमा पर आ पहुँची। यह देख करनाटक के राजाओं को भी व्याकुलता हो गई और गोलकुंडा के किले (के अंदर रहने वाली सेना) की छाती भी काँप गई। ऐसे समय में हे शाह जी के वीर पुत्र महाराज शिवा जी! आपने अपने बाहुबल से बीजापुर की बादशाहत की रक्षा की।

पाठान्तर—१ काँपि। २ धर।

अलंकार—अनुप्रास ।

घिरे रहे घाट और बाट सब घिरे रहे,
बरस दिना की गैल छिन माँहि छ्वै गयो ।
ठौर ठौर चौकी ठाढ़ी रही असवारन[1] की,
मीर उमरावन के बीच ह्वै चलै[2] गयो ॥
देखे में न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मीड़े कर झारत किते गयो ।
सारी पातसाही के सिपाही सेवा सेवा करैं,
परयो रह्यो पलँग परेवा सेवा ह्वै गयो ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—घाट=नदियों के वे स्थान जहाँ से नाव पर चढ़ते है। बाट=मार्ग,रास्ते। गैल=मार्ग। छ्वै गयो=छू गया, स्पर्श कर गया, तै कर गया। चौकी=पहरा(Guard)। ठाढ़ी=खड़ी। कर मीड़े=हाथ मलती है, पछताती है। कर झारत=हाथ झाड़ता हुआ, हाथ फटकारता हुआ। सेवा=शिवाजी। परेवा=पक्षी।

अर्थ—(यमुना के) समस्त घाट एवं सब स्थल मार्ग (सिपाहियों से) घिरे हुए थे, इतने पर भी (शिवाजी) साल भर के रास्ते को क्षण भर में ही पार कर गया। स्थान-स्थान पर सवारों की चौकियाँ (पहरे) पड़ी हुई थीं, (इतने पर भी) वह अमीर-उमरावों की भीड़ में से निकल ही गया। किसी के देखने भी नहीं आया और कोई जानता भी नहीं कि वह कैसे चला गया, दिल्ली हाथ ही मलती रह गई (दिल्ली-पति पछताता ही रह गया) कि वह हाथ झाड़ता हुआ किधर चला गया। तमाम बादशाहत के सिपाही शिवाजी-शिवाजी (कहाँ गया ?) करते रहे; पलंग वैसे ही पड़ा रहा और शिवाजी पक्षी की तरह उड़ गया।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा,वीप्सा,विशेषोक्ति, विभावना और पदार्थावृत्तिदीपक।

---

१ सब स्वारन। २ चलो।

आपस की फूट ही तें सारे हिंदुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति-अति करतें ।
पैठिगो पताल बलि बज्रधर ईरषा तें,
टूट्यो हिरनाच्छ अभिमान चित धरतें ॥
टूट्यो सिसुपाल वासुदेवजू सों बैर करि,
टूट्यो है महिष दैत्य अधम बिचरतें ।
राम-कर छूवन ते टूट्यो ज्यों महेस-चाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरते ॥३५॥

शब्दार्थ—टूट्यो=टूट गया, नष्ट होगया, चौपट हो गया । करतें—करने से । पैठिगो=प्रविष्ट होगया, चला गया । बलि=एक दैत्यराज, इसने ९९ यज्ञ किये थे । जब सौवाँ यज्ञ करने लगा तब इन्द्र डरा कि कहीं यह इंद्र-पद न ले ले । अतः उसने विष्णु भगवान से प्रार्थना की । इस पर विष्णु ने बलि राजा की परीक्षा लेने के लिये 'वामन' रूप (बौने का रूप) धारण किया और राजा बलि से ३½ पग पृथ्वी माँगी । जब राजा ने पृथ्वी दान कर दी, तब वामन जी महाराज ने तीन पगों में आकाश, पाताल और पृथ्वी नाप ली । शेष आधे पग के लिए जब जगह न रही तो उन्होंने वह बलि के सिर पर रख दिया । बलि उसके भार को न सहार सका और पाताल में जा गिरा । बज्रधर=बज्र को धारण करने वाले, इन्द्र । हिरनाच्छ= प्रह्लाद का ताऊ, हिरण्यकशिपु का ज्येष्ठ भ्राता, इसे विष्णु भगवान ने मारा था, यह बड़ा अत्याचारी दैत्य था । सिसुपाल=शिशुपाल, यह श्रीकृष्ण की फूफी का बेटा था, और चँदेरी का राजा था । यह रुक्मिणीजी से विवाह करना चाहता था, किन्तु रुक्मिणीजी श्रीकृष्ण जी को चाहती थीं । अतः रुक्मिणी का विवाह जब से श्रीकृष्ण जी से हुआ तब से शिशुपाल उनसे बहुत जलने लगा ।

जब पांडवों ने राजसूय यज्ञ किया तो शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को बहुत गालियाँ दी, उस अवसर पर श्रीकृष्ण ने इसे मार डाला। वासुदेव=वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्ण। महिष=महिषासुर, इसे महाकाली ने मारा था। अधम=अधर्म। अधम-विचरते=अधर्म विचार से, पापाचार से।

अर्थ—जैसे आपस की फूट ही से सारे हिन्दू चौपट हो गये, अधिक अत्याचार करने से रावण के वंश का नाश हो गया, इन्द्र से ईर्ष्या करने के कारण राजा बलि पाताल पहुँच गया, चित्त में अभिमान धारण करने के कारण हिरण्याक्ष दैत्य का नाश होगया, श्रीकृष्ण से वैर करने के कारण शिशुपाल मारा गया, अधर्म के कार्य करने के कारण महिषासुर दानव नष्ट होगया, और जैसे रामचन्द्र जी के हाथ के स्पर्श से महादेव का धनुष टूट गया, वैसे ही शिवाजी के साथ लड़ने से दिल्ली की बादशाहत टूट गई (नष्ट हो गई)।

अलंकार—पदार्थावृत्तिदीपक और मालोपमा।

चोरी रही मन मैं ठगोरी रूप ही मैं रही,
नाहीं तो रही है एक माननी के मान मैं।
केस मैं कुटिलताई नैन मैं चपलताई,
भौंह मैं बँकाई हीनताई कटियान मैं॥
भूषन भनत पातसाही पातसाहन मैं,
तेरे सिवराज राज अदल जहान मैं।
कुच मैं कठोरताई रति मैं निलजताई,
छाँड़ि सब ठौर रही आइ अबलान मैं॥३६॥

शब्दार्थ—ठगोरी=ठग विद्या, मोहिनी। बँकाई=वक्रता, टेढ़ापन। हीनताई=क्षीणता, पतलापन, दुर्बलता। पात=पतन, गिरना। पातसाही=शाही का पतन, बादशाहत का गिरना। अदल=न्याय। कुच=स्तन। रति=स्त्री-प्रसंग; संभोग।

अर्थ—(शिवाजी का ऐसा न्याय था कि समस्त राज्य में) चोरी केवल मन में ही थी (अर्थात् और कोई किसी चीज़ की चोरी नहीं करता था केवल स्त्रियाँ ही लोगों के मन चुराती थीं)। ठगोरी केवल रूप में थी (रूप से मनुष्य ठगे जाते थे अन्यथा कोई किसी को ठगता न था)। 'नाहीं' शब्द मानिनी (रूठी हुई स्त्री) के मान में ही थी (रूठी स्त्री ही अपने पति को रतिदान में नाहीं करती थीं और कोई भी दान देने में नाहीं नहीं करता था)। कुटिलता केवल बालों में थी, चंचलता केवल नेत्रों में थी, वक्रता (टेढ़ापन) केवल भौंहों में और क्षीणता केवल स्त्रियों की कमर में थी (कोई भी कुटिल, चंचल, वक्र और दुर्बल मनुष्य शिवाजी के राज्य में नहीं था केवल स्त्रियों के ही इन अंगों में ये बातें थीं)। भूषण कवि कहते हैं कि (शिवाजी के राज्य में) किसी का पतन नहीं था, केवल बादशाहों की बादशाही का ही पतन था। हे शिवाजी ! तुम्हारे न्याय-पूर्ण राज्य में संसार भर में कठोरता केवल कुचों में और निर्लज्जता केवल संभोग समय में (स्त्रियों में) है। इस प्रकार उपर्युक्त समस्त बातें स्त्रियों में ही आकर इकट्ठी हो गई हैं (अन्य कहीं नहीं)।

अलंकार अनुप्रास और परिसंख्या।

बलख बुखारे मुलतान लौं हहर पारै,
काबुल पुकारै कोऊ गहत न सार है।
रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै,
खग्ग[1] लौं खादर भारै ऐसी साहू की बहार है॥
सक्खर[2] लौं भक्खर लौं मक्कर लौं चलो जात,
टक्कर लेवैया कोऊ बार है न पार है।
भूषन सिरोंज लौं परावने परत फेर,
दिल्ली पर परति परिंदन की छार है ॥३७॥

पाठान्तर—१. खाक। २. कक्कर।

शब्दार्थ—हहर=डर, भय। हहर पारै=डर पैदा कर देता है, हलचल मचा देता है। सार=हथियार। रूँदि डारै=कुचल देता है। खूँदि मारै=कुचल कर मार डालता है। खादर=नदी या समुद्र के किनारे की नीची भूमि, कछार, यहाँ समुद्र तट से तात्पर्य है। साहू—शिवाजी का पोता। रूम=तुर्की। सख्खर और भक्खर= सिंध में दो गाँव है। मक्कर=सिंध के निकट 'मकुरान' एक गाँव, एक मकराना स्थान जोधपुर में है, यहाँ की पत्थर की खान बड़ी प्रसिद्ध है। वार=इस ओर। पार=उस ओर। सिरोंज=भूपाल के पास एक शहर जहाँ सन् १७३८ में मराठों ने निज़ाम को हराया था। परावने=भगदड़। छार=धूल।

अर्थ—महाराज साहू की ऐसी बहार है कि वह बलख, बुखारा तथा मुलतान तक हलचल मचा देता है, और काबुल में भी उसकी पुकार मच जाती है, कोई भी हथियार नहीं धारण करता। वह तुर्की को कुचल डालता है और खुरासानियों को घोड़ों से खुँदवा देता है। खादर (समुद्र तट) तक तलवार चलाता है (आक्रमण करता है), और सख्खर, भक्खर और मकुरान नगर तक जा पहुँचता है। परन्तु यहाँ से वहाँ तक उससे टक्कर लेने वाला (सामने लड़ने वाला) कोई नहीं है। भूषण कवि कहते हैं कि सिरोंज शहर तक भगदड़ मच जाती है और (भगदड़ से उठी हुई धूल पक्षियों के पंखों पर छा जाती है और जब वे उड़कर जाते हैं तो) पक्षियों से वह धूल दिल्ली पर जा गिरती है।

अलंकार—अनुप्रास और पर्यायोक्ति।

साहूजी की साहिबी दिखात कछू होनहार,
जाके रजपूत भरे जोम बमकत हैं।
भारे भारे नग्रवारे भागे घर तारे दै दै,
कारे घन घोर ज्यों नगारे धमकत हैं॥[1]

पाठान्तर—१. बाजे ज्यों नगारे घनघोर धमकत हैं।

व्याकुल पठानी मुगलानी अकुलानी फिरैं,
भूषण भनत माँग मोती दमकत हैं।
दिल्ली दल दाहिबे को दच्छिन के केहरी के[1],
चंबल के आर-पार नेजे चमकत हैं॥२८॥

शब्दार्थ—साहिबी=स्वामित्व, शासन । होनहार=भविष्य में उन्नति करने वाला। रजपूत=क्षत्रिय, सैनिक। जोम=उत्साह। धमकत हैं=गर्जते हैं। तारे दै दै=ताले दे दे कर, ताले लगाकर। दाहिबे=जलाने के लिए।

अर्थ—शाहूजी का शासन भविष्य में होनहार सा मालूम होता है क्योंकि इनके समस्त राजपूत (सिपाही) उत्साह से भरे हुए गरजते रहते रहते हैं। जब इनके घनघोर काले बादलों जैसे (गर्जना करने वाले) नगाड़े धमकते हैं तब बड़े बड़े नगरों में रहने वाले घरों में ताले लगा कर भाग जाते हैं तथा पठान और मुगलों की स्त्रियाँ बेहाल होकर अकुलाती हुई भागी फिरती हैं। भूषण कवि कहते हैं कि उनकी माँग के मोती चमकते हैं (अर्थात् उनके बुर्के उतर गए हैं, जिससे चमकते हुए मोती दिखाई देते हैं)। दक्षिण के सिंह महाराज शाहूजी के भाले दिल्ली की सेना को जलाने के लिए चंबल नदी के दोनों ओर चमक रहे हैं।

अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, उपमा, रूपक, पर्यायोक्ति।

भेजे लिख लग्न शुभ गनिक निज़ाम बेग,
इतै गुजरात उतै गंग लौं पतारा की।
एक जस लेत अरि फेरा फिर गढ़हू को,
खंडि नवखंड दिए दान ज्योऽव तारा की॥
ऐसे ब्याह करत विकट साहू साहन सों,
हद हिंदुवान जैसे तुरक ततारा की।

पाठान्तर—१. दच्छिन के आमिल भो सामिल ही चहुँ ओर। २. ज्यों।

आवत बरात सजे ज्वान देस-दच्छिन के,
दिल्ली भई दुलहिन सहजैं सतारा की ॥३६॥

शब्दार्थ—गनिक = गणक, ज्योतिषी । निज़ाम बेग=निज़ामुल्मुल्क । यह पहले दिल्ली के बादशाह की तरफ़ से दक्षिण का सूबेदार था, पर सन् १७२४ में स्वतंत्र हो गया । गुजरात और मालवा के सूबे भी इसके हाथ में थे । इसके स्वतंत्र होने पर बादशाह ने सरबुलन्दखाँ को गुजरात का सूबेदार बना कर भेजा । निज़ामुल्मुल्क गुजरात छोड़ना न चाहता था, अतः उसने मराठों से मदद ली और बदले में उन्हें चौथ वसूल करने का अधिकार दिया । उसके बाद सन् १७३१ में मराठों ने जब गंगा और यमुना के बीच के दोआब पर आक्रमण किया तब इसने उनकी सहायता की थी । पतारा=घोर जंगल, यहाँ हिमालय से तात्पर्य है ।

अर्थ—निज़ामबेग (निज़ाममुल्क) रूपी ज्योतिषी शाहूजी को शुभलग्न लिखकर भेजता है (अर्थात् आक्रमण करने के लिए उत्तेजित करता है)और शाहूजी इधर गुजरात तक और उधर घोर जंगल (हिमालय की तराई)की गंगा तक पहुँच जाते हैं (अर्थात् उत्तर भारत तक आक्रमण करते हैं) । एक ही फेरे (आक्रमण) में शाहूजी शत्रु से यश और फिर गढ़ भी छीन लेते हैं । नवों खंडों (संपूर्ण पृथ्वी) के खंड-खंड करके उन्होंने इस प्रकार दान कर दिये मानों तारा (शुक्र तारा) उदय हुआ हो (शुक्र तारे के उदय होने पर जो दान दिया जाता है वह बड़ा फलदायक होता है । शाहूजी ने अपने सरदारों को राज्य-प्रबन्ध के लिए जागीरें बाँट दी थीं, उसी की तरफ संभवतः निर्देश है) । शाहूजी बादशाहों से इस प्रकार भयंकर विवाह ठानते हैं, और हिन्दुओं की मर्यादा की ऐसे ही रक्षा करते हैं, जैसे तुर्क लोग तातार की रक्षा करते हैं । दक्षिण देश के युवकों से सजी हुई बरात चढ़ती है, जिसमें दिल्ली सितारे की दुलहिन बन गई है ।

साजि दल सहज सितारा महाराज चलै,
बाजत नगारा पढ़ैं धाराधर साथ से।
राव उमराव राना देस देसपति भागे,
तजि तजि गढ़न गढ़ोई दसमाथ से ॥
पैग पैग होत भारी डाँवाडोल भूमि गोल,
पैग पैग होत दिग्ग मैगल अनाथ से।
उलटत पलटत गिरत झुकत उझ—
कत सेष-फन वेद-पाठिन के हाथ से ॥४०॥

शब्दार्थ—धाराधर=बादल। गढ़न=दुर्ग, किले। गढोई=छोटा किला। पैग=पग, कदम। मैगल=मदगल, मदझड़ा हाथी। दिग्ग मैगल=दिग्गज। उझकत=ऊपर को उठते हैं। वेद पाठिन के हाथ से=वेद पाठियों के हाथों के समान, जिस समय वेदपाठी वेद पढ़ते हैं तो वेद के स्वरों के अनुसार अपने हाथों को ऊपर नीचे झुलाते हैं।

अर्थ—जिस समय सितारा के महाराज (साहूजी) अपनी सेना को सहज में ही सजाकर चलते हैं उस समय उनके नगाड़ों की ध्वनि ऐसी होती है जैसे बादल साथ साथ (अपनी गर्जना से) उनकी विरुदावली पढ़ते चलते हों। राव, उमराव तथा राना आदि गढ़ एवं गढ़ियों को छोड़ कर अपने देशों से ऐसे भाग गये जैसे रावण भागा था (एक बार रावण राम से युद्ध करते करते भाग गया था और यज्ञ करने लगा था। इस यज्ञ को विभीषण की सहायता से बंदरों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया था)। (सेना के भार से) पृथ्वी पद-पद पर हिलने लगती है और वायु के गोले उठते हैं तथा पद पद पर दिग्गज अनाथ हो जाते हैं (सेना के भार से दिशाओं के हाथी दब जाते हैं; न उनसे पृथ्वी छोड़ते बनती है न सँभाले ही बनती है; इनकी इस अवस्था में कोई मदद नहीं करता, विचारे अनाथ से हो जाते हैं)। शेषनाग के फन भी (इस सेना-भार से) वेदपाठियों के हाथों

के समान कभी उलटते हैं, कभी गिरते हैं, कभी पलटते हैं, कभी नीचे को झुकते हैं और कभी ऊपर को उठते हैं।

अलंकार—पुनरुक्तिप्रकाश, उपमा, अत्युक्ति और कारकदीपक।

बाजि बंब चढ़ो साजि वाजि जब कलाँ भूप,
गाजी महाराज राजी भूषन बखानतें।
चंडी के सहाय महि मंडी तेजताई, ऐंड
छंडी राय राजा जिन दंडी औनि आन तें॥
मंदीभूत रबि रज बंदीभूत हठधर,
नंदी-भूत-पति भो अनंदी अनुमान तें।
रंकीभूत दुवन करंकीभूत दिगदंती,
पंकीभूत समुद सुलंकी के पयान तें॥४१॥

शब्दार्थ—बंब = रण-नाद, रण का बाजा। बाजि=बजाकर। बाजि=घोड़ा। कलाँ = बड़ा, सर्वोच्च। गाजी=धर्मवीर। राजी = पंक्ति, समूह, दल। महाराज राजी = महाराज का दल (सेना)। मंडी = मंडित की। छंडी=छोड़ दिया। दंडी = दंडित किया। औनि= अवनि, पृथ्वी। मंदीभूत = मंद हो गया। बंदीभूत=कैद हो गये। हठ धर=हठ धारण करने वाले, हठी। नंदी=शिवजी का बैल। रंकीभत = दरिद्र होगये। करंकीभूत = कलंकी होगये। पंकीभूत = कीचड़ वाला होगया। सुलंकी—सुलंकी अग्नि-कुल के क्षत्रिय हैं यहाँ "हृदयराम सुत रुद्र साह" से तात्पर्य है, यह सुलंकी कुल में उत्पन्न हुए थे। "शि० भू०" के छंद सं० २८ का शब्दार्थ देखिये।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जब धर्मवीर, सर्वोच्च, सुलंकी के महाराज ने रण के बाजे बजाकर घोड़े सजा सेना सहित चढ़ाई की तो चंडी देवी की कृपा से सारी पृथिवी को उन्होंने अपने तेज से मंडित कर दिया, अर्थात् उनका प्रताप सारी पृथिवी पर छा गया और समस्त राव राजाओं

ने, जिन्होंने अन्य राजाओं से भूमि दंड में छीन ली थी, अपनी ऐंड (बड़प्पन की अकड़) छोड़ दी। सुलंकी महाराज (की सेना) के युद्ध के लिए प्रयाण करने पर धूल के उड़ने से सूर्य मंद पड़ गया, बड़े बड़े हठी (राजा) कैद हो गये, नंदी और भूतों के स्वामी महादेव जी युद्ध के आसार का अनुमान कर प्रसन्न हो गये, शत्रु दरिद्र हो गये, दिग्गज कलंकित हो गये (पृथिवी का भार न सँभाल सकने के कारण अथवा धूल पड़ने से मैले पड़ गये), समुद्र में (इतनी धूल गिरी कि पानी) कीचड़ ही कीचड़ हो गया।

अलंकार—अनुप्रास, यमक एवं अत्युक्ति।

जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन दाटियतु है।
प्रलै कैसे धाराधर धमकैं नगारा धूरि-
धारा तें समुद्रन की धारा पाटियतु है॥
भूषन भनत भुवगोल को कहर तहाँ,
हहरत तगा जिमि गज्ज काटियतु है।
काँच से कचरि जात सेस के असेस फन,
कमठ की पीठि पै पिठी-सी बाँटियतु है॥४२॥

शब्दार्थ—अवधूतसिंह—रीवाँ के राजा थे। इनका समय सं० १७५७ से सं० १८१२ वि० तक माना जाता है। दिगंत लौं=दिशाओं के अन्त तक। दुवन=शत्रु। दाटियतु है=डाँटे जाते हैं, डराये जाते हैं। धाराधर=बादल। धूरिधारा=धूल की धार। पाटियतु है=भर दी जाती है। भुवगोल=भूमंडल। कहर=आपत्ति। हहरत=हिलता हुआ। तगा=तागा डोरा। कचरि=टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। असेष=समस्त। कमठ=कच्छप। पिठी=पिसी हुई दाल।

अर्थ—भूषण कवि कहते हैं कि जिस दिन महाराज अवधूतसिंह अपनी सेना सजाकर चढ़ाई करते हैं उस दिन समस्त दिशाओं के शत्रु डाँटे जाते हैं। नगारे प्रलय काल के मेघों के समान गर्जना करते हैं। धूल की धारा (समूह) इतनी उड़ती है कि समुद्र का प्रवाह रुक जाता है। भूमंडल में बड़ा कहर (संकट) मच जाता है। हिलते हुए धागे के समान हाथी कट जाते हैं। (सेना के भार से) शेषनाग के समस्त फन काँच की भाँति चूर-चूर हो जाते हैं और कच्छप की पीठ इस प्रकार घिस जाती है जैसे कि उस पर पीठी पीसी गई हो।

अलंकार—अनुप्रास, उपमा, और अत्युक्ति।

भले भाय[1] भासमान भासमान भान जाको,
भानत भिखारिन के भूरि-भय-जाल है।
भोगन को भोगी भोगिराज कैसी भाँति भुजा,
भारी भूमि-भार के उभारन को ख्याल है॥
भावती[2] समान[3] भूमि-भामिनी को भरतार,
भूषन भरतखंड भरत भुवाल है।
विभौ की भँडार औ भलाई को भवन भासै,
भाग भरे भाल जयसिंह भुवपाल है॥४३॥

शब्दार्थ—भले भाय=भली भाँति। भासमान=प्रकाशित। भासमान=सूर्य। भान=आभा, शोभा। भानत=भंग करता है, तोड़ता है, दूर करता है। भूरि=समस्त। भोगिराज=सर्प राज, शेषनाग। उभारन को=उठाने को। भावती=भाने वाली, प्रिय स्त्री। भामिनी=स्त्री। भरतार=भर्त्ता, पति। विभौ=वैभव, ऐश्वर्य। भासै=प्रकाशित होता है, जाना जाता है। भाग भरे भाल=भाग्यशाली। जयसिंह—जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह बड़े वीर थे। ये औरंगजेब के सब

पाठान्तर—१. भाई। २. भावतो ३. समान्नि।

से सबसे बड़े सिपाहसालार थे। इन्होंने मध्य एशिया के बलख से लेकर बीजापुर तक और कंधार से लेकर मुंगेर तक अपना आतंक फैलाया था। शाइस्ताखाँ के हारने पर औरंगज़ेब ने इन्हें दक्षिण में शिवाजी को दबाने के लिए भेजा था। दक्षिण यात्रा में इनके साथ दिलेरखाँ, दाऊदखाँ कुरेशी और राजा रायसिंह आदि बड़े बड़े सेनानायक भी गये थे। शिवाजी ने इनसे संधि कर ली। इन्हीं के कहने से वे औरंगज़ेब से मिलने आगरा गये थे। ये दक्षिण से लौटते समय बुरहानपुर में स्वर्गवासी हुए।

अर्थ—महाराज जयसिंह भलीभाँति प्रकाशित सूर्य जैसी आभा वाले हैं। वे भिखारियों के समस्त भय जाल को दूर कर देते हैं, तथा सब प्रकार के भोगों (ऐश्वर्यों) को भोगने वाले और सर्पराज जैसी (विशाल) भुजा वाले हैं। उन्हें पृथ्वी के अपार बोझ को उठाने का (अर्थात् पृथ्वी की रक्षा का) ध्यान रहता है। भूषण कवि कहते हैं कि वे अपनी प्रिया के समान पृथिवी-रूपी स्त्री के पति हैं और समस्त भारतवर्ष के भरत के समान राजा हैं। वे ऐश्वर्य के खज़ाने तथा सब प्रकार की भलाइयों के भवन (स्थान) एवं बड़े ही भाग्यशाली हैं।

अलंकार—यमक, उपमा, रूपक, अनुप्रास और उल्लेख।

अकबर पायो भगवंत के तनै सों मान,
बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों।
भूषन त्यों पायो जहाँगीर महासिंहजू सों,
साहजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों॥
अब अवरंगज़ेब पायो रामसिंह जू सों,
औरो दिन दिन पैं है कूरम के माने सों।
केते राव-राजा मान पावैं पातसाहन सों,
पावैं पातसाह मान मान के घराने सों॥४४॥

शब्दार्थ—भगवंत=राजा भगवानदास जयपुर के राजा थे। इनकी बहन बादशाह अकबर को ब्याही गई थी। यह अकबर की सेना के सेनापति भी थे। इनका दत्तक पुत्र मानसिंह बड़ा ही प्रतापी एवं वीर था। भगवंत के तनै=राजा भगवानदास का तनै (पुत्र) मानसिंह। मानसिंह अकबर के सेनापति थे, इन्होंने काबुल तक का देश जीता था। दक्षिण को भी इन्होंने विजय कर लिया था। यह अकबर के दायें हाथ माने जाते थे। जगतसिंह—अकबर के सेनापति महाराज मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र जगतसिंह थे। महासिंह—ये जगतसिंह के लड़के थे। महासिंह जी के पुत्र ही प्रसिद्ध मिरजा राजा जयसिंह जी थे, जिनका परिचय पिछले छन्द में दिया जा चुका है। रामसिंह—जयपुराधीश महाराज जयसिंह जी के सुपुत्र थे। जब महाराज शिवाजी आगरा गये थे तो रामसिंहजी ने ही उनकी सुश्रूषा तथा सहायता की थी। कूरम = कछवाहा वंश, जयपुर-नरेश कछवाहे वंश के हैं।

अर्थ—अकबर बादशाह ने वास्तव में राजा भगवानदास के पुत्र मानसिंह के कारण और फिर वीरश्रेष्ठ जगतसिंह के कारण ऐसी इज़्ज़त पाई थी। भूषण कवि कहते हैं कि इसी प्रकार बादशाह जहाँगीर ने महासिंह के कारण और शाहजहाँ ने जयसिंह के कारण यश प्राप्त किया, इस बात को संसार जानता है। अब औरंगज़ेब बादशाह ने रामसिंह जी के द्वारा इज़्ज़त पाई है तथा अन्य बादशाह भी कछवाहे नरेशों के ही कारण दिन प्रतिदिन मान पावेंगे। कितने ही उमराव और राजा लोग बादशाहों से सम्मान और प्रतिष्ठा पाते हैं किन्तु मानसिंह जी (जयपुर नरेश) के घराने (वंश) से उलटा बादशाह ही मान पाते हैं।

अलंकार—पदार्थावृत्तिदीपक, काव्यलिंग, यमक और अनुप्रास।

पौरच-नरेश अमरेस जू के अनिरुद्ध,
तेरे जस सुने तें सुहात स्रौन सीतलैं।
चंदन सी, चाँदनी सी, चादरें सी चहूँ दिसि,
पथ पर फैलती हैं परम पुनीत लैं ॥
भूषन वखानी कवि मुखन प्रमानी सो तो,
बानी जू के बाहन हरख हंस ही-तलैं।
सरद के घन की घटान सी घमंडती हैं,
मेंडू तें उमंडती हैं मंडती महीतलैं ॥४५॥

शब्दार्थ—पौरच—क्षत्रियों की एक जाति, जिनका अलीगढ़ के आसपास राज्य था। इनकी राजधानी मेंडू थी। भूषण के समय में इस वंश का अनिरुद्धसिंह नरेश राज्य करता था। सुहात=सुहाते हैं, भले लगते हैं। स्रौन=श्रवण, कान। चादरैं= कपड़े की सफेद चादर। पुनीत=पवित्र। लैं=लौं, तरह। बानी जू=श्री सरस्वती जी। बाहन=सवारी। ही-तलैं=हृत्तल में। मेंडू=पौरच नरेश की राजधानी। मंडती=छा जाती है।

अर्थ—हे पौरच-वंशज महाराज अमरसिंह जी के पुत्र अनिरुद्धसिंह जी, आपका यश सुनने से (हमारे) कानों को शीतलता मिलती है। (आपके यश की उज्ज्वलता) चन्दन एवं चादर (की उज्ज्वलता) के समान चारों दिशाओं में मार्गों पर परम पवित्रता की भाँति फैल जाती है। भूषण कवि कहते हैं कि (आपके यश की उज्ज्वलता का) कवियों के मुखों से प्रमाण मिलता है (अर्थात् कवि आपकी उज्ज्वलता का वर्णन करते हैं) और श्री सरस्वती की सवारी के हंस के हृदय में भी वह (यश की उज्ज्वलता) हर्ष उत्पन्न करती है। शरद ऋतु के (सफेद) बादलों की घटाओं की भाँति (आपके यश की उज्ज्वलता) मेंडू से उमड़ती हुई सारे संसार में फैल जाती है

अलंकार—मालोपमा, प्रौढ़ोक्ति, अनुप्रास ।

जुद्ध को चढ़त वुद्ध को सजत[1] तब,
लंक लौं अतंकन के पतरैं पतारे से ।
भूपन भनत भारे घूमत गयंद कारे,
वाजत नगारे जात अरि-उर छारे से ॥
धाँसकै धरा के गाढ़े कोल की कड़ा के डाढ़े,
आवत तरारे दिगपालन तमारे से ।
फेन से फनीस-फन फूटि विष छूटि जात,
उछरि उछरि सिंधु पुरवै फुआरे[2] से ॥४६॥

शब्दार्थ—वुद्ध—बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा के भाई, भीमसिंह के पौत्र अनिरुद्धसिंह थे । इन्हीं अनिरुद्धसिंह जी के राव बुद्धसिंह जी पुत्र थे । औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् जब उसके पुत्रों में राज्य के लिए जाजउ स्थान पर लड़ाई हुई तो राव बुद्धसिंह जी मुअज्ज़म की ओर से लड़े थे । लंक = लंका द्वीप । पतरैं=द्रव पदार्थ की तरह फैल जाता है । पतारैं = जंगल । छारे = छाले, फफोले । कोल = वराह, सुअर । डाढ़े = दाँत । तरारै = तर्रार शक्तिशाली । तमार = मूर्च्छा । पुरवै = पूर्ण करता है , भर देता है ।

अर्थ—बूँदी के राव बुद्धसिंह जी जिस समय सेना सजा कर युद्ध के लिए चढ़ाई करते हैं तब लंका देश तक उनके आतंक का जंगल सा फैल जाता है । भूपण कवि कहते हैं कि काले काले बड़े बड़े हाथी झूमते हुए चलते हैं और नगाड़ों के बजने से तो वैरियों के हृदयों में फफोले से पड़ जाते हैं । उन नगाड़ों की ध्वनि पृथिवी में घुस कर वराह की डाढ़ें तक कड़कड़ा (कर तोड़) देती है और उससे शक्तिशाली दिग्पालों तक

पाठान्तर—१ जसन । २ भुआरे ।

को मूर्च्छा सी आ जाती है। (सेना के भार से) शेषनाग के फन समुद्र की फेन की तरह फट जाते हैं और उनसे जो विष निकलता है वह फव्वारे की तरह उछल कर ऊपर को आ जाता है और समुद्र तक को भर देता है ।

शब्दार्थ—अत्युक्ति, अतिशयोक्ति, उपमा, अनुप्रास, और पुनरुक्ति-प्रकाश ।

रहत अछक पै मिटै न धक पीवन की,
निपट जू नाँगी डर काहू के डरै नहीं ।
भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के,
स्रोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं ॥
उगलित आसौ तऊ सुकल समर बीच,
राजै रावबुद्ध-कर बिमुख परै नहीं ।
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौ लौं,
जौं लौं गजराजन की गजक करै नहीं ॥४७॥

शब्दार्थ—अछक=छकी हुई, तृप्त (अछक का अर्थ अतृप्त होना चाहिये पर यहाँ तृप्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है)। धक = उमंग, प्रबल इच्छा। चोखे=अच्छे अच्छे । खानखानन=खानखाना, मुसलमान। स्रोनित = श्रोणित, खून। आसौ=आसव, लाल रंग की मदिरा। सुकल = शुक्ल, सफेद। गज़क = कजक, शराब पीने वाले मुँह का स्वाद ठीक करने के लिए जो नमकीन या चटपटी चीज़ खाते हैं ।

अर्थ—हे राव बुद्धिसिंह जी ! तुम्हारे हाथ की तलवार यद्यपि सदा तृप्त रहती है (अर्थात् शत्रुओं को खूब काट काट कर तृप्त हो रही है) तो भी उसकी पीने की इच्छा नहीं बुझती। वह बिलकुल नंगी है परन्तु फिर भी वह किसी से नहीं डरती। वह खानखानों (मुसलमान सरदारों) के बढ़िया बढ़िया भोजन करती है और उनका रक्त पीती है तो भी उसका पेट नहीं भरता। यह आसव उगलती रहती है (अर्थात् सदा रक्त बहाती

रहती है) तो भी वह सफेद (चमकती हुई) रहती है, तुम्हारी यह मतवाली (रक्तरूप आसव पीकर मस्त होने वाली) तलवार तब तक तृप्त नहीं होती जब तक कि अच्छे अच्छे हाथियों की गजक नहीं कर लेती।

अलंकार—विशेषोक्ति, विरोधाभास और अनुप्रास।

उलहत मद अनुमद ज्यों जलधि-जल,
बलहद भीम कद काहू के न आह के।
प्रबल प्रचंड गंड मंडित मधुप-वृंद,
विंध्य से बिलंद सिंधु-सातहू के थाह के॥
भूषन भनत झूल झंपति झपान झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के।
मेघ से घमंडित मजेजदार तेज-पुंज,
गुंजरत कुंजर कुमाऊँ नरनाह के॥४८॥

शब्दार्थ—उलहत=उमड़ता है। मद अनुमद=मद के बाद मद। बल हद=बल की सीमा। भीम कद=बड़े भारी डील डौल वाले। आह के=बलके, साहस के। गंड=गंडस्थल, कनपटी। मधुप=भौंरे। बिलंद=ऊँचे। थाह=गहराई। झपति=ढके हैं। झपान=ढकने का वस्त्र, या ढकने की वस्तु। झहरात=थरथरा कर गिर पड़ते हैं। मजेजदार=मिज़ाज वाले, घमंडी। गुंजरत=गरजते हैं। कुंजर=हाथी।

अर्थ—हाथियों से इतना मद उमड़ता है जैसे सागर ही उमड़ रहा हो। वे अत्यन्त बलशाली और बड़े भारी डील डौल वाले हैं, उनके सामने किसी का साहस नहीं पड़ता। उनकी बड़ी बड़ी प्रचंड कनपटियाँ भौंरों के झुंडों से सुशोभित रहती हैं, वे विंध्याचल पर्वत के समान ऊँचे और सातों समुद्रों की थाह लेने वाले हैं। भूषण कवि कहते हैं कि वे हाथी झूलों के ढकने से ढके हुए हैं (अर्थात् उन पर झूलें पड़ी रहती हैं) और

जब वे झूमते चलते हैं तो उन से ईर्ष्या करने वाले रथ भी थरथरा कर गिर पड़ते हैं। घन-घटाओं के समान उमड़ते हुए कुमाऊँ-नरेश के ऐसे तेजस्वी एवं घमंडी हाथी गर्जना कर रहे हैं।

अलंकार—उपमा, अतिशयोक्ति और अनुप्रास।

डंका के दिए तें दल-डंबर उमंड्यो उड-
मंड्यो उडमंडल लौं खुर की गरद है।
जहाँ दारासाह बहादुर के चढ़त पैंड,
पैंड मैं मड़त मारू-राग बंब्रनद है॥
भूपन भनत घने घुम्मत हरौलवारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद है।
हद न छपद महि मद फर नद होत,
कद नभनद से जलद दल दद है॥ ४६॥

शब्दार्थ—डंका के दिए = नगाड़ा बजाने पर। डंबर=विस्तार। दल-डंबर=सेना का विस्तार, सेना-समूह। उमंड्यो = उमड़ा। उड मंडयो=उड़कर मंडित हो गया, छा गया। उडमंडल=तारा-मंडल, यहाँ आकाश से तात्पर्य है। खुर=सुम। दारा साह—दारा, यह शाहजहाँ बादशाह का सब से बड़ा पुत्र था, यही शाहजहाँ के पश्चात् सिंहासन का अधिकारी था। इसमें धार्मिक कट्टरता नहीं थी। हिंदुओं के साथ यह अच्छा व्यवहार करता था। भूषण ने दारा की प्रशंसा इसी कारण की है कि वह हिंदू-धर्म से प्रेम रखता था। शाहजहाँ के बीमार पड़ने पर औरंगज़ेब ने राज्य पाने के लिए दिल्ली की तरफ कूच किया। राज्य-प्रबन्ध उस समय दारा के हाथ में था। आगरा के पास दोनों की लड़ाई हुई। दारा हार कर भागा, पर पकड़ा गया। औरंगज़ेब ने उसे खूब अपमानित करने के पश्चात् मरवा डाला। पैंड = पग, पद। मड़त =

मंडित होता है, छा जाता है। मारूराग=युद्ध के बाजे का राग। बंबनद्द=बंबनाद, हिंदू योद्धाओं की युद्ध के समय हर-हर बं-बं की ललकार। हरौल=सेना का आगे का भाग। किम्मत=कीमत। अमोल=अमूल्य। दुरद्द=द्विरद, हाथी। हद्द न=हद्द नहीं, बेहद, अपार। छपद्द=छः पद, षट् पद, भौंरा। मद=हाथी की कनपटी से चूने वाला रस। फर=युद्ध क्षेत्र। नद्द=नदी। कद्द=कद, लंबाई। नभनद्द=आकाश गंगा। जलद्द=जलद, बादल। दल=समूह। दद्द=दर्द, पीड़ा।

अर्थ—नगाड़ों के बजने पर सेना-समूह उमड़ पड़ता है, (सेना के घोड़ों के) खुरों से गर्द उड़कर आकाश तक छा जाती है। वीर दाराशाह के चढ़ाई करते ही पग-पग पर मारू बाजे की ध्वनि फैल जाती है और बं, बं शब्द होने लगता है (दारा की ओर से युद्ध में हिन्दू नरेश भी लड़ते थे, वे ही बं-बं शब्द बोलते थे)। भूषण कवि कहते हैं कि हरौल(अग्रभाग) में बहुमूल्य एवं बड़ी हिम्मत वाले हाथी घूम रहे हैं (झूमते हैं)। इन(हाथियों) की कनपटियों पर भौंरों की अपार भीड़ है तथा पृथ्वी पर इन से मदजल झरने के कारण युद्धक्षेत्र में नदी सी बह चलती है। इनकी ऊँचाई आकाश-गंगा तक है (अर्थात् बहुत ऊँचे है)। ये बादलों के समूह को भी पीड़ा पहुँचाते है अर्थात् इतने ऊँचे है कि बादलों का आनाजाना भी रोक लेते हैं।

अलंकार—अतिशयोक्ति और अनुप्रास।

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलै-भानु कैसी
फारैं तम-तोम-से गयंदन के जाल को।
लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन-सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुंडन की माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।

प्रतिभट-कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देति काल को ॥५०॥※

शब्दार्थ—मयूखैं=किरणें। प्रलै-भानु=प्रलय काल का सूर्य। तम-तोम=अन्धकार का समूह। गयन्दन के=हाथियों के। जाल=समूह। लपकि=दौड़कर। रुद्र=महादेव। लाल=चिरंजीव, अथवा कवि का नाम। छितिपाल=राजा। प्रतिभट=शत्रु। कटक=सेना। कालिका-सी=काली के समान। किलकि=प्रसन्न होकर, किलकारी मार कर। कलेऊ=कलेवा, नाश्ता। काल=यमराज।

अर्थ—म्यान से निकली हुई तलवार की किरणें प्रलय-काल के सूर्य के समान तेज़ हैं जो अंधकार के समूह के समान काले हाथियों के झुंडों को फाड़ डालती हैं। वैरियों के गले पर वह नागिन के समान दौड़ कर पड़ती हैं और महादेव जी को मुंडों (कटे हुए सिरों) की माला दे दे कर प्रसन्न करती हैं। हे चिरंजीव (अथवा लाल कवि कहते हैं) महा-बाहु वीर छत्रसाल महाराज, मैं आपकी तलवार का वर्णन (प्रशंसा) कहाँ तक करूँ। यह कालिका के समान शत्रु की कितनी ही सेनाओं को, जो काँटेदार झाड़ियों के समान दुखदायी हैं, काट-काट कर यमराज को कलेवा करवाती है।

अलंकार—उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश तथा अनुप्रास।

दारा और औरंग जुरे हैं दोऊ दिल्लीवाल,
एकै गए भाजि एकै गए रुँधि चाल मैं।

※इस कवित्त में भूषण का नाम नहीं है। स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई की सम्मति में यह कवित्त भूषण का नहीं है अपितु बूँदी-नरेश हाड़ा छत्रसाल की प्रशंसा में लाल कवि का बनाया हुआ है। उनकी सम्मति में पाँचवी पंक्ति के 'लाल' शब्द का अर्थ चिरंजीव नहीं है, अपितु यह कवि का नाम है।

कोऊ दगाबाजि करि बाजी राखी निज कर,
कौनहू प्रकार प्रान बचत न काल मैं ॥
हाथी ते उतरि हाड़ा जूझ्यो लोह-लंगर दै,
एती लाज कामैं जेती लाल छत्रसाल मैं ।
तन तरवारिन मैं मन परमेसुर मैं,
प्रान स्वामी-कारज मैं माथो हर-माल मैं ॥५१॥*

शब्दार्थ—दारासाहि=दारासिकोह, औरंगज़ेब का बड़ा भाई। रुँधि=फँस गए। दगाबाजी करि=धोखा देकर। जूझ्यो=युद्ध करने लगा। लोह-लंगर=लोहे की मोटी जंजीर, जो हाथी के पैर में इस लिए डाल दी जाती है कि वह भाग न सके।

अर्थ—दाराशिकोह और औरंगज़ेब दोनों दिल्ली के शाहज़ाहे एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध में प्रवृत्त हुए हैं। उस समय कोई कोई तो भाग गये और कोई चाल चल कर घेर लिये गये। कोई कोई ऐसे थे कि जिन्होंने दगाबाजी करके बाजी अपने हाथ में रक्खी(अर्थात् प्राण बचाये)। उस समय प्राण बचाना बड़ा कठिन हो रहा था। ऐसे समय में हाड़ा छत्रसाल अपने हाथी से उतर कर उसके पैर में लोहे की साँकल डलवा कर घोर युद्ध में भिड़ गये। क्योंकि इतनी लज्जा(आत्माभिमान) और किसमें हो सकती है, जितनी छत्रसाल में थी। उस समय उनका शरीर तलवारों में कट रहा था, मन परमेश्वर में लगा हुआ था, प्राण स्वामी (दारा) के कार्य में थे, इसी हेतु उनका सिर महादेव के मुंडमाल में था, (जो वीरता से लड़ते हुए मरते हैं उनका माथा महादेव के मुंडमाल में स्थान पाता है)।

---

* इस कवित्त में भी भूषण का नाम नहीं है और इस से पहले पद्य की तरह इसे भी स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई लाल कवि का मानते हैं। कुछ प्रतियों में 'लाल' शब्द की जगह 'लाज' पाठ भी मिलता है तथा कुछ लोग 'लाल' का अर्थ चिरंजीव कहते हैं। अतः यह कवित्त भूषण का है या किसी और कवि का, यह संदेहात्मक है।

अलंकार—यमक और स्वभावोक्ति।

कीबे को समान प्रभु ढूँढि देख्यो आन पै,
निदान दान जुद्ध में न कोऊ ठहरात है।
पंचम प्रचंड भुजदंड को बखान सुनि,
भागिबे को पच्छी लौं पठान थहरात हैं॥
संका मानि सूखत अमीर दिल्लीवारे जब,
चंपति के नंद के नगारे घहरात हैं।
चहूँ ओर चकित चकत्ता के दलन पर,
छत्ता के प्रताप के पताके फहरात है॥५२॥❀

शब्दार्थ—कीबे = करने के लिए। पंचम = बुंदेला नरेशों की पदवी जो उनके पूर्व-पुरुष पंचमसिंह के नाम से चली थी। थहरात = काँपते हैं।

अर्थ—आपके समान दूसरा स्वामी करने (बनाने) हेतु मैंने सारा संसार खोज मारा किन्तु आपके समान दानवीर तथा युद्धवीर कोई दिखाई नहीं पड़ता। छत्रसाल पंचम के बाहुबल का वर्णन सुन सुनकर पठान लोग भाग जाने के लिए पक्षियों की भाँति काँपते हैं। और जब चंपतराय के पुत्र महाराज छत्रसाल के नगारे बजते हैं तो दिल्ली के अमीर मुसलमानों का कलेजा सशंकित हो सूखता जाता है। औरंगज़ेब की विस्मित-सेना समूह के ऊपर चारों ओर राजा छत्रसाल के प्रताप की ध्वजा फहरा रही है।

❀ इस कवित्त में भी भूषण का नाम नहीं है। स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई की सम्मति में इस कवित्त की तृतीय पंक्ति में आया 'पंचम' शब्द कवि का नाम है, पर कुछ लोगों की सम्मति में 'पंचम' बुँदेला-नरेश की उपाधि है। अतः यह कवित्त भी भूषण का है या किसी और कवि का, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता।

अलंकार—यमक, उपमा, अतिशयोक्ति और अनुप्रास।

चले चंदवान घनवान औ कहुकवान,
चली हैं कमानैं धूम आसमान ह्वै रह्यो।
चली जमडाढ़ैं वाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
लोह आँच जेठ को तरनि मानों च्वै रहो॥
ऐसे समै फौजें विचलाई छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाए पायँ वीर रस च्वै रहो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली मैं अचल हाड़ा ह्वै रहो॥५३॥

शब्दार्थ—चंदवान=वे बाण जिनके आग अर्धचन्द्राकार गाँसी लगी होती है। घनवान=ऐसे बाण जिनके चलाने से बादल छा जाते हैं। कुहुकबान=एक प्रकार के बाण जिनके चलने से बड़ा शब्द होता है। कमानैं=तोपें। जमदाढ़ैं=कटारी की तरह का एक हथियार। बाढ़वारैं=तेज़ धार वाली। लोहआँच=हथियारों (के बार बार चलने) से उत्पन्न हुई गर्मी। च्वै=टपकना।

अर्थ—चन्द्रबाण, घनबाण, कुहुकबाण और तोपें चल रही हैं, जिससे सारे आकाश में धुआँ छा रहा है। तीक्ष्ण कटारों और तलवारों के चलने और उनकी रगड़ से ऐसी आँच उत्पन्न हो रही है मानों जेठ मास का सूर्य उदय हो गया हो। ऐसे समय में छत्रसाल की फौज विचलित होने पर भी उन्होंने वीर रस में उन्मत्त होकर शत्रु के पैर पीछे हटा दिये। हाथी घोड़े भाग गए, अन्य साथी भी साथ छोड़ छोड़ कर भाग चले

❀ स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई ने इस छंद को बूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा के किसी दरबारी कवि का रचा बताया है। इस छंद में भूषण का नाम नहीं है और न किसी अन्य कवि का ही है। इसलिए यह भी संदेहात्मक है।

किन्तु ऐसी चलाचली (भगदड़) के समय हाड़ा छत्रसाल अचल युद्ध-क्षेत्र में डटे रहे।

अलंकार—तुल्ययोगिता दीपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, स्वभावोक्ति और अनुप्रास।

उठि गयो आलम सों रुजुक सिपाहिन को,
उठिगो बँधैया सब वीरता के बाने को।
भूषन* भनत उठि गयो है धरा सों धम,
उठिगो सिंगार सबै राजा राव राने को।
उठिगो सुकवि सील, उठिगो जसीलो डील,
फैलो मध्यदेस मैं समूह तुरकाने को।
फूटे भाल भिच्छुक के जूझे भगवंत राय,
अरराय टूटयो कुल खंभ हिंदूआने को ॥५४॥

शब्दार्थ—रुजुक=रिज़क, भोजन, जीविका। बाना=वेष। सिंगार=शृंगार, सजावट, शोभा। सुकवि-शील=अच्छे अच्छे कवि जिसके दरबार में हों। जसीलो=यशवाला, यशस्वी। डील=शरीर। भाल फूटे=भाग्य फूट गये। जूझे=युद्ध में मर गये। भगवंत राय—भगवंतराय खीची असोथर के राजा थे। वे स्वयं अच्छे कवि थे और कवियों का सम्मान करते थे, उनके दरबार में मून, भूधर, सारंग आदि कवि थे। इस कवित्त में मध्यदेश का नाम आने से यह शंका होती है कि भगवन्तराय खीची तो संयुक्त प्रान्त के असोथर के राजा थे फिर उनका मध्य देश से क्या सम्बन्ध ? इसके सिवाय भगवन्तराय का निधन काल सन् १७४० ई० माना

---

* इस स्थान पर 'भूधर' पाठ होना चाहिए, ऐसा कुछ लोगों का विचार है, क्योंकि 'भूधर' नाम का कवि भगवंतराय खीची के था। यहाँ भगवंतराय खीची की मृत्यु भूषण की मृत्यु के बहुत दिन पीछे हुई था अतः इस छंद के भूषण-कृत होने में संदेह है।

जाता है। भूषण इस से पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। भगवन्तराय नाम का एक राजा मध्य देश में भी हुआ ज्ञात हुआ है, किन्तु वह इतना प्रसिद्ध नहीं था। अरराय=भहरा कर।

अर्थ—सिपाहियों को भोजन (जीविका) देने वाला संसार से उठ गया। वीरता के वेश (मर्यादा) को बाँधने वाला उठ गया। भूषण कवि कहते हैं कि पृथिवी से धर्म उठ गया तथा राजाओं और उमरावों की शोभा भी उठ गई। अच्छे अच्छे कवियों को दरबार में रखने वाला उठ गया, यशस्वी शरीर वाला भी कोई नहीं रहा, अपितु सारे मध्य प्रदेश में मुसलमानों का ही प्रभाव फैल गया। भगवंतराय के मरने से भिक्षुकों की किस्मत फूट गई और हिंदुओं के वंश का आधार भी भहरा कर टूट गया।

अलंकार—उल्लेख और अनुप्रास।

देह देह देह फिर पाइए न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन आइबो।
जेते मनि-मानिक हैं तेते मन मानि कहैं,
धराई मैं धरे ते तौ धराई धराइबो॥
एक भूख राखै भूख राखै मत भूषन की,
यही भूख राखै भूप भूपन बनाइबो।
गगन के गौन जम गिनन न दैहैं नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइबो॥५५॥

शब्दार्थ—देह=देहि, दो, दे डालो। देह=शरीर। जौन तौन=जो, तो, इधर उधर की बातें, उज्र। जौन=जिन्हें, जो। धरा=पृथ्वी। भूख=क्षुधा, इच्छा। गौन=गमन। नग=जवाहरात।

अर्थ—दीजिए, (जितना हो सके, दान) दीजिए, फिर ऐसा शरीर

नहीं मिलेगा। जो (यम गण) आते हैं वे 'कौन' तथा 'जो तो' नहीं जानते, अर्थात् वह कौन है, कैसा है इसकी परवाह नहीं करते बल्कि छोटे बड़े सब को ले ही जाते हैं। जितने मणि-माणिक्य और जवाहरात हैं उन्हें मन में ही मान लो क्योंकि लोग कहते हैं कि जो पृथिवी में धरे हैं (पृथिवी में गाड़ कर रखे हैं) वे पृथिवी में ही धरे रहेंगे (साथ किसी के भी नहीं जाएँगे)। फिर एक ही इच्छा रखनी चाहिये, भूषण (गहने) आदि की इच्छा ही न रखे, केवल यही इच्छा रखे कि राजाओं का सा प्रतापी बन जाऊँ क्योंकि परलोक जाते समय यमराज नग (जवाहरात आदि) न गिनने देगा, केवल नग्न चलना पड़ेगा जवाहरात साथ नहीं चलेंगे।

अलंकार—यमक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास।

शृंगार-रस*

अति सौंधे भरी सुखमा सु खरी मुख ऊपर आइ रही अलकैं।
कवि भूषन अंग नवीन विराजत मोतिन-माल हिये झलकैं॥
उन दोउन की मनसा मन सी नित होत नई, ललना ललकैं।
भरि भाजन बाहर जात मनो मुसुकानि किधौं छवि की छलकैं॥५६

नैन जुग नैनन सों प्रथमै लड़े हैं धाय,
अधर कपोल तेऊ टारैं नहिं टेरे हैं।
अड़ि अड़ि पिलि पिलि लड़े हैं उरोज वीर,
देखो लगे सीसन पै घाव ये घनेरे हैं॥
पिय को चखायो स्वाद कैसो रति-संगर को
भए अंग-अंगनि ते केते मुठभेरे हैं।
पाछे परे वारन कों बाँधि कहै आलिन सों,
भूषन सुभट येई पाछे परे मेरे हैं॥५७॥

---

* शृंगार-रस के दस पद्य पंजाब युनिवर्सिटी की प्रभाकर परीक्षा की पाठविधि में नहीं हैं। इसलिए इनके अर्थ नहीं दिए गये।

कोकनद-नैनी केलि करि प्रानपति संग,
उठी परजंक तें अनंग-जोति-सोकी-सी ।
भूषन सकल दलमलि हलचल भए,
बिंदु-लाल भाल फैल्यो कांति रबि रोकी सी ।
छूटि रही गोरे गोल गाल पै अलक आली,
कुसुम गुलाब के ज्यों लीक अलि दो की सी ।
मोती सीस फूल तें बिथुरि फैलि रह्यो मानो,
चद्रमा तें छूटी है नछत्रन की चौकी सी ॥५८॥

देखत ही जीवन बिडारो तौ तिहारो जान्यो,
जीवन-द नाम कहिबे ही को कहानी मैं ॥
कैधों घनस्याम जो कहावैं सो सतावैं मोहिं,
निहचैकै आजु यह बात उर आनि मैं ॥
भूषन सुकवि कीजै कौन पर रोसु निज-
भागि ही को दोसु आगि उठति ज्यों पानी मैं ।
रावरेहू आए हाय हाय मेघराय सब,
धरती जुड़ानी पै न बरती जुड़ानी मैं ॥५९॥

मेचक-कवच साजि बाहन-बयारि-बाजि
गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ बदन के ।
भूषन भनत समसेर सोई दामिनी है,
हेतु नर कामिनी के मान के कदन के ॥
पैदरि-बलाका धुरवान के पताका गहे,
घेरियत चहूँ ओर सूने ही सदन के ।
ना करु निरादर पिया सों मिलु सादर,
ये आये बीर बादर बहादर मदन के ॥६०॥

मलय समीर परलै को जो करत अति,
जम की दिसा तें आयो जम ही को गोतु है।
साँपन को साथी न्याय चंदन छुए तें डसै,
सदा सहबासी बिष-गुन को उदोतु है ॥
सिंधु को सपूत कलपद्रुम को बंधु,
दीनबंधु को है लोचन सुधा को तनु सोतु है।
भूषत भनत भुव भूषन द्विजेस तैं,
कलानिधि कहाय कै कसाई कत होतु है ॥६१॥

जिन किरनन मेरो अंग छुयो तिनही सों,
पिय अंग छुवै क्यों न मैन-दुख दाहे को ।
भूषन भनत तू तो जगत को भूषन है,
हौं कहा सराहौं ऐसे जगत सराहे को ॥
चंद ऐसी चाँदनी तू प्यारे पै बरसि उतै,
रहि न सकै मिलाप होय चित-चाहे को।
तू तो निसा करै सब ही की निसा करै मेरी,
जो न निसा करै तो तू निसाकरै काहे को ॥६२॥

बन उपवन फूले अंबनि के भौर भूले,
अवनि सोहात सोभा और सरसाई है ।
अलि मदमत्त भए केतकी वसंती फूली,
भूषन बखाने सोभा सबै सुखदाई है ॥
विषम बिडारिबे को वहत समीर मंद,
कोकिला की कूक कान कानन सुनाई है।
इतनो सँदेसो है जू पथिक तिहारे हाथ,
कहो जाय कंत सों वसंत रितु आई है ॥६३॥

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली,
छाह रह्यो मानो यह विष कालीनाग को ।
बैरिन भई है कारी कोयल निगोड़ी यह,
तैसो ही भँवर कारो बासी बन बाग को ॥
भूषन भनत कारे कान्ह को बियोग हिये,
सबै दुखदाई जो करैया अनुराग को ।
कारो घन घेरि घेरि मार्‌यो अब चाहत है,
एते पर करति भरोसो कारे काग को ॥६३॥

सुने हूजै वेसुख सुने बिन रह्यो न जाय,
याही तें बिकल-सी बिताती दिन-राती हैं ।
भूषन सुकवि देखि बावरी विचार काज,
भूलिबे के मिस सास नंद अनखाती हैं ॥
सोई गति जानै जाके भिदी होय कानै सखि,
जेती कढ़ै तानै तेती छेदि छेदि जाती है ।
हूक पाँसुरी मैं क्यों भरौं न आँसुरी मैं थोरे,
छेद बाँसुरी मैं घने छेद किए छाती है ॥६५॥

कुछ अन्य पद्य*

बाँएँ लिखवैयन के बाम बिधि होन लागे,
दाएँ लिखवैयन पै दाप सो मढ़ै लगी ।
छा गई उदासी खासी मस्जिद मकबरन,
मठ-मंदिरन कोटि रोसनी चढ़ै लगी ॥

---

*भूषण ग्रंथावली के किसी किसी संस्करण में ये पद्य पाये जाते है। किसी में ये सारे हैं, किसी में कुछ कम हैं, पर अभी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये पद्य भूषण के हैं अथवा नहीं। अतएव इनके अर्थ नहीं दिये गये।

भूषन भनत सिवराज आज तेरे राज,
तेज तुरकानन तें तेजता कढ़ै लगी ।
माथन पै फेरि लागे चंदन चमक देन,
फेरि सिख-सूत्रन की महिमा बढ़ै लगी ॥६६॥

ताही ओर परै घोर घर-घर जौर सोर,
जाही ओर सिवा के नगारे भारे गरजैं ।
भूषन जो होइ पातसाही पाइमाल औ,
उजीर वेहवाल जैसे वास त्रास चरजैं ॥
एकै कहैं देस लेहु एकै कहैं दंड लेहु,
एकै कहैं लेहू गढ़-कोट जंग बरजैं ।
करत उकील सरजा के दरवार,
छरीदारन सों ऐसी पातसाहन की अरजैं ॥६७॥

पारावार पार पैरि जैहैं भुजवल अरु,
वारक विहंसि वडवानल मैं जरिहैं ।
दौरिहैं उपाहने पगन तरवारि पर,
महा विषधरन के मुख कर करिहैं ॥
भूषन भनत अवरंगजू को उमराव,
कहत रहत गिरिहू तें गिरि परिहैं ।
छोरि समसेर सेर सिंहहु सों लरिहैं पै,
बाँधि समसेर सिवा सिंह पै न लरिहैं ॥६८॥

एकै भाजि सकत न चौकरी भुलाने ऐसे,
जैसे मृग-जूथ दपटत मृगराज के ।
भूषण भनत एकै पच्छनि थकित भए,
पच्छी लौं सटपटात झपटत बाज के ।

एकै सरजा के परताप यौं जरत, तिन-
पुंज ज्यौं बरत परे मुख-दौ-पराज-के।
मीरजादे मुरि जात खानजादे खपि जात,
साहजादे सूखि जात दौरे सिवराज के ॥६९॥

सूर-सरदार सूबेदार ऐंड़दार ते वै,
सरजा धँसाए धोप-धक्कनि धुकाइ कै।
भूषन भनत यातैं संकत रहत नित,
कोऊ उमराव न सकत समुहाइ कै॥
दिल्ली तें चलत ह्याँ लौं आवत सिवा के डर,
कूटि-काटि फौजैं जातीं भभरि भगाइ कै।
मध्य तें उमड़ि जैसे बीची बारि बारिधि की,
वेला न उलंघैं जातीं बीच ही बिलाइ कै ॥७०॥

मारे तें रुहेलनि बिडारे तें बुँदेलनि के,
बहादुरखान ह्वैहै घाट को न घर को।
भूषन भनत सिव सरजा की धाक फेरि,
कोऊ नाहिं ह्वैहै सूवा दक्खिन के दर को॥
बेदर के लीन्हें पर, देवगिरि छीने पर,
सत्रुन के, सीने पर जैहैं महा धर को।
दोई दिन भीतर बिगोई सुनि आसरे सों,
कोई दिन जैहैं गढ़ोई ग्वालियर को ॥७१॥

कारी भीति कालिंजर कंगूरे कनौज सदा,
सूरन के संका सरजा के करवाल की।
भूषन मिमार माड़े माड़व मुलुक कोऊ,
झँपि सोर भीमर गहै न बात वाल की॥

बिललाइ बिकल बिलाइति को साह सुनि,
साइति मैं सूरति बिलाइत बिहाल की।
कहाँ लौं सराहौं सिवराज की सपूती भई,
कौसिलापुरी लौं धाक भौंसिला भुआल की ॥७२॥

कैयो देस परिव्रढ़ कैयो कोट-गढ़ी-गढ़,
कीन्हे अढ़अढ डिढ काहू मैं न गति है।
भूषन भनत सेना-बंध-हलकंप सुनि,
सिंहल ससंक बंक लंक हहलति है॥
गोलकुंडा बीजापुर हबस पुरतगाल,
बलख बिलाइत दिली मैं दहसति है।
डंका के बजत पातसाह या मलेछ-मन,
डाँकि चौकी धाक सिवाजी की पहुँचति है॥७३॥

महाराज सरजा खुमान सिंह तेरी धाक,
छूट अरि-नैननि मैं पानी की पनारिका।
भूषन भनत धार-धार सुनि बेसुमार,
बारक सम्हारैं न कुमार न कुमारिका॥
देह की न खबरि सुगेह की चलावै कौन,
गात न सोहात न सोहाती परिचारिका।
मानव की कहा चली एते मान आगरे में,
आयो-आयो सिवराज रटैं सुक-सारिका ॥७४॥

साहि-तनै[1] सुभट सिवाजी गाजी तेरी धाक,
भभरि भगानी रानी बेगि[2] मुगलन की।
भूषन मुखनि[3] महताब की निकाई सुल-
फाई तिन पगनि[4] गुलाब के गुलन की॥

पाठान्तर—१ सहतन। २ राज। ३ भनत। ४ गुलफन की।

कच-कुच-भार कटि लचि लचकाइ थकि[1],
आई गरुआई पीन जंघ जुगलन की।
श्रम कुम्हिलानी[2] बिललानी वन-वन डोलैं[3],
मैगल-गवन मुगलानीं मुगलन की ॥७५॥

इत सिरजैखाँ उत सरजा सिवाजी सूर,
दोऊ उतसाहन लरैया खुरकन के।
भूषन भनत गढ़ नाले पर खाले भिरे,
देखैं दोऊ दीन पै न एको कुरकन के॥
साहदी भवानी उन्हैं माहदी सँघारै सबै,
वीजापुरी वीर अब लेन मुरकन के।
लोहू चले नाले पै न हाले दल साले चले,
भाले मरहट्टन के ताले तुरकन के ॥७६॥

कीन्हें खंड-खंड ते प्रचंड बलबंड वीर,
मंडन मही के अरि-खंडन भुलाने हैं।
लै-लै दंड छंडे ते न मंडे मुख रंचकहू,
हेरत हिराने ते कहू न ठहराने हैं॥
पूरब पछाँह आन माने नहिं दच्छिनहू,
उत्तर धरा को धनी रोपत निज थाने हैं।
भूषन भनत नवखंड महिमंडल मैं,
जहाँ-तहाँ दीसत अब साहि के निशाने हैं ॥७७॥

हैवत हो फीलखाने पिलुआ पलंगखाने,
आफत वजीरखाने फाका मोदखाने मैं।
हुँगवा हरमखाने दारिद दरबखाने,
खाक मालखाने और खवीस खसखाने मैं॥

---

१ कटि-कुच भारन तें लफि लचकाइ लफि। २ अकुलानी। ३ फिरैं।

सरदी बरूदखाने फसली सिपाहखाने,
घुर्रा बाजखाने और सुस्ती जंगखाने मैं।
भूषन किताबखाने दीमक दिवानखाने,
खाने-खाने आफत ना अवाज तोपखाने मैं ॥७८॥

महाराज सिवराज तेरे त्रास साह भजे,
जिनके निकट सब नित्य ही लसत हैं।
आरिन मैं अरुआ अटारिन मैं आकज औ,
आँगन अलूसन मैं बाघ बिलसत हैं॥
भौनन के भीतर भुजंग भूत फैले फिरैं,
प्रेतन के पुंज पौरि पैठत ग्रसत हैं।
चारु चित्रसारिन मैं चौंकत चुड़ैल फिरैं,
खासे आमखासन मैं राकस हँसत हैं॥७९॥

औरे रूषनि छोड़ि अलि, भूषन सेइ रसाल।
याके निकट बसन्त ही, ह्वै है निपट निहाल ॥८०॥

टूटि गए गढ़-कोट महा अरु छूटिगे मेड़े जे खाँड़नि खाँचे।
कूटे सबै उमराव सिवा अरु लूटिबे को कहुँ वेस न बाँचे॥
भूपन कंचन की चरचा कहा रंच न हेम खजाननि काँचे।
भूठे कहावत हे पहिले अब आलमगीर फकीर भे साँचे ॥८१॥

लोक ध्रुवलोकहू तें ऊपर रहैगो भारो,
भानु तें प्रभानि की निधान आनि आवैगो।
सरिता सरिस सुरसरि तैं करैगो साहि,
हरि तें अधिक अधिपति साहि मानैगो॥
ऊरध-परारध तें गनती गनैगो गुनि,
वेद तें प्रमान सो प्रमान कछू जानैगो।

सुजस तें भल्यौ मुख भूपन भनैगो वाढ़ि,
गढ़वार राज पर राज जो वखानैगो ॥८२॥

देवता को पति नीको पतिनी सिवा को हर,
श्रीपति न तीरथ वे रथ उर आनिए।
परम धरम को है सेइबो न व्रत-नेम,
योग को सँजोग त्रिभुवन योग जानिए।
भूपन कहा भगति न कनक मनि तातें,
विपति कहा वियोग सोगन वखानिए।
सँपति कहा सनेह न गथ गहिरो सुख,
सुख को निरखि वोई मुकुति न मानिए ॥८३॥

सुंडन समेत काटि विहद मतंगन सों,
रुधिर सों रंग-रन मंडल मैं भरिगो।
भूपन भनत तहाँ भूप भगवंतराय,
पारथ समान महाभारत सो करिगो ॥
मारे देखि मुगल तुरावखान ताही समै,
काहू अस न जानी काहू नट सों उच्चरिगो।
वाजीगर कैसी दगावाजी करि ताहि समै,
हाथी हाथाहाथी तें सहादत उतरिगो ॥८४॥

भेंटि सुरजन तोंहि मेटि गुरजन लाज,
पंथ परिजन को न त्रास जिय जानी है।
नेह ही को तात गुन जीवन सकल गात,
भादों-तम पुंजन निकुंदन सकानी है ॥
सावन की रैन कवि भूपन भयावनी मैं,
भावत सुरति तेरी संकहू न मानी है।

आज रावरे की यहाँ बातें चलिवे की सीत,

मेरे जान कुलिस घटा घहरानी है ॥८५॥

मेरु को सोनो कुवेर की संपति ज्यों न घटै विधि राति अमा की ।

नीरधि नीर कहै कवि भूषन छीरधि-छीर छमा है छमा की ॥

रीति महेस उमा की महा रस रीति निरंतर राम-रमा की ।

ए न चलाए चलैं क्रम छोड़ि कठोर क्रिया औ तिया अधमा की ॥८६॥

पद्य-सूची